

प्रकाशक

एस० सी० सरकार एण्ड सन्स लि०,

१-सी, कालेज स्क्वायर

कलकत्ता-१२

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण, ३० अगस्त १९५४

भाद्र शु. २, २०११

मूल्य चार रुपया चार आना

मुद्रक

पं० वृजलाल पाण्डेय

पुनाइटेड कर्मासिथल प्रेस लि०

१, राजा गुरुदास स्ट्रीट,

कलकत्ता-६

आमुख

गत पच्चीस वर्षों से लेखक की 'Textbook of Deductive Logic' तथा 'Textbook of Inductive Logic' नामक पुस्तकें भारतीय विश्वविद्यालयों के इन्टरमिडिएट कक्षा के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों द्वारा अपनाई जाती रही हैं। कुछ वर्षों से शिक्षण का माध्यम हिन्दी हो जाने से लेखक की बहुत समय से यह इच्छा थी कि उन पुस्तकों का हिन्दी रूपान्तर विद्यार्थियों के हितार्थ प्रस्तुत किया जा सके। अतः आज 'तर्कविद्या प्रवेशिका' के रूप में उन पुस्तकों को प्रस्तुत करते समय लेखक को अतीव हर्ष हो रहा है।

पुस्तक का पाठ्य विषय मूल अंग्रेजी पुस्तक के समान ही रक्खा गया है। साथ ही भारतीय न्याय के कुछ अंश भी यथास्थान जोड़ दिए गये हैं। इस प्रकार इसमें सभी भारतीय विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा-परिषदों द्वारा इन्टर-मिडिएट परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का समावेश है। भाषा को सरल तथा सुबोध बनाने का भरसक प्रयत्न रहा है।

पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी रूपान्तर करते समय विशेष सावधानी रक्खी गई है और जो शब्द अब प्रचलित से हो गये हैं, उन्हीं का उपयोग किया गया है। साथ ही उनके अंग्रेजी पर्याय भी दे दिये गये हैं, जिनसे विषय को समझने में विद्यार्थियों को कोई कठिनाई नहीं होगी। पारिभाषिक शब्द एवं उनके पर्यायवाची शब्दों की एक तालिका भी दे दी गई है, जो उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रत्येक प्रकरण के अन्त में पर्याप्त सख्या में अभ्यासार्थ प्रश्नों का सकलन कर दिया गया है, जो कि मुख्यतः विभिन्न विश्वविद्यालयों की इन्टरमिडिएट परीक्षा के प्रश्नपत्रों से छाँटे गए हैं। परिशिष्ट में, उत्तर प्रदेश की इन्टर-मिडिएट परीक्षा के प्रश्नपत्रों का सचय भी, विद्यार्थियों के लिए समुचित लाभकारी होगा। जटिल बातों का स्मरण करने के लिए प्रभूत चित्र, तालिकाएँ

तथा सकेत दे दिए गये हैं । तर्क के आभामो की विवेचना प्रचुर उदाहरणों के द्वारा सुस्पष्ट रीति से की गई है । ऐसा प्रयास रहा है कि पुस्तक सर्वांगपूर्ण हो । आशा है कि लेखक की अंग्रेजी में लिखित मूल पुस्तक की भाँति यह भी उपयोगी सिद्ध होगी ।

पुस्तक को प्रस्तुत रूप में लाने में लेखक को प्रोफेसर कुमार चन्द्र पन्त, एम० ए०, गवर्नमेन्ट कालेज मुरादाबाद से जो अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए वह उनका आभारी है ।

पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने के सम्बन्ध में हितैषी शिक्षक अपने सुझाव प्रदान कर कृतार्थ करेंगे, ऐसी आशा है ।

कलकत्ता
१५ अगस्त, १९५४

—श्री भोलानाथ राय

प्रकाशकीय वक्तव्य

पता चला है कि एक अन्य प्रकाशक ने श्री भोलानाथ राय के लाजिक का हिन्दी अनुवाद बिना उनकी अनुमति, स्वीकृति और अधिकार के प्रकाशित किया है, जो कि पुराने संस्करण का अनुवाद है, जिसके छपे कम से कम आज दस साल हो चुके हैं । यह प्रस्तुत संस्करण १९५४ के अंग्रेजी के नवीन संस्करण के अनुसार है । इस प्रस्तुत संस्करण में बहुत से संशोधन, परिवर्तन व परिवर्द्धन भी किए गये हैं, जिनका कि आज के दस साल पहलेवाले संस्करण में नामोनिगान भी नहीं है । इसके अलावा हमारा जो प्रकाशन है वह अनुवाद मात्र ही नहीं है, बल्कि एक असली रूप-रेखा के साथ है ।

उन विश्वविद्यालयों में जहाँ कि हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा दी जा रही है वहाँ के छात्रों के लिये विशेष ज्ञातव्य बातें बढ़ा दी गई हैं ।

एस० सी० सरकार एण्ड सन्स लि०

पारिभाषिक शब्दावली

१. सामान्य :

Abstraction पृथक्करण
 Amplification विस्तार
 Appearance प्रतीति
 Argument युक्ति
 Assumption स्वयसिद्धि
 Authority शब्द
 Classification वर्गीकरण
 Comparison तुलना
 Concept साधारण धारणा
 Conception निर्धारण
 Conceptualism धारणावाद
 Data आश्रय
 Deductive निगमन-मूलक
 Etymology व्युत्पत्ति
 Explication व्याख्या
 Feeling सवेदन
 Form आकार
 General Idea सामान्य भाव
 Generalisation सामान्यीकरण
 Immediate Apprehension
 प्रत्यक्ष

Inductive उद्गमन
 (आगमन)-मूलक
 Inference अनुमान
 Introspection अन्तःप्रत्यक्ष,
 अन्तर्दर्शन
 Judgment निर्णय
 Knowledge ज्ञान
 Knowledge, Direct प्रत्यक्ष ज्ञान
 Knowledge, Indirect परोक्ष ज्ञान
 Knowledge, Immediate
 प्रत्यक्ष ज्ञान
 Knowledge, Mediate परोक्ष ज्ञान
 Knowledge, General
 सामान्य ज्ञान
 Knowledge, Particular
 विशेष ज्ञान
 Knowledge, Popular
 साधारण ज्ञान
 Language भाषा
 Law, General व्यापक नियम
 Matter विषय-वस्तु
 Metaphysics तत्त्वज्ञान, दर्शन
 Naming नामकरण

Negative निषेधात्मक

Particular Idea विशिष्ट भाव

Perception, External बाह्य-प्रत्यक्ष

वाह्य-प्रत्यक्ष

Perception, Internal अन्तःप्रत्यक्ष

अन्तःप्रत्यक्ष

Positive स्वीकारात्मक

Premise आश्रय

Psychology मनोविज्ञान

Realism वस्तुवाद

Reasoning तर्क, तर्क-पद्धति

Science विज्ञान

Syllogism न्याय-वाक्य, सिलोजिज्म

Testimony आप्त वाक्य

Thinking, Process of विचार-प्रक्रिया

Thinking, Product of विचार-परिणाम

Truth सत्य, यथार्थ

Truth, Formal आकार-गत सत्य

Truth, Material वस्तु-गत सत्य, वास्तविक सत्य

Truth, Ultimate चरम सत्य

Verbal Consistency शब्द-संगति

२. विचार के नियम :

Contradictory विरोधी

Contradictory, Disjunction,

Principle of विरोधी-विकल्प-

नियम

Contrary विपरीत

Fundamental Principle

मूल-नियम

Law, of Identity तादात्म्य-नियम

Law, of Contradiction

विरोध-बाधक-नियम

Law, of Excluded Middle

निर्मध्यम-नियम

Law, of Sufficient Reason

पर्याप्त-हेतु-नियम

Postulate स्वय-सिद्धि

Primary Truth आद्य-सत्य

३. पद :

Absolute निरपेक्ष

Abstract भाव-वाचक

A-categorematic पदायोग्य शब्द

Attributive गुणात्मक

Categorematic पद-योग्य शब्द

Collective समूह-वाचक

Collective use समष्ट्यर्थ

Composite अनेक शब्दात्मक

Comprehension सामर्थ्य

व्युत्पत्ति

Concrete वस्तु-वाचक

Connotation गुण

Connotative गुण-वाचक

Copula संयोजक

Correlative सह-सम्बन्धी

Denotation निर्देश

Distributive व्याप्त

Distributive use व्यष्ट्यर्थ

Domain विषय

Equivocal अनेकार्थक

Exclusive term व्यावर्तक पद

Extension विस्तार

Fundamentum Relationis
सम्बन्धाधार

General सामान्य

Infinite term अपरिमित पद

Intent पदत्व

Intension स्वभाव

Inverse Variation प्रतिलोम
अनुपात

Non-collective असमूह-वाचक

Non-connotative अगुण-वाचक

Non-significant निरर्थक

Predicate विधेय

Privative अभावात्मक

Proper names व्यक्ति-वाचक नाम

Relative सापेक्ष

Scope क्षेत्र

Significant सार्थक

Simple एक शब्दात्मक

Singular विशिष्ट

Subject उद्देश्य

Syncategorematic

पद-संयोज्य-शब्द

Term पद

Unitary term ऐकिक पद

Univocal एकार्थक

४. वाच्य :

Accidens आकस्मिक गुण

Accidens, Inseparable

अवियोज्य आकस्मिक गुण

Accidens, Separable वियोज्य

आकस्मिक गुण

Cognate समवर्गीय

Differentia व्यावर्तक गुण

Generic जातिगत

Infima Species अपरतम जाति

Predicables वाच्य

Proprium सहजगुण

Specific व्यक्तिगत

Subaltern अवर

५. परिभाषा तथा विभाग :

Definition परिभाषा

Definition, Redundant

अतिरिक्त परिभाषा

Definition, Accidental

आकस्मिक परिभाषा

Definition, Too narrow

अव्याप्त परिभाषा

Definition, Too wide

अतिव्याप्त परिभाषा

Definition, Figurative

आलंकारिक परिभाषा

Definition, Obscure

दुर्बोध परिभाषा

Definition Synonymous

पर्यायोक्ति परिभाषा

Definition Circle in

चक्रक परिभाषा

Definition, Negative

निषेधात्मक परिभाषा

Division विभाग

Division, Logical तार्किक विभाग

Division, Physical

भौतिक विभाग

Division Metaphysical

अतिभौतिक विभाग

Division, Cross संकर विभाग

Division, Too narrow

अतिसंकीर्ण विभाग

Division, Too wide

अतिविस्तीर्ण विभाग

Division, Overlapping

परस्पर व्याप्त विभाग

Division, Continued

क्रमिक विभाग

Division, by Dichotomy

द्विवर्गीय विभाग

Fundamentum Divisionis

विभाग का मूल सिद्धान्त

Proximate Genus आसन्न जाति

६. तर्कवाक्य :

'A'-Prop. 'आ'-तर्कवाक्य

'E'-Prop. 'ए'-तर्कवाक्य

'I'-Prop. 'इ'-तर्कवाक्य

'O'-Prop. 'ओ'-तर्कवाक्य

Affirmative स्वीकारात्मक

Antecedent पूर्वाङ्ग

Compound मिश्रित. मिश्र

Comprehensive View

समन्वयवाद

Connotative (Attributive)

View गुणान्मक मत

Consequent उत्तराङ्ग	Proposition, Necessary आवश्यक तर्कवाक्य
Denotative View निर्देशात्मक मत	Proposition, Assertory प्रतिज्ञात तर्कवाक्य
Denotative-Connotative View निर्देशगुणात्मक मत	Proposition, Problematic सदिग्ध तर्कवाक्य
Distributed व्याप्त	Proposition, Analytic विश्लेषणात्मक तर्कवाक्य
Distribution व्याप्ति	Proposition, Verbal शाब्दिक तर्कवाक्य
Modality विधि	Proposition, Essential अनिवार्य तर्कवाक्य
Predicative View विधानात्मक मत	Proposition, Explicative व्याख्यानात्मक तर्कवाक्य
Proposition तर्कवाक्य	Proposition, Synthetic सश्लेषणात्मक तर्कवाक्य
Proposition, Categorical निरपेक्ष तर्कवाक्य	Proposition, Real वास्तविक तर्कवाक्य
Proposition, Conditional सापेक्ष तर्कवाक्य	Proposition, Accidental आकस्मिक तर्कवाक्य
Proposition, Disjunctive वैकल्पिक तर्कवाक्य	Proposition, Ampliative विस्तारक तर्कवाक्य
Proposition, Hypothetical हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य	Proposition, Universal Affirmative सार्वलौकिक स्वीकारात्मक
Proposition, Infinite अपरिमित तर्कवाक्य	Proposition, Universal Ne- gative सार्वलौकिक निषेधात्मक
Proposition, Indesignate अनिश्चित तर्कवाक्य	
Proposition, Predesignate निश्चित तर्कवाक्य	
Proposition, Singular विशिष्ट तर्कवाक्य	

Proposition, Particular
Affirmative विशेष स्वीकारा-
त्मक तर्कवाक्य

Proposition, Particular
Negative विशेष निषेधात्मक
तर्कवाक्य

Proposition, Exclusive
ऐकान्तिक वाक्य

Proposition, Exceptive
अपवादात्मक वाक्य

Proposition, Interrogative
प्रश्नवाचक वाक्य

Quantification of Predicate
विधेय का परिमाण ज्ञात करना

Relation सम्बन्ध

Significant Singular Name
सार्थक-विशिष्ट नाम

Simple शुद्ध

Theories of Predication
विधान के सिद्धान्त

Undistributed अव्याप्त

७. अनन्तरानुमान :

An Inference अनुमिति

Change of Relation

सम्बन्ध विलोमात्मक अनुमान

Conclusion निष्कर्ष

Contradiction विरुद्धता

Contraposition परिवर्तित-
प्रतिवर्तन

Contrariety वैपरीत्य

Converse परिवर्तित

Conversion परिवर्तन

Conversion, Simple

सरल परिवर्तन

Conversion, per accidens

असरल परिवर्तन

Conversion, by Negation

निषेध द्वारा परिवर्तन

Convertend परिवर्त्य

Eduction पृथक्-भाव

Inference अनुमान

Inference, Immediate

अनन्तरानुमान

Inference, Mediate

सान्तरानुमान

Inference, by Added Deter-
minants विशेषण संयोगानुमान

Inference, by Complex

Conception मिश्र धारणानुमान

Inverse विपर्यस्त

Inversion विपर्यय

Invertend विपर्येय

Modal Consequence

विध्याश्रित अनुमान

Obverse प्रतिवर्तित

Obversion प्रतिवर्तन

Obversion, Material

भौतिक प्रतिवर्तन

Obvertend प्रतिवर्त्य

Obverted Converse प्रतिवर्तित
परिवर्तन

Opposition विरोध

Subalternant उपाश्रय

Subalternate उपाश्रित

Subalternation उपाश्रितता

८. न्यायवाक्य :

Alternatives विकल्प

Canons' मूल सिद्धान्त

Constructive विधायक

चिह्नः १५५-२

Dictum de omni et nullo
अरस्तू का सिद्धान्त

Dictum de diverso भेद का
सिद्धान्त

Dictum de exemplo निदर्शन
का सिद्धान्त

Dictum de reciproco

परस्पर-सम्बन्ध का सिद्धान्त

Destructive विघातक

Dilemma उभयतोपाश

Dilemma, taking the d by
horns शृङ्ग-निग्रह-विधि

Dilemma, escaping between
the horns of a d.

शृङ्गो के बीच से बच निकलना

Enthymeme सक्षिप्न न्यायवाक्य

Fallacy दोष, आभास

Fallacy, of Four terms

चतुष्पदी आभास

Fallacy, of Equivocation

अनेकार्थक आभास

Fallacy, of Ambiguous

Major अनेकार्थक साध्य ;
संदिग्ध साध्य

Fallacy, of Ambiguous

Minor अनेकार्थक पक्ष ,
संदिग्ध पक्ष

Fallacy, of Ambiguous

Middle अनेकार्थक हेतु ,
संदिग्ध हेतु

Fallacy, of Undistributed

Middle अव्याप्त हेतु का आभास

Fallacy, of Illicit Major

अवैध-साध्य दोष

Fallacy, of Illicit Minor

अवैध-पक्ष दोष

आय ५२

Fallacy, of Negative Pre- mises निषेधात्मक आश्रय का दोष	Ferio फेरीओ
Fallacy, of Denying the Antecedent पूर्वाङ्ग की अस्वी- कृति का दोष	Cesare केसारे
Fallacy, of Affirming the Consequent उत्तराङ्ग की स्वीकृति का दोष	Camestres कामेस्ट्रेस
Figure आकार	Festino फेस्तीनो
Hypothetical-Categorical हेतुफलाश्रित निरपेक्ष	Baroco बारोको
Induction आगमन, उद्गमन	Darapti दाराप्ती
Invariable Concomitance अनन्य सहचार	Disamis दीसामीस
Major Term साध्य	Datisi दातीसी
Major Premise साध्यवाक्य	Felapton फेलाप्तोन
Minor Term पक्ष	Bocardo बोकार्दो
Minor Premise पक्षवाक्य	Ferison फेरीसोन
Middle Term हेतु	Bramantip ब्रामान्तीप
Modus Ponens विधि प्रकार	Camenes कामेनेस
Modus Tollens निषेध प्रकार	Dimaris दीमारीस
Mnemonic Verse स्मृतिसहायक छन्द	Fesapo फेसापो
Mood; संयोग—	Fresison फ्रेसीसोन
Barbara बार्बारा	Faksoko फाक्सोको
Celarent केलारेंट	Barbari बार्बारी
Darii दारी	Celaront केलारोन्ट
	Camestros कामेस्ट्रोस
	Cesaro केसारो (असंगत)
	Rebutting प्रतिक्षेप
	Reductio ad absurdum मुख्यतापूर्ण आकारान्तरण
	Reduction आकारान्तरण
	Reduction, Direct अनलोम आकारान्तरण

Reduction, Indirect प्रतिलोम
आकारान्तरण

Syllogism न्यायवाक्य

Syllogism, Pure शुद्ध न्यायवाक्य

Syllogism, Mixed

मिश्र न्यायवाक्य

Syllogism, Fundamental

मूल न्यायवाक्य

Syllogism, Weakened

निर्बल न्यायवाक्य

Syllogism, Strengthened

सबल न्यायवाक्य

६. युक्तिमाला

Epicheirema सक्षिप्त प्रतीयगामी
युक्तिमाला

Epicheirema, Simple शुद्ध-

Epicheirema, Mixed मिश्र-

Epicheirema, Single एकनिष्ठ-

Epicheirema, Double

उभयनिष्ठ

Episyllogism उत्तर-न्यायवाक्य

Progressive प्रगामी

Prosyllogism पूर्व-न्यायवाक्य

Regressive प्रतीयगामी

Sorites सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला

Train of Syllogisms युक्तिमाला

१०. आभास

Fallacy आभास, दोष

Fallacy, Deductive

निगमनमूलक दोष

Fallacy, Semi-logical

अर्द्धतार्किक दोष

Fallacy, of Amphibology

वाक्य-छल

Fallacy, of Accent

भ्रामकोच्चारण-दोष

Fallacy, of Equivocation

अनेकार्थक दोष

Fallacy, of Figure of Speech

अनुप्रास-दोष

Fallacy, of Accident

उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, direct

अनुलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, Con-

verse प्रतिलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Division

विभाग का दोष

Fallacy, of Composition

रचना का दोष

Fallacy, of Ignoratio Ele-

nchi प्रतिवाद के अज्ञान का दोष

Fallacy, of Petitio Principii

आत्माश्रम का दोष

Fallacy, of Negative Pre-
mises निषेधात्मक आश्रय का दोष

Fallacy, of Denying the
Antecedent पूर्वाङ्ग की अस्वी-
कृति का दोष

Fallacy, of Affirming the
Consequent उत्तराङ्ग की
स्वीकृति का दोष

Figure आकार

Hypothetical-Categorical
हेतुफलान्वित निरपेक्ष

Induction आगमन, उद्गमन
Invariable Concomitance
अनन्य सहचार

Major Term माध्य

Major Premise माध्यवाक्य

Minor Term पक्ष

Minor Premise पक्षवाक्य

Middle Term हेतु

Modus Ponens विधि प्रकार

Modus Tollens निषेध प्रकार

Mnemonic Verse

स्मृतिवचन छन्द

Mood: न्याय—

Barbara बार्बारा

Celarent केलारेंट

Darii दारि

Ferio फेरीओ

Cesare केसारे

Camestres कामेस्ट्रेस

Festino फेस्तीनो

Baroco बारोको

Darapti दाराप्ती

Disamis दीसामीस

Datisi दातीसी

Felapton फेलाप्तोन

Bocardo बोकार्डो

Ferison फेरीसोन

Bramantip ब्रामान्तीप

Camenes कामेनेस

Dimaris दीमारीस

Fesapo फेसापो

Fresison फ्रेसीसोन

Faksoko फाक्सोको

Barbari बार्बारी

Celaront केलारोन्ट

Camestros कामेस्ट्रोस

Cesaro केसारो

Rebutting प्रतिक्षेप

Reductio ad absurdum

मूर्खतापूर्ण आकारान्तरण

Reduction आकारान्तरण

Reduction, Direct अनुलोम

आकारान्तरण

Reduction, Indirect प्रतिलोम
आकारान्तरण

Syllogism न्यायवाक्य

Syllogism, Pure शुद्ध न्यायवाक्य

Syllogism, Mixed

मिश्र न्यायवाक्य

Syllogism, Fundamental

मूल न्यायवाक्य

Syllogism, Weakened

निर्वल न्यायवाक्य

Syllogism, Strengthened

मवल न्यायवाक्य

६. युक्तिमाला

Epicheirema सक्षिप्त प्रतीयगामी

युक्तिमाला

Epicheirema, Simple शुद्ध-

Epicheirema, Mixed मिश्र-

Epicheirema, Single एकनिष्ठ-

Epicheirema, Double

उभयनिष्ठ

Episyllogism उत्तर-न्यायवाक्य

Progressive प्रगामी

Prosyllogism पूर्व-न्यायवाक्य

Regressive प्रतीयगामी

Sorites सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला

Train of Syllogisms युक्तिमाला

१०. आभास

Fallacy आभास, दोष

Fallacy, Deductive

निगमनमूलक दोष

Fallacy, Semi-logical

अर्द्धतार्किक दोष

Fallacy, of Amphibology

वाक्य-छल

Fallacy, of Accent

भ्रामकोच्चारण-दोष

Fallacy, of Equivocation

अनेकार्थक दोष

Fallacy, of Figure of Speech

अनुप्रास-दोष

Fallacy, of Accident

उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, direct

अनुलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Accident, Con-

verse प्रतिलोम उपाधि-भेद-दोष

Fallacy, of Division

विभाग का दोष

Fallacy, of Composition

रचना का दोष

Fallacy, of Ignoratio Ele-

nchi प्रतिवाद के अज्ञान का दोष

Fallacy, of Petitio Principii

आत्माश्रम का दोष

विषय-सूची

विषय

पृष्ठ

प्रथम प्रकरण:—तर्कशास्त्र की परिभाषा एवं उसका क्षेत्र	१-५०
§१. भूमिका : तर्कशास्त्र का स्वरूप	१
§२. ज्ञान और उसके साधन	५
§३. ज्ञान का स्वरूप प्रत्यक्ष तथा परोक्ष ज्ञान	९
§४. विचार	११
टिप्पणी १ . साधारण धारणा का निर्माण	१३
टिप्पणी २ : धारणा का स्वरूप . वस्तुवाद, धारणावाद तथा नामवाद	१४
§५. विचार तथा भाषा : तर्कशास्त्र तथा व्याकरण	१६
§६. विचार का आकार तथा विषयवस्तु	१८
§७. आकारगत तथा वस्तुगत सत्य	२१
§८. विज्ञान	२३
टिप्पणी—विज्ञान—वर्णनमूलक एवं आदर्शमूलक	२५
§९. विज्ञान तथा कला	२६
§१०. तर्कशास्त्र की परिभाषा	२७
§११. तर्कशास्त्र का वैज्ञानिक तथा कलात्मक स्वरूप	३४
§१२. तर्कशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ	३६
§१३. तर्कशास्त्र की उपयोगिता	३९
§१४. तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान	४२
§१५. तर्कशास्त्र एवं दर्शन (तत्त्वज्ञान)	४५
प्रश्नमाला १	४७
द्वितीय प्रकरण —तर्कशास्त्र के मूल नियम	५१-६१
§१ मूल नियमों का स्वरूप	५१
§२. तर्कशास्त्र के मूल नियम	५३
(१) तादात्म्य का नियम	५४

(२) विरोध-बाधक नियम	५५
(३) निर्मध्यम नियम	५५
टिप्पणी—विचार के तीनों नियमों का पारस्परिक सम्बन्ध	५७
(४) पर्याप्त-हेतु-नियम	५८
टिप्पणी—हैमिल्टन की स्वयसिद्धि	५८
प्रश्नमाला २	५९

तृतीय प्रकरण :—पद ६२-९६

§१. शब्द और पद पदयोग्य और पद-संयोज्य शब्द	६३
टिप्पणी—क्या पद सम्बन्धी प्रकरण का तर्कशास्त्र में स्थान है ?	६६
§२. पदों का निर्देश और गुण	६६
§३. पदों का विभाग	७१
(क) एक शब्दात्मक और अनेक शब्दात्मक	७३
(ख) विशिष्ट और सामान्य	७३
(ग) समूहवाचक और असमूहवाचक	७५
पदों का समष्ट्यर्थ एवं व्यष्ट्यर्थ	७५
(घ) वस्तुवाचक और भाववाचक	७७
(ङ) स्वीकारात्मक, निषेधात्मक तथा अभावात्मक	७९
टिप्पणी—विरोधी पद विरुद्ध और विपरीत पद	८१
(च) निरपेक्ष और सापेक्ष	८३
(छ) गुणवाचक और अगुणवाचक	८४
प्रश्नमाला ३	९४

चतुर्थ प्रकरण --वाच्य ९७-१०७

§१. पाँच वाच्य जाति, उपजाति, व्यावर्तकगुण, सहजगुण, आकस्मिकगुण	९७
§२. पारस्परिकता का वृक्ष	१०४
प्रश्नमाला ४	१०६

पंचम प्रकरण :—परिभाषा; उसकी सीमाये और आकारगत दशायें १०८-१२०

§१. परिभाषा का स्वरूप	१०८
टिप्पणी—परिभाषा और वर्णन : उनका वाच्यो से सम्बन्ध	११०
§२. परिभाषा के नियम एव दोष	१११
§३. परिभाषा की सीमाये	११६
प्रश्नमाला ५	११७

षष्ठ प्रकरण :—तार्किक विभाग १२१-१३२

§१. तार्किक विभाग का स्वरूप	१२२
टिप्पणी—विभाग और परिभाषा	१२३
§२. तार्किक विभाग के नियम और दोष	१२४
§३. द्विवर्गाश्रित विभाग	१२७
प्रश्नमाला ६	१३०

सप्तम प्रकरण :—तर्कवाक्य १३३-१७५

§१. तर्कवाक्य का विश्लेषण	१३४
टिप्पणी—व्याकरण का वाक्य तथा तर्कवाक्य	१३७
§२. तर्कवाक्यों के प्रकार :	१३७
(क) शुद्ध और मिश्रित	१३७
(ख) सम्बन्धानुसार विभाग—निरपेक्ष तथा सापेक्ष	१३८
(ग) गुणानुसार विभाग—स्वीकारात्मक तथा निषेधात्मक	१४०
टिप्पणी १ . हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का गुण	१४१
टिप्पणी २ : वैकल्पिक तर्कवाक्यों का गुण	१४२
(घ) परिमाणानुसार विभाग—सार्वलौकिक तथा विशेष	१४३
टिप्पणी १ विशिष्ट तर्कवाक्य	१४५
टिप्पणी २ सार्वलौकिक तर्कवाक्य	१४६
टिप्पणी ३ . हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का परिमाण	१४६
टिप्पणी ४ . वैकल्पिक तर्कवाक्यों का परिमाण	१४७
(ङ) विधि अनुसार विभाग—आवश्यक, प्रतिज्ञात तथा संदिग्ध	१४७

(च) तात्पर्य के अनुसार विभाग-शाब्दिक और वास्तविक १४८

§३. तर्कवाक्यों का सरलीकरण

गुण और परिमाण के अनुसार तर्कवाक्यों का आकार—

‘आ’, ‘ई’, ‘ए’, ‘ओ’ १५०

§४. वाक्यों का तार्किक आकार में रूपान्तर १५१

§५. पदों की व्याप्ति १६१

टिप्पणी—विधेय का परिमाण ज्ञात करना १६३

§६. चारों प्रकार के तर्कवाक्यों का चित्रीकरण

—यूलर के वृत्त १६४

प्रश्नमाला ७ १७२

अष्टम प्रकरण :—निरपेक्ष तर्कवाक्यों का तात्पर्य तथा

विधान-सम्बन्धी सिद्धान्त १७६-१८१

§१. विधान-सम्बन्धी-सिद्धान्त १७६

§२. तर्कवाक्यों के तात्पर्य के सम्बन्ध में नामवादी, धारणावादी तथा

वस्तुवादी सिद्धान्त १७९

प्रश्नमाला ८ १८०

नवम प्रकरण :—तर्कवाक्यों का विरोध

१८२-१८८

§१. विरोध के विभिन्न प्रकार १८२

(क) उपाश्रितता १८२

टिप्पणी—क्या उपाश्रितता विरोध का रूप है ? १८३

(ख) वैपरीत्य १८४

(ग) अनुवैपरीत्य १८४

(घ) विरुद्धता १८५

§२. विरोध का वर्ग १८५

प्रश्नमाला ९ १८७

दशम प्रकरण :—अनन्तरानुमान

१८९-२२८

§१. अनुमान का स्वरूप निगमनमूलक तथा आगमनमूलक

अनन्तरानुमान तथा सान्तरानुमान १९०

क्या अनन्तरानुमान वास्तव में अनुमान है ?	१९१
§२. परिवर्तन	१९३
टिप्पणी १ क्या 'आ'-तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन हो सकता है ?	१९६
टिप्पणी २ निषेध द्वारा परिवर्तन	१९७
टिप्पणी ३ प्रतिलोम सम्बन्ध द्वारा अनुमान	१९७
§३. प्रतिवर्तन	१९८
टिप्पणी—भौतिक प्रतिवर्तन	१९९
§४ परिवर्तित-प्रतिवर्तन	२००
टिप्पणी १ परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का मिश्र रूप है	२०३
टिप्पणी २ परिवर्तित-प्रतिवर्तन प्रतिवर्तित-परिवर्तन से भिन्न है	२०४
§५ विपर्यय	२०५
टिप्पणी-अनन्तरानुमान के मुख्य रूपों की तुलनात्मक तालिका	२०८:
§६ विरोध	२१०
§७ विध्याश्रित अनुमान	२१६
§८ सम्बन्ध विलोमात्मक अनुमान	२१७
§९ विशेषण-संयोगानुमान	२२१
§१० मिश्र-धारणानुमान	२२३
प्रश्नमाला १०	२२७
एकादश प्रकरण :—न्यायवाक्य	२२९—३०५
§१. न्यायवाक्य की परिभाषा—उसकी विशेषताये	२३०
§२. न्यायवाक्य की रचना	२३२
§३ न्यायवाक्य के प्रकार	२३४
§४ विगुह्य निरपेक्ष न्यायवाक्य के मूल सिद्धान्त	२३५
§५ अरस्तू का सिद्धान्त	२३६
§६ लैम्बार्ट का सिद्धान्त	२३७
§७. निरपेक्ष-न्यायवाक्य के सामान्य नियम तथा उनके उल्लंघन से उत्पन्न दोष	२३८

§८ न्यायवाक्य के आकार	२४०
§९ न्यायवाक्य के सयोग	२५०
§१० सिद्ध सयोगो को ज्ञात करना	२५२
(क) प्रथम आकार	२५३
टिप्पणी (१) प्रथम आकार के विशेष नियम	२५६
टिप्पणी (२) प्रथम आकार की विशेषतायें	२५७
(ख) द्वितीय आकार के सिद्ध-सयोग	२५८
टिप्पणी द्वितीय आकार के विशेष नियम	२६०
(ग) तृतीय आकार के सिद्ध-सयोग	२६१
टिप्पणी तृतीय आकार के विशेष नियम	२६५
(घ) चतुर्थ आकार के सिद्ध-सयोग	२६८
टिप्पणी चतुर्थ आकार के विशेष नियम	२६८
§११ आकारान्तरण—अनुलोम तथा प्रतिलोम	२५९
टिप्पणी क्या आकारान्तरण आवश्यक है ?	२७१
§१२ स्मृति-सहायक छन्द	२७२
§१३ अपूर्ण सयोगो का अनुलोम आकारान्तरण	२७५
§१४. सब अपूर्ण सयोगो का प्रतिलोम आकारान्तरण	२७८
§१५ मूल, निर्बल तथा सबल न्यायवाक्य	२९०
§१६ शुद्ध-हेतुफलाश्रित तथा शुद्ध-वैकल्पिक न्यायवाक्य	२९६
§१७ भारतीय न्याय में 'अनुमान'	२९७
प्रश्नमाला ११	३०३
द्वादश प्रकरण :——भिन्न न्यायवाक्य	३०६-३२६
§१ हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष-न्यायवाक्य	३०६
(क) नियम	३०७
(ख) दोष	३०९
(ग) निरपेक्ष न्यायवाक्य में परिवर्तन	३१०
§२ वैकल्पिक-निरपेक्ष-न्यायवाक्य	३११

§३. उभयतोपाश	३१२
(क) उभयतोपाश का स्वरूप	३१२
(ख) उभयतोपाश के प्रकार	३१३
(ग) उभयतोपाश का प्रतिक्षेप	३१७
(घ) उभयतोपाश का परीक्षण —	३२०
उभयतोपाश की आकारगत विशुद्धता	३२०
उभयतोपाश की वस्तुगत विशुद्धि	३२२
प्रश्नमाला १२	३२५
त्रयोदश प्रकरण :—सक्षिप्त न्यायवाक्य	३२७—३२९
§१. सक्षिप्त न्यायवाक्य	३२७
प्रश्नमाला १३	३२९
चतुर्दश प्रकरण :—सयुक्त न्यायवाक्य अथवा युक्तिमाला	३३०—३३३
§१ प्रगामी तथा प्रतीयगामी युक्तिमाला	३३०
प्रश्नमाला १४	३३३
पचदश प्रकरण :—सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला तथा	
सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला	३३४—३४५
§१ सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला	३३४
§२. सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के प्रकार	३३५
§३. सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के नियम	३३९
§४ सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला	३४१
प्रश्नमाला १५	३४४
षोडश प्रकरण :—मिल की न्यायवाक्य पर आपत्तियाँ	३४६—३५१
§१ मिल की दो आपत्तियाँ	३४६
प्रश्नमाला १६	३५१
सप्तदश प्रकरण :—निगमन-मूलक तर्क के दोष या आभास	३५२—३८६
§१. 'आभास' या दोष की परिभाषा; उसका वर्गीकरण	३५३
§२. निगमनमूलक आभास	३५५

§३ अर्द्धतार्किक आभास	३५७
(क) वाक्य-छल	३५८
(ख) भ्रामकोच्चारण दोष	३५८
(ग) अनेकार्थक दोष	३६०
(घ) अनुप्रास दोष	३६०
(ङ) उपाधि-भेद दोष	३६१
(१) अनुलोम उपाधि-भेद दोष	३६१
(२) प्रतिलोम उपाधि-भेद दोष	३६२
(च) तथा (छ) विभाग का दोष तथा रचना का दोष	३६३
§४ भारतीय न्याय में दोष	३६५
(क) हेत्वाभास की परिभाषा तथा प्रकार	३६५
(ख) सव्यभिचार हेत्वाभास	३६५
(ग) विरुद्ध हेत्वाभास	३६७
(घ) सत्प्रतिपक्ष	३६८
(ङ) असिद्ध	३६९
(च) बाधित	३७१
(छ) अन्य तर्कदोष	३७२
§५ अभ्यास हल करने के लिए सकेत	३७२
कुछ हल किए हुए अभ्यास	३७४
प्रश्नमाला १७	३७९
परिशिष्ट	३८७

प्रथम प्रकरण

तर्कशास्त्र की परिभाषा एवं उसका क्षेत्र

- § १. भूमिका : तर्कशास्त्र का स्वरूप ।
- § २. ज्ञान तथा उसके साधन ।
- § ३. ज्ञान का स्वरूप : प्रत्यक्ष तथा परोक्ष ज्ञान ।
क्या तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष ज्ञान से है ?
- § ४. विचार
टिप्पणी १ : साधारण धारणा का निर्माण
टिप्पणी २ : धारणा का स्वरूप : वस्तुवाद,
धारणावाद तथा नामवाद ।
- § ५. विचार तथा भाषा : तर्कशास्त्र तथा व्याकरण ।
- § ६. विचार का आकार तथा विषयवस्तु ।
- § ७. आकारगत एवं वस्तुगत सत्य ।
- § ८. विज्ञान ।
टिप्पणी : विज्ञान—वर्णनमूलक एवं आदर्श
मूलक ।
- § ९. विज्ञान तथा कला ।
- § १०. तर्कशास्त्र की परिभाषा ।
- § ११. तर्कशास्त्र का वैज्ञानिक एवं कलात्मक स्वरूप ।
- § १२. तर्कशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ ।
- § १३. तर्कशास्त्र की उपयोगिता ।
- § १४. तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान ।
- § १५. तर्कशास्त्र एवं दर्शन (तत्त्वज्ञान) ।
प्रश्नमाला १.

§ १ भूमिका—तर्कशास्त्र का स्वरूप ।

किसी भी विज्ञान का अध्ययन करने से पूर्व प्रत्येक छात्र को यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि उसके अध्ययन का विषय क्या है? वह जानना चाहता है कि तर्कशास्त्र (Logic)

प्रारम्भ में
ही विषय
की निश्चित
परिभाषा देने
में कठिनाई।

क्या है? उसका पाठ्य विषय क्या है? उसके अध्ययन की विधि क्या है? और उसके विषय का अन्य विषयो से क्या सम्बन्ध है? निस्संदेह ऐसा कौतूहल होना उचित ही है, परन्तु प्रारम्भ में ही इन प्रश्नों का उत्तर देना बड़ा कठिन है। यह कठिनाई केवल तर्कशास्त्र के विषय में ही नहीं है। जब कभी भी हम किसी नवीन बात को सीखना प्रारम्भ करते हैं, तब इसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जब एक अवोध बालक अपने पिता के सामने लगातार प्रश्नों की झड़ी लगा देता है, तो उसका पिता बड़े असमजस में पड़ जाता है। वह चाहता अवश्य है कि किसी प्रकार अपने बच्चे की जिज्ञासा शांत कर दे, परन्तु ऐसा करने में वह अपने को असमर्थ पाता है। बच्चे का मानसिक-स्तर इतना नीचा होता है कि अपने प्रश्नों का उत्तर समझना उसकी सामर्थ्य के बाहर होता है। एक अकुशल पिता कदाचित् झुंझलाहट में कह बैठे कि 'बिना ज्ञान प्राप्त किये तुम कैसे जान सकते हो।' और यह समझे कि उसका उत्तर बड़ा चातुर्यपूर्ण है। यदि वह अधिक समझदार हुआ तो कदाचित् कहेगा कि 'पढ़ो और तुम जान जाओगे।' उपर्युक्त दोनों प्रकार की बातें बालक के प्रश्नों का सतोषजनक उत्तर दे सकने की असमर्थता का प्रकाशन-मात्र है! तर्कशास्त्र की पुस्तक के लेखक एवं शिक्षक के सामने भी इसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित हो जाती है। प्रारम्भ में ही, जब कि विद्यार्थी विषय से पूर्णतया अनभिज्ञ हो, विषय की परिभाषा कैसे दी जा सकती है? इस सम्बन्ध में विद्यार्थी भी बड़े असमजस में पड़ जाता है। अतः प्रारम्भ में विषय का सामान्य-सा परिचय-मात्र दिया जा सकता है। जैसे-जैसे विषय का ज्ञान परिपक्व होता जायेगा, वैसे-वैसे उसकी पूर्ण परिभाषा से भी परिचित करा दिया जायेगा।

तर्कशास्त्र को अँगरेज़ी में लॉजिक (Logic) कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति (Etymology) ग्रीक-भाषा के

विशेषण 'Logike' से है, जिसकी सगत-सज्ञा Logos है। इसका अर्थ 'विचार' (Thought) अथवा शब्द (Word) अर्थात् 'विचारो की भाषाभिव्यक्ति' है। एक ही शब्द 'Logos' का उपयोग 'विचार' एवं 'शब्द' दोनों अर्थों में होने के कारण 'विचार' एवं उसकी भाषाभिव्यक्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध का संकेत मिलता है। अतः व्युत्पत्ति के अनुसार तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों का विज्ञान है। 'विचार' (Thought) शब्द से प्रायः सभी परिचित हैं और 'विचार करने' (Thinking) से जो तात्पर्य है, उसे सभी समझते हैं। इस शब्द एवं उसके तात्पर्य का ज्ञान होते हुए भी उसे उचित प्रकार से भाषा में व्यक्त करना सरल नहीं है जैसा कि हमें बाद में पता चलेगा (देखिए §४)। सामान्य विवरण के लिए उससे अधिक सरल शब्द 'तर्क' (Reasoning) का उपयोग किया जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध भाषाभिव्यक्त तर्क एवं कुछ अन्य गौण-क्रियाओं (Subsidiary processes) से है। अब हम इस संभावित परिभाषा पर विचार करेंगे।

नाम की व्युत्पत्ति

तर्कशास्त्र विचारों का विज्ञान है।

तर्कशास्त्र तर्कपद्धति का विज्ञान है।

तर्क (Reasoning) से तात्पर्य ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रसर होना है। 'ज्ञात तथ्य' हमारे तर्क की सामग्री अथवा आश्रय (Data) है और 'अज्ञात तथ्य' वह निष्कर्ष (Conclusion) होता है, जिस पर हम तर्क के द्वारा पहुँचते हैं। एक बालक का जन्म हुआ। हम तर्क करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह मर जायेगा। हो सकता है कि वह काफी आयु तक जीवित रहे, परन्तु कभी न कभी तो उसकी मृत्यु होगी ही। वच्चे का जन्म एवं यह तथ्य कि 'मनुष्य मरणशील है' हमारे तर्क करने के आश्रय हैं और इन आश्रयों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'वच्चा मरणशील है'। यदि इस तर्क-पद्धति को पूर्णतया व्यक्त करे तो वह इस प्रकार होगा :

तर्क का अर्थ ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रसर होना है।

सब मनुष्य मरणशील हैं।
 बालक एक मनुष्य है।
 ∴ बालक मरणशील है।

एक अन्य उदाहरण देखिए। एक यात्री देखता है कि आकाश में घने बादल घिरे हुए हैं। बिजली की चमक भी दिखलाई पड़ रही है। इतना देखकर वह तर्क करता है कि उसे अवश्यभावी वर्षा से बचने के निमित्त किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना चाहिए। अतः तर्क एक प्रकार का परोक्ष ज्ञान (Indirect knowledge) है जो कि किसी प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct knowledge) पर आधारित है। तर्क का पूर्ण अर्थ समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि 'ज्ञान' (Knowledge) प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct knowledge) तथा परोक्ष ज्ञान (Indirect knowledge) से क्या तात्पर्य है। इस प्रकरण के §२ तथा §३ में हम इसपर विचार करेंगे।

तर्क शुद्ध हो
 सकता है
 अथवा अशुद्ध।
 अतः तर्कशास्त्र
 सत्य अर्थात्
 यथार्थ का
 अध्ययन
 करता है।

हमारा तर्क शुद्ध भी हो सकता है और अशुद्ध भी। अज्ञात बात अनिश्चित-सी होती है। उपर्युक्त उदाहरण में ऐसा भी हो सकता है कि तेज़ हवा का झोका आकर बादलों को उड़ा ले जाये और संभावित-वर्षा न हो सके। तब हमारा तर्क अशुद्ध अथवा अयथार्थ (false) हो जायेगा। अतः तर्क के सम्बन्ध की सबसे अनिवार्य समस्या सत्य (यथार्थ) (Truth) अथवा असत्य (अयथार्थ) (Falsity) की है। तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय तर्क होने के कारण उसका क्षेत्र सत्य अर्थात् यथार्थ (Truth) के स्वरूप एवं दशाओं का निरूपण करना होता है।

साथ ही, जब हम किसी तर्क-पद्धति का विश्लेषण करते हैं, तो हमें पता चलता है कि उसमें 'तर्क-वाक्य' (Propositions) होते हैं, जो कि साधारण दृष्टि में व्याकरण के वाक्यों के समान होते हैं। उपरिलिखित प्रथम उदाहरण में तीन तर्क-वाक्य

(Propositions) हैं, यथा—(१) सब मनुष्य मरणशील हैं; (२) बालक एक मनुष्य है और (३) बालक मरणशील है। अतः तर्क का अध्ययन करते समय तर्क-वाक्यों (Propositions) का अध्ययन भी तर्कशास्त्र में हो जाता है। तर्क वाक्य पुनः पदों (Terms) में विश्लेषित किये जा सकते हैं। पद (Terms) व्याकरण के शब्दों के समान होते हैं। इस तर्क-वाक्य 'सब मनुष्य मरणशील हैं' में 'मनुष्य' तथा 'मरणशील' पद हैं। अतः तर्कशास्त्र में तर्क के साथ-साथ तर्क-वाक्यों (Propositions) एवं पदों (Terms) का भी वर्णन कर दिया जाता है। यह सच है कि तर्कशास्त्र का मुख्य पाठ्य-विषय तर्क ही है। परन्तु तर्कवाक्य एवं पद तर्क के ही घटक अवयव होने के कारण तर्कशास्त्र के क्षेत्र में आ जाते हैं। यही कारण है कि तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों की प्रायः तीन स्तम्भों में व्याख्या की जाती है, यथा—पद-सिद्धान्त (Doctrine of Terms), तर्क वाक्य-सिद्धान्त (Doctrine of Propositions) तथा तर्क-सिद्धान्त (Doctrine of Reasoning)।

तर्क शास्त्र पद, तर्क-वाक्य एवं तर्क का अध्ययन करता है।

इनके अतिरिक्त तर्कशास्त्र तर्क के अन्तर्गत आनेवाली कुछ अन्य गौण-पद्धतियों का भी अध्ययन करता है, यथा—परिभाषा (Definition), विभाग (Division), नामकरण (Naming) वर्गीकरण (Classification) इत्यादि। इनका विवरण यथास्थान दिया जायेगा।

कुछ अन्य गौण-पद्धतियाँ भी उसके क्षेत्र में आती हैं।

§२ ज्ञान तथा उसके साधन।

ज्ञान (Knowledge) क्या है? ज्ञान मनोभावों की उस व्यवस्था को कहते हैं, जो कि वस्तुओं की किसी व्यवस्था के अनुरूप हो तथा जिसमें इस अनुरूपता के प्रति विश्वास उत्पन्न करने की क्षमता हो। अतः ज्ञान के तीन अवयव हुए, यथा—

ज्ञान दिया है।

(१) हमारे मन में भावों की एक व्यवस्था है, (२) ये भाव वास्तविक जगत् की वस्तुओं के अनुरूप हैं तथा (३). इस अनुरूपता में हमें विश्वास है। एक साधारण उदाहरण देखिए। जब हम कहते हैं कि हमें 'सूर्य' का ज्ञान है, तो हमारा तात्पर्य होता है कि हमारे मन में एक बड़े बृहत् आकार की आकाश-स्थित वस्तु का भाव है, जिसमें चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली ज्योति है तथा ग्रह जिसकी परिक्रमा करते हैं। और इस भाव के अनुरूप सूर्य है जो कि वास्तव में सत् है और हमें उसकी वास्तविकता में विश्वास है। यदि इन बातों में से किसी एक का भी अभाव हो तो हमें उसका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा।

प्रतिदिन के
दृष्टांत ।

'ज्ञान' का तात्पर्य हम सब सामान्यतया जानते हैं। हम तडित की चमक देखते हैं और हमें ज्ञान होता है कि वहाँ प्रकाश है। हम बादलों का गर्जन सुनते हैं और हमें ध्वनि का ज्ञान होता है। हम एक आम को चखते हैं और हमें ज्ञान होता है कि वह मीठा है। हम एक गुलाब को सूँघते हैं और हमें ज्ञान होता है कि वह सुरभिमय है। इसी प्रकार हिम का स्पर्श करने पर हमें उसकी शीतलता का ज्ञान होता है। अतः देखने, सुनने, चखने, स्पर्श करने तथा सूँघने से हमें ज्ञान प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त, हमें इस बात का भी ज्ञान रहता है कि किसी समय हमारे मन की दशा कैसी है। हमें ज्ञात हो जाता है कि हम प्रसन्न हैं, हम दुःखी हैं, हम क्रोधित हैं अथवा हममें ईर्ष्या का भाव है। इन सब बातों का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष हो जाता है। इतना ही नहीं, किसी दिन हम प्रातः अपने विस्तर से उठते हैं, तो पता चलता है कि धरती भीगी हुई है, आकाश मेघाच्छन्न है और पेड़ों की पत्तियों से पानी की बूँदें झर रही हैं, तो हमें ज्ञान हो जाता है कि रात्रि को जब हम सो रहे थे, वर्षा हुई थी। हम दूर पर धूम्र देखते हैं और हमें ज्ञान हो जाता है कि वहाँ पर अग्नि है। हम किसी व्यक्ति का मुस्कुराहट-भरा चेहरा देखते हैं और हमें ज्ञान हो जाता है कि वह उस समय प्रसन्न है। हम कुत्ते को अपनी पूँछ हिलाते हुए देखते हैं और हमें ज्ञान हो जाता है कि वह प्रसन्नता से भरा हुआ है। इतना ही नहीं, वरन हमें यह भी ज्ञान हो जाता है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा

कर रही है, यद्यपि वह स्थिर प्रतीत होती है। हमें इस बात का भी ज्ञान रहता है कि आइसलैण्ड नामक एक स्थान है, यद्यपि हम कभी वहाँ गये नहीं। हमें इस बात का ज्ञान रहता है कि बहुत पहले, जब हम पैदा भी नहीं हुए थे, ग्रीस देश में एक महान् दार्शनिक हुआ था जिसका नाम सुकरात (Socrates) था। अतः हमें केवल उन्हीं बातों का ज्ञान प्राप्त नहीं होता जिनसे कि हमारा प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो, परन्तु उन बातों का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिनका हम अपने तर्क (Reasoning) या दूसरों के आप्तवाक्य (Testimony) तथा शब्द (Authority) के आधार पर विश्वास करने लगते हैं।

ज्ञान के साधन (Sources)

ज्ञान के साधन प्रत्यक्ष (Immediate Apprehension), अनुमान (Inference), आप्तवाक्य (Testimony) और शब्द (Authority) हैं।।

साधन :

(क) प्रत्यक्ष (Immediate Apprehension) — मस्तिष्क की जिस क्रिया से हम किसी वस्तु का साक्षात् अनुभव प्राप्त कर लेते हैं, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष-ज्ञान (Direct knowledge) बाह्य-प्रत्यक्ष, (External Perception) अथवा अन्त-प्रत्यक्ष (Internal Perception) के द्वारा प्राप्त होता है। बाह्य-प्रत्यक्ष में हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान आदि) के द्वारा जान जाते हैं कि ससार की वस्तुएँ हमसे बाहर स्थित हैं तथा उनके अपने गुण हैं। हम सूर्य को देखते हैं और हमें प्रत्यक्ष-ज्ञान हो जाता है कि वह सत् है तथा उसमें चमकने का गुण है। अन्तः-प्रत्यक्ष, (जिसे अन्तर्दर्शन, (Introspection) भी कहते हैं) से हम साक्षात्-रूप में अपनी मनोदशा (यथा अपने सुख अथवा दुःख) को जान जाते हैं। इस प्रकार बाह्य-प्रत्यक्ष एवं अन्त-प्रत्यक्ष हमारे साक्षात् ज्ञान के साधन हैं।

(क) बाह्य-वस्तुओं तथा मानसिक दशाओं का प्रत्यक्ष।

(ख) अनुमान, (Inference) हमारी ज्ञान-प्राप्ति का दूसरा साधन है। अनुमान में कुछ विदित ज्ञान के आधार पर अविदित ज्ञान पर पहुँच जाते हैं। अनुमान करने की नामग्री अथवा आश्रय (data) प्रत्यक्ष (Immediate Apprehension) के द्वारा प्राप्त होती है। यथा—हम धूम्र देखने हैं और हमें ज्ञान हो जाता है कि वहाँ अग्नि है, हम एक मनुष्य को मुस्कराते हुए देखते हैं और हमें ज्ञान हो जाता है कि वह प्रमत्त है।

(ख) प्रत्यक्ष
पर आधारित
अनुमान।

(ग) आप्तवाक्य (Testimony) तथा शब्द (Authority) : विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा कही हुई बात को आप्तवाक्य कहते हैं। हमारे व्यक्तिगत अनुभव एवं उन अनुभवों के द्वारा प्राप्त अनुमानों की संख्या बहुत ही सीमित होती है। हम अपने दैनिक जीवन में भी प्रायः उन सीमाओं को लाँघ जाते हैं तथा विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा कही गई बात को सच मान लेते हैं, यद्यपि ऐसा करते समय बहुत सावधानी का उपयोग करना पड़ता है। हम प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कही गई बात पर विश्वास नहीं कर लेते। हम उसकी परीक्षा करते हैं, उसकी सच्चाई के सम्बन्ध में अपनी सतुष्टि कर लेते हैं, उसकी खोज के बारे में उससे प्रश्न करके अथवा अन्य अनेकों विधियों से उसके द्वारा कही हुई बात की सच्चाई की परख कर लेने पर ही उस पर विश्वास करते हैं। शब्द (Authority) में दूसरों को प्रभावित कर सकने की क्षमता एवं विश्वास उत्पन्न कर सकने की शक्ति होती है। यह शक्ति किसी ऐसे व्यक्ति, वस्तु अथवा संस्था में हो सकती है, जो कि आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता हो; यथा—माता-पिता तथा गुरु, धार्मिक ग्रंथ तथा धार्मिक संस्थाएँ। आप्तवाक्य (Testimony) के द्वारा प्राप्त ज्ञान की परख कर लेना जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक इस बात की आवश्यकता है कि शब्द (Authority) द्वारा प्राप्त ज्ञान को अंगीकार करने में सावधानी से

(ग) आप्त-
वाक्य अथवा
विश्वसनीय
व्यक्तियों द्वारा
कही हुई
बात।

‘शब्द’
अथवा
विश्वास
उत्पन्न करने
की क्षमता।

काम लिया जाय, क्योंकि इस बात का भय बना रहता है कि कहीं हम इतने श्रद्धाधन न हो जायँ कि हमारा निर्णय सत्य के मार्ग से भटक जाय।

§३ ज्ञान का स्वरूप : प्रत्यक्ष तथा परोक्ष ज्ञान

ज्ञान के दो स्वरूप हो सकते हैं, यथा प्रत्यक्ष (Immediate) तथा परोक्ष (Mediate)। प्रत्यक्ष-ज्ञान (Immediate knowledge) उस ज्ञान को कहते हैं जो कि प्रत्यक्ष Immediate apprehension) अर्थात् बाह्य प्रत्यक्ष (External perception) तथा अन्तः-प्रत्यक्ष (Internal Perception) के द्वारा प्राप्त होता है। बाह्य-प्रत्यक्ष से बाहर की वस्तुओं, यथा सूर्य, चन्द्र आदि का ज्ञान प्राप्त होता है तथा अन्तः-प्रत्यक्ष के द्वारा अपनी मनोदशाओं यथा सुख, दुःख आदि का ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान को साक्षात्-ज्ञान (Direct knowledge) भी कहते हैं। परोक्ष-ज्ञान (Mediate knowledge) अनेक प्रकार से प्राप्त होता है, यथा अनुमान (Inference), आप्तवाक्य (Testimony) एवं शब्द (Authority) के द्वारा। अनुमान भी परोक्ष ज्ञान है क्योंकि उसके द्वारा किसी वस्तु का ज्ञान साक्षात् रूप में नहीं होता प्रत्युत किसी विदित ज्ञान की मध्यस्थता से प्राप्त हो पाता है। अतः जब हम धूम्र की उपस्थिति से अग्नि का ज्ञान प्राप्त करते हैं तो हमारा अग्नि-विषयक ज्ञान धूम्र की मध्यस्थता से प्राप्त होता है। आप्तवाक्य एवं शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान भी परोक्ष-ज्ञान है, क्योंकि वह किसी अन्य वस्तु व्यक्ति अथवा सस्था के द्वारा प्राप्त होता है। ऐतिहासिक-तथ्यों का ज्ञान उन विश्वसनीय व्यक्तियों के आप्तवाक्यों से प्राप्त होता है, जो कि उस काल में स्वयं जीवित थे तथा जो उन समय का विवरण लिख गये हैं। इसी प्रकार वर्माचार्य

ज्ञान के स्वरूप :

(क) प्रत्यक्ष बाहर की वस्तुओं तथा मन की दशाओं के साक्षात्कार से प्राप्त होता है। और---

(ख) परोक्ष-ज्ञान, अनुमान, आप्त-वाक्य तथा शब्द के द्वारा प्राप्त होता है।

अपना परमात्मा-विषयक ज्ञान धर्म-ग्रन्थों के शब्दों पर आधारित करते हैं।

आप्त वचन एव शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान भी वास्तव में अनुमान द्वारा प्राप्त ज्ञान ही है, क्योंकि हम विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा कथित बात की यथार्थता का अनुमान इसी आश्रय पर लगाते हैं कि वे विश्वसनीय व्यक्ति हैं। हमारी मानसिक पृष्ठ-भूमि में यह भावना रहती है कि आप्तवचन की यथार्थता इसलिए स्वीकार की जा सकती है कि यदि हमारे पास पर्याप्त समय, अवसर, शक्ति तथा सामर्थ्य होती तो हम भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचते। जीवन की अवधि बड़ी सीमित है और क्रियाये असीम हैं। अतः ज्ञान की खोज अनेकों व्यक्तियों के सहकार से ही संभव हो सकती है। प्रत्येक तथ्य की जाँच स्वयं नहीं की जा सकती, चाहे जाँच करनेवाला व्यक्ति कितना ही योग्य तथा कुशल क्यों न हो। हममें से प्रत्येक व्यक्ति रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, नक्षत्रशास्त्र आदि अनेकों शास्त्रों का वेत्ता नहीं हो सकता। अतः विभिन्न-विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान अपने-अपने क्षेत्र के दक्ष वैज्ञानिकों की खोज के फलस्वरूप ही हमें अंगीकार करना पड़ता है। अतः आप्तवचन एव शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान को अनुमान में शामिल किया जा सकता है।

प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं, अपितु परोक्षज्ञान ही तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय है।

क्या तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष ज्ञान से है? प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय परोक्ष-ज्ञान के साथ-साथ प्रत्यक्ष-ज्ञान भी है। इस बात पर न्यायशास्त्रियों में काफी मतभेद रहा है, परन्तु उनमें से अधिकांश इस बात से सहमत हैं कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष-ज्ञान से न होकर केवल परोक्ष-ज्ञान से ही है। उनके विचार में, तर्कशास्त्र का मुख्य पाठ्य-विषय सत्य की समस्या है, अर्थात् तर्कशास्त्र में हम किसी बात की यथार्थता को सिद्ध करना चाहते हैं। जहाँ तक प्रत्यक्ष-ज्ञान का सम्बन्ध है, साधारण परिस्थितियों में उनके सत्य के बारे में कोई सन्देह नहीं होता। यदि किसी व्यक्ति की दृष्टि ठीक हो तो उसके द्वारा देखी गई वस्तु सत्य ही होती है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्यों का अन्तः प्रत्यक्ष द्वारा अपनी मनोदशा का ज्ञान भी सत्य ही होता है। अतः इनमें सिद्धि का प्रश्न ही नहीं उठता। “इस प्रकार के सत्य पर विश्वास की जाँच करने के

लिए न तो किसी विज्ञान की सहायता पडती है और न किसी अन्य कला से हमारा ज्ञान अधिक सत्य हो सकता है।” परन्तु ज्योही हम प्रत्यक्ष ज्ञान की परिधि को पार करते हैं और अनुमान, आप्त-वचन या शब्द के द्वारा ज्ञानोपार्जन करते हैं तो अशुद्धि की सभावना उपस्थित हो जाती है। गीली धरती को देखकर हम विगत वर्षा का अनुमान लगाते हैं। यह सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। अतः सत्यासत्य की समस्या उपस्थित हो जाती है। अतएव यह दृष्टिकोण कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रत्यक्ष-ज्ञान से न होकर केवल परोक्ष-ज्ञान से है, अधिक सगत प्रतीत होता है।

§४ विचार (Thought)

तर्कशास्त्र को ‘भाषाभिव्यक्त विचारो का विज्ञान’ कहा जाता है। ‘विचार’ (Thought) शब्द बड़ा सदिग्ध है। यह ‘विचार’ भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। कभी-कभी ‘विचार’ सामान्य-ज्ञान (Thought) तथा ज्ञान (Knowledge) समानार्थी पदों में हैं। की भाँति उपयुक्त किये जाते हैं। परन्तु तर्कशास्त्र में ‘विचार’ शब्द साधारण या सामान्य ज्ञान (General knowledge) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः विचार ज्ञान का ही एक उप-भाग हुआ। ज्ञान विशिष्ट (particular) अथवा सामान्य (general) हो सकता है, और ‘विचार’ सामान्य-ज्ञान है।

‘विचार’ अथवा ‘सामान्य ज्ञान’ का अर्थ कभी-कभी तो विचार-प्रक्रियाएँ (processes of thinking) यथा—निर्धारण (Conception), निर्णय-प्रक्रिया (Judgment) तथा तर्क-प्रक्रिया (Reasoning) समझा जाता है और कभी-कभी उससे तात्पर्य ‘विचार-परिणाम’ (Products of thinking), यथा—एक धारणा, एक निर्णय और एक तर्क होता है। ‘विचार’ का अर्थ ‘विचार-प्रक्रियाएँ’ अथवा ‘विचार-परिणाम’ होता है।

‘साधारण धारणा’ (Concept) का अर्थ एक ‘सामान्य भाव’, (general idea) होता है। ‘मनुष्य’ और ‘एक मनुष्य’ पदों द्वारा व्यक्त अर्थों का अन्तर हम समझते हैं। ‘एक मनुष्य’ पद किसी एक व्यक्ति-विशेष के लिए प्रयुक्त होता है, परन्तु ‘मनुष्य’ पद किसी व्यक्ति-विशेष के लिए नहीं अपितु मनुष्य-

साधारण धारणा।

वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता है। 'मनुष्य' पद का उपयोग समस्त मनुष्य-वर्ग के लिए इस कारण होता है कि अनेको मनुष्यों की तुलना (Comparison) करने पर हमें पता चलता है कि उन सब में समान रूप से कुछ अनिवार्य गुण (essential attributes) वर्तमान हैं। इन समान तथा अनिवार्य गुणों पर, जो कि उस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति में पाये जाते हैं, एक साधारण धारणा (Concept) का निर्माण होता है। धारणा के निर्माण करने की क्रिया को निर्धारण (Conception) कहते हैं तथा उसके परिणाम को 'एक धारणा' (a concept) का नाम दिया जाता है। भाषा में व्यक्त करने पर एक धारणा को पद (Term) कहते हैं।

निर्णय ।

दो धारणाओं की परस्पर तुलना करने की क्रिया निर्णय कहलाती है तथा इस तुलना के परिणाम को एक निर्णय (a judgment) कहते हैं। उदाहरण के लिए, दो धारणाएँ (अथवा सामान्य भाव) 'मनुष्य' एवं 'मरणशील' की परस्पर तुलना की जा सकती है, तथा ऐसी तुलना का परिणाम 'मनुष्य मरणशील है' होता है। एक निर्णय जब भाषा में व्यक्त किया जाता है, तो उसे तर्कवाक्य (Proposition) कहते हैं।

तर्क-पद्धति ।

एक या अनेक निर्णयों से एक ऐसे निर्णय पर, जिसकी उनसे पुष्टि होती हो, पहुँच जाने की क्रिया तर्क-पद्धति (Reasoning) कहलाती है तथा उसके परिणाम को एक तर्क कहते हैं। अतः तर्क-पद्धति में एक से अधिक निर्णयों की आवश्यकता पड़ती है। जब किसी तर्क को भाषा में व्यक्त करते हैं तो उसे एक युक्ति (argument) कहते हैं। अतः प्रत्येक युक्ति में एक से अधिक तर्कवाक्य होते हैं। यथा—

आश्रय . सब मनुष्य मरणशील हैं।

निष्कर्ष : कुछ मरणशील मनुष्य हैं।

अतः प्रत्येक युक्ति में हम एक या अनेक दिये हुए तर्कवाक्यों से एक अन्य तर्कवाक्य की ओर अग्रसर होते हैं। दिये हुए तर्कवाक्य (Proposition) को हम आश्रय (Premise) कहते हैं और जिस तर्कवाक्य पर हम पहुँचते हैं, वह निष्कर्ष (Con-

clusion) कहलाता है। आश्रय नाम इसलिए दिया जाता है क्योंकि वह तर्कवाक्य प्रारम्भ में ही विदित होता है और निष्कर्ष उसका अनुगामी होने के कारण उन्ही के द्वारा प्राप्त होता है।

जब हम यह कहते हैं कि तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय 'विचार' है, तो 'विचार' से तात्पर्य 'विचार-क्रिया' एवं 'विचार-परिणाम' दोनों होता है।

टिप्पणी १:—धारणा (Concept) का निर्माण

धारणा किस प्रकार निर्मित होती है, यह प्रश्न तर्कशास्त्र का न होकर मनोविज्ञान (Psychology) का है। संक्षेप में धारणा (Concept) का निर्माण निम्नलिखित क्रियाओं के द्वारा होता है:—

धारणा का निर्माण।

(१) तुलना (Comparison): विभिन्न व्यक्तियों अथवा वस्तुओं की तुलना यह पता चलाने के उद्देश्य से की जाती है कि उनमें कौन-कौन से अनिवार्य गुण (essential attributes) समान हैं तथा किन बातों में उनमें भेद है। यथा—जब हम भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की परस्पर तुलना करते हैं तो हमें पता चलता है कि वे परस्पर इस बात में समान हैं कि उन सबमें सजीवता (animality) तथा विचारशीलता (Rationality) के गुण हैं, तथा अन्य गुण यथा ऊँचाई, रंगरूप, ईमानदारी, चतुराई आदि में वे एक दूसरे से भिन्न हैं। अतः तुलना के द्वारा यह पता चल जाता है कि उनमें कौन-से गुण समान तथा अनिवार्य हैं। इस प्रकार अनिवार्य (Non-essential) तथा सायोगिक (accidental) गुणों को छोड़ दिया जाता है।

विभिन्न व्यक्तियों की तुलना करने से।

(२) पृथक्-करण (Abstraction): अगले स्तर में समान तथा अनिवार्य गुणों को असमान तथा सायोगिक गुणों से पृथक् कर दिया जाता है। हम अपना ध्यान सायोगिक गुणों से हटा कर केवल अनिवार्य गुणों में केन्द्रित करते हैं। अतः मनुष्य के अनिवार्य तथा समान गुण 'सजीवता' तथा 'विचारशीलता' पर विचार किया जाता है।

उनके समान व अनिवार्य गुणों को पृथक् करने से

इन गुणों का सामान्यीकरण करने से, तथा—

(३) सामान्यीकरण (Generalisation) : अगले सोपान में इन समान तथा अनिवार्य गुणों का सामान्यीकरण किया जाता है अर्थात् यह प्रदर्शित किया जाता है कि ये समान तथा अनिवार्य गुण केवल उन्हीं व्यक्तियों में नहीं पाये जाते जिनका परीक्षण किया गया, वरन् इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियों में भी पाए जाते हैं। अतः यह बात मान ली जाती है कि 'सजीवता' तथा 'विचारशीलता' केवल उन्हीं मनुष्यों के समान तथा अनिवार्य गुण नहीं हैं, जिनकी जाँच की गई, वरन् सभी मनुष्यों के गुण हैं।

उनको एक नाम देने से होता है।

(४) नामकरण (Naming) : अन्तिम सोपान सामान्यीकरण द्वारा प्राप्त गुण-समूहों को एक नाम दे देने का है। जब यह हो जाता है तो उसके सामान्य भाव को भले प्रकार मस्तिष्क में रखा जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार उसे पुनः व्यक्त किया जा सकता है एवं उसे अन्य व्यक्तियों को भी बतलाया जा सकता है। इस प्रकार इन सामान्य, समान तथा अनिवार्य गुणों के समूह का नाम 'मनुष्य' रख दिया जाता है।

टिप्पणी २ : धारणा का स्वरूप : वस्तुवाद (Realism)

धारणावाद (Conceptualism) तथा

नामवाद (Nominalism)

तीन दार्शनिक मत :

धारणा (Concept) के स्वरूप (Nature) की समस्या तर्कशास्त्र का विषय न होकर तत्त्वज्ञान (Metaphysics) का विषय है। इस सम्बन्ध में दार्शनिकों के तीन विभिन्न मत हैं। यथा—वस्तुवाद (Realism), धारणावाद (Conceptualism) तथा नामवाद (Nominalism)।

वस्तुवाद के अनुसार धारणा यथार्थ वस्तु है।

वस्तुवाद (Realism) उस दृष्टिकोण को कहते हैं जिसके अनुसार प्रत्येक धारणा (Concept) के संगत (corresponding) एक यथार्थ वस्तु (Real substance) है। अतः 'मनुष्य' धारणा के संगत एक ऐसी वस्तु है जो कि कोई व्यक्ति-विशेष तो नहीं, अपितु जिसमें प्रत्येक व्यक्ति भाग लेता है—वह एक 'सार्वलौकिक मनुष्य' (Universal Man) होता

है जिसमें 'मनुष्य' का तत्त्व (essence) निहित रहता है और वही वास्तविक मनुष्य होता है। यह दृष्टिकोण प्लेटो (Plato) और अरस्तू (Aristotle) का है।

धारणावाद (Conceptualism) उस दृष्टिकोण को कहते हैं जिसके अनुसार धारणायें (Concepts) यथार्थ वस्तुयें नहीं होतीं, प्रत्युत केवल सामान्य-भाव (general ideas) होती हैं। धारणा उसके द्वारा व्यक्त वस्तुओं के समान एव अनिवार्य गुणों का मानसिक ज्ञान होता है। धारणा अथवा सामान्य-भाव का निर्माण परिवर्तनीय (variable) एव सायोगिक (accidental) गुणों को छोड़कर केवल समान (common) और अनिवार्य (essential) गुणों पर अलग विचार करने से होता है। अतः 'मनुष्य' धारणा प्रत्येक मनुष्य के समान और अनिवार्य गुणों के सामान्य-भाव को कहते हैं। यह दृष्टिकोण लॉक (Locke) का है।

धारणावाद के अनुसार धारणा सामान्य भाव है।

नामवाद (Nominalism) उस दृष्टिकोण को कहते हैं, जिसके अनुसार धारणा (Concept) केवल सामान्य नाम (General name) है, सामान्य-भाव (General idea) नहीं। 'सामान्य-भाव' नामक कोई वस्तु नहीं होती—सब भाव वस्तु-विशेषों के विशिष्ट-भाव (Particular ideas) होते हैं। केवल नाम ही सामान्य होता है, जो विशेष-वस्तुओं में समान होता है। अतः धारणा शब्द-मात्र ही होती है—उससे सगत न तो यथार्थ-वस्तु ही होती है और न सामान्य-भाव ही। 'मनुष्य' वर्ग से हमारे मन में मनुष्य-विशेष तथा समान या सामान्य नाम 'मनुष्य' का भाव जाग्रत होता है। किसी मनुष्य-विशेष के बारे में विचार किये बिना 'मनुष्य' पर विचार करना असंभव है। यह दृष्टिकोण हॉब्स (Hobbes) और बर्कले (Berkeley) का है।

नामवाद के अनुसार, धारणा सामान्य नाम है।

§ ५ विचार और भाषा : तर्कशास्त्र और व्याकरण

भाषा के
विभिन्न
रूप ।

भाषा (Language) शब्द का उपयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया जाता है। व्यापक अर्थ में, जीव-जन्तुओं का स्वर यथा भौकना, चिल्लाना, गरजना, चिंघाडना आदि भी भाषा के अन्तर्गत आता है। इन्हे हम पशुओं की भाषा (Language of the animals) कह सकते हैं। मनुष्य-साम्राज्य में भाषा का सब से सरल रूप भिन्न-भिन्न शारीरिक चेष्टाओं तथा हाव-भाव प्रदर्शन में मिलता है, जिसका उपयोग अपने विचारों को उस व्यक्ति तक पहुँचाने में करते हैं, जो उस स्थान की भाषा से पूर्णतया अनभिज्ञ हो। उदाहरण के लिए गुलीवर जब लिलीपुट के द्वीप में पहुँचा तो वह अपनी भूख का संकेत अपना मुँह खोलकर तथा उसकी ओर उँगली दिखकर कर सका। परन्तु तर्कशास्त्र में भाषा के इन प्राथमिक मूलरूपों को स्थान नहीं मिलता। पशुओं की अस्पष्ट ध्वनि तथा मनुष्यों की शारीरिक चेष्टा तथा हाव-भाव एवं गूँगे-वहरे व्यक्तियों के भाव प्रकाशन के संकेतों को हम भाषा नहीं मानते। तर्कशास्त्र में 'भाषा' से तात्पर्य मुख से बोली जानेवाली स्पष्ट ध्वनि की एक प्रणाली है, इसके अनुरूप ही लिखित शब्दों की एक प्रणाली होती है, जोकि मुखरित शब्दों की प्रतीक हो। मौखिक तथा लिखित शब्दों का उपयोग विचारों की उत्पत्ति तथा विस्तार में सहायक होता है।

तर्कशास्त्र
में 'भाषा'
की परि-
भाषा ।

भाषा का
कार्य विचारों
को व्यक्त
करना तथा
उनका
विस्तार
करना है।

भाषा का कार्य (function) विचारों को व्यक्त करना तथा उनका विस्तार करना है। जटिल तथ्यों (Complex-facts) को सरल तत्त्वों में विश्लेषित करते समय भाषा सहायक होती है। धारणाओं के निर्माण में एवं विचार-क्रियाओं में भी भाषा के कारण सुविधा हो जाती है। अन्य व्यक्तियों तक हम अपने विचार भाषा के द्वारा पहुँचा सकते हैं तथा स्वयं सुविधापूर्वक

विचार कर सकते हैं। लिखित भाषा के द्वारा हम अपने विचारों का विवरण रख सकते हैं ताकि हर काल व स्थान के व्यक्तियों तक वे विचार पहुँच सकें।

प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भाषा के बिना विचार करना संभव है? यह प्रश्न मुख्यतः तर्कशास्त्र से नहीं, बरन् मनोविज्ञान (Psychology) से सम्बन्ध रखता है। यह संभव हो सकता है कि प्रारम्भिक सरल विचार मौखिक तथा लिखित भाषा के बिना भी किये जा सकें, परन्तु तर्कशास्त्र में 'विचार' का अर्थ है 'सूक्ष्म अथवा सामान्य विचार' (abstract or general thought) और सूक्ष्म एवं सामान्य विचार भाषा की निश्चित प्रणाली के बिना संभव नहीं हो सकते।

तर्कशास्त्र में भाषा के बिना कोई 'विचार' नहीं होता।

तर्कशास्त्र और व्याकरण :—'विचार' और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह प्रश्न उठता है कि विचार-विज्ञान अर्थात् तर्कशास्त्र एवं भाषा-विज्ञान अर्थात् व्याकरण (Grammar) का क्या सम्बन्ध है? इस सम्बन्ध का विवेचन करते समय हम केवल 'सार्वभौमिक व्याकरण' (Universal Grammar) (अर्थात् उन सार्वभौमिक नियमों का विज्ञान, जिनका पालन करना प्रत्येक भाषा के लिए अनिवार्य है) को ही स्थान दे सकेंगे, 'विशेष व्याकरण' (Special Grammar) को नहीं, जिससे उन सार्वभौमिक नियमों का किसी भाषा-विशेष में उपयोग किया गया है। सार्वभौमिक व्याकरण भाषा के शुद्ध उपयोग का विज्ञान है। उसका कार्य उन व्याकरणीय पदों का पारस्परिक सम्बन्ध एवं उनका और उनके द्वारा व्यक्त विचारों का सम्बन्ध निश्चित करना है, जो कि प्रत्येक भाषा के लिए आवश्यक है। व्याकरण में उन नियमों की खोज की जाती है जिनके पालन करने से हमारी भाषा शुद्ध हो सके। तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों का विज्ञान है। अतः

सार्वभौमिक-व्याकरण उन नियमों का वर्णन करता है जिन्हें सब भाषाएँ पालन करती हैं।

तर्कशास्त्र
तथा व्या-
करण दोनों
ही भाषा से
सम्बद्ध है;
परन्तु
विभिन्न
प्रकार से।

तर्कशास्त्र एवं व्याकरण दोनों का ही सम्बन्ध भाषा से है। ज्ञान की इन दोनों शाखाओं के इस घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण कुछ विचारकों ने तर्कशास्त्र एवं व्याकरण के उद्देश्यों को बड़ा गड़बड़ा दिया है। उदाहरण के लिए व्हेटली (Whately) का कहना है 'शब्द-संगति' (Verbal consistency) ही तर्क-शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। परन्तु यह दृष्टिकोण नितांत अशुद्ध है। यह सच है कि तर्कशास्त्र तथा व्याकरण दोनों का सम्बन्ध भाषा से है, परन्तु उनमें भेद यह है कि तर्कशास्त्र तो भाषा का उपयोग विचार के उपकरण एवं माध्यम की भाँति करता है और उसका मुख्य विषय 'विचार' है, भाषा से उसका सम्बन्ध परोक्ष है। तर्कशास्त्र में भाषा की विभिन्नताओं से हमें दिलचस्पी नहीं होती, हम तो केवल उनमें निहित विचारों पर ही ध्यान केन्द्रित करते हैं, परन्तु व्याकरण का मुख्य विषय भाषा है।

§ ६ 'विचार' का आकार (Form) और विषयवस्तु (Matter)

भौतिक
वस्तुओं का
'आकार'
तथा
'विषय-
वस्तु'।

प्रत्येक भौतिक पदार्थ का एक निश्चित आकार, (Form) होता है तथा वह किसी विषयवस्तु (Matter) द्वारा निर्मित होता है। उदाहरण के लिए स्वर्णमुद्रा का आकार गोल होता है तथा उसकी विषयवस्तु (Matter) स्वर्ण है। मेज का आकार गोल, अडे-जैसा अथवा आयत-जैसा हो सकता है तथा उसकी विषयवस्तु लकड़ी होती है। अतः इस प्रकार के सब पदार्थों का कोई न कोई आकार (Form) अवश्य होता है और वह किसी न किसी विषयवस्तु (Matter) द्वारा निर्मित होता है। बिना आकार के विषयवस्तु नहीं हो सकती तथा बिना विषयवस्तु के आकार भी संभव नहीं होता। आकार (Form) तथा विषयवस्तु (Matter) सर्वदा साथ-साथ रहते हैं तथा ये दोनों बातें एक ही पदार्थ में पाई जाती हैं। परन्तु यह बात सभी को ज्ञात है कि पदार्थ का आकार अथवा विषयवस्तु बिना एक दूसरे पर प्रभाव डाले हुए भी परिवर्तित हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न विशेष

वस्तु से निर्मित वस्तुएँ एक ही आकार की हो सकती हैं; इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आकार की वस्तुएँ एक ही विषयवस्तु द्वारा निर्मित हो सकती हैं। उदाहरण के लिए कोई घड़ी विभिन्न आकारों की हो सकती है—यथा, वर्गाकार, आयताकार, पट्ट-भुजाकार, बहुभुजाकार आदि; और इसके विपरीत उसकी विषय-वस्तु भी भिन्न-भिन्न हो सकती है; यथा वह स्वर्ण, रजत अथवा निकिल की हो सकती है। एक ही साँचे के बने हुए सब पदक (medal) एक ही आकार (Form) के होते हैं, परन्तु उनकी विषयवस्तु (Matter) स्वर्ण, रजत, तँवा, निकिल आदि हो सकती है।

विचार का आकार (Form) एवं विषयवस्तु (Matter) :—

जिस प्रकार भौतिक वस्तुओं का आकार एवं विषयवस्तु का अन्तर हमें तुरन्त ज्ञात हो जाता है, उसी प्रकार का भेद विचार के आकार एवं विषयवस्तु में भी होता है। विचार की विषयवस्तु से हमारा तात्पर्य उन पदार्थों से होता है, जिनके बारे में हम विचार करते हैं और विचार के आकार से हमारा अर्थ वह प्रणाली अथवा प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम विचार करते हैं।

‘विचार’ का
आकार तथा
विषयवस्तु।

तर्कशास्त्र में ‘विचार’ को भाषा में व्यक्त करने से पद (Terms), तर्कवाक्य (Propositions), युक्ति अथवा तर्क-पद्धति (Reasoning) बनते हैं। इनमें से प्रत्येक में आकार-सम्बन्धी तथा विषयवस्तु-सम्बन्धी अन्तर होता है। ‘श्वेत’ तथा ‘अश्वेत’ पदों का आकार क्रमशः स्वीकारात्मक (positive) तथा निषेधात्मक (Negative) है और उनकी विषयवस्तु उनके अर्थ में निहित है। इसी प्रकार इस तर्कवाक्य (proposition) को देखिए—‘सब मनुष्य मरणशील हैं’। इस तर्कवाक्य का अर्थ तो इसकी विषयवस्तु (Matter) है तथा उसका आकार (Form) सार्वलौकिक-स्वीकृति (Universal Affirma-

tive) का है। तर्कपद्धति के लिए निम्नलिखित युक्ति देखिए :—

सब मनुष्य मरणशील हैं।
 सब नरेश मनुष्य हैं।
 ∴ सब नरेश मरणशील हैं।

आकार में यह एक 'न्यायवाक्य' या 'सिलोजिज्म' (Syllogism) है तथा इसकी विषयवस्तु (Matter) इसके तीनों तर्कवाक्यों द्वारा व्यजित अर्थ है।

भौतिक-पदार्थों की भांति, विचारकी विषय-वस्तु एवं आकार में से किसी एक में परिवर्तन हो सकता है और ऐसा होने पर भी दूसरा ज्यों का त्यों रहता है। निम्नलिखित तर्कवाक्य देखिए :—

(१) सब मनुष्य मरणशील हैं।
 (२) सब श्वान चतुष्पदी हैं।

इन दोनों तर्कवाक्यों का आकार समान है अर्थात् सार्वलौकिक स्वीकृति (Universal affirmative) है; परन्तु उनका अर्थ अर्थात् विषयवस्तु भिन्न-भिन्न है।

अब निम्नलिखित तर्कवाक्य देखिए :—

(१) सब मनुष्य मर्त्य हैं।
 (२) कोई मनुष्य अमर्त्य नहीं है।

इन दोनों तर्कवाक्यों (propositions) का आकार (Form) भिन्न-भिन्न है, क्योंकि पहला तर्कवाक्य स्वीकारात्मक (Positive) तथा दूसरा निषेधात्मक (Negative) है। परन्तु उन दोनों का अर्थ समान होने के कारण उनकी विषय-वस्तु (Matter) अभिन्न है।

पद (Term) तथा तर्क-पद्धति का उदाहरण लेकर भी यही बात दर्शायी जा सकती है।

§ ७ आकारगत (Formal) एव वास्तविक सत्य

अब हम आकारगत (Formal) एव वास्तविक (Material) यथार्थ अथवा सत्य (Truth) पर विचार करेंगे।

आकारगत सत्य (Formal Truth) से तात्पर्य विचारो की पारस्परिक आत्मसंगति (Self-consistency) का होना तथा आत्मविरोध (Self-contradiction) का अभाव है। प्रश्न यह है—क्या 'विचार' आत्मसंगत है? क्या उसमें आत्मविरोध तो नहीं है? क्या यथाकथित विचार वास्तव में विचार है भी अथवा वह एक अर्थहीन शब्द-मात्र ही है? उदाहरण के लिए व्यंजक 'गोल-वर्ग' में आत्मविरोध (Self-contradiction) है। यही नहीं कि ऐसी वस्तु असत् है, वरन् उसके सम्बन्ध में विचार ही नहीं किया जा सकता। वह स्वतः ही अविचारणीय एव असम्भव है। उसकी अयथार्थता की पुष्टि करने के लिए अन्यत्र खोज नहीं करनी पड़ती। वह स्वयं ही अयथार्थ है।

आकारगत सत्य का अर्थ आत्म-संगति है।

वास्तविक सत्य (Material Truth) से तात्पर्य हमारे विचारों की बाह्य-जगत् की वस्तुओं से संगति है। यदि कभी हमें यह पता चले कि हमारे विचार बाह्य-जगत् की किसी भी वस्तु से संगत नहीं है, अर्थात् हमारे विचार वास्तविकता के प्रतिकूल हैं, तो हमारे विचारों में वास्तविक सत्य (Material Truth) नहीं होगा। वे वास्तव में अयथार्थ होंगे। अतएव यदि हम 'स्वर्णपर्वत' 'हवाई महल', 'दुग्धसागर' आदि की खोज करने लगे, तो वह व्यर्थ होगी। ये वस्तुएँ तो मिल सकती हैं, कल्पना के लोक में, अयथार्थता के राज्य में। वास्तविक लोक में वे असत् हैं। दूसरी ओर, यदि धूम्र की उपस्थिति को देखकर हम यह निष्कर्ष निकालें कि उस स्थान पर अग्नि भी उपस्थित है, तथा उस स्थान पर स्वयं जाकर हम देख भी सकें कि वहाँ वास्तव में अग्नि है, तो हमारे

वास्तविक सत्य का अर्थ विचारों की बाह्य-वस्तुओं से संगति है।

तर्क का वास्तविक सत्य पुष्ट हो जाता है। कोलम्बस ने अपनी गणना के द्वारा अनुमान लगाया था कि एक महाद्वीप, जो तबतक अज्ञात था, वास्तव में सत् था। उसने अज्ञात समुद्रों की यात्रा की और इस प्रकार अमेरिका की खोज हुई। अतः उसके अनुमान के वास्तविक सत्य का प्रदर्शन हो गया। रसायन-विज्ञान हमें बतलाता है कि दो गैसें हाइड्रोजन और आक्सीजन जब किसी निश्चित अनुपात में मिला दी जाती हैं, तो पानी बनता है। जब हम स्वयं प्रयोग करके हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोग से पानी बना लेते हैं, तो उपर्युक्त सूचना की पुष्टि हो जाती है।

तर्कपद्धति के
आकारगत
तथा वास्त-
विक सत्य

अब हम युक्तियों अथवा तर्क-पद्धति के आकारगत (Formal) एवं वास्तविक (Material) सत्य का विवेचन करेंगे। किसी भी सत्य में आकारगत सत्य तब होता है, जबकि निष्कर्ष उस आकार के नियमों का पूर्ण पालन करके निकाला गया हो। किसी तर्क में वस्तुगत सत्य तब होता है जबकि वे तर्कवाक्य, जिनसे वह युक्ति निर्मित हुई है, वास्तविक पदार्थों के सदृश हो। निम्न-लिखित तर्क-पद्धति को देखिए :—

सब मनुष्य मर्त्य हैं।

सब नरेश मनुष्य हैं।

∴ सब नरेश मर्त्य हैं।

इसमें तर्क के नियमों का पूर्णरूप से पालन किया गया है, अतः इसमें आकारगत सत्य है। इसके तीनों तर्क-वाक्य यथा— 'सब मनुष्य मर्त्य हैं', 'सब नरेश मनुष्य हैं', तथा 'सब नरेश मर्त्य हैं' वास्तविकता के सगत हैं। अतः उनमें वास्तविक-सत्य भी है।

—सर्वदा साथ
साथ नहीं
रहते।

आकारगत सत्य एवं वास्तविक सत्य सर्वदा साथ-साथ नहीं रहते। कोई युक्ति ऐसी भी हो सकती है कि उसमें आकारगत सत्य तो हो, परन्तु वास्तविक-सत्य न हो।

उदाहरण के लिए,

सब मनुष्य अमर्त्य हैं।
 सब नरेश मनुष्य हैं।
 ∴ सब नरेश अमर्त्य हैं।

इस युक्ति में आकारगत सत्य तो है, परन्तु वास्तविक सत्य नहीं है। इसमें तर्क के नियमों का तो पूर्ण रूप से पालन किया गया है, अतः उसका आकार शुद्ध है। परन्तु इसमें वास्तविक सत्य नहीं है क्योंकि इसका आश्रय 'सब मनुष्य अमर्त्य हैं' भी वास्तव में अयथार्थ है।

आकारगत एवं वास्तविक सत्य के भेद के अनुसार तर्कशास्त्री तर्कशास्त्र के भी दो रूप मानने लगे हैं ; यथा—आकारगत तर्कशास्त्र (Formal Logic) तथा वास्तविक या वस्तुगत तर्कशास्त्र (Material Logic)। इनका विवेचन अन्यत्र किया जायेगा।

§८ विज्ञान (Science)

विज्ञान तथा साधारण ज्ञान (Popular knowledge) :—विश्व के किसी एक क्षेत्र से सम्बन्धित सुसंबद्ध ज्ञान-राशि को विज्ञान (Science) कहते हैं। साधारण ज्ञान (Popular knowledge) की अपेक्षा विज्ञान (Science) में निम्नलिखित विशेषताये हैं।

साधारण
ज्ञान की
अपेक्षा

(क) विज्ञान विश्व के किसी एक क्षेत्र (department) का ही अध्ययन करता है, जबकि साधारण व्यक्ति ससार के सभी क्षेत्रों की बातों में रुचि रखता है।

विज्ञान केवल
एक क्षेत्र का
अध्ययन
करता है।

साधारण व्यक्ति ससार की प्रायः सभी बातों के बारे में कुछ जानता है। वह विभिन्न पौधों एवं उनके विकास के बारे में कुछ ज्ञान रखता है ; भिन्न-भिन्न जन्तुओं की आदतों में भी वह भिन्न होता है , अपने साथी अन्य मनुष्यों की विभिन्न रूढ़ियों का ज्ञान भी उसे होता है, ऋतुओं का परिवर्तन, मौसम की नन्दिग्धना,

ज्वार और भाटा, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों का थोड़ा बहुत ज्ञान उसे होता ही है। इसके विपरीत वैज्ञानिक ज्ञान विश्व के किसी एक ही क्षेत्र से सम्बन्धित होता है। वनस्पति विज्ञान (Botany) पेड़-पौधों का विज्ञान है, जन्तु-विज्ञान (Zoology) जीव-जन्तुओं का विज्ञान है, मनोविज्ञान (Psychology) मन का विज्ञान है, रसायन पदार्थ-विज्ञान है, नक्षत्र-विज्ञान (Astronomy) आकाशस्थित ज्योतिषजो का विज्ञान है, इत्यादि। प्रत्येक विज्ञान का क्षेत्र अपने विभाग तक ही सीमित है और इस आत्मनिर्धारित सीमा के परे वह नहीं जाता। यह बात सच नहीं है कि विश्व का एक विभाग दूसरे विभाग से पूर्णतया पृथक् हो। अतः इस दृष्टिकोण से कोई भी विज्ञान केवल अपने ही क्षेत्र में सीमित नहीं रह सकता। परन्तु विज्ञान का प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल अपने ही विभाग से होता है, यह दूसरी बात है कि परोक्ष-रूप में वह दूसरे विभाग का अध्ययन भी कर ले, जिससे उसके विभाग को सहायता मिलती है।

उसका ज्ञान
क्रमानुगत,
सुसंगठित
होता है।

(ख) वैज्ञानिक ज्ञान क्रमानुगत, सुसंगठित तथा व्यापक, (general) होता है, जबकि साधारण ज्ञान प्रायः असंगत एवं अस्तव्यस्त होता है।

साधारण ज्ञान की यह विशेषता होती है कि वह असंगत एवं अस्तव्यस्त होता है। इधर-उधर बिखरे हुए तथ्यों का वह सकलनमात्र होता है, जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान भले प्रकार नहीं हो पाता। विज्ञान इन बिखरे हुए तथ्यों को एक व्यापक नियम (general law) के अन्तर्गत रखता है और इस प्रकार उन्हें सयत करता है। विज्ञान विशेष तथ्यों की उपेक्षा नहीं करता, प्रत्युत उन्हें एकत्रित करता है, तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात करके सुसयत कर देता है।

विशेष
उपकरणों
का उपयोग
करता है।

(ग) विज्ञान अपनी विशेष प्रकार की प्रणाली एवं उपकरणों (appliances) का प्रयोग, करता है, ताकि उसके द्वारा उपार्जित ज्ञान सत्य एवं निश्चित हो सके। परन्तु साधारण ज्ञान विधिहीन निरीक्षण के द्वारा प्राप्त होता है।

साधारण व्यक्ति अपने ज्ञान की सामग्री एकत्रित करते समय

अपनी ज्ञानेन्द्रियो (Sense organs) पर ही पूर्ण भरोसा कर लेता है और उसका ज्ञान उसकी पूर्वनिर्मित धारणाओं के अनुरूप पक्षपातपूर्ण होता है। परन्तु वैज्ञानिक अपने विषय का अध्ययन निष्पक्ष करता है और अपने ज्ञान की परख के लिए कभी-कभी विशेष यंत्रों और उपकरणों की सहायता लेता है। आकाश-स्थित ज्योतिषुजो का निरीक्षण करने के लिये नक्षत्र-वैज्ञानिक दूरदर्शक यन्त्र का उपयोग करता है। रसायन-वैज्ञानिक बहुत ही शुद्ध तुला का उपयोग पदार्थों का भार ज्ञात करने के लिये करता है; जीवाणु-विशेषज्ञ अणुवीक्षण-यन्त्र की सहायता अनेक ऐसी वस्तुओं के निरीक्षण करने के लिये लेता है, जो इतनी सूक्ष्म होती हैं कि कोरी आँख से नहीं देखी जा सकती। इत्यादि।

अतः वैज्ञानिक ज्ञान एवं साधारण ज्ञान में प्रकार का अन्तर नहीं, वरन् केवल अंशभान का भेद है। साधारण ज्ञान की अपेक्षा वैज्ञानिक ज्ञान अधिक सत्य, सुसम्बद्ध एवं निश्चित होता है।

वैज्ञानिक ज्ञान और साधारण ज्ञान में अंशभान का भेद है।

तर्कशास्त्र एक विज्ञान है, उसका पाठ्य-विषय तर्क-पद्धति एवं उसके अधीन कुछ अन्य क्रियाएँ हैं। वह विधिपूर्वक एवं सुसम्बद्ध रीति से उन दगाओं का अनुसंधान करता है जिनका पालन करने से 'विचार' विशुद्ध हो सके, तथा विचार-सम्बन्धी दोषों से बचा जा सके और दोषों की पकड़ हो सके। अतः उसका स्तर साधारण ज्ञान के स्तर से ऊँचा होता है क्योंकि वह निश्चित विधि-वत् और निश्चित होता है।

तर्कशास्त्र एक विज्ञान है।

टिप्पणी — विज्ञान . वर्णनमूलक (Positive) एवं आदर्शमूलक (Normative)

विज्ञान के दो विभाग किये जाते हैं — वर्णनमूलक (Positive) तथा आदर्शमूलक (Normative)। वर्णनमूलक विज्ञान पदार्थों के वास्तविक रूप का वर्णन करता है तथा आदर्शमूलक विज्ञान पदार्थों के उस रूप का विवेचन करता है,

वर्णनमूलक और आदर्शमूलक विज्ञान।

जैसा कि उनको होना चाहिये। वस्तुये जैसी है, तथा जैसी उनको होनी चाहिये—वास्तविक तथा आदर्श—का अन्तर बड़ा स्पष्ट है। उदाहरण के लिये एक मनुष्य प्रायः यह जानता है कि उसे क्या करना चाहिये, परन्तु वास्तव में वह उससे भिन्न कार्य करता है। वह जानता है कि उसे सच बोलना चाहिये परन्तु वास्तव में वह प्रायः सच नहीं बोलता। जो विज्ञान वस्तुओं के वास्तविक रूप का वर्णन करता है, 'वर्णनमूलक विज्ञान' (Positive Science) कहलाता है। आदर्शमूलक विज्ञान (Normative Science) अपने समक्ष एक आदर्श (Norm or ideal) रखता है। तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है क्योंकि वह 'विचार' एवं तर्क-पद्धति' के वास्तविक रूप का अध्ययन नहीं करता अपितु, इस बात का अध्ययन करता है कि उनको किस प्रकार का होना चाहिये। तर्कशास्त्र अपने सम्मुख सत्य का आदर्श रखता है और उन दशाओं की खोज करता है, जिनका पालन करने से उस सत्य के आदर्श पर पहुँचा जा सके। जो विज्ञान विचारों के वास्तविक रूप का अध्ययन करता है, मनोविज्ञान (Psychology) कहलाता है। (देखिए खण्ड § १४)।

§९ विज्ञान (Science) तथा कला (Art)

'विज्ञान' हमें जानना और 'कला' करना सिखलाती है।

विज्ञान (Science) उस सुसम्बद्ध ज्ञानराशि को कहते हैं जो कि प्रकृति के किसी एक क्षेत्र से सम्बन्धित हो। कला (Art) हमें यह बतलाती है कि उस ज्ञान को किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखते हुए किस प्रकार उपयोगमें लाया जा सकता है। विज्ञान हमें 'जानना' (to know) तथा कला 'करना' (to do) सिखलाती है। वास्तव में जानना मूल रूप में अनिवार्य है क्योंकि उसी की सहायता से 'करना' सम्भव हो सकता है। प्रत्येक ज्ञान का उद्देश्य अभ्यास अथवा आचरण का निर्देशन है और

मनुष्य जाति की आवश्यकतानुसार अभ्यास के क्षेत्र विविध है। इन क्षेत्रों को कलायें (Arts) कहते हैं।

इस प्रकार सब कलायें ज्ञान पर आधारित हैं। यह ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान हो सकता है अथवा साधारण मनुष्य का ज्ञान। एक कला यदि स्वयं कला द्वारा उपार्जित ज्ञान पर ही आधारित हो तो उसे व्यावहारिक कला (Empirical Art) कहते हैं। परन्तु यदि उसका आधार वैज्ञानिक ज्ञान हो तो उसे वैज्ञानिक कला (Scientific Art) कहते हैं। जिस प्रकार साधारण ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान से पहले आता है, उसी प्रकार व्यावहारिक कला वैज्ञानिक कला की पूर्ववर्तिनी है। उदाहरण के लिए, पोतकला को लीजिये। प्रारम्भ में नाविकों को केवल उसी ज्ञान से सतोप हो जाता था, जिसे वे अपनी यात्राओं से उपार्जित करते थे। परन्तु आजकल पोतकला गणित, ज्योतिर्विज्ञान, प्रकाश-विज्ञान आदि जैसे प्रगतिशील विज्ञानों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित की जाती है।

व्यावहारिक
कला तथा
वैज्ञानिक
कला।

हम आगे देखेंगे कि तर्कशास्त्र एक 'विज्ञान' तथा 'कला' दोनों है। वह वैज्ञानिक ज्ञानराशि प्रस्तुत करता है, परन्तु साथ ही वह यह भी बतलाता है कि उस ज्ञानराशि का वास्तविक व्यवहार में किस प्रकार उपयोग हो।

§ १० तर्कशास्त्र की परिभाषा

तर्कशास्त्र की परिभाषा निम्नलिखित हो सकती है—तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार के व्यवस्थापक सिद्धान्तों (Regulative laws) का विज्ञान है। अर्थात् वह उन सिद्धान्तों का विज्ञान है जिनके अनुरूप हमारे विचार होने चाहिए ताकि वे विशुद्ध हो सकें।

विज्ञान।

विज्ञान किसी विशेष-पाठ्य विषय से सम्बन्धित ज्ञान-राशि को कहते हैं। सामान्य ज्ञान की अपेक्षा वह विश्व के केवल एक

क्षेत्र का अध्ययन करता है, ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र का नहीं। परन्तु विज्ञान अव्यवस्थित तथ्यों को सयत करके उनके एकीकरण का प्रयत्न करता है और उनको एक सामान्य-नियम के अन्तर्गत लाता है। विज्ञान वर्णनमूलक एवं आदर्शमूलक हो सकता है, जबकि वह क्रमशः वस्तुओं के वास्तविक रूप तथा उनके उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि उनको होना चाहिए। तर्कशास्त्र एक विज्ञान है, उसका पाठ्य-विषय, तर्क-मद्वति तथा कुछ अन्य अधीन क्रियाये हैं और वह बड़ी सुसयत रीति से उन दशाओं की खोज करता है, जिनके पालन करने से हमारे विचार विशुद्ध हो सकें तथा दोषों का निवारण एवं उनकी पकड़ हो सके। अतः वह, साधारण ज्ञान की अपेक्षा अधिक सयत और निश्चित होने के कारण, उससे अधिक उच्च है। तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है क्योंकि वह 'विचार' की उन दशाओं का अध्ययन नहीं करता, जैसी कि (उनको होना चाहिए) अपितु 'विशुद्ध विचार' (अर्थात् जैसा कि उसको होना चाहिए) का अध्ययन करता है। वह अपने सामने एक आदर्श रखता है, यथा—'सत्य' का आदर्श, और उन दशाओं की खोज करता है, जिनके पालन करने से 'विचार' शुद्ध हो सकते हैं। 'व्यवस्थापक विज्ञान' ('Regulative Science') शब्द के उपयोग से यह तात्पर्य है कि तर्कशास्त्र के सैद्धांतिक (theoretical) एवं प्रयोगात्मक (Practical) दोनों पहलू हैं, अर्थात् वह विज्ञान तथा 'कला' दोनों है। उसका सैद्धांतिक-पक्ष 'विज्ञान' शब्द से तथा प्रयोगात्मक-पक्ष 'व्यवस्थापक' शब्द से व्यजित होता है।

नियम ।

नियम या सिद्धान्त सामान्य-सत्य (general Truth) के विवरण को कहते हैं, अर्थात् वह एक ऐसा सत्य होता है जो कि उस विज्ञान में सार्वलौकिक रूप से चरितार्थ होता है। विशिष्ट-सत्य (Particular Truth) उससे इस दिशा में भिन्न

होता है कि वह केवल कुछ दशाओ में ही चरितार्थ हो सकता है। 'व्यवस्थापक सिद्धान्त' वे सामान्य-सत्य होते हैं जो कि प्रत्येक 'विचार' में अन्तर्निहित रहते हैं अर्थात् प्रत्येक 'विचार' उन्हीं के अनुसार होता है और जबतक 'विचार' उनका पालन नहीं करता, वह शुद्ध नहीं होता।

'विचार' शब्द बड़ा सन्दिग्ध है ; उसका अर्थ 'विचार-प्रक्रिया' (Process of thinking) और कभी 'विचार-परिणाम' (Product of thinking) होता है। विचार-प्रक्रियाये निर्धारण (Conception) निर्णय-क्रिया (Judgment) एवं तर्क-पद्धति (Reasoning) हैं ; उनके परिणाम एक धारणा (a concept), एक निर्णय (a judgment) और एक 'तर्क' है। भाषा में व्यक्त करने पर धारणा, निर्णय और तर्क को क्रमशः पद (Term), तर्कवाक्य (Proposition) तथा युक्ति (Argument) कहते हैं। तर्कशास्त्र 'विचार' की प्रक्रियाये एवं 'परिणाम' दोनों का अध्ययन करता है। 'विचार' शब्द से यह भी तात्पर्य निकलता है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल तर्क-पद्धति (Reasoning) से ही नहीं, वरन् विचार की कुछ अन्य अधीन गौण-क्रियाओ, यथा परिभाषा (Definition), वर्गीकरण (Classification), नामकरण (Naming) आदि से भी है।

'विशुद्धि' (Validity) अथवा 'सत्य' (Truth) शब्दका उपयोग भी दो अर्थों में किया जाता है। संकीर्ण अर्थ में 'विशुद्धि' को 'आकारगत-सत्य' (Formal Truth) या 'आत्म-संगति' (Self-consistency) का समानार्थी समझा जाता है और इस दृष्टिकोण से यदि 'विचार' आत्मसंगत हो तो वह विशुद्ध होता है। विस्तीर्ण अर्थ में 'विशुद्धि' का अर्थ केवल आकारगत सत्य ही नहीं, अपितु वस्तुगत-सत्य (Material

विचार।

विशुद्धि :
आकारगत
तथा वस्तुगत।

Truth) भी है, अर्थात् 'विचारो' बाह्य-जगत् की वस्तुओं से सगति भी है। अतः 'विचार' के विशुद्ध होने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें केवल आत्मविरोध (Self-contradiction) का अभाव होना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् वह वास्तविक वस्तुओं के अनुरूप भी होना चाहिए। तर्कशास्त्रियों में इस बातमें बड़ा मतभेद है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल 'विचार' के आकारगत सत्य (Formal Truth) से ही है अथवा वस्तुगत सत्य (Material Truth) से भी। आकारगत-तर्कशास्त्री, (Formal Logicians) यथा हैमिल्टन (Hamilton) मैन्सल (Mansel) आदि का कहना है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल 'विचार' के आकारगत नियमों का अध्ययन करना है। अतः वे तर्कशास्त्र को केवल 'आकारगत-तर्कशास्त्र' के रूप में मानते हैं। परन्तु वस्तुगत (Material) तर्कशास्त्रियों का कहना है कि ऐसा करने से तर्कशास्त्र का क्षेत्र बड़ा सकुचित हो जाता है। 'सत्य' मूलतः एक ही होता है ; 'आकारगत सत्य' तथा 'वस्तुगत-सत्य' 'सत्य' के दो प्रकार नहीं हैं, परन्तु एक ही 'सत्य' के दो पहलू हैं। सुविधा के लिये ही उनका अध्ययन पृथक्-पृथक् किया जाता है और पृथक्-पृथक् अध्ययन किए गए तथ्यों को एक ही पद्धति के अवयव समझना चाहिए क्योंकि 'सत्य' वास्तव में एक ही होता है।

सारांश १

सारांश यह कि तर्कशास्त्र ज्ञान की सुसम्बद्ध राशि है जिसमें उन क्रियाओं एवं परिणामों का अध्ययन किया जाता है जिनके द्वारा विशुद्ध विचारों का नियंत्रण होता है ; और उसमें उन नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, जिनके पालन करने से 'विचार' विशुद्ध हो पाता है। उसका पाठ्य-विषय आकारगत-सत्य ही नहीं अपितु वस्तुगत-सत्य भी है।

टिप्पणी १ : आकारगत (Formal) एव वस्तुगत (Material) तर्कशास्त्र

आकारगत एव वस्तुगत सत्य के अनुरूप ही तर्कशास्त्रियों ने तर्कशास्त्र के दो विभाग किये हैं, यथा आकारगत तर्कशास्त्र (Formal Logic) और वस्तुगत तर्कशास्त्र (Material Logic) ।

आकारगत तर्कशास्त्र का उद्देश्य केवल आकारगत सत्य (Formal Truth) है। उसका सम्बन्ध 'विचार' के आकारों अर्थात् 'विचार-प्रक्रिया' से है। वह उन पदार्थों पर ध्यान नहीं देता, जिनके बारे में हम विचार करते हैं। आकारगत तर्कशास्त्र में हम आश्रयों (premises) के सत्य पर सन्देह नहीं करते—हम इस बात को सिद्ध मान लेते हैं कि वे सत्य हैं और हम केवल इस बात का निरीक्षण करते हैं कि उनसे निष्कर्ष विशुद्धतापूर्वक निकलता है अथवा नहीं : आकारगत तर्कशास्त्र को 'शुद्धतर्कशास्त्र' (Pure Logic) अथवा 'संगति का तर्कशास्त्र' (Logic of Consistency) कहते हैं।

आकारगत तर्कशास्त्र का सम्बन्ध आत्म संगति से है, तथा

वस्तुगत तर्कशास्त्र का उद्देश्य केवल आकारगत सत्य ही नहीं, वरन् 'वास्तविक सत्य' भी है। वास्तविक तर्कशास्त्र इस बात का अध्ययन करता है कि हमारे विचार के विषय विश्व की वास्तविक वस्तुओं के अनुरूप हैं अथवा नहीं। वस्तुगत तर्कशास्त्र को 'प्रयोगात्मक तर्कशास्त्र' (Applied Logic) भी कहते हैं।

वस्तुगत तर्कशास्त्र का सम्बन्ध वाह्य-संगति से है।

आकारगत एव वस्तुगत तर्कशास्त्री (Formal and Material Logicians) .—तर्कशास्त्रियों में इन प्रश्न पर बड़ा मतभेद है कि क्या तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय वास्तविक सत्य (Material Truth) भी है। आकारगत तर्कशास्त्री, यथा—हैमिल्टन (Hamilton), मैन्सल (Mansel) और टॉमसन

तर्कशास्त्रियों के दो वर्ग :

(Thomson) का कहना है कि तर्कशास्त्र का विषय केवल 'विचार' का आकार (Form) है, 'विचार' की विषयवस्तु (Matter) नहीं। हैमिल्टन के अनुसार, "तर्कशास्त्र विचार के आकारगत नियमों (Formal Laws) का विज्ञान है। अतः आकारगत तर्कशास्त्रियों के अनुसार "तर्कशास्त्र सत्य का नहीं, अपितु संगति (Consistency) का विज्ञान है।" इस कथन में 'सत्य' से तात्पर्य 'वस्तुगत सत्य' (Material Truth) से है, तथा 'संगति' से तात्पर्य आत्मसंगति (Self consistency) अथवा आकारगत-सत्य (Formal Truth) से है। अतः इस कथन के अनुसार तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय केवल आकारगत-सत्य है, वस्तुगत-सत्य नहीं। यही बात इस कथन से स्पष्ट होती है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध 'विचार' के 'विस्तार' (amplification) से न होकर केवल 'विचार' की व्याख्या (explication) से है। व्याख्या स्पष्टीकरण की क्रिया है, अतः वह आकारगत तर्कशास्त्र का काम है, और 'विस्तार' वस्तुगत तर्कशास्त्र का विषय है।

आकारगत
तर्कशास्त्री
तर्कशास्त्र का
बड़ा संकीर्ण
क्षेत्र मानते
हैं।

शुद्ध दृष्टिकोण यह है कि तर्कशास्त्र का विषय आकारगत सत्य एवं वस्तुगत सत्य दोनों ही है। अतः तर्कशास्त्र आकारगत भी हो सकता है और वस्तुगत भी। तर्कशास्त्र को केवल आकारगत समझना बहुत सकुचित दृष्टिकोण है और वह इस त्रुटिपूर्ण धारणा पर आधारित है कि 'विचार' के 'आकार' को उसकी 'विषयवस्तु' से विल्कुल पृथक् किया जा सकता है। आकारगत तर्कशास्त्र एवं वस्तुगत तर्कशास्त्र को पृथक्-पृथक् नहीं रखा जा सकता; वे एक ही विज्ञान के दो विभिन्न पहलू हैं। केवल सुविधा के कारण उनका अध्ययन पृथक्-पृथक् होता है। 'सत्य' अनिवार्यतः एक है, अतः भिन्न-भिन्न बातें पृथक्-पृथक् अध्ययन किए जाने पर भी एक सम्पूर्ण तथ्य के अनिवार्य अवयव समझे जाने चाहिए।

निगमन (Deductive) तथा उद्गमन (Inductive) तर्कशास्त्र प्रायः यह प्रश्न उठता है कि आकारगत एवं वस्तुगत तर्कशास्त्र के पारस्परिक अन्तर का निगमन (Deductive Logic) और उद्गमन (Inductive Logic) के पारस्परिक अन्तर से क्या सम्बन्ध है? कभी-कभी एक ओर तो आकारगत तथा निगमन-मूलक तर्कशास्त्र को और दूसरी ओर वस्तुगत तथा उद्गमन-मूलक तर्कशास्त्र को समानार्थी समझा जाता है। प्रायः निगमन तथा उद्गमन तर्क-पद्धति के दो प्रधान रूप माने जाते हैं, अतः वे क्रमशः आकारगत तथा वस्तुगत तर्कशास्त्र के समतुल्य हुए। परन्तु तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल तर्क से ही नहीं है, प्रत्युत उसके अन्तर्गत कुछ गौण-प्रक्रियाये (Subsidiary Processes) भी आती हैं। अतः आकारगत तर्कशास्त्र में निगमनमूलक तर्क के अतिरिक्त कुछ गौण-प्रक्रियाओं—यथा, पदों (Terms) और तर्कवाक्यों (Propositions) का आकार, आकारगत-परिभाषा (Formal Definition), एवं विभाग (Division) की दशाये इत्यादि का भी समावेश होता है और वस्तुगत तर्कशास्त्र में उद्गमन-मूलक तर्क के अतिरिक्त कुछ गौण-प्रक्रियाये, यथा—परिभाषा (Definition), वर्गीकरण (Classification) नामकरण (Naming) आदि की वस्तुगत दशाये भी सम्मिलित हैं।

एक ओर निगमन तथा आकारगत तर्कशास्त्र को, और दूसरी ओर उद्गमन और वस्तुगत तर्कशास्त्र को समानार्थी समझा जाता है।

कभी-कभी निगमनमूलक एवं आगमन-मूलक तर्क-शास्त्र का सम्बन्ध केवल तर्क से ही समझा जाता है, अन्य गौण-प्रक्रियाओं से नहीं।

टिप्पणी २ : तर्कशास्त्र का क्षेत्र (Scope) .

तर्कशास्त्र के क्षेत्र से तात्पर्य उस पाठ्य-विषय से है, जिसका वह अध्ययन करता है—जिन तक यह विज्ञान अपनी ग्लोब सीमित रखता है। प्रत्येक विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र सीमित होना है और किसी विज्ञान की परिभाषा करते समय हम इन बातों का निगमन करते हैं कि उसके अध्ययन का क्षेत्र कितना और क्या है?

तर्कशास्त्र की परिभाषा विशुद्ध विचार के विधानात्मक नियमों

के विज्ञान के रूप में दी जा चुकी है। अतः तर्कशास्त्र की खोज और अध्ययन का विषय विशुद्ध विचार है। इसलिए 'विशुद्ध विचार' को तर्कशास्त्र का क्षेत्र कह सकते हैं।

'विचार' से तात्पर्य 'विचार-प्रक्रिया' एवं 'विचार-परिणाम' दोनों होता है। विचार-प्रक्रियाएँ निर्धारण (Conception), निर्णय-क्रिया (Judgment) एवं तर्क-पद्धति (Reasoning) हैं और 'विचार' का परिणाम एक धारणा (a concept), एक निर्णय तथा एक तर्क होता है। तर्कशास्त्र पाठ्यविषय में विचार की प्रक्रियाएँ तथा परिणाम दोनों होते हैं, अतः उसके क्षेत्र में वे सब सम्मिलित हैं।

'सत्य' (Truth) भी आकारगत अथवा वस्तुगत हो सकता है और तर्कशास्त्र का सम्बन्ध दोनों प्रकार के सत्य से है। आकारगत तर्कशास्त्र सब प्रकार के निगमन-मूलक-तर्क एवं आकारगत-परिभाषा, विभाग के नियम तथा तर्क-वाक्यों के तार्किक-स्वरूप आदि का अध्ययन करता है। वस्तुगत-तर्कशास्त्र में सब उद्गमन-मूलक तर्क एवं विभाग, वर्गीकरण और नामकरण की वस्तुगत दशाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः ये समस्त विषय तर्कशास्त्र के क्षेत्र में आते हैं।

§ ११ तर्कशास्त्र का वैज्ञानिक एवं कलात्मक स्वरूप

तर्कशास्त्र
विज्ञान है
या कला?

इस प्रश्न के साथ काफी विवाद रहा है कि तर्कशास्त्र को केवल 'विज्ञान' ही समझा जाय अथवा केवल 'कला' ही अथवा 'विज्ञान' तथा 'कला' दोनों ही। 'पोर्ट-रायल लाजिक' ('Port Royal Logic') के लेखकों, एल्ड्रिच, (Aldrich) आदिक ने उसे केवल 'कला' माना है। मैन्सल (Mansel) और टॉमसन (Thomson) ने तर्कशास्त्र को 'कला' (Art) मानने में आपत्ति की है, वे उसको विज्ञान कहते हैं। व्हेटली (Whately) इन दोनों दृष्टिकोणों को सम्मिलित कर लेता है। मिल (Mill) भी उसके इस कथन से सहमत है कि तर्कशास्त्र 'विज्ञान' और 'कला' दोनों है।

यही शुद्ध दृष्टिकोण प्रतीत होता है कि तर्कशास्त्र विज्ञान

तथा कला दोनों हैं। 'विज्ञान' कुछ निश्चित तथ्य-समूहों को नियंत्रित करनेवाले नियमों का अध्ययन करता है और 'कला' किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नियम प्रस्तुत करती है। 'विज्ञान' हमें 'जानना' और कला 'करना' सिखलाती है। तर्कशास्त्र 'विशुद्ध विचार' के सिद्धान्तों को बतलाने के कारण 'विज्ञान' है। परन्तु वह 'विशुद्धि-प्राप्ति एवं अशुद्धि-निवारण के नियम प्रस्तुत करने के कारण कला' भी है। अतः तर्कशास्त्र के सैद्धान्तिक (theoretical) एवं व्यावहारिक (practical) दोनों पक्ष हैं। तर्कशास्त्र के विशुद्ध विचार के नियम प्रस्तुत करने से ही असत्य और त्रुटिपूर्ण तर्क के निवारण के नियम भी प्रस्तुत हो जाते हैं। अतः तर्कशास्त्र को क्रियामूलक-विज्ञान (Practical Science) भी कहते हैं; अर्थात् वह विशुद्ध विचार के सामान्य नियमों का सुसंयत अध्ययन करता है ताकि सत्य-प्राप्ति के लिए उनका व्यवहार किया जा सके।

तर्कशास्त्र को "विज्ञानों का विज्ञान" (Scientia Scientiarum) और 'कलाओं की कला' (Ars Artium) भी कहा गया है। विभिन्न विज्ञान तो प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करते हैं, परन्तु तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय 'विचार' के व्यापक नियमों का अध्ययन है, जिनकी आवश्यकता प्रत्येक विज्ञान के अध्ययन में पड़ती है। प्रत्येक विज्ञान को युक्तियुक्त होना पड़ता है, अर्थात् उसे तर्कशास्त्र में वर्णित विशुद्ध विचार के नियमों का पालन करना पड़ता है, अर्थात् सारांश में यह कह सकते हैं कि प्रत्येक विज्ञान में कुछ बातें समान होती हैं और तर्कशास्त्र का कार्य सभी विज्ञानों के समान आधार का अध्ययन करना होता है। इसी प्रकार, 'तर्कशास्त्र' को 'कलाओं की कला' कह सकते हैं, क्योंकि विभिन्न कलाएँ तो अपने-अपने क्षेत्र में ही विशुद्धि-प्राप्ति के नियमों का अध्ययन करती हैं, परन्तु उनको उन नियमों का पालन

तर्कशास्त्र
विज्ञान तथा
कला दोनों हैं
—उन्के
सैद्धान्तिक
तथा व्यावहा-
रिक दोनों पक्ष
हैं।

तर्कशास्त्र
'विज्ञानों' का
विज्ञान तथा
'कलाओं' की
कला हैं।

भी करना पड़ता है जो सामान्य रूप से विगुद्धि-प्राप्ति के है। तर्कशास्त्र विगुद्ध-विचार की कला होने के कारण सभी कलाओं का निर्देशक है।

§ १२ तर्कशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएँ

एल्ड्रिच् ।

(१) एल्ड्रिच् (Aldrich) ने तर्कशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है :—“तर्कशास्त्र तर्क की कला” (the art of Reasoning) है।

व्हेटली ।

व्हेटली (Whately) ने इस परिभाषा में सशोधन करके तर्कशास्त्र को “तर्क की कला एवं विज्ञान” (the art and science of Reasoning) कहा है।

ये दोनों परिभाषाएँ बड़ी सकीर्ण हैं, और इन पर निम्नलिखित आक्षेप किये जाते हैं :—

(क) एल्ड्रिच् की परिभाषा कि “तर्कशास्त्र तर्क की कला है” इस बात की उपेक्षा करती है कि तर्कशास्त्र विज्ञान भी है। व्हेटली की परिभाषा में यह दोष नहीं है ; परन्तु ये दोनों परिभाषाएँ तर्कशास्त्र के केवल क्रियामूलक पक्ष को ही अङ्गीकार करती हैं।

(ख) इन दोनों परिभाषाओं में यह दोष भी है कि उनमें तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय केवल ‘तर्क’ ही माना है। यह सच है कि तर्कशास्त्र का मुख्य पाठ्यविषय तर्क ही है परन्तु कुछ ऐसे गौण-विषय भी हैं, जिन्हें तर्क के अन्तर्गत तो नहीं रक्खा जाता परन्तु जिनका अध्ययन तर्कशास्त्र में किया जाता है, यथा—परिभाषा, विभाग, वर्गीकरण आदि। इन विषयों से सम्बन्धित निश्चित नियम हैं, और उनकी विशुद्धि के लिए इन नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। अतः यह कहना कि तर्कशास्त्र का पाठ्य-विषय केवल तर्क है, उसकी परिभाषा को संकुचित करना है।

टॉमसन ।

(२) टॉमसन (Thomson) ने तर्कशास्त्र की परिभाषा “विचार के नियमों का विज्ञान” (the Science of

the Laws of Thought) कहकर दी है। इस परिभाषा पर निम्नलिखित आक्षेप हो सकते हैं :—

(क) तर्कशास्त्र विज्ञान ही नहीं, अपितु कला भी है, उसके सैद्धान्तिक रूप के साथ-साथ क्रियात्मक-रूप भी है। वह हमें केवल यह नहीं बतलाता कि 'विशुद्ध विचार' क्या है, अपितु यह भी बतलाता है कि 'विशुद्ध-विचार' किस प्रकार प्राप्त होता है। उपर्युक्त परिभाषा तर्कशास्त्र के क्रियात्मक-पक्ष की पूर्णरूप से उपेक्षा करती है।

(ख) 'विचार' शब्द बड़ा सन्दिग्ध होता है। व्यापक अर्थ में 'विचार' शब्द ज्ञान का समानार्थी माना जाता है। अतः उसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष, स्मृति एवं कल्पना तथा सूक्ष्म व व्यापक विचार भी आ जाता है। तर्कशास्त्र में 'विचार' शब्द का उपयोग सकुचित अर्थ में किया जाता है और उससे तात्पर्य केवल सूक्ष्म (abstract) और व्यापक (general) विचार होता है।

(ग) इस परिभाषा पर सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध विचारों के वास्तविक रूप से है। परन्तु तर्कशास्त्र वर्णनमूलक (Positive) नहीं, बरन आदर्शमूलक (Normative) विज्ञान है। तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय सब प्रकार का विचार नहीं, अपितु केवल 'विशुद्ध-विचार' है। 'विचार' के वास्तविक-रूप का विवेचन तो मनोविज्ञान का विषय है ; तर्कशास्त्र में तो केवल 'विचार' के आदर्श रूप का ही अध्ययन किया जाता है।

(३) हैमिल्टन (Hamilton) ने तर्कशास्त्र को विचार हेमिल्टन ।
के आकारगत नियमों का विज्ञान' (Science of the Formal Laws of Thought) कहा है।

इस परिभाषा में निम्नलिखित त्रुटियाँ हैं —

(क) यह तर्कशास्त्र के केवल सैद्धान्तिक रूप पर ही बल देती है, परन्तु तर्कशास्त्र केवल विज्ञान ही नहीं, बरन कला भी है।

(ख) 'विचार' शब्द बड़ा सन्दिग्ध है। तर्कशास्त्र का विषय केवल सूक्ष्म और व्यापक विचार है, परन्तु 'विचार' शब्द कभी व्यापक अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। [देखिए § २ (ग)]

(ग) टॉमसन (Thomson) द्वारा वर्णित परिभाषा में

जो त्रुटियाँ हैं, वे इसमें भी हैं। साथ ही इसमें सबसे बड़ा दोष यह है कि यह तर्कशास्त्र के क्षेत्र को केवल आकारगत सत्य (Formal Truth) तक ही सीमित कर देती है। परन्तु तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल आकारगत-सत्य खोजनेवाले विचारके आकारगत नियमों से ही नहीं है, वरन् उन अन्य नियमों से भी है जो वस्तुगत-सत्य (Material Truth) की खोज करते हैं। यह परिभाषा तर्कशास्त्र को आकारगत-तर्कशास्त्र-मात्र का रूप देती है, तथा इसमें वस्तुगत-तर्कशास्त्र को कोई स्थान नहीं मिलता।

आर्नॉल्ड ।

(४) आर्नॉल्ड (Arnauld) ने तर्कशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है : “तर्कशास्त्र बुद्धि का विचार करनेवाला विज्ञान है, जिससे सत्य की प्राप्ति की जाती है।” (“Logic is the Science of the understanding in the pursuit of Truth”).

इस परिभाषा में निम्नांकित दोष हैं :—

(क) यह तर्कशास्त्र के क्रियात्मक-रूप की उपेक्षा करती है; एवं उसके सैद्धान्तिक रूप को ही स्वीकार करती है।

(ख) ‘सत्य’ शब्द बड़ा सन्दिग्ध है। इस परिभाषा से यह स्पष्टतया ज्ञात नहीं हो पाता कि तर्कशास्त्र का उद्देश्य आकारगत एवं वस्तुगत सत्य दोनों हैं।

(ग) इस परिभाषा में सबसे बड़ा दोष यह है कि इससे यह पता नहीं चलता कि तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल बुद्धि-विषयक विचार से ही नहीं अपितु अन्य प्रक्रियायों—यथा, परिभाषा, विभाग, वर्गीकरण आदि से भी है।

मिल ।

(५) मिल (Mill) ने तर्कशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है :—

“तर्कशास्त्र वह विज्ञान है, जो बुद्धि के सब कार्यों का समुचित रीतिसे साक्षी के मूल्यांकन के अनुसार विचार करता है तथा उन सब प्रक्रियाओं का, जिनके द्वारा हम ज्ञात से अज्ञात का ज्ञान करते हैं तथा अन्य बौद्धिक-क्रियाओं का, जो इसमें सहायक होती हैं, विवेचन करता है।”

("Logic is the Science of operation of understanding which are subservient to the estimation of evidence ; both the Process itself of advancing from known truths to unknown and all other intellectual operations in so far as auxiliary to this").

इस परिभाषा का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है .

(क) तर्कशास्त्र केवल विज्ञान ही नहीं है, परन्तु उसका सबब 'साक्षी का मूल्यांकन' से भी है। साक्षी के मूल्यांकन से यह तात्पर्य है कि तर्कशास्त्र का कार्य उन आश्रयों की जाँच करना भी है, जिनसे कि निष्कर्ष निकाला गया है, ताकि उसकी विशुद्धता का पता लग जाय। अतः इस परिभाषा में तर्कशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक दोनों पक्ष निहित हैं।

(ख) तर्कशास्त्र केवल बुद्धि के कार्यों में ही सीमित नहीं है किन्तु अन्य प्रक्रियाओं का भी वर्णन करता है, जो तर्क करने में सहायक होती हैं। अर्थात् यह परिभाषा, वर्गीकरण, नामकरण आदि अन्य प्रक्रियाओं का भी समुचित विचार करता है।

§ १३ तर्कशास्त्र की उपयोगिता (Utility)

तर्कशास्त्र के अध्ययन पर आपत्तियाँ - तर्कशास्त्र के अध्ययन की उपयोगिता के सम्बन्ध में प्रायः सन्देह किया जाता है। यह कहा जाता है कि तर्कशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ है, क्योंकि (१) तर्कशास्त्र न तो हमें तर्क करना सिखलाता है, और (२) न तर्कशास्त्र के अध्ययन से हमारी तर्क-पद्धति सर्वदा दोषरहित हो पाती है।

तर्कशास्त्र के अध्ययन पर आपत्तियाँ :

(१) इस आपत्ति के सम्बन्ध में कि तर्कशास्त्र हमें तर्क करना नहीं सिखलाता, यह उत्तर दिया जा सकता है कि यह तो तर्कशास्त्र

(१) तर्क-
शास्त्र हमें
तर्क करना
नहीं
सिखाता।

का उद्देश्य ही नहीं है। तर्कशास्त्र का कार्य हमें तर्क पद्धति की शिक्षा देना नहीं है। हम तर्क करना अथवा विचार करना उसी प्रकार सीखते हैं, जिस प्रकार हम अपनी प्राकृतिक गक्तियों के बल पर चलना और बोलना सीखते हैं। तर्कशास्त्र हमें तर्क करना नहीं अपितु विशुद्धतापूर्वक तर्क करना सिखलाता है। ठीक उस प्रकार जैसे सेना में नए भर्ती हुए सैनिक को चलना नहीं अपितु 'मार्च करना' अर्थात् नपे-तुले कदमों से, उचित प्रकार से, चलना सिखलाया जाता है। तर्कशास्त्र का कार्य अपने ही तर्क की अशुद्धियों का निवारण एवं अन्य व्यक्तियों के विचारों और तर्कपद्धतिके दोषों की पकड़ करना है।

(२) तर्क-
शास्त्र के
अध्ययन से
हमारे तर्क
सदा शुद्ध
नहीं हो
सकते।

(२) दूसरी आपत्ति यह है जबकि एक ओर वे व्यक्ति हैं, जिन्होंने कभी तर्कशास्त्र का अध्ययन नहीं किया, वे प्रायः शुद्ध तर्क कर लेते हैं; दूसरी ओर, तर्कशास्त्र के पण्डित भी कभी-कभी तर्क-सम्बन्धी अशुद्धियाँ कर बैठते हैं। क्या ऐसे व्यक्ति नहीं हैं, जिन्होंने कभी तर्कशास्त्र का अध्ययन नहीं किया, परन्तु जो शुद्ध तर्क कर लेते हैं और क्या ऐसे व्यक्तियों का अभाव है जो तर्क-शास्त्र के विषय को जानते हुए भी तर्क-सम्बन्धी अशुद्धियाँ कर बैठते हैं? साधारण दृष्टि में यह आपत्ति युक्ति-सगत प्रतीत होती है। परन्तु वह वास्तव में साधारण-ज्ञान और वैज्ञानिक-ज्ञान के अन्तर को न समझ सकने के कारण ही उपस्थित होती है। तर्कशास्त्र तर्क-पद्धति का विज्ञान है। वैज्ञानिक-तर्क और साधारण-तर्क में प्रकार का भेद नहीं है। इन दोनों में केवल यह अन्तर है कि वैज्ञानिक-ज्ञान साधारण-ज्ञान की अपेक्षा अधिक सयत एवं निश्चित होता है, अतः यह आवश्यक नहीं कि साधारण-तर्क सर्वदा दोषपूर्ण हो। तर्कशास्त्र विशुद्ध तर्क के सिद्धान्तों का अध्ययन करता है। साधारण व्यक्ति, न जानते हुए भी, उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार तर्क कर लेता है। तर्कशास्त्र के अध्ययन से उन नियमों का प्रयोग

तर्कशास्त्र के
अध्ययन से
ही शुद्ध तर्क
संभव है।

अधिक संयत एवं स्पष्ट रीति से किया जा सकता है। यह कहना कि मनुष्य तर्कशास्त्र के ज्ञान के बिना ही शुद्ध तर्क कर लेता है, प्रायः उतना ही सत्य है, जितना यह कहना कि वह औषधि-विज्ञान के ज्ञान के बिना भी स्वस्थ रह सकता है। यह सच है, परन्तु इसका अर्थ यह है कि मनुष्य तब तक आरोग्य रह सकता है जब तक कि वह स्वस्थ हो ; परन्तु ज्यों ही वह रोगग्रस्त हो जाता है, तो उसे औषधि-विज्ञान में दक्ष व्यक्ति की सहायता लेनी ही पड़ती है। इसी प्रकार, जब तक मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा शुद्धतापूर्वक तर्क कर पाता है, तब तक उसे तर्कशास्त्र की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु ज्यों ही उसके तर्क में अशुद्धि अथवा सन्देह उत्पन्न हो जाता है, तो उस अशुद्धि का कारण जानने के लिए तथा शुद्ध तर्क की प्राप्ति के लिए तर्कशास्त्र का ज्ञान अनिवार्य हो जाता है।

तर्कशास्त्र के उपयोग निम्नलिखित हैं —

उपयोग :

(क) तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करता है, जिसका पालन करने से सत्य की प्राप्ति होती है एवं दोषों की पकड़ एवं उनका निवारण हो पाता है। निःसन्देह कोई योग्य व्यक्ति अपनी सामान्य-बुद्धि के उपयोग से ही, और तर्कशास्त्र के विशेष अध्ययन के बिना ही शुद्ध तर्क करने में सफल हो जाता है और वह यह भी बतला सकता है कि अमुक युक्ति अशुद्ध अथवा दोषपूर्ण है, परन्तु तर्कशास्त्र का ज्ञान ही हमें बतला सकता है वह अशुद्ध युक्ति क्यों दोषपूर्ण है और उस दोष अथवा आभास (fallacy) का क्या नाम है ?

तर्कशास्त्र विशुद्ध तर्क के सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।

(ख) तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान है। विभिन्न विज्ञान वह 'विज्ञानों विश्व के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करते हैं, और तर्कशास्त्र का विज्ञान' का इन विज्ञानों के विशेष विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु है। तर्कशास्त्र उन सामान्य-नियमों का अध्ययन करता है, जिनका पालन

करना प्रत्येक विज्ञान के लिए आवश्यक है, जिससे उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान विगुद्ध हो सके। तर्कशास्त्र विगुद्ध विचार के जिन सामान्य नियमों को प्रस्तुत करता है, उनका पालन प्रत्येक विज्ञान को करना पड़ता है।

ज्ञानसिक-
क्रीड़ा।

(ग) तर्कशास्त्र का मुख्य उपयोग यह है कि वह प्रधानतः ज्ञानसिक-अनुशासन (mental discipline) और बौद्धिक क्रीड़ा (intellectual gymnastic) है। तर्कशास्त्र का अध्ययन सूक्ष्म-विचार करने का अभ्यास डालता है तथा हमारी तर्क-शक्ति का विकास करता है। मनुष्य अन्य निम्न जन्तुओं से इस बात में भिन्न है कि उसमें सचेतन बुद्धि होती है, और उसमें धारणाओं अथवा सामान्यभावों के द्वारा विचार कर सकने की शक्ति होती है। तर्कशास्त्र इस प्रकार की तर्क-शक्तियों का समुचित-अभ्यास प्रदान करने में बड़ा उपयोगी है। तर्कशास्त्र के अध्ययन से जिस मनुष्य का मस्तिष्क शुद्ध तर्क करने में दीक्षित हो जायगा, तो वह ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में उससे लाभ उठायेगा।

§ १४ तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान
ज्ञान, संवेदन
तथा संकल्प
का विज्ञान
है।

मनोविज्ञान (Psychology) से तात्पर्य उस विज्ञान से है जो मन तथा उसकी प्रक्रियाओं का सम्यक्-रूप से अध्ययन करता है। मन की मुख्य प्रक्रियाएँ तीन हैं, यथा—ज्ञान (Knowing), संवेदन (Feeling) तथा संकल्प (Willing) एक उदहरण देखिए। एक परीक्षार्थी उत्तीर्ण छात्रों की सूची में अपना नाम देखता है—उसे ज्ञान होता है कि वह उत्तीर्ण हुआ है, तब उसके मनमें आनन्द की लहर दौड़ जाती है—उसे आनन्द की संवेदना होती है। इसके उपरांत वह संकल्प करता है कि आगामी परीक्षा के लिए भी वह पढ़ता रहेगा।

इस प्रकार ज्ञान, संवेदन और संकल्प मनोविज्ञान के पाठ्य-विषय हैं।

ज्ञान या तो परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष होता है। हमें किसी व्यक्ति तथा मूर्तपदार्थ अथवा सामान्य तथा सूक्ष्म वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। तर्कशास्त्र का सम्बन्ध केवल सामान्य तथा सूक्ष्म ज्ञान से होता है, जिसे संकीर्ण अर्थ में, 'विचार' का समानार्थी माना जाता है। इस प्रकार, मनोविज्ञान तो सब प्रकार के ज्ञानका अध्ययन करता है—चाहे वह प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, विशिष्ट हो अथवा सामान्य, मूर्त हो अथवा सूक्ष्म। तर्कशास्त्र का विषय केवल परोक्ष, सामान्य और सूक्ष्म ज्ञान ही है। इस दृष्टिकोण से तर्कशास्त्र का क्षेत्र मनोविज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा अधिक संकीर्ण है; क्योंकि मनोविज्ञान सब प्रकार के ज्ञान का अध्ययन करता है, जबकि तर्कशास्त्र केवल परोक्ष, सामान्य और सूक्ष्म ज्ञान का अध्ययन करता है।

एक अन्य दृष्टिकोण से भी तर्कशास्त्र मनोविज्ञान से संकीर्ण है। मनोविज्ञान का विषय केवल ज्ञान ही नहीं है, अपितु संवेदन और संकल्प भी है। हमें केवल वस्तुओं का ज्ञान ही नहीं होता, वरन् हमें सुख-दुःख आदि की अनुभूति भी होती है। इसके अतिरिक्त हमारे मन की कुछ दशाएँ ऐसी होती हैं जो कि बाह्य-क्रियाओं एवं संकल्प के रूप में स्पष्ट हो जाती हैं। इन दशाओं के समूह को 'निश्चय' (Forming a resolution) कहते हैं। मन की सबसे विकसित अवस्था यह ही है। हम किसी कार्य को करने का निश्चय करते हैं और मन का यह निश्चय कुछ क्रियाओं के रूप में व्यक्त हो जाता है। इस प्रकार, मनोविज्ञान तो ज्ञान के अतिरिक्त संवेदन (Feeling) और संकल्प (Willing) का भी अध्ययन करता है परन्तु तर्कशास्त्र का विषय संवेदन और संकल्प न होकर केवल ज्ञान ही

मनोविज्ञान में सब प्रकार के ज्ञान का अध्ययन होता है परन्तु तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय केवल सामान्य और सूक्ष्म ज्ञान है।

मनोविज्ञान ज्ञान, संवेदन तथा संकल्प का अध्ययन करता है, परन्तु तर्कशास्त्र केवल ज्ञान का अध्ययन करता है।

है। अतः तर्कशास्त्र का क्षेत्र मनोविज्ञान की अपेक्षा सकुचित है।

मनोविज्ञान वर्णनमूलक विज्ञान है, परन्तु तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है।

तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान में एक विशेष अन्तर और है। मनोविज्ञान वर्णनमूलक (Positive) और तर्कशास्त्र आदर्शमूलक (Normative) विज्ञान है। वर्णनमूलक विज्ञान वस्तुओं के उस रूप का अध्ययन करता है, जैसी कि वे हैं और आदर्शमूलक विज्ञान उनके उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि उनको होना चाहिए। मनोविज्ञान वर्णनमूलक विज्ञान है, क्योंकि वह विचार के उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि वह वास्तव में होता है—वह इस बात का अध्ययन करता है कि हम किस प्रकार विचार करते हैं, अतः उसमें सभी प्रकार के विचार आते हैं—शुद्ध भी और अशुद्ध भी। तर्कशास्त्र आदर्शमूलक विज्ञान है, क्योंकि उसका विषय वह विचार है, जैसा कि उसे होना चाहिए—वह इस बात का अध्ययन करता है कि हमें किस प्रकार विचार करना चाहिए। तर्कशास्त्र अपने समक्ष एक आदर्श रखता है, यथा—विशुद्धि अथवा सत्य का आदर्श और उन दशाओं की खोज करता है, जिनके पालन करने से हमारे विचार उस विशुद्धि के आदर्श के अनुरूप हो सकें, अर्थात् विशुद्ध हो सकें।

मनोविज्ञान का ज्ञान तर्कशास्त्र के अध्ययन में बड़ा उपयोगी है।

सारांश ।

यह बात ज्ञातव्य है कि यद्यपि तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु तर्कशास्त्र के अध्ययन में मनोविज्ञान का ज्ञान नितान्त उपयोगी है। यह स्पष्ट है कि इस बात का अध्ययन करने के लिए कि हमें किस प्रकार सोचना चाहिए, यह जानना आवश्यक है कि हम किस प्रकार सोचते हैं।

सारांश में, (१) मनोविज्ञान ज्ञान, संवेदन और सकल्प का अध्ययन करता है, परन्तु तर्कशास्त्र केवल ज्ञान का ही अध्ययन करता है।

(२) ज्ञान प्रत्यक्ष या परोक्ष, मूर्त या सूक्ष्म, विशिष्ट या

सामान्य हो सकता है। मनोविज्ञान ज्ञान के इन सभी प्रकारों का अध्ययन करता है ; परन्तु तर्कशास्त्र का विषय केवल परोक्ष, सूक्ष्म और सामान्य ज्ञान है।

(३) तर्कशास्त्र आदर्शमूलक और मनोविज्ञान वर्णनमूलक विज्ञान है।

§ १५ तर्कशास्त्र और दर्शन (तत्त्वज्ञान) (Metaphysics)

दर्शन या तत्त्वज्ञान (Metaphysics) ज्ञान की उस शाखा को कहते हैं, जो चरम सत्य का अध्ययन करे—अर्थात् वह ऐसे सत्य का अध्ययन करे जो वास्तवमें वैसा हो और सत्य की प्रतीति-मात्र न हो।

दर्शन और विज्ञान में अन्तर है। विज्ञान प्रकृति के किसी विशेष क्षेत्र अथवा सत्य से सम्बन्धित होता है। जो सत्य विज्ञान का विषय होता है, वह वास्तव में सत्य नहीं होता, प्रत्युत सत्य प्रतीत होता है। स्वार्थिका-सत्ता अथवा प्रतीति (Appearance) का अध्ययन करना ही विज्ञान का काम है, परन्तु इस प्रतीति के अन्तर्गत जो तथ्य छिपा रहता है अर्थात् जो चरमसत्य (Ultimate Reality) होता है, उसका अध्ययन वह नहीं करता। चरमसत्य को 'परमार्थिका-सत्ता' (Noumenon) कहते हैं। और इसका अध्ययन करना दर्शन का विषय है।

प्रत्येक विज्ञान कुछ स्वयं-सिद्धियों को मान लेता है। ये स्वयंसिद्धियाँ (assumptions) ही उस विज्ञान का आधार होती हैं। उदाहरण के लिए रसायन-विज्ञान (Chemistry) मूर्त पदार्थ का अध्ययन करता है। वह इस बात को स्वयंसिद्ध मान लेता है कि पदार्थ (Matter) सत् है; और इसी आधार पर वह अपने क्षेत्र में खोज करता है। उसी प्रकार अन्य विज्ञान भी कुछ स्वयंसिद्धियों पर आधारित हैं।

दर्शन या तत्त्वज्ञान (Metaphysics), जो चरम-सत्य (Ultimate Truth) का अध्ययन करता है, उन स्वयंसिद्ध मूल-सिद्धांतों की जांच करता है। विभिन्न विज्ञान इन स्वयंसिद्धियों को मान लेते हैं और दर्शन उनके सत्य की जांच

दर्शन चरम सत्य का अध्ययन करता है और विज्ञान का विषय 'प्रतीति' है।

दर्शन प्रत्येक विज्ञान की स्वयंसिद्धियों का अध्ययन करता है।

करता है। रसायन-विज्ञान पदार्थ की सत्ता को सिद्ध मान लेता है, परन्तु दर्शन इस प्रश्न के बारे में विचार करता है कि क्या वह स्वयसिद्धि सत्य भी है ; क्या पदार्थ वास्तव में सत् है ? अतः दर्शन का पाठ्यविषय विभिन्न विज्ञानों के आधारों के सत्य की जाँच करना है।

अतः वह तर्कशास्त्र एक विज्ञान है ; उसके अध्ययन का विषय 'विशुद्ध तर्कशास्त्र के विचार' है। तर्कशास्त्र उन सिद्धान्तों का अध्ययन करता है, मूल सिद्धान्तों जो कि विशुद्ध-विचार को नियंत्रित करते हैं। उनका पालन करने की भी जाँच से ही विचार शुद्ध होते हैं और उनका उल्लंघन करने से दोष एवं करता है। त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

'विज्ञान' होने के कारण, तर्कशास्त्र में कुछ नियमों को स्वयसिद्ध मान लिया जाता है, यथा—तादात्म्य-नियम (Law of Identity), विरोध-वाचक नियम (Law of Contradiction), निर्मध्यम-नियम (Law of Excluded Middle) पर्याप्त-हेतु-नियम (Law of Sufficient Reason), प्रकृति की एकरूपता का नियम (Law of Uniformity of Nature) आदि। तर्कशास्त्र 'सिद्धि का विज्ञान' (Science of Proof) है, परन्तु वह इन मूल-सिद्धान्तों को स्वयसिद्ध मान लेता है। दर्शन या तत्त्वज्ञान इस बात की जाँच करता है कि ये मूल-सिद्धांत, जिन पर सारा तर्कशास्त्र आधारित है, वास्तव में सत्य भी हैं, अथवा नहीं। इस प्रकार दर्शन और तर्कशास्त्र का वही सम्बन्ध है, जो दर्शन तथा अन्य विज्ञानों का है।

एक अन्य दृष्टिकोण से तर्कशास्त्र दर्शन के लिये उतना ही उपयोगी है, जितना कि अन्य विज्ञानों के लिए। तर्कशास्त्र विशुद्ध विचार का विज्ञान है। दर्शन में भी विशेष-विज्ञान की भाँति विचार अथवा मनन एवं तर्क होता है। दर्शन की तर्क-पद्धति तार्किक होनी चाहिए अर्थात् तर्कशास्त्र के द्वारा वर्णित विशुद्ध-विचार के नियमों के अनुरूप होनी चाहिए।

सारांश : दर्शन उन मूल स्वयसिद्धियों का अध्ययन करता है, जो कि तर्कशास्त्र की आधारभूत हैं, परन्तु तर्कशास्त्र, 'विशुद्ध-विचार' का विज्ञान होने के कारण दर्शन के क्षेत्र में भी पहुँच जाता है क्योंकि दर्शन के तर्क एवं युक्तियाँ भी विशुद्ध होनी चाहिए अर्थात् उन्हें तार्किक-सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिए।

प्रश्नमाला १

(१) 'ज्ञान' के स्वरूप की व्याख्या कीजिये तथा उसके विभिन्न स्वरूपों एवं साधनों का वर्णन कीजिये। क्या सब प्रकार का ज्ञान तर्कशास्त्र के क्षेत्र में आ जाता है ?

(२) 'ज्ञान' (Knowledge) किसे कहते हैं ? उसके विभिन्न स्वरूपों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। इनमें से किस स्वरूप का तर्कशास्त्र से सम्बन्ध है और क्यों ? (उ० प्र० १९५२)।

(३) 'ज्ञान' के साधन 'प्रत्यक्ष' (Perception), 'अनुमान' (Inference) और 'शब्द' (Authority) कहे जाते हैं। इनमें से प्रत्येक का विवेचन कीजिये और उदाहरण-सहित उनका अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(४) प्रत्यक्ष (Immediate) और परोक्ष (Mediate) ज्ञान का अन्तर बतलाइए। इनमें से किस प्रकार का ज्ञान तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय होता है ?

(५) तर्कशास्त्र से आप क्या समझते हैं ? तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान और दर्शन का भेद बतलाइए ? (उ० प्र० १९५३)

(६) 'तर्कशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान है'—इस कथन की आलोचना कीजिए। (उ० प्र० १९५१)

(७) 'तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय विचार का 'आकार' है न कि उसकी विषयवस्तु।' इस परिभाषा की विवेचना कीजिए। (उ० प्र० १९५०)

(८) "तर्कशास्त्र 'विज्ञानों का विज्ञान' तथा 'कलाओं की कला' है।" इस परिभाषा की व्याख्या कीजिए। आपके विचार में निगमन-शास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ है ? (उ० प्र० १९४८)

(९) विचार के 'आकार' एवं 'विषय' से आप क्या समझते हैं ? तर्कशास्त्र का विचार की विषयवस्तु में किस प्रकार का सम्बन्ध है ? (उ० प्र० १९४७)

(१०) वर्णनमूलक और आदर्शमूलक विज्ञान में क्या अन्तर है ? तर्कशास्त्र को आप किस प्रकार का विज्ञान कहेंगे ? अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। (उ० प्र० १९४६)

(११) 'सत्य' किसे कहते हैं ? आकारगन तथा वस्तुगन

सत्य मे क्या अन्तर है? किस प्रकार का सत्य तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय है? (उ० प्र० १९३५)

(१२) यदि किसी दिन प्रातःकाल बाहर निकलकर आप यह देखे कि सड़के कीचड़ से भरी हुई है, तो आप तुरन्त विश्वास कर लेंगे कि रात्रि को वर्षा हुई थी। कारण सहित स्पष्ट कीजिए कि इस विषय मे आपका प्रत्यक्ष ज्ञान क्या है, तथा परोक्ष ज्ञान क्या है?

(१३) निम्नलिखित कथन का विवेचन कीजिए:—

‘तर्कशास्त्र सत्य का नहीं, अपितु सगति का विज्ञान है।’

(उ० प्र० १९३२, पटना १९३८; पञाव १९२४)

(१४) तार्किक धारणा के स्वरूप का वर्णन कीजिए। धारणाओं का निर्माण किस प्रकार से होता है? वे किस प्रकार मस्तिष्क मे ग्रहण की जाती हैं और किस प्रकार दूसरों के मस्तिष्क तक पहुँचाई जाती हैं?

(१५) तर्कशास्त्र की निम्नलिखित विचार धाराओं की व्याख्या कीजिए: वस्तुवाद, धारणावाद तथा नामवाद।

(१६) ‘विज्ञान’ और ‘कला’ किसे कहते हैं? उदाहरण सहित समझाइए। आपके विचार मे तर्कशास्त्र विज्ञान है, अथवा कला है, अथवा दोनों ही हैं?

(१७) क्या आपके विचार मे तर्कशास्त्र का अध्ययन उपयोगी है, जबकि वे लोग भी, जिन्होंने कभी इस विषय का अध्ययन नहीं किया, बुद्धतापूर्वक तर्क कर लेते हैं? कारण सहित समझाइए।

EXERCISE 1.

1. Determine the character of Knowledge indicating its different forms and sources. Does all Knowledge come within the province of Logic?

2. What is Knowledge? State, explain and illustrate its different forms. With which of these forms is Logic concerned? [U. P. 1952].

3. The sources of Knowledge are said to be Perception, Inference and Authority; explain clearly the nature of each showing the difference between them by means of examples.

4. Distinguish between Immediate and Mediate Knowledge. Which of them constitutes the subject-matter of Logic ?

5. What is Logic ? Distinguish between Logic, Psychology and Philosophy [U. P. 1958].

6. "Logic is the Science of Sciences". Discuss this critically [U. P. 1951].

7. 'Logic deals with the Form and not the Matter of thought' Discuss and point out in the course of your answer, the proper relationship between Form and Matter of Thought. [U. P. 1950].

8. Examine the definition of Logic as "the Science of Sciences and Art of Arts." What in your opinion is the value of learning Deductive Logic ? [U. P. 1948].

9. What do you understand by (a) the Form and (b) the Matter of thought ? In what sense, if any, is Logic concerned with the matter of thought ? [U. P. 1947].

10. Distinguish between Positive and Normative Science. Under which class will you put Logic ? Give reasons for your answer [U. P. 1946]

11. What is Truth ? Point out the difference between Formal and Material Truth. Which of these constitutes the subject-matter of Logic ? [U. P. 1935].

12. When you go out in the morning and find the roads in a muddy condition, you believe at once that there had been rain during the night. Explain what is immediate and what is mediate in your knowledge of the subject giving your reasons.

13. Discuss the Proposition that Logic is the Science not of Truth but of Consistency. [U. P. 1932, Patna 1938 ; Punjab 1924]

14. Explain the nature of the Logical Concept Explain how Concepts are formed and by what means they are retained in the mind and communicated to other minds

15. Explain Realism, Conceptualism and Nominalism as Schools of Logic.

16. What is Science ? What is Art ? Illustrate

your meanings by examples Do you consider Logic to be a Science or an Art or both ? State your reason fully.

17. Can you say that the study of Logic is useful when persons who have never studied it reason accurately ? Give reasons for your answer.

द्वितीय प्रकरण तर्कशास्त्र के मूल-नियम

§ १. मूल-नियमों का स्वरूप ।

§ २. तर्कशास्त्र के मूल-नियम ।

(१) तादात्म्य-नियम (The Law of Identity)

(२) विरोध-बाधक-नियम (The Law of Contradiction)

(३) निर्मध्यम-नियम (The Law of Excluded Middle)

टिप्पणी : विचार के तीनों नियमों का पारस्परिक संबंध

(४) पर्याप्त-हेतु-नियम (Law of Sufficient Reason—Leibnitz)

टिप्पणी . हैमिल्टन (Hamilton) की स्वयसिद्धि ।

प्रश्नमाला २ ।

§ १ मूल-नियमों का स्वरूप ।

नियम (Law or Principle) उस सामान्य-सत्य (general truth) के विवरण को कहते हैं, जो सर्वत्र लागू होता है। मूल-नियम (Fundamental Principle) उसे कहते हैं, जिसके प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, और न जिनका प्रमाण दिया ही जा सकता है। ये मूल-नियम स्वयं प्रमाण के विषय नहीं हैं, प्रत्युत सब प्रमाणों के आधार हैं। ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र कुछ मूल-नियमों पर आधारित है। तर्कशास्त्र विगुद्ध विचार से सम्बन्धित है। अतः तर्कशास्त्र के मूल-नियम ये नित्य हैं, जिन्हें वह बिना प्रमाण के मान लेता है, परन्तु जिनके अनुसार

मूल सिद्धान्त समस्त निश्चि के आधार हैं, परन्तु स्वयं सिद्ध नहीं किए जा सकते ।

हमारे समस्त विचार होने चाहिए, ताकि वे शुद्ध हो सकें। ये नियम वे आद्य-सत्य (Primary Truths) हैं, जिनके आधार पर समस्त विशुद्ध-विचार होता है, और जिनका उल्लंघन करने पर विचार करना ही असंभव हो जाएगा।

उन्हें स्वयं-
सिद्धियाँ भी
कहते हैं।

भिन्न-भिन्न न्यायशास्त्रियों ने इन नियमों को विभिन्न नाम दिए हैं। यूबरवेग (Ueberweg) ने इन नियमों को 'अनुमान की स्वयंसिद्धियाँ' (the Axioms of Inference) कहा है और मिल (Mill) ने इनको "समस्त तर्क के सार्वलौकिक सिद्धान्त" (Universal Postulates of all reasoning) माना है। इन नामों से यह स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र इन नियमों के सत्य को सिद्ध मान लेता है, उसे सिद्ध नहीं करता। जिस प्रकार मनुष्य की आँख सब कुछ देख लेती है, परन्तु अपने आपको नहीं देख पाती (दर्पण में आँख का प्रतिविम्ब वास्तविक आँख नहीं होता) इसी प्रकार तर्कशास्त्र के मूल-नियम प्रत्येक अन्य तथ्य को सिद्ध कर लेते हैं, परन्तु स्वयं को सिद्ध नहीं कर सकते। वे समस्त सिद्धि के आधार होते हुए भी स्वयं सिद्धि की पहुँच के परे हैं। उनका सत्य स्वयंसिद्ध मान लिया जाता है।

§ २ तर्कशास्त्र के मूल-नियम।

तर्कशास्त्र के मूल-नियमों की सख्या तथा उनके व्यक्त करने के ढंग के बारे में न्याय-शास्त्रियों में मतभेद रहा है। अरस्तू (Aristotle) ने तीन मूल-नियमों का वर्णन किया है, यथा—तादात्म्य-नियम (Law of Identity), विरोध-वाधक-नियम (Law of Contradiction) तथा निर्मध्यम-नियम (Law of Excluded Middle)। अर्वाचीन काल में दार्शनिक लेबनिट्स (Leibnitz) ने एक चौथा नियम और जोड़ दिया है, यथा—पर्याप्त-हेतु-नियम (Law of Sufficient Reason)।

(१) तादात्म्य-नियम (Law of Identity)

तादात्म्य-नियम (Law of Identity) का सबसे सरल रूप यह हो सकता है: “‘क’, ‘क’ है।” अथवा “जो कुछ है, वह है।” इसका अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है ; यथा—

‘प्रत्येक वस्तु अपने बराबर है।’
 ‘प्रत्येक वस्तु का अपना निज स्वभाव होता है।’
 ‘प्रत्येक वस्तु अपने से अनन्य है।’
 ‘सत्य सर्वदा आत्मानुरूप होता है।’

‘क’ ‘क’ है।

यद्यपि इन सूत्र-वाक्यों के पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि यह तो पुनरुक्ति मात्र है परन्तु इसका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तु के विषय में हम तर्क कर रहे हैं, वह वस्तु हमारे वाद पर्यन्त उसी प्रकार रहनी चाहिए। डा० पी० के० रे (Dr. P. K. Ray) के शब्दों में इस नियम का यह अर्थ है कि “निगमनमूलक-तर्कशास्त्र में जिस आश्रय से हम आरम्भ करते हैं, वह अपरिवर्तित रहना चाहिए।” किसी तर्क में प्रत्येक पद को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करना चाहिए। काल और परिवर्तन के तत्व का निगमनमूलक तर्कशास्त्र में कोई स्थान नहीं है, इसी दिशा में वह प्रकृति की गति से भिन्न है। प्रकृति बहती हुई नदी के समान परिवर्तनशील है और समय के विभिन्न क्षणों में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर लेती है। ग्रीस देश के एक प्राचीन दार्शनिक हिराक्लिटस (५०० ईसा पूर्व) का कथन है कि हम एक ही धारा में दो बार नहीं उतर सकते, जब हम उसी स्थान पर दूसरी बार गोता लगाते हैं, तब तक पहले वाला जल बहुत आगे बह निकलता है ; अतः धारा वही नहीं रहती। निगमनमूलक तर्कशास्त्र में ऐसे परिवर्तनों को कोई स्थान नहीं है। यदि हम

निगमन—
 मूलक तर्क-
 शास्त्र में
 आश्रय अपरि-
 वर्तित रहना
 चाहिए।

प्रारम्भ मे यह विचार कर ले कि किसी वस्तु मे अमुक गुण है, तो हमें सदा यह बात स्वीकार करनी होगी। यदि किसी पद को किसी विशेष अर्थ मे प्रयुक्त किया जाय, तो उसको हमें सर्वदा उसी अर्थ मे प्रयुक्त करना चाहिए।

(२) विरोध-बाधक-नियम (Law of Contradiction)

‘क’, ‘ख’
और ‘अ-ख’
दोनों नहीं
हो सकता।

विरोध-बाधक नियम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है
“ ‘क’ ‘ख’ और अ-‘ख’ दोनों नहीं हो सकता। ” ‘कोई भी वस्तु एक ही समय में भाव और अभाव रूप नहीं हो सकती।’

किसी वस्तु
में दो विरुद्ध
गुण नहीं रह
सकते।

इस नियम का अभिप्राय यह है कि एक वस्तु मे, एक ही काल मे, और एक ही स्थान में दो परस्पर विरुद्ध (Contradictory) गुण नहीं रह सकते। दो विपरीत-गुण ‘ख’ और ‘अ-ख’ एक ही वस्तु ‘क’ के बारे मे सत्य नहीं हो सकते। यदि ‘क’ मे कोई गुण ‘ख’ हो, तो उसी समय विपरीत गुण ‘अ-ख’ उसमे नहीं हो सकता। एक कागज का टुकड़ा एक ही समय मे ‘श्वेत’ और ‘अश्वेत’ दोनों नहीं हो सकता। यदि वह श्वेत है, तो वह अश्वेत भी नहीं हो सकता और यदि अश्वेत है तो श्वेत भी नहीं हो सकता। यह सम्भव हो सकता है कि एक कागज कुछ अंश मे तो श्वेत हो, तथा कुछ अंश मे अश्वेत (यथा—काला); अथवा किसी समय तो श्वेत हो और बाद मे अश्वेत हो जाये, परन्तु इस बात की हम कल्पना नहीं कर सकते कि एक ही समय और एक ही स्थान मे वह श्वेत और अश्वेत दोनों हो सकता है।

हैमिल्टन (Hamilton) ने इस नियम को ‘अविरोध का नियम’ (the Law of Non-contradiction) कहा है, क्योंकि उसके विचार मे, ‘अविरोध’ अथवा ‘विरोध का अभाव’ ही विचार की विशुद्धि के लिए आवश्यक है।

(३) निर्मध्यम का नियम (The Law of Excluded Middle)

निर्मध्यम का नियम (the Law of Excluded Middle) इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

“ ‘क’ या तो ‘ख’ अथवा ‘अ-ख’ है । ”

“ प्रत्येक वस्तु या तो है अथवा नहीं है । ”

‘क’ या तो
‘ख’ अथवा
‘अ-ख’ है ।

इस नियम का अभिप्राय यह है कि एक ही समय में दो विरोधी पद (Contradictory terms) एक ही व्यक्ति के बारे में गलत नहीं हो सकते । एक ही वस्तु ‘क’ के बारे में दो विरोधी गुण ‘ख’ और ‘अ-ख’ गलत नहीं हो सकते । यदि ‘क’ के बारे में ‘ख’ सत्य नहीं है, तो ‘अ-ख’ सत्य होना चाहिए और यदि ‘अ-ख’ सत्य नहीं है, तो ‘ख’ सत्य होना चाहिए । यदि एक कागज का टुकड़ा श्वेत नहीं है, तो वह ‘अश्वेत’ अवश्य होगा । जैवन्स (Jevons) का कथन है कि “इस नियम का नाम ही इस बात को व्यक्त करता है कि मध्य का कोई मार्ग ही नहीं है , उत्तर स्वीकारात्मक होगा या निषेधात्मक । ”

किसी वस्तु में
दो विरोधी
गुणों में से एक
अवश्य चरि-
तार्थ होगा ।

विरोध-बाधक नियम (the Law of Contradiction) के अनुसार, दो विरोधी पद एक ही वस्तु के बारे में सही नहीं हो सकते अर्थात् उनमें से एक गलत होना चाहिए । यथा एक ही वस्तु ‘चट्टान’ पर दो विरोधी पद ‘कठोर’ और ‘अकठोर’ एक साथ चरितार्थ नहीं हो सकते । “यह चट्टान कठोर है” और “यह चट्टान अकठोर है”—ये दोनों कथन एक साथ सही नहीं हो सकते—इनमें से एक गलत होना चाहिए । यदि पहला कथन सही है, तो दूसरा गलत होगा , यदि दूसरा कथन सही है, तो पहला गलत होगा । **निर्मध्यम-नियम (the Law of Excluded Middle)** के अनुसार, दो विरोधी पद एक ही वस्तु के बारे में एक साथ गलत नहीं हो सकते, अर्थात् उनमें से एक सही होना चाहिए । यदि ‘कठोर’ पद चट्टान के बारे में सही नहीं है, तो उसका विरोधी-पद ‘अकठोर’ उसके बारे में अवश्य सही होगा । इसी प्रकार

विरोध बाधक
नियम और
निर्मध्यम-
नियम की
तुलना ।

यदि 'कठोर' पद 'चट्टान' के बारे में सही नहीं है, तो 'कठोर' पद सही होगा। इस प्रकार, दोनों नियमों के पर्यालोचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि एक विरोधी तर्क-वाक्य की सत्यता में दूसरे की असत्यता निहित रहती है, तथा उसकी असत्यता में दूसरे की सत्यता निहित रहती है। दोनों न तो सत्य हो सकते हैं और न असत्य ही।

टिप्पणी—यूबरवेग (Ueberweg) ने दोनों नियमों को सम्मिलित कर एक नवीन सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की। उन्होंने इसका नाम 'विरोधी-विकल्प का नियम' (Principle of Contradictory Disjunction) रखा है। उनका सूत्र इस विषय में इस प्रकार है “ 'क' या तो 'ख' है अथवा 'अ-ख' है। ” इसका तात्पर्य है कि.—

(१) “ 'क', 'ख' और 'अ-ख' दोनों नहीं हो सकता। ”

(विरोध-वाधक-नियम) और—

(२) “ 'क' या तो 'ख' अथवा 'अ-ख' है। ”

(निर्मध्यम का नियम)

इन दोनों नियमों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं—

(१) ये दोनों नियम परस्पर विरोधी पदों से सम्बन्ध रखते हैं।

(१) ये दोनों नियम दो परस्पर विरोधी (Contradictory) पदों से सम्बन्ध रखते हैं, विपरीत (Contrary) पदों से नहीं। एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध में दो विपरीत (Contrary) पद एक साथ सही तो नहीं हो सकते, परन्तु वे दोनों उस व्यक्ति के सम्बन्ध में गलत हो सकते हैं। उदाहरण के लिए विपरीत पद 'श्वेत' और 'श्याम' को लीजिए। ये दोनों पद कागज के टुकड़े के सम्बन्ध में सही तो नहीं हो सकते, परन्तु दोनों गलत हो सकते हैं, क्योंकि वह कागज का टुकड़ा 'श्वेत' या 'श्याम' न होकर 'लाल' भी तो हो सकता है। इसी प्रकार यह चट्टान न तो 'कठोर' हो और न 'कोमल' परन्तु इन दोनों के बीच के गुणवाली अर्थात् कुछ कठोर और कुछ कोमल हो सकती है। परन्तु दो विरोधी पद यथा—'श्वेत' और 'अश्वेत' न तो दोनों सही ही हो सकते हैं, और न दोनों गलत ही।

(२) विरोध-बाधक-नियम (Law of Contradiction) इस प्रकार है: “‘क’ ‘ख’ तथा ‘अ-ख’ दोनों नहीं हो सकता।” और निर्मध्यम-नियम (Law of Excluded Middle) इस प्रकार व्यक्त किया जाता है: “‘क’ या तो ‘ख’ अथवा ‘अ-ख’ है।” डाक्टर पी० के० रे (Dr. P. K. Ray) का कहना है कि इन दृष्टान्तों में ‘क’ से तात्पर्य एक व्यक्तिगत वस्तु है। अतः यह कहना तो ठीक है कि “महाराजा अशोक सम्य और असम्य दोनों नहीं हो सकता” अथवा, “महाराजा अशोक या तो सम्य है, अथवा असम्य”, परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि “‘मनुष्य’ सम्य और असम्य दोनों नहीं हो सकता” अथवा “‘मनुष्य’ या तो सम्य है, अथवा ‘असम्य’”, क्योंकि इन कथनों में ‘मनुष्य’ से तात्पर्य एक व्यक्तिगत वस्तु नहीं है। इन दृष्टान्तों में ‘मनुष्य’ पद किसी व्यक्ति के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है परन्तु विभिन्न वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। इससे यह तात्पर्य है कि कुछ मनुष्य सम्य हो सकते हैं तथा अन्य मनुष्य असम्य हो सकते हैं।

(२) ‘क’ से तात्पर्य एक व्यक्तिगत वस्तु है।

टिप्पणी—विचार के तीनों नियमों का पारस्परिक सम्बन्ध

प्रायः यह प्रश्न उठता है कि क्या ये तीनों नियम—तादात्म्य-नियम, विरोध-बाधक-नियम और निर्मध्यम-नियम—अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता रखते हैं या ये तीनों किसी एक ही साधारण-सिद्धान्त के द्योतक हैं? प्रायः यह कहा जाता है विरोध-बाधक-नियम तादात्म्य-नियम का ही रूपान्तर है, क्योंकि जो तादात्म्य का नियम स्वीकार रूप में कहता है, उसी को विरोध-बाधक-नियम निषेध-रूप में कहता है। यह बात ज्ञातव्य है कि स्वीकृति और निषेध विचार की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। यह सच है कि ‘स्वीकार’ में उसके विरोध का ‘अस्वीकार’ निहित रहता है और इसी प्रकार ‘अस्वीकार’ में ‘स्वीकार’ का विरोध निहित रहता है। परन्तु यह भी तो सत्य है कि ये दोनों विचार की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक ओर तो

निर्मध्यम का नियम और दूसरी ओर तादात्म्य और विरोध-वाधक नियम, यद्यपि परस्पर सम्बन्धित हैं परन्तु मूल रूप में वे विचार के विभिन्न-रूप ही हैं।

(४) पर्याप्त-हेतु नियम (The Law of Sufficient Reason)—लाइबनीज (Leibnitz)

परिवर्तनों
के लिए
पर्याप्त
कारण होना
चाहिए।

पर्याप्त-हेतु का नियम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—“कोई भी वस्तु या घटना बिना इस पर्याप्त कारण के नहीं हो सकती कि वह इसी प्रकार क्यों रहे और दूसरे प्रकार नहीं।”

इस नियम का यह तात्पर्य है कि यदि किसी वस्तु अथवा घटना में कोई परिवर्तन हो, तो उसके लिए पर्याप्त कारण होना चाहिए। एक प्राचीन दृष्टान्त देखिए। न्यूटन (Newton) ने पेड़ से सेव को गिरते देखा और उसने स्वयं अपने आप से यह प्रश्न किया कि वह सेव क्यों गिरा ? सचमुच, इसका कोई सतोपप्रद स्पष्टीकरण होना चाहिए—जो कि उसे माध्याकर्षण के नियम (Law of Gravitation) में मिल गया।

यह नियम अनिवार्यतः तादात्म्य-नियम का परिपूरक है। तादात्म्य-नियम के अनुसार ‘विचार’ का आश्रय अपरिवर्तित रहना चाहिए ; परन्तु इस नियम के अनुसार उसमें यह बात और जुड़ जाती है कि यदि कोई परिवर्तन हो, तो उस परिवर्तन के लिए कुछ पूर्ववर्ती परिस्थितियाँ ऐसी होनी चाहिए जो कि उसे उत्पन्न करने में समर्थ हो सकें।

टिप्पणी—हैमिल्टन (Hamilton) की स्वयंसिद्धि (Postulate)

उपर्युक्त मूल-नियमों के अतिरिक्त कुछ अन्य अधीन स्वयंसिद्धियाँ भी हैं, जिनमें से हैमिल्टन की स्वयंसिद्धि पर संक्षेप में विचार करेंगे।

हैमिल्टन ने अपनी 'तर्कशास्त्र की स्वयंसिद्धि' (postulate of Logic) को इस प्रकार व्यक्त किया है:—

“तर्कशास्त्र बिना तर्क के यह मान लेता है कि जो कुछ श्रान्तर-रूप से विचार में है, वह बाह्य-रूप से भाषा में प्रकट किया जा सकता है।”

तर्कशास्त्र भाषाभिव्यक्त विचारों से सम्बन्ध रखता है। एक ही विचार को विभिन्न भाषाओं में व्यक्त किया जा सकता है। इस नियम का अभिप्राय यह है कि जब तक अर्थ में परिवर्तन नहीं है, तब तक हम अपनी अभिव्यक्ति के आकार को बदल सकते हैं। शब्दों का अर्थ, न कि उनका आकार, ही मुख्य है। अतः जब तक अर्थ वही रहता है, तब तक किसी कथन के कहने के ढंग में परिवर्तन लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए यह तर्क वाक्य कि “सब मनुष्य मर्त्य हैं” इस प्रकार भी व्यक्त हो सकता है कि “कोई भी मनुष्य अमर्त्य नहीं है।”

अभिव्यक्ति का
आकार बदला
जा सकता है,
यदि

अर्थ वही रहे।

यह नियम तादात्म्य-नियम से ज्ञात हो सकता है। एक आकार में व्यक्त विचार दूसरे आकार में व्यक्त विचार से तादात्म्य है और क्योंकि प्रत्येक वस्तु में अपने से तादात्म्य है ; अतः व्यक्त करने के एक ढंग को दूसरे ढंग में बदला जा सकता है।

प्रश्नमाला २

(१) विचार के नियम (Laws of Thought) कौन-कौन-से हैं? तादात्म्य-नियम, विरोध-बाधक-नियम और निर्मध्यम-नियम की व्याख्या कीजिए।

(२) तादात्म्य-नियम का उदाहरण-सहित विवरण दीजिए। उसका तात्पर्य समझाइए। उसे आकारगत तर्क का सिद्धान्त क्यों कहते हैं?

(३) इस प्रश्न पर विचार कीजिए कि क्या तादात्म्य-नियम पुनरुक्ति-मात्र है?

(४) तादात्म्य-नियम और 14 नियम का

उदाहरण सहित वर्णन कीजिए तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध प्रदर्शित कीजिए। तर्क के नियमों के रूप में उनकी क्या उपयोगिता है ?

(५) तादात्म्य-नियम, विरोध-वाचक-नियम और निर्मध्यम नियम का वर्णन कीजिए और निगमनमूलक तर्कशास्त्र में उनके व्यावहारिक उपयोग को स्पष्ट कीजिए।

(६) वास्तविक उदाहरणों सहित तर्कशास्त्र में मूल-सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए। क्या ये सब नियम अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता रखते हैं ? इस प्रश्न पर विचार कीजिए।

(७) पर्याप्त-हेतु-नियम से आप क्या समझते हैं ? तर्कशास्त्र में उसकी क्या उपयोगिता है ?

(८) 'विचार के नियमों' की व्याख्या कीजिए। क्या आपके विचार में पर्याप्त हेतु का नियम एक विचार का नियम है ?

टिप्पणी :—पर्याप्त कारण का नियम इस प्रकार का है कि उसका सम्बन्ध उन तार्किक आधारों से प्रतीत होता है जिन पर किसी दिए हुए कथन की सत्यता निर्भर रहती है, साथ ही उसका सम्बन्ध उन वस्तुओं से भी हो सकता है जिनसे विश्व की घटनाओं में परस्पर कारण-सम्बन्ध होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लाइब-नीज़ ने इस नियम का निर्माण वादवाली बात के ही सम्बन्ध में किया है। अतः पर्याप्त-हेतु का नियम वास्तविक वस्तुओं के लिए है और अस्तू के तीनों विचार के नियमों के सदृश केवल आकारगत-नियम ही नहीं है।

EXERCISE II.

1. What are the Laws of Thought ? Explain the Laws of Identity, Contradiction and Excluded Middle.
2. State and illustrate the Principle of Identity. Give its precise significance. Why is it called a principle of formal reasoning ?
3. Examine the question whether the principle of Identity is a mere tautology.
4. State and illustrate fully the principles of Identity and Contradiction, exhibiting their relation

to each other. Explain and illustrate their use or significance as principles of reasoning.

5. State the Principles of Identity, Contradiction and Excluded Middle ; and explain their practical application in Deductive Logic

6. State and explain with concrete illustrations the Fundamental Principles of Deductive Logic. Are they equally Fundamental ? Discuss the question fully.

7. What do you understand by the Principle of Sufficient Reason ? Indicate its importance in Logic.

8. Explain the Laws of Thought Do you think that the Law of Sufficient Reason is a law of thought ?

तृतीय प्रकरण

पद

§ १. शब्द (Words) और पद (Terms) : पदयोग्य शब्द (Categorematic) और पद-संयोज्य (Syncategorematic) शब्द ।

टिप्पणी :—क्या पद सम्बन्धी प्रकरण का तर्कशास्त्र में स्थान है ?

§ २. पदों का निर्देश (Denotation) और गुण (Connotation) ।

§ ३. पदों का विभाग :—

(क) एक शब्दात्मक (Simple) और अनेक शब्दात्मक (Composite) ।

(ख) विशिष्ट (Singular) और सामान्य (General) ।

(ग) समूहवाचक (Collective) और असमूहवाचक (Non-collective) ; पदों का समष्ट्यर्थ (Collective use) एवं व्यष्ट्यर्थ (Distributive use) ।

(घ) वस्तुवाचक (Concrete) और भाववाचक (Abstract) ।

(ङ) स्वीकारात्मक (Positive), निषेधात्मक (Negative) तथा अभावात्मक (Privative) ।

टिप्पणी—विरोधी-पद : विरुद्ध (Contradictory) और विपरीत (Contrary) पद ।

(च) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative) ।

(छ) गुणवाचक (Connotative) और
अगुणवाचक (Non-connotative)।
अभ्यासार्थ प्रश्न (उत्तर सहित)।
प्रश्नमाला ३

§१ शब्द (Words) और पद (Terms) : पदयोग्य
शब्द (Categorematic) और पद-सयोज्य शब्द
(Syn-categorematic)।

‘शब्द’ से क्या तात्पर्य है, यह हम सब जानते हैं। ‘शब्द’
एक या अनेक अक्षरो से मिलकर बनता है, तथा उसका कुछ अर्थ
होता है। शब्द एक अक्षर का भी हो सकता है, जैसे ‘न’ और वह
अनेक अक्षरो का भी हो सकता है, जैसे ‘वह’ ‘मनुष्य’, ‘साधारण’,
‘हरसिगार’ इत्यादि।

शब्द

शब्दों के संयोग से व्याकरण का वाक्य (Sentence)
बनता है, जैसे—“आओ, चले।” “मनुष्य मर्त्य है।” “घोड़ा
एक चतुष्पदी जन्तु है।” इत्यादि। अतः वाक्य शब्दों के
समूहसे बनता है, तथा उसमें एक पूर्ण-विचार निहित रहता है।

वाक्य

यदि साधारण रीति से देखा जाय तो व्याकरण में हम जिसे
वाक्य कहते हैं, तर्कशास्त्र में वह तर्क-वाक्य (Logical Pro-
position) कहलाता है। तर्कवाक्य और साधारण वाक्य में
भेद होता है। तर्क-वाक्य के तीन अंग होते हैं. (१) उद्देश्य
(Subject) (२) विधेय (Predicate) और संयोजक
(Copula)। उद्देश्य वह है जिसके साथ कोई स्वीकारात्मक
या निषेधात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाय। विधेय वह है जिसका
उद्देश्य के साथ स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक सम्बन्ध स्था-
पित किया जाय और संयोजक (Copula) उद्देश्य और विधेय के
सम्बन्ध का प्रतीक चिह्न है। उदाहरण के लिए, तर्कवाक्य

तर्क-वाक्य

“मनुष्य मर्त्य है” में, ‘मनुष्य’ उद्देश्य है, ‘मर्त्य’ विधेय है, तथा ‘है’ सयोजक है।

✓ जो शब्द या शब्द-समूह किसी तार्किक-वाक्य में उद्देश्य (Subject) या विधेय (Predicate) की भाँति प्रयुक्त किया जा सके उसे पद (Term) कहते हैं।

पद

कुछ तर्कशास्त्रियों का कथन है कि जो शब्द या शब्द-समूह किसी तर्कवाक्य में वास्तव में उद्देश्य या विधेय की भाँति प्रयुक्त किया गया हो, उसी को पद कहते हैं। इस दृष्टिकोण से वह शब्द या शब्द-समूह जो इस प्रकार व्यक्त किये जा सकते हो, यद्यपि किये नहीं गये हों, संभावित-पद (possible term) कहे जा सकते हैं।

‘पद’ को अंग्रेजी में ‘टर्म’ (Term) कहते हैं। यह शब्द लैटिन भाषा के ‘टर्मिनस’ (Terminus) शब्द का संक्षिप्त रूप है। ‘टर्मिनस’ का अर्थ है सीमा, छोर। अंग्रेजी भाषा के तर्कवाक्य में उद्देश्य आदि में—एक छोर पर और विधेय अन्त में—दूसरे छोर पर होता है। जैसे तर्कवाक्य “Man is mortal” में, ‘man’ और ‘mortal’ शब्द तर्कवाक्य के दोनों छोर पर हैं और पद हैं क्योंकि वे तर्कवाक्य में उद्देश्य या विधेय की भाँति प्रयुक्त किये जा सकते हैं, ‘is’ शब्द पद नहीं है, क्योंकि वह इस प्रकार प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि प्रत्येक पद एक शब्द या शब्द-समूह होता है, परन्तु प्रत्येक शब्द एक पद नहीं होता। शब्द या शब्द-समूह तभी ‘पद’ हो पाते हैं जब उनका उपयोग किसी वाक्य में उद्देश्य या विधेय की भाँति हो सकता हो। प्रत्येक शब्द का प्रयोग इस प्रकार नहीं हो सकता, अतः ऐसा शब्द ‘पद’ नहीं होता।

सब पद
शब्द हैं
परन्तु सब
शब्द पद
नहीं होते

अतः तर्कशास्त्र में शब्दों को दो वर्गों में बाँटा जाता है ;

यथा—‘पदयोग्य-शब्द’ (Categorematic) तथा ‘पद-संयोज्य शब्द’ (Syncategorematic) ।

पदयोग्य शब्द (Categorematic) वह है जो स्वयं पद की तरह बिना दूसरे शब्दों की सहायता के प्रयुक्त हो सके; और पद-संयोज्य (Syncategorematic) वह है जो स्वयं पद की तरह प्रयुक्त नहीं हो सकता किन्तु किसी पदयोग्य शब्द के साथ मिलकर उसे प्रयुक्त किया जा सकता है । अतः पदयोग्य-शब्द तो पद (Term) होते हैं, परन्तु पद-संयोज्य शब्द पद नहीं होते ।

पदयोग्य-
शब्द ‘पद’
होते हैं ।

उदाहरण के लिए, ‘मनुष्य’ पद पदयोग्य शब्द अर्थात् ‘पद’ है क्योंकि वह एक तर्कवाक्य का उद्देश्य या विधेय हो सकता है । इसी प्रकार ‘वह’ शब्द पदयोग्य है क्योंकि वह किसी तर्कवाक्य का उद्देश्य हो सकता है ; ‘श्वेत’ शब्द भी पदयोग्य है क्योंकि वह किसी तर्कवाक्य का विधेय हो सकता है । पद-संयोज्य शब्दों के उदाहरण ‘का’ ‘और’ इत्यादि हो सकते हैं । क्योंकि ये शब्द स्वयं पद की भाँति प्रयुक्त नहीं हो सकते ।

अब हम तर्कशास्त्र के ‘शब्द’ तथा व्याकरण के शब्दों के अन्तर पर विचार करेंगे । व्याकरण में शब्दों को सज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, क्रियाविशेषण आदिक पदों में विभक्त किया जाता है । तर्कशास्त्र में शब्दों के केवल दो विभाग हैं—पदयोग्य शब्द (अर्थात् ‘पद’) और पद-संयोज्य शब्द (अर्थात् जो पद नहीं होते) । तर्कशास्त्र में कोई शब्द या तो पद होगा अथवा नहीं ।

व्याकरण
एवं तर्क-
शास्त्र के
शब्दों के
विभाग की
तुलना

कुछ तर्कशास्त्री शब्दों के एक अन्य वर्ग को भी मान्यता देते हैं, जिन्हें पदयोग्य शब्द (Acategorematic words) कहते हैं । पदयोग्य शब्द (Acategorematic) वह है जो स्वतंत्र रूप से या किसी अन्य के सम्बन्ध से भी पद के रूप में प्रयुक्त न किया जा सके । उदाहरणार्थ अरे, हे, हाय, इत्यादि सम्बोधन-

पदयोग्य
शब्द

बोधक अव्यय शब्द ऐसे हैं, जिनका न तो स्वतन्त्र रूप से और न किसी के सम्बन्ध से पद के रूप में प्रयोग हो सकता है।

टिप्पणी—क्या पद-सम्बन्धी प्रकरण का तर्कशास्त्र में स्थान है ?

तर्कशास्त्र
में पदों
का स्थान

प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या पद-सम्बन्धी-प्रकरण का तर्कशास्त्र में कोई स्थान हो सकता है ? इसका उत्तर स्वीकारात्मक ही है। यह ठीक है कि तर्कशास्त्र का मुख्य सम्बन्ध तर्क से है, परन्तु जब तर्क को भाषा में व्यक्त करते हैं तो हमें तर्क-वाक्यों (Propositions) पर विचार करना पड़ता है। तर्क-वाक्य पदों (Terms) से बनते हैं। अतः तर्क पर विचार करते समय तर्कशास्त्र में तर्क-वाक्य एवं पदों का अव्ययन हो ही जाता है। वास्तव में तर्क पर विचार उसके अवयव—पद तथा तर्कवाक्य—पर विचार करने से ही प्रारम्भ होता है।

N.V.C. § २ पदों का निर्देश (Denotation) और गुण (Connotation)

प्रत्येक पद किसी वस्तु का निर्देश करता है तथा 'गुण' को व्यक्त करता है।

प्रत्येक पद का अर्थ दो प्रकार से समझा जा सकता है, - जिन्हें क्रमशः निर्देश (Denotation) और गुण (Connotation) कहते हैं। निर्देश (Denotation) के द्वारा उन व्यक्तियों को बतलाया जाता है, जिनके लिए वह पद प्रयुक्त होता है तथा गुण (Connotation) के द्वारा उन विशेषताओं को बतलाया जाता है जो उस पद द्वारा निर्दिष्ट व्यक्तियों में समान रूप से वर्तमान हैं। इस प्रकार एक पद वस्तुओं का निर्देश करता है तथा उनके समान-गुणों को बतलाता है। उदाहरण के लिए, 'मनुष्य' पद को लीजिए। 'मनुष्य' पद उन समस्त वस्तुओं का निर्देश करता है, जिनके लिए यह पद प्रयुक्त

हुआ है, अर्थात् 'सब मनुष्य'। और यह उन गुणों को बतलाता है जो कि सब मनुष्यों में समान रूप से पाये जाते हैं, अर्थात् 'प्राणित्व' (animality) और 'विचारशीलता' (rationality)। इसी प्रकार 'त्रिभुज' पद 'सब त्रिभुजों' का निर्देश करता है और उन अनिवार्य गुणों को व्यक्त करता है जो कि सब त्रिभुजों में समान रूप में पाये जायें, अर्थात् तीन सीधी रेखाओं से वेष्टित सरल-आकृति का होना। इसी प्रकार 'मूर्य' पद केवल एक ही वस्तु-विशेष का निर्देश करता है और निर्दिष्ट वस्तु के समस्त अनिवार्य गुणों को व्यक्त करता है।

'निर्देश' (Denotation) के समानार्थी शब्द 'विस्तार' (Extension), 'क्षेत्र' (Scope) 'विषय' (Domain) आदि हैं तथा 'गुण' (Connotation) के समानार्थी शब्द 'स्वभाव' (Intension) 'पदत्व' (Intent) 'गहराई' (Depth) 'सामर्थ्य' (Comprehension) आदि हैं।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि पद के 'निर्देश' (Denotation) और 'गुण' (Connotation) में क्या पारस्परिक सम्बन्ध है? यह कहा जाता है कि पद के 'निर्देश' और 'गुण' में प्रतिलोम-अनुपात (inverse ratio) का सम्बन्ध है।

इस कथन का यह तात्पर्य है कि यदि एक बढ़ता है, तो दूसरा घटता है और यदि एक घटता है, तो दूसरा बढ़ता है। इस प्रकार,

- (१) यदि 'निर्देश' बढ़ता है, तो 'गुण' घटता है।
- (२) यदि 'निर्देश' घटता है, तो 'गुण' बढ़ता है।
- (३) यदि 'गुण' बढ़ता है, तो 'निर्देश' घटता है। और—
- (४) यदि 'गुण' घटता है, तो 'निर्देश' बढ़ता है।

उदाहरण के लिए, 'मनुष्य' पद का 'निर्देश' 'सब मनुष्य' है और उसका 'गुण', 'प्राणित्व' और 'विचारशीलता' है। यदि हम 'मनुष्य' पद में 'अन्य सब जन्तु' जोड़कर उसका 'निर्देश' बढ़ा दें ('मनुष्य' का निर्देश + 'अन्य सब जन्तु' = 'समस्त जन्तु') तो

'निर्देश' -
और 'गुण'
में प्रतिलोम-
अनुपात का
सम्बन्ध है।

उदाहरण

‘गुण’ केवल ‘प्राणित्व’ रह जायगा (‘मनुष्य’ का ‘गुण’—विचारशीलता=‘प्राणित्व’) । अतः ‘निर्देश’ के बढ़ने से ‘गुण’ कम हो जाता है ।

यदि हम ‘मनुष्य’ पद से ‘असम्य मनुष्य’ घटाकर उसका ‘निर्देश’ कर दें (‘मनुष्य’ का निर्देश—असम्य मनुष्य=सम्य मनुष्य), तो ‘गुण’ में ‘सम्यता’ का गुण जुड़कर वृद्धि हो जायगी (‘मनुष्य’ का ‘गुण’+‘सम्यता’ का गुण=‘सम्य मनुष्य’ का ‘गुण’) । अतः ‘निर्देश’ के कम होने से ‘गुण’ बढ़ जाता है ।

यदि हम ‘मनुष्य’ के ‘गुण’ को ‘ईमानदारी’ जोड़कर बढ़ा दें (‘मनुष्य’ का ‘गुण’+ईमानदारी=प्राणित्व+सजीवता+ईमानदारी) तो उसका निर्देश कम होकर केवल ‘ईमानदार मनुष्य’ रह जायेगा (मनुष्य का निर्देश—बेईमान मनुष्य=ईमानदार मनुष्य) । अतः यदि ‘गुण’ बढ़ता है, तो ‘निर्देश’ घटता है ।

इसी प्रकार यदि हम ‘मनुष्य’ पद से ‘विचारशीलता’ को घटा कर उसका ‘गुण’ कम कर दें (मनुष्य का ‘गुण’—विचारशीलता=प्राणित्व) तो निर्देश बढ़ जायेगा, क्योंकि शेष गुण ‘प्राणित्व’ केवल सब मनुष्यों में ही नहीं होगा, वरन् सब जन्तुओं (प्राणियों) में होगा (मनुष्य का निर्देश+अन्य सब जन्तु=सब जन्तु) । अतः ‘गुण’ के घटने से ‘निर्देश’ बढ़ता है ।

सम्बद्ध
शृंखला

‘निर्देश’ और ‘गुण’ का यह ‘प्रतिलोम-अनुपात का सम्बन्ध’ (relation of inverse variation) पदों की एक परस्पर सम्बद्ध शृंखला के द्वारा अधिक स्पष्ट हो सकता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित शृंखला देखिए :—

जन्तु (प्राणी), मनुष्य, सम्य मनुष्य, भारतीय ।

इस शृंखला में पहला पद जन्तु (अथवा प्राणी) है जिसका ‘निर्देश’ तो सबसे अधिक है, परन्तु ‘गुण’ सबसे कम है । जब हम क्रम से उसके बाद वाले पदों का अध्ययन करते हैं, तो हमें पता चलता है कि ‘निर्देश’ तो कम होता जा रहा है, परन्तु ‘गुण’ बढ़ता जा रहा है । इस प्रकार जब हम अन्तिम पद ‘भारतीय’ पर पहुँचते हैं, तो पता चलता है कि इसका ‘निर्देश’ सबसे कम है, परन्तु

‘गुण’ सबसे अधिक है। अतः यह शृंखला यह प्रदर्शित करती है कि ज्यो-ज्यो ‘निर्देश’ में कमी होती है, त्यों-त्यों ‘गुण’ में वृद्धि होती है। इसकी विलोम-क्रिया जिसमें ‘निर्देश’ की वृद्धि के साथ-साथ ‘गुण’ में कमी होती है, निम्नलिखित शृंखला से प्रदर्शित होती है :

मनुष्य, जन्तु, सजीव वस्तु, भौतिक वस्तु, वस्तु (पदार्थ)।

जाति (Genus) और उपजाति (Species) : जब दो वर्गों के द्योतक पद इस प्रकार सम्बन्धित हों, कि एक में दूसरे का निर्देश सन्निहित हो, तो अधिक निर्देश वाला पद कम निर्देश वाले पद के सम्बन्ध में ‘जाति’ (Genus) कहलाता है ; और कम निर्देश वाला पद उसकी उपजाति (Species) कहलाता है। उदाहरण के लिए, ‘जन्तु’ पद ‘मनुष्य’ पद के सम्बन्ध में ‘जाति’ है, और ‘मनुष्य’ पद ‘जन्तु’ पद के सम्बन्ध में ‘उपजाति’ है। इस दृष्टांत से ‘निर्देश’ और ‘गुण’ का प्रतिलोम-अनुपात का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। ‘जाति’ जन्तु का निर्देश उपजाति ‘मनुष्य’ के निर्देश से अधिक है, परन्तु ‘जाति’ का गुण (अर्थात् ‘प्राणित्व’) ‘उपजाति’ के गुण (अर्थात् ‘प्राणित्व’ और ‘विचारशीलता’) से कम है।

‘निर्देश’ और ‘गुण’ के प्रतिलोम-अनुपात के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को भले प्रकार समझ लेना चाहिए.—

(क) यह बात ज्ञातव्य है कि जब हम किसी पद के ‘निर्देश’ (Denotation) या ‘गुण’ (Connotation) को बढ़ाते या घटाते हैं, तो वह पद वहीं नहीं रहता, बल्कि एक नया ‘पद’ बन जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम ‘मनुष्य’ पद के ‘गुण’ को ‘ईमानदारी’ जोड़कर बढ़ा दें, तो वह एक अन्य पद ‘ईमानदार मनुष्य’ बन जाता है। और इस नये पद का ‘निर्देश’ (Denotation) पुराने पद के ‘निर्देश’ से कम होता है। इसी प्रकार यदि हम ‘मनुष्य’ पद के गुण को

जाति और
उपजाति

‘निर्देश’ या
‘गुण’ के
बढ़ाने या
घटाने से नया
पद बन
जाता है।

उसमें से 'विचारशीलता' घटाकर, कम कर दे, तो एक नया पद 'जन्तु' बन जाता है। और इस नए पद का निर्देश पुराने पद के निर्देश से अधिक होता है।

इससे यह तात्पर्य निकलता है कि यदि किसी पद के 'गुण' (Connotation) में एक ऐसा गुण जोड़ दिया जाय जो कि उस पद द्वारा निर्दिष्ट सभी सदस्यों में पाया जाय या जो उस पद के 'गुण' के किसी अंश से फलित होता हो, तो वह पद ज्यों का त्यों रहता है , अतः उसका निर्देश नहीं घटता। उदाहरण के लिए, 'त्रिभुज' पद को लीजिए। इसका गुण यह है - "तीन सीधी रेखाओं से वेष्टित सरल आकृति।" यदि हम इसमें "जिसमें तीन कोण होते हों" गुण जोड़ दे, तो उस पद के 'निर्देश' में कोई कमी नहीं होगी क्योंकि जो गुण हमने जोड़ा है, वह सभी त्रिभुजों में वर्तमान रहता है तथा 'त्रिभुज' पद के 'गुण' से फलित होता है। अतः 'प्रतिलोम-सम्बन्ध का नियम' (Law of inverse variation) केवल तभी उपयुक्त होता है जबकि वृद्धि अथवा कमी से एक नया पद बन जाता है।

किसी पद के 'निर्देश' या 'गुण' की घटती-बढ़ती तत्सम्बन्धी ज्ञान की घटती-बढ़ती के ऊपर निर्भर नहीं होती।

(ख) किसी पद के 'निर्देश' या 'गुण' की घटती-बढ़ती किसी व्यक्ति के 'निर्देश' तथा 'गुण' के ज्ञान की घटती-बढ़ती के ऊपर निर्भर नहीं होती। किसी मनुष्य का 'निर्देश' व 'गुण' विषयक ज्ञान घट-वढ़ सकता है, परन्तु इससे उस पद के 'निर्देश' व 'गुण' में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए, जब कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की तो हमारे महाद्वीप के 'निर्देश' के ज्ञान में वृद्धि हुई, परन्तु 'महाद्वीप' पद के 'निर्देश' में कोई वृद्धि नहीं हुई, अतः 'गुण' में संगत कमी भी नहीं हुई। इसी प्रकार ज्ञान की वृद्धि होने पर यदि हमें पता चले कि एक विशेषता, जो अवतक किसी वस्तु के गुण का भाग समझी जाती थी, वास्तव में वैसी नहीं हो, अथवा किसी ऐसी विशेषता का पता चले जो उस

वस्तु के 'गुण' का भाग नहीं समझी जाती थी, परन्तु वास्तव में उसके 'गुण' का भाग हो, तो इससे उस पद के 'निर्देश' में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

(ग) प्रतिलोम-अनुपात का सम्बन्ध किसी गणित की प्रक्रिया की भाँति घटित नहीं होता। 'निर्देश' और 'गुण' की संगत बढ़ती-घटती में कोई निश्चित समानुपात नहीं है। यदि हम 'मनुष्य' पद के 'गुण' (Connotation) में 'गोरापन' जोड़ दें, तो 'निर्देश' (Denotation) 'गोरे मनुष्य' हो जायेगा, जो कदाचित् मंसार की जन-संख्या के दो-तिहाई है, परन्तु यदि हम 'मनुष्य' पद के 'गुण' में 'अंधापन' जोड़ दें, तो उसका 'निर्देश' 'अन्धे मनुष्य' हो जायेगा, जिनकी संख्या बहुत कम है। अतः यद्यपि दोनों दशाओं में केवल एक ही 'गुण' जोड़ा गया था, परन्तु पहले की अपेक्षा दूसरी दशा में 'निर्देश' की कमी अधिक थी।

कोई निश्चित समानुपात नहीं है।

§ ३ पदों का विभाग (Division)

कुछ तर्कशास्त्री पदों को एकार्थक (Univocal) और अनेकार्थक (Equivocal) के विभाग में विभाजित करते हैं। जेवन्स (Jevons) के शब्दों में, "एकार्थक (Univocal) पद वे हैं, जिनका एक निश्चित अर्थ को छोड़कर दूसरा अर्थ नहीं होता। और अनेकार्थक (Equivocal) पद वे हैं जिनके एक अर्थ को छोड़कर अनेक अर्थ होते हैं।" उदाहरण के लिए, 'घोड़ा', 'हाथी', 'मनुष्य' इत्यादि एकार्थक शब्द हैं, क्योंकि वे एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। 'हरि', 'पद', 'द्विज' इत्यादि अनेकार्थक शब्द हैं क्योंकि इनके एक से अधिक अर्थ होते हैं।

एकार्थक तथा अनेकार्थक शब्द

वास्तव में यह कोई पदों का विभाग नहीं है, अपितु शब्दों का विभाग है। यदि किसी शब्द का केवल एक ही अर्थ हो तो वह एकार्थक और यदि उसके एक से अधिक अर्थ हो, तो वह

यह पदों का नहीं, अपितु शब्दों का विभाग है।

अनेकार्थक कहा जा सकता है। परन्तु तर्कशास्त्र में किसी पद (term) के एक से अधिक अर्थ नहीं हो सकते। तादात्म्य-नियम के अनुसार, यदि कोई पद प्रारम्भ में किसी एक अर्थ में प्रयुक्त किया जाय, तो युक्ति के अन्त तक वह उसी अर्थ में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। यदि किसी शब्द के एक से अधिक अर्थ हों, तो जितने उसके अर्थ हो सकते हैं, वह उतने ही पदों के बराबर होता है। अतः 'द्विज' पद, ब्राह्मण अर्थवाचक, पक्षीवाचक 'द्विज' पद से सर्वथा भिन्न है।

पदों के
विभिन्न
विभाग

विभिन्न तर्कशास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार से पदों के विभाग किये हैं, जिनमें से निम्नलिखित विभाग मुख्य हैं.—

- (क) एकशब्दात्मक (Simple) और अनेक शब्दात्मक (Composite)।
- (ख) विशिष्ट (Singular) और सामान्य (General)।
- (ग) समूहवाचक (Collective) और असमूहवाचक (Non-collective)।
- (घ) वस्तुवाचक (Concrete) और भाववाचक (Abstract)।
- (ङ) स्वीकारात्मक (Positive), निषेधात्मक (Negative) और अभावात्मक (Privative)।
- (च) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative)।
- (छ) गुणवाचक (Connotative) और अगुणवाचक (Non-connotative)।

इनमें से प्रत्येक विभाग दूसरे विभाग से सम्बद्ध नहीं है और प्रत्येक पद के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त वर्गों में से प्रत्येक के अन्तर्गत किसी एक उप-विभाग में आता हो। किसी पद का स्वरूप (character) निश्चित करते समय हमें यह बतलाना है कि उपर्युक्त वर्गों में से वह किस वर्ग के अन्तर्गत आता है? अर्थात् हमें यह बतलाना होता है कि वह 'एकशब्दात्मक' है अथवा 'अनेक

शब्दात्मक', 'विशिष्ट' है अथवा 'सामान्य' इत्यादि। अब हम इन वर्गों का विस्तार से विवेचन करेंगे।

(क) एक शब्दात्मक (Simple) तथा अनेक शब्दात्मक (Composite) पद ।

किसी पद में या तो एक शब्द होता है अथवा वह अनेक शब्दों से निर्मित होता है। यदि उसमें केवल एक ही शब्द होता है, तो उसे एक शब्दात्मक (Simple) पद कहते हैं यथा—'मनुष्य', 'विद्यार्थी', 'विद्यालय' इत्यादि। यदि कोई पद एक से अधिक शब्दों से निर्मित होता है तो उसे अनेक शब्दात्मक (Composite) पद कहते हैं। यथा—'यह मनुष्य', 'एक योग्य विद्यार्थी', 'बनारस विश्वविद्यालय', 'भारतवर्ष के प्रधान मंत्री' इत्यादि।

एक शब्दात्मक पद में एक शब्द तथा अनेक शब्दात्मक में एक से अधिक शब्द होते हैं।

यह स्पष्ट है कि अनेक शब्दात्मक पदों में कुछ तो पदयोग्य शब्द (Categoiematic words) (अर्थात् ऐसे पद जो स्वयं ही 'पद' की भाँति प्रयुक्त हो सकें) होते हैं, तथा कुछ पद-संयोज्य शब्द (Syncategoiematic words) (अर्थात् ऐसे शब्द जो बिना दूसरे शब्दों के संयोग के स्वयं ही पद की भाँति प्रयुक्त न हो सकें) होते हैं। उदाहरण के लिए, 'भारतवर्ष के प्रधान मंत्री' पद में 'भारतवर्ष' और प्रधान मंत्री तो पदयोग्य शब्द हैं तथा 'के' पद-संयोज्य शब्द है।

(ख) विशिष्ट अथवा व्यक्तिसूचक (Singular) और सामान्य (General) पद ।

जिस पद से केवल एक ही वस्तु का निर्देश होता हो, उसे विशिष्ट (Singular) या व्यक्तिसूचक (Individual) कहते हैं। उदाहरण के लिए, 'बनारस', 'कालिदास', 'गंगा', 'ससार का सर्वोच्च पर्वत शिखर', 'यह मनुष्य', 'यह पुस्तक' इत्यादि

विशिष्ट पद से एक ही वस्तु का निर्देश होता है और—

सामान्य पद
अनेकों
वस्तुओं में से
किसी एक
के लिए
प्रयुक्त किया
जाता है।

विशिष्ट पद है, क्योंकि उनसे एक व्यक्ति या वस्तु का निर्देश होता है। सामान्य पद उसे कहते हैं जो एक ही अर्थ में उन वस्तुओं में से किसी एक के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, जो वस्तुएं कुछ अनिवार्य गुणों के कारण परस्पर समान हैं। यथा—'मनुष्य', 'पुस्तक', 'विद्यार्थी', 'ग्रह' इत्यादि।

अतः 'यह मनुष्य' पद तो विशिष्ट (Singular) है क्योंकि वह एक ही व्यक्ति का निर्देश करता है परन्तु 'मनुष्य' पद सामान्य (General) है क्योंकि वह अनेकों मनुष्यों के वर्ग के किसी एक मनुष्य के लिए उपयुक्त किया जा सकता है, क्योंकि सब मनुष्यों में कुछ अनिवार्य गुण समान रूप से वर्तमान रहते हैं।

यह बात ज्ञातव्य है कि सामान्य पद अनेकों वस्तुओं में से किसी एक पर योही प्रयुक्त नहीं किया जाता, परन्तु इसलिए प्रयुक्त किया जाता है कि उन सब वस्तुओं में कुछ अनिवार्य गुण समान रूप से वर्तमान रहते हैं। अतः सामान्य पद (General term) केवल वस्तुओं का 'निर्देश' ही नहीं करता वरन् उनके द्वारा व्यक्त गुणों को भी व्यक्त करता है। उससे केवल इस बात का ज्ञान ही नहीं होता कि वह कुछ वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है, वरन् यह भी पता चलता है कि उन वस्तुओं में कुछ समानता है। इसी समानता के आधार पर समान-वस्तुओं का एक 'वर्ग' (Class) बनता है, अतः सामान्य पद को वर्ग-पद (Class term) भी कहते हैं।

विशिष्ट पद (Singular terms) तार्किकों के मत में दो प्रकार के होते हैं, यथा—(१) सार्थक विशिष्ट पद (Significant Singular Terms) तथा (२) निरर्थक विशिष्ट पद (Non-significant Singular Terms) अथवा व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names)।

सार्थक और-

(१) सार्थक विशिष्ट पद (Significant Singular

Term) वह है जिसके द्वारा किसी विशेष गुण के आधार पर केवल एक व्यक्ति का बोध हो, जैसे 'जगत् का सबसे ऊँचा पर्वत' एक सार्थक विशिष्ट पद है, क्योंकि 'सबसे अधिक ऊँचा होना' यह एक विशेष गुण है और इसी के कारण केवल एक व्यक्ति का बोध हो रहा है। सबसे अधिक ऊँचा पर्वत केवल एक ही हो सकता है।

(२) निरर्थक विशिष्ट पद (Non-significant Singular Terms) अथवा व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) उन विशिष्ट पदों को कहते हैं जिनसे किसी गुण का बोध नहीं होता। अधिकांश तर्कशास्त्रियों का मत है कि व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) निरर्थक होते हैं ; अर्थात् वे किसी 'गुण' (connotation) को व्यक्त नहीं करते। व्यक्तिवाचक नाम चिह्नमात्र होते हैं जो कि किसी विशेष व्यक्ति, स्थान, वस्तु अथवा घटना का बोध कराते हैं परन्तु उनसे यह तात्पर्य नहीं निकलता कि उनके द्वारा व्यक्त वस्तुओं में कोई विशेष गुण समान है। उदाहरण के लिए 'हरी' पद को लीजिए। इस पद के द्वारा किसी व्यक्ति का निर्देश होता है, परन्तु उसके किसी गुण की अभिव्यक्ति नहीं होती। इससे इस नामवाले किसी भी व्यक्ति का बोध हो सकता है, परन्तु इसलिए नहीं कि इन व्यक्तियों में कोई समान गुण है। यह नाम एक कुत्ते या घोड़े या किसी नदी को भी दिया जा सकता है।

व्यक्ति-
वाचक नाम

(ग) समूहवाचक (Collective) और असमूहवाचक (Non-collective) पद पदों का समष्ट्यर्थ (Collective use) और व्यष्ट्यर्थ (Distributive use)

समूहवाचक पद (Collective term) वह है जो कि समान वस्तुओं के समुदाय के लिए प्रयुक्त हो। यह प्रत्येक वस्तु

समूहवाचक
पद

का अलग-अलग बोध नहीं कराता, वरन उसके समुदाय का एकत्र बोध कराता है । अतः समूह-वाचक पद से (क) विभिन्न वस्तुओं का बोध होता है, (ख) उनमें कोई समानता होती है जिसके आधार पर हम उनको एक समूहमें ग्रहण करते हैं । उदाहरण के लिए 'सेना', 'नौसेना', 'पुस्तकालय' इत्यादि । 'सेना' पद समूहवाचक है क्योंकि उससे प्रत्येक सैनिक का बोध नहीं होता, वरन सैनिक के समुदाय का ही बोध होता है ।

असमूह-
वाचक पद

जो पद समूहवाचक नहीं होते उन्हें असमूहवाचक (Non-collective) पद कहते हैं । कॉफी (Coffey) नामक तर्कशास्त्री ने असमूहवाचक पदों को 'ऐकिक-पद' (Unitary Term) का नाम दिया है । 'असमूहवाचक' अथवा 'ऐकिक-पद' किसी समुदायका द्योतक नहीं होता । यह बात ध्यान देने की है कि ऐसे पदों को 'व्याप्त-पद' (Distributive Terms) नहीं समझना चाहिए ।

पदों का
समष्ट्यर्थ
और
व्यष्ट्यर्थ
में प्रयोग

भाषा में बहुत कम शब्द ऐसे हैं जो स्वयं समष्टि या समुदाय के बोधक हों । कई स्थानों पर समष्टि का बोध कराने के लिए 'सब' अथवा 'सब मिलकर' इत्यादि शब्दों से काम लिया जाता है । यदि हम कहें 'एक त्रिभुज के सब कोण मिलकर दो समकोण के बराबर होते हैं' तो यहाँ हम 'सब कोण' समष्टि के अर्थ में ले रहे हैं, अर्थात् सब कोण मिलकर दो समकोण के बराबर होते हैं । यदि हम कहें 'एक त्रिभुज के सब कोण दो समकोण से छोटे होते हैं', तो यहाँ 'सब' समष्टि के अर्थ में नहीं, वरन व्यष्टि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् सब कोण अलग-अलग दो समकोण से छोटे होते हैं । यही पदों का समष्ट्यर्थ (Collective use) और व्यष्ट्यर्थ (Distributive use) में प्रयोग कहलाता है ।

कोई समूहवाचक पद समष्ट्यर्थ अथवा व्यष्ट्यर्थ में प्रयुक्त हो सकता है । यदि हम कहें, 'जूरी (Jury) अपने मत में

अविभक्त थी', तो यहाँ हमारा तात्पर्य 'जूरी' के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है, अर्थात् यहाँ 'जूरी' शब्द व्यष्ट्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यदि हम कहे कि 'जूरी नौ मनुष्यों का समुदाय है', तो यहाँ हमारा तात्पर्य नौ मनुष्यों के समुदाय से है, अर्थात् यहाँ 'जूरी' शब्द समष्ट्यर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

समूहवाचक पद विशिष्ट (singular) या सामान्य (general) हो सकता है। यदि कोई समूहवाचक पद केवल एक ही समुदाय का बोध कराता हो, तो वह विशिष्ट होता है ; यथा—'कलकत्ते की नेशनल लाइब्रेरी', 'भारतीय-जनता' इत्यादि। यदि समूहवाचक पद कई समुदायों में से किसी भी समुदाय का बोध करावे तो वह सामान्य (general) होता है, यथा—'पुस्तकालय' इत्यादि। 'पुस्तकालय' सामान्य समूहवाचक पद है क्योंकि उससे पुस्तकों के किसी विशेष समुदाय का बोध नहीं होता, परन्तु ससार के अनेकों पुस्तकालयों में से किसी एक का बोध होता है।

समूहवाचक पद विशिष्ट या सामान्य हो सकता है।

(घ) वस्तुवाचक (Concrete) और भाववाचक (Abstract) पद

जिससे किसी द्रव्य या वस्तु का बोध हो, उसे वस्तुवाचक पद (Concrete term) और जिससे किसी भाव या गुण का बोध हो, उसे भाववाचक पद (Abstract term) कहते हैं। उदाहरण के लिए, 'मनुष्य', 'पुस्तक', 'विद्यालय' 'त्रिभुज' वस्तुवाचक पद हैं क्योंकि वे वस्तुओं को व्यक्त करते हैं और 'मनुष्यता' 'समानता' 'भोलापन' 'सफेदी' इत्यादि भाववाचक पद हैं क्योंकि इनसे केवल गुणों का बोध होता है।

वस्तुवाचक और भाववाचक पद

'वस्तु' (thing) से तात्पर्य उससे होता है, जिसमें कुछ 'गुण' हों। प्रत्येक वस्तु में कुछ गुण होते हैं और गुण सर्वदा वस्तुओं

मे ही होते हैं। वस्तु और गुण पृथक्-पृथक् नहीं रह सकते। परन्तु यह संभव हो सकता है कि किसी गुण के बारे में उसे वस्तु से पृथक् करके भी विचार किया जा सके और ऐसे ही गुण का नाम भाववाचक पद (Abstract term) है।

वस्तुवाचक
और भाव-
वाचक पदों
के युग्म

वस्तुवाचक और भाववाचक नाम प्रायः युग्म में रहते हैं ; यथा—मनुष्य-मनुष्यता , जीव-सजीवता , कजूस-कजूसी ; बुढ़ा-बुढ़ापा ; शक्तिमान-शक्ति , थका व्यक्ति-थकान, इत्यादि। परन्तु यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रत्येक वस्तुवाचक पद का सगत भाववाचक पद होता है।

यह बात ज्ञातव्य है कि विशेषण (adjectives) वस्तुवाचक (concrete) ही हैं, भाववाचक (abstract) नहीं। यदि हम कहे 'यह पुस्तक उपयोगी है,' तो 'उपयोगी' विशेषण 'पुस्तक' पर चरितार्थ होता है। उसका सगत गुण 'उपयोगिता' होता है। इसी प्रकार 'बराबर', 'भला', 'कृतज्ञ', 'विचारशील' आदि विशेषण वस्तुओं के नाम हैं; अतः वे वस्तुवाचक पद हैं। उनके सगत भाववाचक पद क्रमशः 'बराबरी', 'भलाई', 'कृतज्ञता' एवं 'विचारशीलता' हैं।

गुणात्मक
पद

कुछ तर्कशास्त्रियों ने एक विभाग पदों का ऐसा निकाला है जिसे वे गुणात्मक (Attributive) कहते हैं। इनके अन्तर्गत वे विशेषण-पद तथा पूर्वकालिक-क्रिया (Participles) पदों का समावेश करते हैं। भाववाचक पदों से ये इस बात में भिन्न हैं कि ये पद, कर्त्ता या उद्देश्य के रूप में तो नहीं प्रयुक्त किये जा सकते किन्तु विधेय के रूप में उनका प्रयोग हो सकता है। जैसे 'मानवीय', 'पढ़ा हुआ' 'बहादुर'। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'महात्मा गांधी का आचरण मानवीय है', 'यह पाठ पढ़ा हुआ है', 'अर्जुन बहादुर है।'।

विशेष और सामान्य भाववाचक पद

तर्कशास्त्रियोमे इस विषय मे बड़ा मतभेद है कि भाववाचक पदों का विभाग 'विशिष्ट' (singular) और 'सामान्य' (general) मे किया जा सकता है या नहीं। यह दृष्टिकोण कि उनका विभाग इस प्रकार किया जा सकता अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

भाववाचक पदों का 'विशिष्ट' और 'सामान्य' में विभाग

जो भाववाचक पद किसी एक गुण को व्यक्त करता हो, वह विशेष (singular) होता है क्योंकि यद्यपि वह गुण अनेक वस्तुओं मे वर्तमान हो, परन्तु वह गुण तो एक ही होता है। यद्यपि अनेकों वर्गीकार वस्तुये हो सकती है, परन्तु 'वर्गता' का गुण तो एक ही होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की 'वर्गताओं' के बारे मे सोचना असंभव ही है। इसी प्रकार, 'बराबरी', 'सत्यनिष्ठा', 'सुन्दरता' आदि विशिष्ट भाववाचक पद हैं।

जब कोई भाववाचक पद अनेकों गुणों का नाम हो, तो वह 'सामान्य' (general) हो जाता है, यथा—'रग', 'सदाचार', इत्यादि। रग भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं यथा 'सफेदी', 'लाली', 'कालापन', 'हरापन', 'पीलापन' इत्यादि। अतः भाववाचक पद 'रग' सामान्य हुआ। इसी प्रकार 'सदाचार' के अन्तर्गत भी अनेकों गुण आ जाते हैं यथा—'सत्यवादिता', 'दया', 'क्षमा', 'सच्चरित्रता' इत्यादि।

(इ.) स्वीकारात्मक (Positive), निषेधात्मक (Negative) और अभावात्मक (Privative) पदः अपरिमित पद (Infinite Terms)

स्वीकारात्मक (Positive) पद वह है, जिससे किसी वस्तु या गुण के अस्तित्व का बोध होता हो; जैसे—मनुष्य, मानवीय, प्रसन्न, सुख, दुःख इत्यादि। निषेधात्मक (Negative) पद उसे कहते

स्वीकारा-
त्मक, निषे-
धात्मक और
अभावात्मक
पद

है, जिससे किसी वस्तु या गुण के अस्तित्व का बोध होता हो; जैसे—‘अ-मनुष्य’, ‘अमानवीय’, ‘अप्रसन्न’, ‘अ-सुख’ इत्यादि । अभावात्मक (Privative) पद उसे कहते हैं जो कि इस समय उन गुणों के अस्तित्व का बोध कराता है, जो साधारणतया किसी वस्तु में रहते हैं । अतः अभावात्मक पद यह बतलाता है कि किसी वस्तु में इस समय उस गुण का अभाव है जो कि सामान्यतया उस वस्तु में रह सकते हैं, जैसे—‘अन्धा’, ‘बहरा’, ‘लँगडा’, ‘गूंगा’, ‘बन्ध्या’ इत्यादि । किसी मनुष्य को ‘अन्धा’ तभी कहते हैं जबकि उसमें दृष्टि का अभाव हो, परन्तु उसमें वे अंग उपस्थित हो, जिनकी सहायता से वह देख सकने में समर्थ हो पाता, यदि दुर्घटनावश उनमें आघात न लगता । एक पेड़ को हम ‘अन्धा’ नहीं कहते, क्योंकि किसी भी परिस्थिति में वह देख नहीं सकता था । अतः अभावात्मक (Privative) पदों का स्थान स्वीकारात्मक (Positive) और निषेधात्मक (Negative) पदों के मध्य का है । निषेधात्मक पदों की भाँति वे किसी गुण के अभाव का बोध कराते हैं, और स्वीकारात्मक (Positive) पदों की भाँति वे इस बात का बोध भी कराते हैं कि सामान्यतया वह गुण उस वस्तु में पाया जा सकता है ।

पद का
स्वरूप
उसके
‘आकार’ से
नहीं, धरन
उसके अर्थ
से निश्चित
करना
चाहिए ।

प्रायः निषेधात्मक पद (Negative Terms) वे होते हैं जिनके पहले ‘अ’, ‘अन’, ‘निस्’, ‘निर्’ आदि उपसर्ग लग रहे होते हैं । किन्तु कुछ पद ऐसे भी हैं जिनके पहले निषेधवाचक उपसर्ग न रहने पर भी वे निषेधात्मक गिने जाते हैं । वास्तव में इस विषय में पद के आकार पर न जाकर उसके अर्थ पर विशेष ध्यान देना चाहिए । इस प्रकार के शब्द जैसे—अप्रसन्न (दुखी), अयोग्य (मूर्ख), अमूल्य (अधिक मूल्यवान्), बुद्धिहीन (मूर्ख), आकार में तो अवश्य निषेधात्मक है, परन्तु उनका स्वभाव स्वीकारात्मक है । साथ ही, ‘सन्देह’ अथवा

‘भ्रम’ (विश्वास का अभाव) ‘परदेशी’ (अपने देश का न होना), अन्धकार (प्रकाश का अभाव) इत्यादि शब्दों का आकार तो स्वीकारात्मक है, परन्तु उनका अर्थ निषेधात्मक है।

अभाववाचक पद उन वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होते हैं, जिनमें गुण नहीं पाये जाते किन्तु उनको रखने की योग्यता होती है और प्रायः रखते हैं, तथा निषेधात्मक पद वे हैं जिनमें गुण नहीं है और न रखने की योग्यता ही है। यह बात ध्यान देने की है कि विशेषण पद और पूर्व-कालिक-क्रिया पद अभावात्मक पदों की भाँति समझने चाहिए और उन्हीं के अनुरूप भाववाचक पदों को निषेधात्मक समझना चाहिए। इस प्रकार ‘अंधा’, ‘बधिर’, ‘मूक’, ‘सुस्त’ आदि अभाववाचक पद हैं क्योंकि वे उन गुणों को नहीं रखते हैं, क्योंकि उनको प्राप्त करने की योग्यता उनमें है। इनके सगत भाववाचक पदों को निषेधात्मक मानना चाहिए, जैसे—‘अन्धापन’, ‘बधिरपन’, ‘मूकता’, ‘सुस्ती’ इत्यादि ; क्योंकि इन पदों का अर्थ क्रमशः ‘दृष्टि का अभाव’, ‘श्रवणेन्द्रिय का अभाव’, ‘वाक्-शक्ति का अभाव’ एवं ‘क्रियाशीलता का अभाव’ है।

जब निषेधात्मक पद अपने स्वीकारात्मक पद का सर्वथा विरोधी होता है, तो उसे ‘अपरिमित पद’ (Infinite Terms) कहते हैं क्योंकि वह अपने स्वीकारात्मक पद के अतिरिक्त अन्य सब पदों का बोध कराता है। इस प्रकार ‘अश्वेत’ पद ‘श्वेत’ के अतिरिक्त सबको बोधित करता है। उसका क्षेत्र अपरिमित तथा असीमित होता है। अरस्तू (Aristotle) ने कहा था कि इस प्रकार के पदों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इनका अर्थ सदिग्ध होता है।

✓ टिप्पणी—विरोधी-पद (Opposition in Terms): विरुद्ध (Contradictory) तथा विपरीत (Contrary) पद

जिन पदों से ऐसे गुण सूचित होते हैं जो एक साथ ही एक ही

विरोधी पद वस्तु में नहीं रह सकते उन्हें विरोधी (Opposite) या विसंवादी (Incompatible) पद कहते हैं। ये दो प्रकार के हैं ; यथा—

विरुद्ध पद (१) विरुद्ध (Contradictory) तथा
(२) विपरीत (Contrary) ।

विपरीत, विरुद्ध, (१) जब दो पद परस्पर व्यावर्तक (Exclusive) होते हैं और समस्त निर्दिष्ट वस्तुओं का निःशेषीकरण (exhaust) करते हैं, तब वे विरुद्ध (Contradictory) पद कहलाते हैं। उदाहरण के लिए 'श्वेत' तथा 'अश्वेत' पद परस्पर विरुद्ध (Contradictory) हैं क्योंकि कोई भी वस्तु श्वेत और अश्वेत दोनों नहीं हो सकती और श्वेत और अश्वेत दोनों से सब रंगों का निःशेषीकरण हो जाता है।

विपरीत पद (२) जब एक प्रकरण या विषय के भीतर दो पद परस्पर अधिक से अधिक विपर्यय प्रकट करते हैं, तो वे विपरीत पद (Contrary terms) कहलाते हैं। यथा—'श्याम' और 'श्वेत' विपरीत पद हैं क्योंकि रंग में, विषय में इन दोनों में परस्पर अधिक से अधिक विपर्यय है। इसी प्रकार 'बुद्धिमान' और 'निर्बुद्धि', 'सवल' और 'निर्वल', 'सुखी' और 'दुखी' इत्यादि विपरीत पदों के युग्म हैं।

विपरीत पद दोनों असत्य हो सकते हैं विपरीत (Contrary) और विरुद्ध (Contradictory) पदों में समानता यह है कि इनमें से कोई भी द्वन्द्व एक ही काल में एक ही वस्तु के सम्बन्ध में एक साथ सत्य नहीं हो सकता। कोई भी वस्तु एक ही काल में एक ही साथ 'श्याम' और 'श्वेत' (विपरीत) दोनों नहीं हो सकती। इसी प्रकार कोई भी वस्तु एक ही काल में एक ही साथ 'श्वेत' और 'अश्वेत' (विरुद्ध) दोनों नहीं हो सकती। इन दोनों में भिन्नता यह है कि विपरीत पद दोनों एक ही वस्तु के सम्बन्ध में असत्य हो सकते हैं, पर विरुद्ध पद एक ही वस्तु के सम्बन्ध में एक ही काल में दोनों असत्य नहीं हो सकते। यह सम्भव है कि

एक वस्तु न तो 'श्याम' हो और न 'श्वेत', पर वह या तो 'श्वेत' या 'अश्वेत' अवश्य होगी। विरुद्ध पदों में बीच में कोई मध्यस्थ सभावना नहीं होती—वह वस्तु उन दोनों में से एक अवश्य होगी। परन्तु विपरीत पदों के बीच मध्यस्थ दशा हो सकती है। उदाहरणके लिए कोई वस्तु 'श्याम' या 'श्वेत' न होकर 'नीली', 'पीली' या अन्य किसी रंग की भी तो हो सकती है। (इस प्रसंग में देखिए : द्वितीय प्रकरण : विरोधबाधक नियम और निर्मध्यम नियम)

परन्तु दोनों विरुद्ध पद असत्य नहीं हो सकते।

(च) निरपेक्ष (Absolute) और सापेक्ष (Relative) पद

निरपेक्ष पद को अन्य वस्तु के आश्रय की आवश्यकता नहीं पड़ती;

निरपेक्ष-पद (Absolute term) उस पद या गुण का नाम है जो किसी अन्य वस्तु के आश्रय के बिना स्वयं अपना एक निश्चित अर्थ रखता है; जैसे—'पेड़', 'गुब्ब', 'घोड़ा', 'सोना' इत्यादि।

सापेक्ष-पद (Relative term) वह है जिसका अर्थ किसी अन्य पद के आश्रय से ही स्पष्ट होता है। सापेक्ष पद उस वस्तु का निर्देश करता है जिसके बारे में किसी अन्य पद के अभाव में विचार करना ही संभव न हो। यथा 'पिता' पद पर बिना 'पुत्र' पद के सम्बन्ध के विचार ही नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार 'गिरक' और 'शिष्य', 'कारण' और 'कार्य', 'पति' और 'पत्नी', 'राजा' और 'प्रजा', 'बड़ा' और 'छोटा', 'उत्तर' और 'दक्षिण' इत्यादि परस्पर सापेक्ष पद हैं।

सापेक्ष पद अन्य वस्तुओं पर आश्रित होते हैं।

सापेक्ष-पद सर्वदा युग्म में रहते हैं और इस युग्म के प्रत्येक पद को 'सह-सम्बन्धी' (Correlative) पद कहते हैं। कभी-कभी दोनों सह-सम्बन्धी पदों को एक ही नाम से पुकारा जाता है ; यथा—'साथी-साथी', 'मित्र-मित्र', 'पास-पास' इत्यादि। और कभी-कभी सह-सम्बन्धी पदों के भिन्न-भिन्न नाम होते हैं ; यथा—'पिता' और 'पुत्र', 'पति' और 'पत्नी' इत्यादि। जिसके

सापेक्ष पद सदा युग्म में रहते हैं।

आधार पर सापेक्ष-पद एक दूसरे पर आश्रित होते हैं, वह सम्बन्धाधार (Fundamentum relationis) कहलाता है। उदाहरण के लिए, साझीदारों में साझे का तथ्य तथा पति और पत्नी में उनके विवाह-सम्बन्धी तथ्य सम्बन्धाधार हैं।

तर्कशास्त्र
में 'सापेक्ष'
का अर्थ

यह सच है कि ससार की कोई भी वस्तु पूर्णरूपेण स्वतन्त्र या निरपेक्ष नहीं है और वास्तव में प्रत्येक वस्तु का किसी अन्य वस्तु से सम्बन्ध होता ही है। प्रत्येक वस्तु का आदि और अन्त होता है और अपने जीवन-काल में अन्य वस्तुओं की क्रियाओं का प्रभाव उस पर पड़ता रहता है। अतः उन्हें पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं कह सकते, इस अर्थ में प्रत्येक वस्तु सापेक्ष (relative) हुई। परन्तु तर्कशास्त्र में 'सापेक्ष' पद इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं किया जाता। केवल उन्हीं पदों को 'सापेक्ष' माना जाता है जो कि किसी विशेष प्रकार के सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। वह सम्बन्ध इतना घनिष्ठ होता है कि एक पद बिना दूसरे पद के प्रसंग के समझा ही नहीं जा सकता।

गुणवाचक
पदों में
'निर्देश'
और 'गुण'
दोनों होते
हैं;

(छ) गुणवाचक (Connotative) और अगुणवाचक (Non-Connotative) पद

अगुणवाचक
पदों में या
तो 'निर्देश'
होता है,
या 'गुण'।

गुणवाचक (Connotative) पद वे हैं, जो वस्तुओं और गुणों दोनों का बोध कराते हैं। और अगुणवाचक (Non-Connotative) पद उन्हें कहते हैं जो या तो वस्तु का ही बोध करावें, या गुण का ही बोध करावें। अतः गुणवाचक पदों के 'निर्देश' (Denotation) और 'गुण' (Connotation) दोनों होते हैं और अगुणवाचक पदों का या तो केवल 'निर्देश' होता है अथवा केवल 'गुण'। मिल (Mill) के शब्दों में "अगुणवाचक पद वह है, जो या तो केवल गुणी (subject) को व्यक्त करता है, अथवा केवल गुण (attribute) को।

गुणवाचक पद गुणी का निर्देश करता है तथा गुणो को व्यक्त करता है।”

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ‘गुण’ और ‘गुणवाचक’ एवं ‘अगुणवाचक’ शब्दों के अर्थों में भ्रान्ति न होने पावे। गुणवाचक पद वे हैं, जो केवल गुण ही नहीं बतलाते, बल्कि ‘गुण’ और ‘निर्देश’ दोनों बतलाते हैं। अगुणवाचक पद का अर्थ यह नहीं है कि जिसमें ‘गुण’ नहीं हो, बरन् वह पद जो या तो केवल ‘निर्देश’ करता है या केवल ‘गुण’ बतलाता है, पर दोनों नहीं बतलाता। यह विवरण मिल (Mill) की परिभाषा के अनुसार दिया गया है। परन्तु वेल्डन (Weldon) का कहना है कि अगुणवाचक पद वह है, जो केवल किसी वस्तु का निर्देश करता है, अर्थात् जो ‘गुण’ नहीं बतलाता।

उदाहरण के लिए, ‘मनुष्य’ पद गुणवाचक है क्योंकि वह ‘सब मनुष्यों’ का निर्देश करता है और ‘प्राणित्व’ तथा ‘विचारशीलता’ के गुणों को व्यक्त करता है। ‘श्वेत’ पद भी गुणवाचक है क्योंकि वह समस्त श्वेत वस्तुओं का निर्देश करता है जैसे हिम, खडिया, चूना इत्यादि और साथ ही साथ वह ‘श्वेतता’ के गुण को भी व्यक्त करता है। इसी प्रकार सदाचार’ पद गुणवाचक है क्योंकि वह विभिन्न प्रकार के सदाचारों यथा—सत्यता, पवित्रता, साहस, सच्चरित्रता आदि का निर्देश करता है और उस गुण का निर्देश करता है जो कि इन सभी प्रकार के सदाचारों में वर्तमान रहता है। परन्तु ‘वर्गता’ अगुणवाचक पद है क्योंकि वह केवल एक ‘गुण’ का बोध कराता है; किसी वस्तु का निर्देश नहीं करता। मिल (Mill) का कथन है कि व्यक्तिवाचक नाम, यथा, हरिश्चन्द्र इत्यादि अगुणवाचक पद है, क्योंकि उनमें केवल ‘निर्देश’ (Denotation) होता है, ‘गुण’ (Connotation) नहीं।

दृष्टान्त

निम्नलिखित वर्ग गुणवाचक पदों के हैं :—

गुणवाचक
पद :
(क) सब
सामान्य पद

(क) सब सामान्य (general) पद—चाहे वे वस्तुवाचक (concrete) हों, या भाववाचक (abstract)—गुणवाचक होते हैं। 'मनुष्य' पद—जो कि एक वस्तुवाचक सामान्य पद है—गुणवाचक है क्योंकि वह 'सब मनुष्यों' का निर्देश करता है और 'प्राणित्व' और 'विचारशीलता' के गुणों को भी व्यक्त करता है। 'रंग' पद—जो कि भाववाचक सामान्य पद है—भी गुणवाचक है क्योंकि वह विभिन्न प्रकार के रंगों का निर्देश करता है, जैसे श्वेतता, श्यामता, लाली, हरापन, पीलापन इत्यादि और उस 'गुण' को व्यक्त करता है जो कि सभी रंगों में समान रूप से हो।

(ख) कुछ
विशिष्ट पद

(ख) कुछ विशिष्ट पद, जो कि वस्तुओं का निर्देश करते हैं और गुणों को व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, 'सूर्य', 'चन्द्रमा', 'प्रयाग विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति', 'उत्तरप्रदेश के वर्तमान राज्यपाल', 'एशिया का सर्वोच्च पर्वत', 'संसार का सबसे बड़ा नगर' इत्यादि गुणवाचक पद हैं क्योंकि ये वस्तुओं का निर्देश करते हैं और साथ उन वस्तुओं के अनेक गुणों का बोध कराते हैं। समूह-बोधक विशिष्ट पद भी गुणवाचक होते हैं यथा 'प्रयाग विश्वविद्यालय का पुस्तकालय', इत्यादि।

अगुणवाचक
पद :
(क) वि-
शिष्ट भाव-
वाचक पद

निम्नलिखित वर्ग अगुणवाचक पदों के हैं :

(क) विशिष्ट भाववाचक पद (Singular Abstract terms) यथा—'समानता', 'वर्गता', 'सत्यनिष्ठा', इत्यादि। ये अगुणवाचक-पद हैं, क्योंकि इनमें 'निर्देश' नहीं होता और केवल 'गुण' होता है।

(ख) व्य-
क्तिवाचक
नाम

(ख) व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) : मिल (Mill) तथा उस विचारधारा के अन्य तर्कशास्त्रियों का कहना है कि व्यक्तिवाचक नाम अगुणवाचक होते हैं क्योंकि उनमें केवल

‘निर्देश’ होता है, ‘गुण’ नहीं। परन्तु यह समस्या बड़ी विवादास्पद है।

क्या व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक (Connotative) होते हैं? तर्कशास्त्रियों में इस बात में बड़ा मतभेद है कि व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) में गुण (Connotation) होता है या नहीं? कुछ तर्कशास्त्री, यथा मिल (Mill) का विचार है कि वे गुणवाचक (Connotative) नहीं होते—उनका केवल ‘निर्देश’ (Denotation) होता है, ‘गुण’ (Connotation) नहीं। अन्य तर्कशास्त्री, यथा—जैवन्स (Jevons) का विचार ठीक इसका उल्टा है। क्योंकि वह इन्हें ‘गुणवाचक’ मानता है, जिनके ‘निर्देश’ और ‘गुण’ दोनों होते हैं। अब हम इन दोनों दृष्टिकोणों का विस्तार में वर्णन करेंगे।

मिल (Mill) के अनुसार व्यक्तिवाचक नाम अगुणवाचक (Non-Connotative) होते हैं। उसका कहना है कि “व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक नहीं होते। व्यक्तिवाचक नाम उन व्यक्ति-विशेषों का निर्देश करते हैं, जो उन नामों से पुकारे जाते हैं, परन्तु वे उनके गुणों को व्यजित नहीं करते। जब हम किसी बच्चे का नाम ‘पॉल’ अथवा किसी कुत्ते का नाम ‘सीजर’ रखते हैं, तो ये नाम केवल प्रतीक-मात्र होते हैं, ताकि इनके सम्बन्ध में वार्तालाप किया जा सके।” वास्तव में व्यक्तिवाचक नाम का कोई अर्थ नहीं होता, “वह तो एक अर्थहीन चिह्न (unmeaning mark)-मात्र होता है।”

“जब हम किसी बच्चे का नाम ‘पॉल’ अथवा किसी कुत्ते का नाम ‘सीजर’ रखते हैं तो ये नाम केवल प्रतीक-मात्र होते हैं, ताकि इनके सम्बन्ध में वार्तालाप किया जा सके। यह कहा जा सकता है कि कोई नाम अन्य वस्तुओं को न देकर किसी विशेष वस्तु को देने का कोई कारण अवश्य होना चाहिए। और यह बात सत्य भी है।

क्या व्यक्ति-
वाचक नाम
गुणवाचक
होते हैं?

मिल :
व्यक्तिवाचक
नाम गुण-
वाचक नहीं
होते।

परन्तु एक बार जब नामकरण कर दिया गया, तो फिर उस कारण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यह हो सकता है कि 'डार्ट' नदी के मुहाने पर बसा होने के कारण एक नगर का नाम 'डार्ट-माउथ' पड़ गया। परन्तु 'डार्टमाउथ' नाम का यह तात्पर्य नहीं है कि वह नगर 'डार्ट' नदीके मुहाने पर ही स्थित हो। यदि रेत से 'डार्ट' नदी का मुहाना पट जाय, अथवा भूकम्प के कारण 'डार्ट' नदी का प्रवाह दूसरी ओर को हो जाय, जिससे वह नदी नगर से काफी दूर हट जाय, तो ऐसी दशा में भी उस नगर का नाम नहीं बदला जायगा। अतः यह युक्ति कि 'डार्ट' नदी के मुख पर बसा होने के कारण यह नगर 'डार्टमाउथ' कहलाता है, अधिक महत्व की नहीं है, अन्यथा उस तथ्य के असत्य हो जाने पर उस नगर का वही नाम रखने में कोई सार नहीं है। व्यक्तिवाचक नाम केवल वस्तुओं से सम्बद्ध रहते हैं, उन वस्तुओं में किसी 'गुण' की उपस्थिति से नहीं।"

जैवन्स :
व्यक्ति-
वाचक नाम
गुणवाचक
होते हैं।

इसके विपरीत, जैवन्स (Jevons) का कथन है कि व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक होते हैं और वे व्यक्तियों का 'निर्देश' करने के साथ-साथ उनके विशेष हाव-भाव, आकार एवं चरित्र की व्यञ्जना भी करते हैं। किसी देश को जब हम 'इंग्लैण्ड' नाम से पुकारते हैं, तो ऐसा हम इसलिए करते हैं कि उस देश की कुछ निश्चित विशेषताये हैं।

जैवन्स (Jevons) के अनुसार, मिल का दृष्टिकोण "सम्भवतः अशुद्धिपूर्ण" है। उसका कहना है कि 'मिल' (Mill) ने "किसी वस्तु के व्युत्पत्त्यर्थ (etymological meaning) (अर्थात् वे परिस्थितियाँ, जिनके कारण वह नाम उस वस्तु को दिया गया) को उसके 'गुण' (Connotation) के साथ गड़बड़ा दिया है। जो व्यक्ति 'इंग्लैण्ड' शब्द का प्रयोग करता है और जानता है कि इस नाम से किस वस्तु का निर्देश होता है, वह इस

देश की विशेषताओं एवं परिस्थितियों से अनभिज्ञ नहीं रह सकता । किसी भी व्यक्ति को जो 'डार्टमाउथ' नगर को जानता है, यह ज्ञात हो जाता है कि उस नगर का यह नाम क्यों पड़ा ? यदि 'डार्ट' नदी हट जाय या सूख जाय तो इस कारण उस नगर में परिवर्तन हो जायगा और उसके नाम के भ्रष्टत्व में भी तदनुसार परिवर्तन हो जायगा । तब यह नाम 'डार्ट' नदी के मुहाने पर बसे नगर को व्यजित नहीं करेगा, वरन् उस नगर को व्यक्त करेगा, जो पहले 'डार्ट' नदी के मुहाने पर बसा हुआ था, तथा यह केवल एक ऐतिहासिक संयोग ही होगा कि उस नगर के लिए यह नाम उपयुक्त नहीं जँचेगा । इसी प्रकार अन्य व्यक्तिवाचक नाम, यथा 'जॉन स्मिथ' भी अर्थहीन होगा, जब तक हम 'जॉन स्मिथ' से परिचित न हों । यह सच है कि इस नाम-मात्र से ही यह बोध हो जाता है कि वह पुरुष है, परन्तु ज्योंही हम इस नामधारी व्यक्ति से परिचित हो जाते हैं, तो उस नाम से उस व्यक्ति के विशेष हाव-भाव, शारीरिक गठन तथा चरित्र की व्यञ्जना भी हो जाती है । वास्तव में किसी वस्तु के विशेष हाव-भाव, रूप-रेखा तथा परिस्थिति के द्वारा ही हम उसे पहचान पाते हैं । अतः किसी नाम का स्थिर अर्थ तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि हम (कम से कम मन में ही) उसके साथ उसके द्वारा व्यजित परिभाषा संयुक्त न कर दें, जिससे हमें पता चल सके कि उसके द्वारा कोई वस्तु व्यजित भी हुई है अथवा नहीं । यदि 'जॉन स्मिथ' नाम मेरे मन में 'जॉन स्मिथ' के गुणों का ज्ञान जाग्रत नहीं करता तो उससे मिलने पर मैं उसे किस प्रकार पहचान सकूँगा, क्योंकि उसका नाम उसके चेहरे पर तो नहीं लिखा होगा ।”

डॉक्टर पी० के० रे (Dr. P. K. Ray) का कथन है कि व्यक्तिवाचक नामों का गुणवाचक होने या न होने का प्रश्न आकारगत तर्कशास्त्र का विषय न होकर भाषा-विज्ञान (Philology)

डॉ० पी० के० रे : यह विषय तर्क-

—शास्त्र का नहीं है।

तथा मनोविज्ञान (Psychology) का विषय है। मनो-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अर्थात् व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर जब व्यक्तिवाचक नाम को किसी व्यक्ति या वस्तु के चिह्न या प्रतीक के रूप में प्रथम बार प्रयुक्त किया जाता है, तो उस नाम के साथ कोई गुण सयुक्त नहीं रहता, परन्तु जब हमारा उस वस्तु-सम्बन्धी ज्ञान बढ़ता जाता है तो उसके गुण भी उस नाम के साथ सम्बद्ध होने लगते हैं और तब वह नाम केवल उस वस्तु या व्यक्ति का ही निर्देश नहीं करता, वरन् उसके गुणों को भी व्यक्त करता है। डा० पी० के० रे के विचार में यह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किक दृष्टिकोण में सतोपप्रद नहीं है।

कारवेथ रीड

कारवेथ रीड (Carveth Read) के विचारों में यह मत अधिक सतोपप्रद है कि सामान्य रीति से प्रयुक्त व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक नहीं होते, क्योंकि (१) व्यक्तिवाचक नामों का जो अर्थ होता है, वह केवल आकस्मिक ही होता है। और इस अर्थ को 'गुण' (Connotation) नहीं मानना चाहिए। व्यक्तिवाचक नाम 'लन्दन' अथवा 'नैपोलियन' का केवल आकस्मिक महत्व ही है क्योंकि इन नामों से प्रसिद्ध व्यक्ति अथवा स्थानों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों या स्थानों का भी यही नाम हो सकता है। और (२) जो विशेषताएँ एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से भिन्न करती हैं, वे असंख्य होती हैं और किसी व्यक्ति को भले प्रकार पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि उन समस्त विशेषताओं की गणना की जाय। परन्तु ऐसी गणना करना असम्भव है। अतः व्यक्तिवाचक नामों का कोई उपयुक्त-गुण (assignable connotation) नहीं होता। यह बात ज्ञातव्य है कि कारवेथ रीड (Carveth Read) की दूसरी दलील पक्की नहीं प्रतीत होती। हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या व्यक्तिवाचक नामों में 'गुण' होता है अथवा नहीं, यह नहीं कि हम सम्पूर्ण

व्यक्ति-
वाचक नाम
गुणवाचक
नहीं होते।

गुण को स्पष्टता से व्यक्त कर सकते हैं अथवा नहीं। कारवैथ रीड (Carveth Read) ने इस कठिनार्ड का अनुभव अवश्य किया; तभी तो उसने यह नहीं कहा कि व्यक्तिवाचक नामों में गुण नहीं होता, प्रत्युत यह कहा कि उनमें कोई 'उपयुक्त गुण' नहीं होता।

यह सारा विवाद 'गुण' (Connotation) शब्द के अर्थ की स्पष्टता न होने के कारण है। 'गुण' को 'सुझाव' (Suggestion) के भाव में नहीं समझना चाहिए। 'गुण' तो वस्तु का निज अंश होता है और वही उसके बोध कराने में हेतु होता है। किन्तु सुझाव (Suggestion) तो वह है, जिसके कारण उन गुणों का सकेत मिले जो अन्य प्रकार से ज्ञात हो सके। अतः यह कहना उचित नहीं है कि व्यक्तिवाचक नाम 'इंगलैण्ड' एक विशेष देश के गुणों को व्यक्त करता है। यह संभव हो सकता है कि इस नाम से किसी व्यक्ति को उन गुणों का सुझाव मिल सके, जिन्हें वह अन्य किसी विधि से जानता हो, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि इस नाम-मात्र में वे गुण निहित हैं। वास्तव में, यह आवश्यक नहीं कि 'इंगलैण्ड' किसी देश ही का नाम हो; वह किसी घोड़े, मकान या जहाज का नाम भी हो सकता है। जैवन्स (Jevons) का यह कथन सर्वथा अशुद्ध प्रतीत होता है कि व्यक्तिवाचक नाम 'जॉन स्मिथ' से ही इन गुणों का बोध हो जाता है कि वह ट्यूटन है और पुरुष है क्योंकि ऐसा भी संभव हो सकता है कि यह किसी मनुष्य का नाम ही न हो। व्यक्तिवाचक नाम 'जॉन' अनेकों व्यक्ति धारण कर सकते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें कुछ समान गुण हैं। इससे इतना अर्थ भी नहीं निकलता कि वे मनुष्य हैं, क्योंकि कुत्ते और घोड़े को भी तो इस नाम से पुकारा जा सकता है। कॉफी (Coffey) का कथन है कि "कोई व्यक्ति किसी वस्तु या स्थान का नाम उसके गुणों को विचार कर कभी नहीं रखा करता।" अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तार्किक

उचित दृष्टि-
कोण यह है
कि व्यक्ति-
वाचक नाम
स्वयं गुण-
वाचक नहीं
होते।

दृष्टि से मिल (Mill) का दृष्टिकोण शुद्ध है। व्यक्तिवाचक नाम 'अर्थहीन चिह्न' (unmeaning marks) ही होते हैं और वे किसी 'गुण' को व्यक्त नहीं करते; उनका उद्देश्य केवल व्यक्तियों का निर्देश करना है।

उत्तर-सहित अभ्यासार्थ प्रश्न

सकेत—किसी पद के तार्किक-स्वरूप (Logical character) का वर्णन करने का अर्थ यह है कि पदों के तार्किक विभाग की सम्पूर्ण-तालिका सामने रखकर हम यह निश्चय करते हैं कि उन भिन्न-भिन्न वर्गों में से वह पद किस-किस के अन्तर्गत रखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में हमें यह बतलाना पड़ता है कि निम्नलिखित वर्गों में से किन-किन के अन्तर्गत वह पद आता है—

- (क) एक शब्दात्मक (Simple) या अनेक शब्दात्मक (Composite) ।
- (ख) विशिष्ट (Singular) या सामान्य (General) ।
- (ग) समूहवाचक (Collective) या असमूहवाचक (Non-collective) ।
- (घ) वस्तुवाचक (Concrete) या भाववाचक (Abstract) ।
- (ङ) स्वीकारात्मक (Positive) या निषेधात्मक (Negative) या अभावात्मक (Privative) ।
- (च) निरपेक्ष (Absolute) या सापेक्ष (Relative) ।
- (छ) गुणवाचक (Connotative) या अगुणवाचक (Non-connotative) ।

प्रश्न .—निम्नलिखित पदों के तार्किक-स्वरूप का विवेचन कीजिए :

(१) विद्यालय

(२) बनारस विश्वविद्यालय का इंजीनियरिंग कालेज ।

- (३) प्रयाग विश्वविद्यालय के वर्तमान उपकुलपति ।
- (४) ससार का सर्वोच्च पर्वत ।
- (५) नगर ।
- (६) मनुष्यता ।
- (७) अन्धापन ।
- (८) अन्धा व्यक्ति ।
- (९) कलकत्ता ।
- (१०) अकबर महान् ।

उत्तर.—(१) विद्यालय :—एक शब्दात्मक, सामान्य, समूह-वाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(२) बनारस विश्वविद्यालय का इंजीनियरिंग कालेज.—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, समूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(३) प्रयाग विश्वविद्यालय के वर्तमान उपकुलपति.—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(४) ससार का सर्वोच्च पर्वत :—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, सापेक्ष (क्योंकि वह अनिवार्यतः अनेक पर्वतों से सम्बन्धित है), गुणवाचक ।

(५) नगर :—एक शब्दात्मक, सामान्य, असमूहवाचक (यदि इस पद का प्रयोग उन सब व्यक्तियों के लिए किया जाय, जिनका समूह 'नगर' कहलाता है, तो समूहवाचक) वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(६) मनुष्यता :—एक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, भाववाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, अगुणवाचक ।

(७) अन्धापन :—एक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक,

भाववाचक, निषेधात्मक (क्योंकि इसका अर्थ दृष्टि का न होना है), निरपेक्ष, अगुणवाचक ।

(८) अन्धा व्यक्ति :—अनेक शब्दात्मक, सामान्य, असमूहवाचक, अभावात्मक, निरपेक्ष, गुणवाचक ।

(९) कलकत्ता :—एक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, अगुणवाचक. (क्योंकि व्यक्तिवाचक नाम है) ।

(१०) अकबर महान् :—अनेक शब्दात्मक, विशिष्ट, असमूहवाचक, वस्तुवाचक, स्वीकारात्मक, निरपेक्ष, अगुणवाचक (क्योंकि व्यक्तिवाचक नाम है) ।

प्रश्नमाला ३

सं० १०२१

(१) पद किसे कहते हैं ? क्या पदयोग्य शब्दों को 'पद' कहना उचित है ?

(२) 'शब्द' और 'पद' में क्या अन्तर है ? तर्क-वाक्य को कौन-से अवयवों में विश्लेषित किया जा सकता है ?

(३) निम्नलिखित का भेद उदाहरण-सहित समझाइए : शब्द, नाम, पद, धारणा । (उ० प्र० १९४७, १९५३, पटना १९३८)

(४) किसी पद के 'निर्देश' और 'गुण' से आप क्या समझते हैं ? वे किस प्रकार परस्पर सम्बन्धित हैं ? (कलकत्ता १९४१, मद्रास १९३९; पंजाब १९३५ ; पटना १९३५ ; उ० प्र० १९३४, १९३८, १९३९, १९४८, १९५२, १९५३) ।

(५) निम्नलिखित पदों का तार्किक-स्वरूप बतलाइए :—धवल, धवलता, दुग्ध-धवलता । (उ० प्र० १९४७) ।

(६) निम्नलिखित पदों का तार्किक-स्वरूप बतलाइए.—वहूरा, वर्ग, सुकरात, भारतीय लोकतंत्र का राष्ट्रपति ; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, सुन्दरता, भीड़, जातीयता, हरा । (उ० प्र० १९५१) ।

(७) अभावात्मक पद का उदाहरण-सहित अर्थ समझाइए । (पंजाब १९२८) ।

(८) निम्नलिखित की उदाहरण-सहित व्याख्या कीजिए.—

- (क) व्यक्तिवाचक नाम तथा अन्य विशिष्ट पद ।
- (ख) निरपेक्ष और सापेक्ष पद ।
- (ग) विरुद्ध तथा विपरीत पद ।
- (घ) व्यक्तिसूचक (विशिष्ट) और सामान्य पद ।
- (ङ) निषेधात्मक एवं अभावात्मक पद ।
- (च) भाववाचक तथा वस्तुवाचक पद ।

(९) गुणवाचक और अगुणवाचक पदों का अन्तर स्पष्ट कीजिए । क्या व्यक्तिवाचक नाम गुणवाचक होते हैं ? विस्तार से लिखिए ।

(१०) निम्नलिखित पदों को 'गुण' के अनुसार रखिए—
मेरुदण्डधारी, मनुष्य, जन्तु, पदार्थ, बच्चा, जीवधारी,
[उत्तर.—पदार्थ, जीवधारी, जन्तु, मेरुदण्डधारी, मनुष्य,
बच्चा] ।

(११) पद का कितने वर्गों में विभाग हो सकता है ? प्रत्येक की उदाहरण-सहित व्याख्या कीजिए ।

(१२) पदों के समष्ट्यर्थ तथा व्यष्ट्यर्थ में क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए ।

EXERCISE III

1. What is a Term ? Are Syncategorematic Terms really terms ?

2. How would you distinguish between a mere word and a term ? Indicate the parts into which a proposition may be analysed

3. Distinguish between the following, giving examples Word, Name Term, Concept [U.P. 1947, 1953; Patna 1938].

4. What do you understand by the Denotation and Connotation of a term ? How are they mutually related ? [Calcutta 1941, Madras 1939, Punjab 1935, Patna 1935; U.P. 1934, 1938, 1939, 1948, 1952, 1953].

5. Describe the logical character of the following terms:

White, Whiteness, Milk-whiteness. [U. P. 1947]

6. Describe the logical character of the following terms.

Deaf, Square, Socrates, President 'of Indian Republic, Banaras Hindu University, Beauty, Crowd, Nationalism, Green [U. P. 1951]

7 Explain, with examples, the meaning of Privative Term. [Punjab 1928]

8 Explain the following with examples.

- (a) Proper names and other Singular Terms
- (b) Absolute and Relative Terms
- (c) Contradictory and Contrary Terms.
- (d) Singular and General Terms.
- (e) Negative and Privative Terms
- (f) Abstract and Concrete Terms.

9 Distinguish between Connotative and Non-Connotative terms Are Proper Names Connotative ? Discuss the question fully.

10. Arrange the following terms in order of Denotation. Vertebrate, Human, Substance, Child, Organism.

[Answer: Substance, Organism, Animal, Vertebrate, human, child]

11 What are the various classes of terms ? Explain each of them and give an example of each

12. Explain and distinguish between Collective and Distributive uses of Terms. Give examples.

चतुर्थ प्रकरण

वाच्य

§ १ पाँच वाच्य (Predicables) जाति (Genus), उपजाति (Species), व्यावर्तक गुण (Differentia), सहज गुण (Proprium), आकस्मिक गुण (Accidens) ।

§ २ पॉरफिरी का वृक्ष (Tree of Porphyry) ।
प्रश्नमाला ४.

§ १. पाँच वाच्य (Predicables) : जाति (Genus), उपजाति (Species), व्यावर्तक गुण (Differentia), सहज गुण (Proprium), आकस्मिक गुण (Accidens).

वाच्य (Predicable) उद्देश्य के सम्बन्ध में विधेय के विभिन्न वर्गों का नाम है। वाच्य उस पद को कहते हैं जो कि विधेय के बारे में या तो स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जाय। अतः वाच्य (Predicable) उद्देश्य (Subject) के सम्बन्ध में विधेय (Predicate) के भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्ध को कहते हैं। अरस्तू (Aristotle) ने चार प्रकार के वाच्यों (Predicables) का वर्णन किया है, यथा—परिभाषा या लक्षण (Definition), सहज-गुण (Proprium), जाति (Genus), आकस्मिक गुण (Accidens) । दार्शनिक पॉरफिरी (Porphyry) (सन् २३३-३०४ ईसवी) ने एक पाँच-वाच्य-योजना प्रस्तुत की है, यथा—जाति (Genus), उपजाति (Species), व्यावर्तक गुण (Differentia),

वाच्य

सहजगुण (Proprium) और आकस्मिक गुण (Accidens) । अतः पॉरफिरी (Porphyry) के अनुसार प्रत्येक तर्क-वाक्य (Proposition), जो उद्देश्य (Subject) और विधेय (Predicate) का सम्बन्ध व्यक्त करता है,

विधेय उद्देश्य का $\left\{ \begin{array}{l} \text{जाति} \\ \text{उपजाति} \\ \text{व्यावर्तक गुण} \\ \text{सहज गुण अथवा} \\ \text{आकस्मिक गुण} \end{array} \right\}$ होगा ।

इस सम्बन्ध में यह बात ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त पञ्च-वाच्य-योजना में विशिष्ट-पद (Singular term) के विधेय होने की बात संभव नहीं है। अतः इस तर्कवाक्य में कि “सिकन्दर महान् मेसीडोन के फिलिप का एकमात्र पुत्र था”, विधेय पॉरफिरी (Porphyry) के उपर्युक्त किसी भी वाच्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसका कारण है कि प्राचीन तर्कशास्त्री विशिष्ट पदों को विधेय के स्थान पर नहीं रखते थे।

जाति (Genus) और उपजाति (Species) :

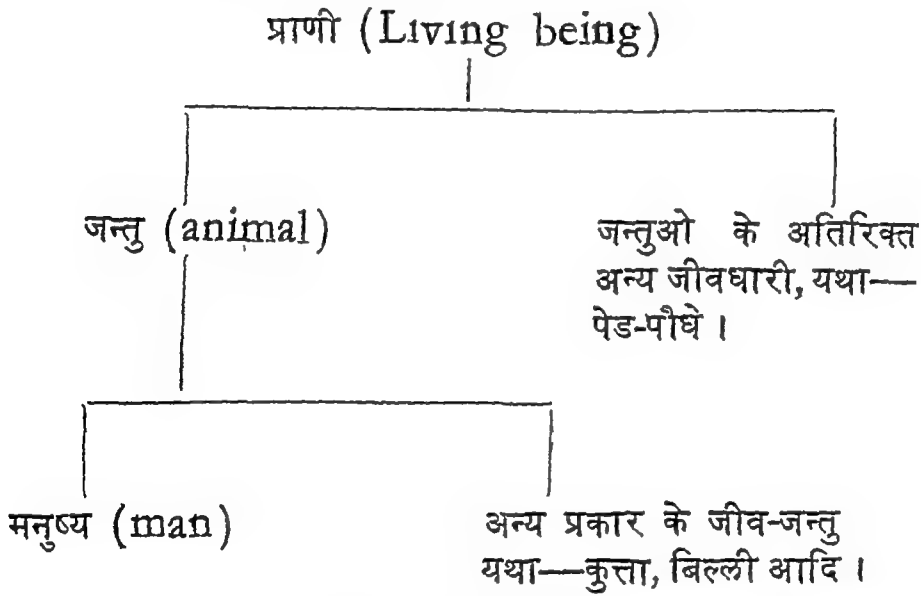
‘जाति’ (Genus) और ‘उपजाति’ (Species) किसी वर्ग के द्योतक हैं। दो वर्गों में ऐसा सम्बन्ध हो सकता है कि एक वर्ग का ‘निर्देश’ (Denotation) दूसरे वर्ग के ‘निर्देश’ से अधिक व्यापक हो। उदाहरण के लिए ‘जन्तु’ का निर्देश ‘मनुष्य’ के निर्देश से अधिक व्यापक है। अधिक व्यापक वर्ग ‘जाति’ (Genus) कहलाता है और उसकी अपेक्षा जो कम व्यापक वर्ग है, वह उसकी ‘उपजाति’ (Species) कहलाता है। अतः ‘जन्तु’ जाति है, ‘मनुष्य’ उसकी एक उपजाति है।

जाति =
अधिक व्या-
पक वर्ग ।
उपजाति =
कम व्यापक
वर्ग

जाति और
उपजाति
सापेक्ष हैं

यह स्पष्ट है कि ‘जाति’ और ‘उपजाति’ सापेक्ष पद (Relative term) हैं, एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। ‘जाति’ अपने अन्तर्गत ‘उपजातियों’ से पृथक् नहीं की जा सकती और

‘उपजाति’ उस ‘जाति’ से सर्वथा पृथक् नहीं की जा सकती, जिसके अन्तर्गत वह है। अतः एक ही पद अपेक्षाकृत कम व्यापक वर्ग के सम्बन्ध में ‘जाति’ और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक वर्ग के सम्बन्ध में ‘उपजाति’ कहलाता है। उदाहरण के लिए, ‘जन्तु’ (Animal)-वर्ग कम व्यापक ‘मनुष्य’ वर्ग के सम्बन्ध में ‘जाति’ है और अधिक व्यापक ‘प्राणी’ (Living being) पद के सम्बन्ध में ‘उपजाति’ है। अतः—



यह स्पष्ट है कि ‘निर्देश’ के अनुसार ‘जाति’ में उपजाति निहित रहती है तथा ‘गुण’ (Connotation) के अनुसार ‘उपजाति’ में ‘जाति’ निहित रहती है।

यदि एक वर्ग इतना व्यापक होता है कि कोई वर्ग उससे अधिक व्यापक नहीं हो सकता, तो उसे ‘परतम-जाति’ (Summum Genus) कहते हैं। ‘परतम जाति’ सबसे व्यापक जाति होती है; अतः उससे अधिक व्यापक जाति हो ही नहीं सकती। अतः ‘परतम जाति’ (Summum Genus) किसी की उपजाति (Species) नहीं हो सकती।

परतम-जाति
= उच्चतम
वर्ग

अपरतम
उपजाति=
निम्नतम
वर्ग

जब कोई वर्ग इतना कम व्यापक होता है कि उससे छोटा वर्ग और कोई हो ही नहीं सकता, तो उसे 'अपरतम उपजाति' (Infima Species) कहते हैं। यह अपरतम उपजाति है, अतः इससे नीची और कोई उपजाति नहीं होती। इसलिए 'अपरतम उपजाति' अन्य 'उपजातियों' की 'जाति' नहीं हो सकती। 'अपरतम उपजाति' को और उपजातियों या छोटे वर्गों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

अवर-जाति
तथा उप-
जाति

समवर्गीय
उपजाति

आसन्न
जाति

'परतम जाति' (Summum Genus) और 'अपरतम उपजाति' (Infima Species) के बीच के वर्ग 'अवर-जाति' (Subaltern Genera) या 'अवर-उपजाति' (Subaltern Species) कहलाते हैं। दो या इससे अधिक वर्ग जो एक ही 'जाति' के 'उपजाति' हैं, परस्पर 'समवर्गीय उपजाति' (Cognate or Co-ordinate Species) कहलाते हैं। वह 'जाति' जिसके भीतर कोई उपजाति बिना किसी व्यवधान के आती हो, उस उपजाति की 'आसन्न जाति' (Proximate Genus) कहलाती है।

व्यावर्तक-गुण (Differentia) :

व्यावर्तक
गुण=उप-
जाति का
विशेष गुण।
वह उप-
जाति के
'गुण' का ही
एक भाग
होता है।

व्यावर्तक-गुण (Differentia) उसे कहते हैं, जो एक ही 'जाति' के अन्तर्गत एक 'उपजाति' का दूसरी 'उपजाति' से भेद बतलाता है। यथा—'विचारशीलता' मनुष्य का 'व्यावर्तक गुण' (Differentia) है क्योंकि वह 'मनुष्य' का अन्य जन्तुओं से भेद बतलाता है। यह बात ज्ञातव्य है कि व्यावर्तक गुण (Differentia) पद के 'गुण' (Connotation) का ही एक भाग होता है।

'गुण' (Connotation) के अनुसार 'उपजाति' में 'जाति' (Genus) निहित रहती है और 'निर्देश' (Denotation),

के अनुसार 'उपजाति' (Species) 'जाति' में निहित रहती है। अतः आसन्न-जाति (Proximate Genus) के 'गुण' से 'उपजाति' (Species) से जो अधिक 'गुण' होता है, उसे व्यावर्तक-गुण (Differentia) कहते हैं। इस प्रकार 'जाति' का 'गुण' (Connotation) और व्यावर्तक गुण (Differentia) मिलकर 'उपजाति' का 'गुण' होता है। इस प्रकार 'प्राणित्व' (आसन्न जाति 'जन्तु' का 'गुण') तथा 'विचारशीलता' ('मनुष्य' पद का व्यावर्तक गुण) मिलकर 'मनुष्य' पद का गुण (Connotation) (अर्थात् प्राणित्व और 'विचारशीलता') हुआ।

व्यावर्तक
गुण=उप-
जाति को
'गुण' से
जाति का
गुण कम

सहज-गुण (Proprium or Property) :

'सहज-गुण' (Proprium or Property) उसे कहते हैं, जो पद के 'गुण' (Connotation) का अंश तो नहीं है, परन्तु जो आवश्यक रूप से 'गुण' (Connotation) से या तो कारण से कार्य की भाँति या किसी हेतु से परिणाम की भाँति फलित होता है।

'व्यावर्तक गुण' (Differentia) और 'सहज गुण' (Proprium) में यह अन्तर है कि 'सहज गुण' पद 'गुण' का भाग तो नहीं होता परन्तु उससे फलित अवश्य होता है। ऐसा दो प्रकार से हो सकता है—या तो किसी हेतु से परिणाम की भाँति अथवा किसी कारण से कार्य की भाँति।

सहज गुण
'गुण' से
फलित
होता है

उदाहरण के लिए, "प्रत्येक त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है।" इसमें 'तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होने' का गुण त्रिभुज के 'गुण' (Connotation) (अर्थात् उसके 'तीन भुजाओं के होने') से फलित होता है। यहाँ पर 'सहज गुण' (Proprium) एक विदित तथ्य से

निष्कर्ष के रूप में ज्ञात होता है। एक अन्य तर्कवाक्य (Proposition) देखिए। “मनुष्य में निर्णय करने की शक्ति है” इसमें सहज गुण ‘निर्णय करने की शक्ति’ ‘विचारशीलता’ से फलित होती है। ‘विचारशीलता’ मनुष्य के ‘गुण’ (Connotation) का ही भाग है। अतः यहाँ ‘सहज गुण’ (Proprium) ‘गुण’ से ‘कारण-कार्य’ के रूप में प्राप्त हुआ है। ‘विचारशीलता’ कारण (cause) है और ‘निर्णय करने की शक्ति’ कार्य (effect) है।

सहज गुण
यदि जाति
के गुण से
फलित होता
है तो
‘जातिगत’
और यदि
उपजाति के
गुण से
फलित होता
है तो
‘व्यक्तिगत’
कहलाता
है।

सहज-गुण (Proprium) या तो जातिगत (generic) अथवा व्यक्तिगत (specific) हो सकता है। यदि ‘जाति’ के ‘गुण’ से फलित होता है, तो उसे ‘जातिगत-सहज गुण’ (generic property) और यदि ‘उपजाति’ के ‘गुण’ से फलित होता है, तो उसे ‘व्यक्तिगत सहज गुण’ (specific property) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम कहें कि “समद्विबाहु त्रिभुज में तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है”, तो “तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होने” का ‘सहज गुण’ ‘त्रिभुज’ के ‘गुण’ से फलित होता है, ‘सम-द्विबाहु त्रिभुज’ के गुण से नहीं। अतः यह ‘सहज-गुण’ ‘जातिगत’ (generic) हुआ। परन्तु यदि हम कहे कि “समद्विबाहु त्रिभुज के दो कोण बराबर होते हैं”, तो यह ‘सहज गुण’ उपजाति ‘समद्विबाहु त्रिभुज’ के गुण से फलित होता है, अतः यह ‘व्यक्तिगत सहज गुण’ (specific property) हुआ।

आकस्मिक गुण (Accidens or Accident) :

‘गुण’ और
‘सहजगुण’
के अतिरिक्त
विशेषतायें
‘आकस्मिक

आकस्मिक गुण (Accidens or Accident) उसे कहते हैं, जो न तो ‘गुण’ (Connotation) का एक भाग हो और न ‘गुण’ के द्वारा फलित होता हो। ‘आकस्मिक गुण’ (Accidens), ‘गुण’ (Connotation) का भाग न होने के

कारण व्यावर्तक गुण (Differentia) से भिन्न है और 'गुण' के द्वारा प्राप्त न हो सकने के कारण 'सहज गुण' (Proprium) से भिन्न है। वे सब, जो न तो 'गुण' (Connotation) हों और न सहज गुण (Proprium) हों, 'आकस्मिक-गुण' (Accidens) कहलाते हैं। 'आकस्मिक गुण' (Accidens) किसी वर्ग या व्यक्ति में, बिना उसमें परिवर्तन लाए हुए ही, अलग किया जा सकता है, परन्तु व्यावर्तक गुण (Differentia) और सहज गुण (Proprium) को किसी वर्ग या व्यक्ति से, बिना उसमें परिवर्तन लाए हुए, अलग नहीं किया जा सकता।

आकस्मिक गुण (Accidens) या तो किसी वर्ग (class) का हो सकता है, अथवा किसी व्यक्ति का। और प्रत्येक दशा में या तो वह 'वियोज्य' (separable) हो सकता है, अथवा 'अवियोज्य' (inseparable) ;

किसी वर्ग का 'अवियोज्य आकस्मिक गुण' (Inseparable Accidens) उसे कहते हैं जो उस वर्ग के प्रत्येक सदस्य में पाया जाये। यथा—“कौओ में कालापन”। जहाँ तक हमारा अनुभव है, 'सब कौए काले होते हैं' परन्तु 'कालापन' न तो कौओ के 'गुण' (Connotation) का अंश है और न उसके द्वारा फलित होता है। किसी वर्ग का 'वियोज्य आकस्मिक गुण' (Separable Accidens) उसे कहते हैं जो उस वर्ग के कुछ सदस्यों में तो पाया जाये, परन्तु सब सदस्यों में समान रूप से न पाया जाये, यथा “कृत्तो का सफेद रंग का होना।”

किसी व्यक्ति का 'अवियोज्य आकस्मिक गुण' (Inseparable Accidens) उसे कहते हैं जो उस व्यक्ति में हर समय विद्यमान हो तथा जो परिवर्तित न हो सके। जैसे, किसी व्यक्ति की जन्मतिथि अथवा उसका जन्मस्थान। किसी व्यक्ति का 'वियोज्य-आकस्मिक गुण' उसे कहते हैं जो किसी समय उस

गुण' कह-
लाती है।

चार प्रकार
के आक-
स्मिक गुणः

(क) वर्ग
का अवि-
योज्य
आकस्मिक
गुण

(ख) वर्ग
का वियोज्य
आकस्मिक
गुण

(ग) व्यक्ति
का अवि-
योज्य आक-
स्मिक गुण

(घ) व्यक्ति
का वियोज्य

आकस्मिक
गुण

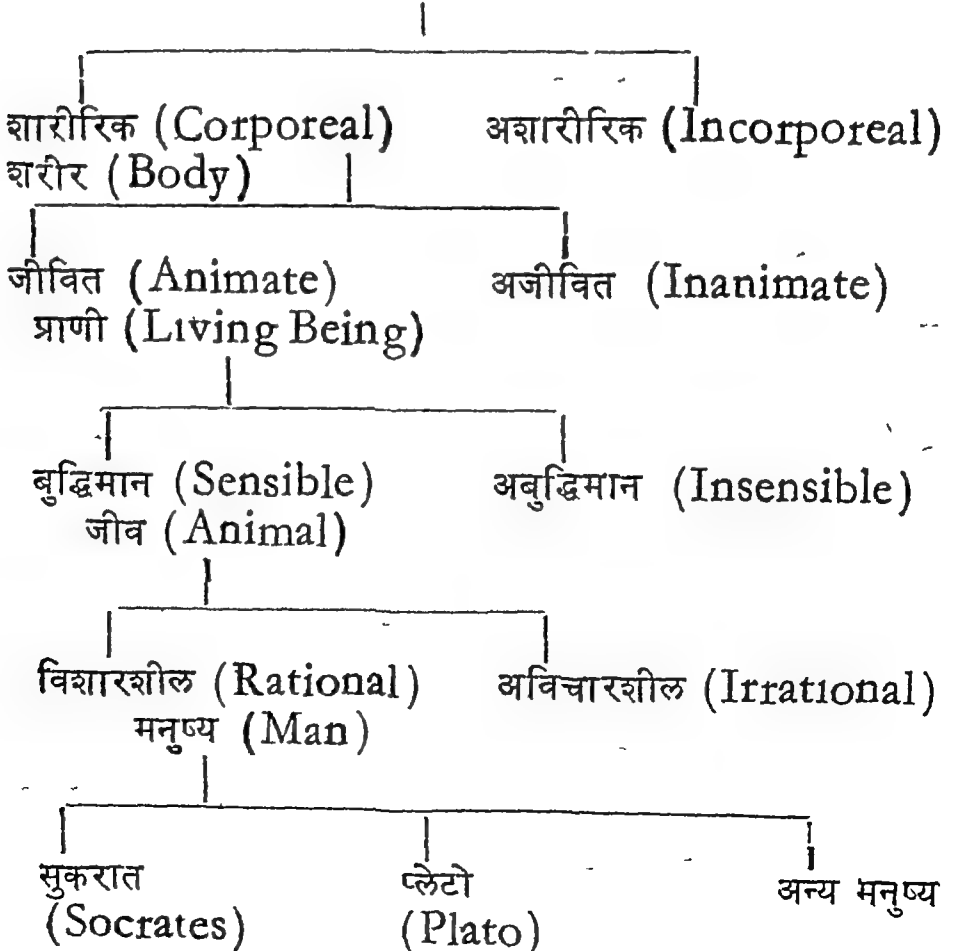
व्यक्ति में उपस्थित रहे और किसी समय अनुपस्थित। यथा—
मनुष्य का व्यवसाय, रहन-सहन, आदते इत्यादि।

§२. पॉरफिरी का वृक्ष (Tree of Porphyry):

पॉरफिरी
का वृक्ष
वाच्यों की
व्याख्या
करता है।

‘पॉरफिरी के वृक्ष’ (Tree of Porphyry) से प्रधान
वाच्यों की व्याख्या हो जाती है। इसके साथ दार्शनिक पॉरफिरी
(Porphyry) (२३३-३०४ ईसवी) का नाम सलग्न है,
जिसने सर्वप्रथम इस सारिणी को प्रस्तुत किया। इसे सोलहवीं
सदी के तर्कशास्त्री रेमस (Ramus) के नाम पर ‘रेमस का
वृक्ष’ (Ramean Tree) भी कहते हैं। यह वृक्ष इस प्रकार है:—

पदार्थ (Substance)



(Smmum Genus)

(Infima Species)

में नहीं किया जा सकता

आदि) में किया गया है।

‘जीव’ अवर-जातियाँ या

निम्न वर्ग के सम्बन्ध में

‘ति’ है। ‘पदार्थ’ जाति

में उपजातियाँ परस्पर

(Infima Species) है।

‘विनाशशील’ व्यावर्तक

‘त’ से द्रिस्त किया जा

कुछ हल किये हुए प्रश्न

(१) निम्नलिखित विधेय किस वाच्य (Predicable) के अन्तर्गत आते हैं ?

(क) ‘ननुष भी जन्तु है।’

उत्तर — इस तर्क में विधेय ‘जन्तु’ जाति (Genus) है और उद्देश्य ‘ननुष’ उसकी उपजाति (Species) है।

(ख) ‘तर्कशास्त्र अच्छा मानसिक अनुशासन है।’

उत्तर — इस तर्कवाक्य में विधेय ‘अच्छा मानसिक अनुशासन’ है। यह उद्देश्य ‘तर्कशास्त्र’ का ‘सहज-गुण’ (Proprium) है क्योंकि ‘तर्कशास्त्र’ के ‘गुण’ (Connotation) का एक अंग यह है कि वह एक विज्ञान है और उसके ‘विज्ञान’ होने के गुण ने ‘अच्छा मानसिक अनुशासन होने’ का गुण फलित होता है। अतः विधेय उद्देश्य के गुण से अनिवार्यतः फलित होने के कारण ‘सहज-गुण’ (Proprium) है।

(ग) 'सब हब्सी घने वालो वाले होते है ।'

उत्तर :—इस तर्कवाक्य मे विधेय 'घने वालो वाला होना' न तो गुण (Connotation) का भाग है और न उसके द्वारा ही फलित होता है । अतः यह न तो व्यावर्तक गुण' (Differentia) है और न सहज गुण (Proprium), वरन आकस्मिक गुण (Accidens) है ; क्योकि यह गुण 'हब्सी'-वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति मे पाया जाता है । अतः यह जाति का अवियोज्य आकस्मिक गुण (Inseparable Accidens) है ।

(घ) फाउन्टेनपैन प्रायः काला होता है ।'

उत्तर .—इस तर्कवाक्य मे विधेय जाति का वियोज्य आकस्मिक गुण है क्योकि वह न तो 'गुण' का भाग है और न उसके द्वारा फलित होता है, और यह गुण 'फाउन्टेनपैन' जाति के सब सदस्यों मे नही पाया जाता ।

प्रश्नमाला ४

(१) वाच्य क्या है ? वाच्य और विधेय मे क्या अन्तर है ? विभिन्न वाच्यों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए । (उ० प्र० १९४६, १९५०) ।

(२) निम्नलिखित कथन की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए —“जाति, उपजाति का एक भाग होता है, तथा उपजाति स्वयं जाति का एक भाग है ।” (उ० प्र० १९२३, पटना १९३५, कलकत्ता १९३४) ।

(३) व्यावर्तक गुण, सहज गुण और आकस्मिक गुण की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए । निम्नलिखित मे क्या भेद है ?

(क) जातिगत सहजगुण तथा व्यक्तिगत सहजगुण ।

(ख) अवियोज्य आकस्मिकगुण तथा वियोज्य आकस्मिक गुण ।

(४) निम्नलिखित विधेय किन वाच्यों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं —

(क) वर्ग के सब कोण बराबर होते हैं ।

- (ख) त्रिभुज तीन रेखाओं से वेष्टित है।
- (ग) सब जनतन्त्र राज्य हैं।
- (घ) ज्ञान शक्ति है।
- (ङ) तिमि (ह्वेल) स्तनपायी जन्तु है।
- (च) वृत्त में जालीदार-पैरवाली होती है।
- (छ) सिंह प्राक्ऐतिहासिक-जन्तु है।

EXERCISE IV.

1 What are Predicables ? Distinguish between Predicables and Predicates. Explain the different Predicables giving examples. [U P 1946, 1950].

2. Comment upon the following with illustrations :

"Genus is a part of Species and Species is a part of Genus" [U P 1923; Patna 1935; Cal. 1934].

3. Explain and illustrate differentia, property and accident. How would you distinguish between

- (a) Generic Property and Specific Property.
- (b) Inseparable accident and separable accident

4 To which of the Predicables does each of the following predicates belong ?

- (a) All the angles of a square are equal.
- (b) A triangle is three sided
- (c) All Republics are governments
- (d) Knowledge is power
- (e) Whales are mammals
- (f) All ducks are web footed
- (g) The lion is a predatory animal.

पंचम प्रकरण

परिभाषा (Definition)--उसकी सीमायें और
आकारगत दृशायें (Formal Conditions)

§ १. परिभाषा (Definition) का स्वरूप ।

टिप्पणी :—परिभाषा और उसका वर्णन (Description) : उनका वाच्यो (Predicables) से सम्बन्ध ।

§ २. परिभाषा के नियम (Rules) एवं दोष (Fallacies) ।

नियम १—उसके उल्लघन से उत्पन्न (क) अतिरिक्त (Redundant), (ख) आकस्मिक (Accidental), (ग) अव्याप्त (too narrow) और (घ) अतिव्याप्त (too wide) परिभाषा के दोष ।

नियम २—उसके उल्लघन से दुर्बोध (Obscure) तथा आलंकारिक परिभाषा (Figurative) के दोष ।

नियम ३—उसके उल्लघन से पर्यायोक्ति (Synonymous) या चक्रक (Circular) परिभाषा का दोष ।

नियम ४—उसके उल्लघन से निषेधात्मक परिभाषा (Negative Definition) का दोष ।

§ ३. परिभाषा की सीमायें (Limits) ।

प्रश्नमाला ५.

§ १. परिभाषा (Definition) का स्वरूप

किसी पद के सम्पूर्ण 'गुण' (Connotation) का स्पष्ट

विवरण परिभाषा (Definition) कहलाता है। किसी पद के 'गुण' से तात्पर्य उसकी समान और आवश्यक विशेषताओं से है; और परिभाषा सम्पूर्ण 'गुण' का विवरण है।

परिभाषा के सम्बन्ध में पुरातन नियम है कि वह पद द्वारा निर्दिष्ट उपजाति की आसन्न-जाति (Proximate Genus) तथा उसके व्यावर्तक-गुण (Differentia) का वर्णन करे (per genus et differentiam)।

जब हम आसन्न जाति (Proximate Genus) के गुण (Connotation) का उल्लेख करते हैं तो हमें उस जाति के अन्तर्गत आनेवाली सभी उपजातियों के समान गुणों का बोध हो जाता है; और व्यावर्तक गुण (Differentia) का उल्लेख करने से 'गुण' (Connotation) पूर्ण हो जाता है। क्योंकि इस प्रकार उन गुणों का वर्णन भी हो जाता है जिससे निर्दिष्ट उपजाति अन्य समवर्गीय (Cognate) उपजातियों से भिन्न समझी जा सकती है। दूसरे शब्दों में, किसी पद की परिभाषा करते समय हम पहले यह निश्चय कर लेते हैं कि वह किस जाति के अन्तर्गत है; फिर हम उन गुणों पर ध्यान देते हैं, जिनके कारण वह उस जाति के अन्य सदस्यों से भिन्न मानी जाती है। उदाहरण के लिए, हम 'मनुष्य' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं कि "मनुष्य विचारशील प्राणी है।" अर्थात् 'मनुष्य' में 'प्राणित्व' का गुण है, जो कि उसकी आसन्न-जाति 'प्राणी' (अथवा 'जीव') में पाया जाता है, और उसका व्यावर्तक गुण (Differentia) 'विचारशीलता' है। इसी प्रकार, 'त्रिभुज' की परिभाषा 'तीन सरल रेखाओं से आविष्ट समतल-आकृति' है। यहाँ आसन्न-जाति (Proximate Genus) 'समतल आकृति' है, तथा 'व्यावर्तक-गुण' (Differentia) 'तीन सरल रेखाओं से आविष्ट होने का गुण' है।

परिभाषा सम्पूर्ण 'गुण' का वर्णन है।

नियमः
आसन्न जाति और व्यावर्तकगुण का वर्णन।

जाति का 'गुण' =
आसन्न जाति का गुण + व्यावर्तक गुण

टिप्पणी—परिभाषा (Definition) और वर्णन (Description) : उनका वाच्यो (Predicables) से सम्बन्ध ।

गुण तीन प्रकार के होते हैं ; यथा—पद का 'गुण' (Connotation), सहज-गुण (Property), जो 'गुण' (Connotation) के द्वारा फलित होता है; और आकस्मिक-गुण (Accidens) जो न तो 'गुण' (Connotation) का भाग होता है और न उससे फलित होता है। जब हम 'सम्पूर्ण गुण' (entire connotation) अर्थात् आसन्न-जाति (Proximate Genus) और व्यावर्तक गुण (Differentia) का उल्लेख कर देते हैं, तो पद की परिभाषा ज्ञात हो जाती है। परन्तु जब हम 'सहजगुण' (Property) या आकस्मिक-गुण (Accidens) या 'गुण' (Connotation) के केवल एक अंश का ही उल्लेख करते हैं, तो वह केवल 'वर्णन' (Description) होता है। अतः प्लेटो (Plato) ने 'मनुष्य' का वर्णन 'पंखहीन द्विपद' (featherless biped) कह कर दिया था। कभी-कभी वर्णन में सहज-गुण (Property) और आकस्मिक-गुण (Accidens) के अतिरिक्त 'गुण' के एक भाग का उल्लेख भी हो जाता है। यथा—'घोड़ा एक जन्तु है, जिसके गले में बाल होते हैं और उसके एक पूँछ होती है तथा जो काफी मूल्यवान होता है।' अथवा, 'चीता एक जन्तु होता है, जो बनावट में बिल्ली से मिलता-जुलता है, परन्तु आकार में उससे काफी बड़ा होता है। वर्णन (Description) का उपयोग इस बात में है कि जिस वस्तु के बारे में हम बात कर रहे हैं, उसे आसानी से पहचान सकें।

परिभाषा (Definition) और वर्णन (Description)

की तुलना करते समय निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं:—

(१) परिभाषा (Definition) में 'सम्पूर्ण गुण' (entire connotation) का उल्लेख किया जाता है, जब कि वर्णन (Description) में सहज-गुण (Property), आकस्मिक-गुण (Accidens) और कभी-कभी 'गुण' (Connotation) के एक अंश का ही उल्लेख होता है। यह बात ज्ञातव्य है कि सब वर्णन समान महत्व के नहीं होते। वर्णन में उल्लिखित गुण जितने अधिक महत्व के होते हैं, उतना ही अधिक महत्व का वह वर्णन व्यक्त वस्तुओं को पहचानने में होता है।

(२) परिभाषा वैज्ञानिक (Scientific) होती है, परन्तु वर्णन साधारण (Popular) होता है। परिभाषा का ध्येय हमारे वस्तु-विषयक विचारों को स्पष्ट और निश्चित करना है, और वर्णन वस्तुओं को पहचानने की एक सरल और सुलभ रीति है।

(३) हम 'पदों' का वर्णन नहीं करते। पदों की तो परिभाषा होती है, और वर्णन उन वस्तुओं का होता है, जिनका नाम उस पद के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(४) परिभाषा में 'पद' के 'गुण' (Connotation) का उल्लेख किया जाता है, अतः उन पदों की, जिनका 'गुण' (Connotation) नहीं होता, परिभाषा नहीं की जा सकती। ऐसी दशा में उनका स्पष्टीकरण करने की विधि केवल यही है कि उनके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु का कुछ पहचान के गुणों के साथ वर्णन कर दिया जाय।

§ २. परिभाषा के नियम (Rules) एवं दोष (Fallacies) नियम

परिभाषा निम्नलिखित नियमों के अनुसार होनी चाहिए:—

नियम १ : परिभाषा परिभाष्य पद के 'सम्पूर्ण गुण' (entire

नियम १ :
सम्पूर्ण गुण
का वर्णन हो।

connotation) का वर्णन करे, न उससे अधिक और न उससे कम।

किसी पद के 'गुण' से तात्पर्य उसके सभी समान और आवश्यक गुणों से होता है। अतः किसी पद की परिभाषा करते समय अनावश्यक गुणों को छोड़ देना चाहिए। उसके समान गुणों (common attributes) का उल्लेख करना भी तब तक आवश्यक नहीं है, जब तक कि वे आवश्यक (essential) गुण भी न हों। यथा—'मनुष्य' के 'गुण' में 'प्राणित्व' और 'विचारशीलता' के समान और आवश्यक गुण सम्मिलित हैं। अतः 'मनुष्य' की परिभाषा इस प्रकार होनी चाहिए: "मनुष्य एक विचारशील प्राणी है।" इसी प्रकार त्रिभुज की परिभाषा 'तीन सरल रेखाओं से वेष्टित समतलकृति' कहकर दी जा सकती है।

यदि हम इस नियम का उल्लंघन कर देते हैं तो या तो 'गुण' (Connotation) से अधिक का या उससे कम का उल्लेख हो जाता है।

(क) यदि परिभाषा में गुण (Connotation) से अधिक का उल्लेख हो, तो वह अधिक भाग या तो (१) सहजगुण (Property) अथवा (२) अवियोज्य आकस्मिक गुण (Inseparable Accidens) अथवा (३) वियोज्य आकस्मिक गुण (Separable Accidens) होगा।

(१) यदि अधिक गुण 'सहजगुण' (Property) हो अर्थात् पद के 'गुण' (Connotation) का भाग तो न हो, पर उससे फलित होता हो, तो 'अतिरिक्त परिभाषा' (Redundant Definition) का दोष उत्पन्न हो जाता है। वह अधिक गुण समान-गुण तो होता है, परन्तु आवश्यक-गुण नहीं होता। अतः उसका परिभाषा में उल्लेख करना निरर्थक होता है। यथा, 'त्रिभुज तीन रेखाओं से वेष्टित एक सरल आकृति है,

यदि 'गुण'
से अधिक
का वर्णन हो
जाये तो—

१. अति-
रिक्त
परिभाषा

जिसमें तीन कोण होते हैं।' यह परिभाषा अतिरिक्त (Redundant) है क्योंकि 'तीन-कोण होने का गुण' निरर्थक है।

(२) यदि अधिक गुण अवियोज्य आकस्मिक गुण (Inseparable Accidens) हो, अर्थात् ऐसा गुण हो जो उस पद द्वारा निर्दिष्ट सब वस्तुओं में तो पाया जाये, परन्तु न तो वह 'गुण' (Connotation) का भाग हो और न उसके द्वारा फलित होता हो, तो आकस्मिक-परिभाषा (Accidental Definition) का दोष हो जाता है। यथा—'मनुष्य एक हंसनेवाला विचारशील प्राणी है।' यह एक आकस्मिक-परिभाषा है क्योंकि 'हंसने का गुण' यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में होता है, परन्तु वह उस पद के 'गुण' का भाग नहीं है।

(२) आक-
स्मिक
परिभाषा

आकस्मिक-परिभाषा (Accidental Definition) के अन्य उदाहरण —

'मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, जिसके दो हाथ और दो पैर होते हैं।' 'मनुष्य एक जीव है, जो स्वयं अपने लिए वस्त्र तैयार करता है।' 'चावल एक वस्तु है जो भारतवर्ष में भोजन की भाँति प्रयोग में लाया जाता है।' 'कुत्ता एक पालतू जानवर है।' 'सैनिक एक वीर पुरुष है जो अपने देश के लिए मरने को तत्पर रहता है।' 'विद्यार्थी वह वयस्क व्यक्ति है, जो पुस्तकें सहित विद्यालय में जाता है।' 'स्वर्ण एक बहुमूल्य धातु है।' 'दिन सूर्योदय और सूर्यास्त के मध्य का समय है।' 'सूर्य दिन में चमकनेवाला सितारा है।' 'सज्जन वह है जो भले समाज में उठता-बैठता है।'।

(३) यदि अधिक गुण वियोज्य-आकस्मिक-गुण (Separable Accidens) हो, अर्थात् ऐसा गुण हो जो पद द्वारा निर्दिष्ट सब वस्तुओं में नहीं, पर कुछ में ही वर्तमान हो, तो 'अव्याप्त परिभाषा' (too narrow definition) का दोष हो जाता है, क्योंकि ऐसी परिभाषा पूरे पद पर नहीं, पर उसके एक अंश पर ही

(३) अव्याप्त
परिभाषा

चरितार्थ हो पाती है। यथा—‘मनुष्य एक सम्य विचारशील प्राणी है।’ यह अव्याप्त परिभाषा (too narrow definition) है, क्योंकि ‘सम्यता’ का गुण सब मनुष्यों में नहीं होता। इसी प्रकार यह परिभाषा कि ‘त्रिभुज एक समतल आकृति है, जो तीन बराबर रेखाओं से वेष्टित हो’ भी अव्याप्त (too narrow) है।

(ख) यदि परिभाषा ‘गुण’ (Connotation) से कम का उल्लेख करे, तो ‘अतिव्याप्त-परिभाषा’ (too wide definition) का दोष हो जाता है, क्योंकि वह परिभाष्य-पद द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओं की अपेक्षा अधिक वस्तुओं पर चरितार्थ हो जाती है। यह परिभाषा कि ‘मनुष्य एक प्राणी है,’ अतिव्याप्त है, क्योंकि वह मनुष्य पर ही नहीं, अपितु सभी जीव-जन्तुओं पर चरितार्थ हो जाती है। इसी प्रकार, ‘अल्कोहल एक प्रकार की औषधि है।’ ‘हीरा एक प्रकार का कार्बन है।’ ‘चट्टान एक कठोर पदार्थ है।’ आदि भी अतिव्याप्त (too wide) परिभाषाएँ हैं।

नियम २ :
परिभाषा
दुर्बोध या
आलंकारिक
नहीं होनी
चाहिए।

नियम २ :—परिभाषा परिभाष्य पद की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होनी चाहिए ; अतः वह आलंकारिक (Figurative), संदिग्ध (Ambiguous) और दुर्बोध (Obscure) भाषा में व्यक्त नहीं होनी चाहिए।

इस नियम के उल्लंघन से ‘आलंकारिक परिभाषा’ (Figurative Definition) तथा ‘दुर्बोध परिभाषा’ (Obscure Definition) का दोष हो जाता है।

आलंकारिक परिभाषा के उदाहरण :—

आलंकारिक
परिभाषा

‘सिंह जंगल का राजा है।’ ‘मनुष्य सृष्टि का सिरमौर है।’ ‘आवश्यकता आविष्कार की जननी है।’ ‘सगीत एक मूल्यवान् ध्वनि है।’ ‘कवि माधुर्य और प्रकाश का प्रतीक है।’ ‘तर्कशास्त्र मानसिक-औषधि है।’ ‘बाल्यकाल जीवन का सेवेरा है।’

‘बालक मनुष्य का पिता है।’ ‘समय अनन्त का गतिमय प्रति-विम्ब है।’

दुर्बोध परिभाषा के उदाहरण :—

‘जीवन गरीरान्तर्गत एकत्रीभूत और अभौतिक पदार्थ है।’
‘सूर्य दिवान्धकारहर्ता जाज्वल्यमान दीपक है।’ ‘पेगन एक प्रकार का भन्ता है, जो किसी व्यक्ति को दिया जाता है, जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।’

नियम ३.—परिभाषा में परिभाष्य पद अथवा उसका समानार्थी पद नहीं होना चाहिए।

इस नियम के उल्लंघन से पर्यायोक्ति परिभाषा (Synonymous Definition) या चक्रक परिभाषा (Circle in Definition) का दोष हो जाता है।

उदाहरण —‘मनुष्य मानवीय है।’ ‘पौधा एक वनस्पति है।’ ‘माध्याकर्षण पदार्थ का वह सार्वलोकिक गुण है, जिसके कारण प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे की ओर आकर्षित होता है।’ ‘शिक्षा-संचालक शिक्षा का संचालन करता है।’ ‘ग्लेशियर हिम की सरिता है।’ ‘सूर्य सौर-मण्डल का केन्द्र है।’ ‘राजनीतिज्ञ वह मनुष्य है, जो राजनीति जानता हो।’ ‘बलवान मनुष्य वह है, जिसमें बल हो।’

नियम ४ —परिभाषा निषेधात्मक (Negative) नहीं होनी चाहिए, यदि वह स्वीकारात्मक हो सकती है।

परिभाषा में वे सब गुण प्रकट किये जा सकते हैं, जो आवश्यक हैं, किन्तु निषेधात्मक परिभाषा उन्हीं बातों का प्रतिपादन करती है, जो किसी वस्तु में नहीं होती। अतः परिभाषा को निषेधात्मक नहीं होना चाहिए, जहाँ तक सम्भव हो सके, वह स्वीकारात्मक ही होनी चाहिए।

इस नियम का उल्लंघन करने से निषेधात्मक परिभाषा (Negative Definition) का दोष हो जाता है।

दुर्बोध
परिभाषा

नियम ३ :
परिभाषा
में परिभाष्य
पद नहीं होना
चाहिए

दोष :
चक्रक-
परिभाषा

नियम ४ :
परिभाषा
निषेधात्मक
नहीं होनी
चाहिए।

दोष :
निषेधात्मक
परिभाषा

उदाहरण — 'पाप पुण्य नहीं है।' 'सत्य असत्य नहीं है।' 'द्रव वह है जो न तो ठोस हो और न गैस।' 'मन पदार्थ नहीं है।' 'असफलता सफलता का अभाव है।' 'अज्ञान ज्ञान के न होने को कहते हैं।' 'शान्ति अशान्ति का अभाव है।' 'निद्रा जागृति का उल्टा है।'

कभी-कभी किसी पद की उचित परिभाषा करने में कठिनाई होती है, तब हम वर्णन (Description) के रूप में निषेधात्मक परिभाषा (Negative Definition) का सहारा ले लेते हैं।

सक्षेप में, परिभाषा पूर्ण और स्पष्ट होनी चाहिए और वह पर्यायोक्ति-मात्र अथवा निषेधात्मक नहीं होनी चाहिए।

§ ३. परिभाषा की सीमाये (Limits)

परिभाषा की सीमाये निम्नलिखित हैं —

परतम
जाति

(क) परतम जाति (Summum Genus) की परिभाषा नहीं हो सकती। परिभाषा में आसन्न-जाति तथा व्यावर्तक गुण का विवरण किया जाता है। परतम जाति सर्वोच्च जाति होती है, अतः वह किसी उच्चतर जाति के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकती। अतः उसकी परिभाषा नहीं हो सकती।

विशिष्ट
भाववाचक
नाम

(ख) विशिष्ट भाववाचक नाम (Singular Abstract Names) प्रारम्भिक गुणों के नाम होते हैं; अतः उनकी परिभाषा नहीं की जा सकती क्योंकि उनसे अधिक सरल अथवा प्रारम्भिक और कुछ नहीं हो सकता। इसलिए 'समानता', 'वर्गता' आदि की परिभाषा असंभव है।

व्यक्ति-
वाचकनाम
तथा
व्यक्तिगत
वस्तुयें

(ग) व्यक्तिवाचक नाम (Proper Names) तथा व्यक्तिगत वस्तुयें (Individual objects)। व्यक्तिवाचक नामों में 'गुण' (Connotation) नहीं होता, अतः उनके गुणों का वर्णन ही नहीं सकता। व्यक्तिगत वस्तुओं के अपरिमित गुण होते हैं और उन समस्त गुणों की गणना करना असंभव है।

अतः उनकी परिभाषा नहीं हो सकती। उनके स्पष्टीकरण की विधि केवल यह है कि समयानुक्ल उनका किसी प्रकार से वर्णन कर दिया जाय।

कुछ हल किये हुए प्रश्न

(क) कुत्ता एक पालतू जानवर है।

उत्तर —यह परिभाषा तार्किक नहीं है क्योंकि 'पालतू जानवर' 'कुत्ते' का आकस्मिक गुण है। इसमें सम्पूर्ण 'गुण' का वर्णन न करके केवल आकस्मिक गुण का वर्णन किया गया है। अतः यह 'आकस्मिक परिभाषा' अथवा वर्णन-मात्र है।

(ख) कवि मावुयं और प्रकाश का देवता है।

उत्तर —इसमें 'आलंकारिक परिभाषा' का दोष है क्योंकि सम्पूर्ण 'गुण' का वर्णन न करके आलंकारिक भाषा का उपयोग किया गया है।

(ग) शान्ति अशान्ति का अभाव है।

उत्तर —इसमें निषेधात्मक परिभाषा का दोष है क्योंकि 'अशान्ति का अभाव' केवल यह व्यक्त करता है कि 'शान्ति' क्या नहीं है, परन्तु तार्किक परिभाषा में यह व्यक्त होना चाहिए कि वह क्या है।

(घ) सिंह चित्राकित जन्तु जैसा होता है।

उत्तर —यह केवल वर्णन है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण 'गुण' का विवरण नहीं है।

प्रश्नमाला ५

(१) तार्किक-परिभाषा किसे कहते हैं? उसकी सीमायें तथा आकारगत दशाये क्या हैं?

(२) तार्किक-परिभाषा के नियमों का वर्णन कीजिए। इन नियमों के उल्लंघन से कौन-कौन से आभास (दोष) उत्पन्न हो जाते हैं? (उ० प्र० १९५२)

(३) परिभाषा की उपयोगिता और कार्य क्या-क्या है ?
परिभाषा को 'विशुद्ध विचार की आवश्यक शक्ति' क्यों कहते हैं ?
(पञ्चाव १९२३)

(४) किस प्रकार के पदों की परिभाषा नहीं हो सकती ?
क्या व्यक्तिवाचक नामों की परिभाषा हो सकती है ? (कलकत्ता
१९३९)

(५) एक दृष्टांत देकर परिभाषा और वर्णन का अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

(६) निम्नलिखित परिभाषाओं का परीक्षण कीजिए :—

(क) त्रिभुज वह समतल क्षेत्र है जिसकी तीन भुजाएँ एक समान हो ।

(ख) घी आयु है ।

(ग) सुवर्ण एक धातु है जो चाँदी से अधिक कीमतवाली होती है ।

(घ) सम्य मनुष्य उसे कहते हैं, जिसके आजीवन का कोई खास प्रबन्ध न हो ।

(ङ) मनुष्य एक स्वार्थी जीव है ।

(च) रोटी जीवन है ।

(छ) घोड़ा जीव है ।

(ज) आम एक मीठा फल है ।

(झ) मनुष्य हँसनेवाला जन्तु है ।

(ञ) मनुष्य आदतों का समूह है ।

(ट) ज्ञान अज्ञान का अभाव है ।

(ठ) मनुष्य एक विचारशील जीव है जो संस्कृत जानता है ।

(ड) काव्य मानव-हृदय का व्यक्त-भाव है ।

(ढ) देवता वह है जो मनुष्य न हो ।

(ण) न्यायाधीश वह व्यक्ति है, जो न्याय-कुशल हो ।

(त) प्रकाश अन्धकार का अभाव है ।

(थ) घोबी वह व्यक्ति है जो कपड़े धोता है ।

(द) भेड़ वह जानवर है जिससे ऊँ मिले ।

(ध) कुत्ता वह पशु है जो बिल्ली से बड़ा हो ।

(न) रेलगाडी वह सवारी है जो चालीस मील प्रति-
घंटे की चाल से दौड़े।

(प) व्यायाम जीवन की ओपधि है।

EXERCISE V.

1. What is Logical Definition? What are its limits and formal conditions?

2. Enunciate the Rules of Logical Definition. What Fallacies are committed by the violation of these rules? [U P 1952]

3. What are the uses and functions of Definition? Why is Definition called the essential condition of valid thought? [Punjab 1923].

4. Which are the terms, which cannot be defined? Can Proper Names be Defined?

5. Elucidate by means of a concrete illustration the distinction between Definition and Description

6. Examine the following definitions —

(a) A triangle is a plane figure having its three sides equal

(b) Ghee is Life

(c) Gold is a metal more costly than silver

(d) A gentleman is one who has no particular means of subsistence

(e) Man is a selfish animal

(f) Bread is life

(g) Horse is an animal.

(h) Mango is a sweet fruit

(i) Man is a laughing animal

(j) Man is a bundle of habits.

(k) Knowledge is the absence of ignorance

(l) Man is a rational animal, who knows Sanskrit

(m) Poetry is an expressed emotion of human heart.

(n) A god is one who is not a man

(o) A judge is a person who is expert in judging

- (p) Light is the absence of darkness
 - (q) A washerman is a person who washes the clothes.
 - (r) Sheep is an animal which gives wool
 - (s) A dog is that animal which is bigger than cat.
 - (t) A railway train is that conveyance which runs forty miles an hour.
 - (u) Exercise is a medicine of life
-

षष्ठ प्रकरण

तार्किक-विभाग (Logical Division)

- § १. तार्किक-विभाग (Logical Division) का स्वरूप ।
 टिप्पणी—विभाग (Division) और परिभाषा (Definition) ।
- § २. तार्किक-विभाग के नियम (rules) तथा उनके उल्लघन से उत्पन्न दोष (fallacies) ।
- नियम १. उसके उल्लघन से 'भौतिक-विभाग' (Physical Division) तथा 'अतिभौतिक विभाग' (Metaphysical Division) के दोष ।
- नियम २. उसके उल्लघन से 'सकर-विभाग' (Cross-Division) का दोष ।
- नियम ३. उसके उल्लघन से 'अति-सकीर्ण-विभाग' (Too narrow Division) तथा 'अति-विस्तीर्ण विभाग' (Too wide Division) का दोष ।
- नियम ४. उसके उल्लघन से 'परस्पर-व्याप्त-विभाग' (Overlapping Division) का दोष ।
- नियम ५. उसके उल्लघन से 'भौतिक-विभाग' (Physical Division) और 'अतिभौतिक विभाग' (Metaphysical Division) का दोष ।
- नियम ६. उसके उल्लघन से 'अतिसकीर्ण-विभाग' (Too narrow Division) का दोष ।
- § ३. द्विवर्गीय विभाग (Division by Dichotomy)
 प्रश्नमाला ६ ।

§ १. तार्किक विभाग (Logical Division) का स्वरूप

तार्किक
विभाग

जब हम किसी जाति (Genus) या उच्चतर वर्ग को किसी निश्चित सिद्धान्त के अनुसार तद्गत उपजातियों (Species) या निम्नतर वर्गों में विश्लेषित करते हैं, तो इस क्रिया को 'तार्किक-विभाग' (Logical Division) कहते हैं।

तार्किक-विभाग (Logical Division) किसी पद के 'निर्देश' (Denotation) का विस्लेषण होता है, जब कि तार्किक-परिभाषा (Logical Definition) में उसके 'गुण' (Connotation) का वर्णन किया जाता है। 'तार्किक-विभाग' से तात्पर्य उस पद द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओं की गणना (enumeration)-मात्र नहीं है, वरन् जाति को उसकी उपजातियों में विभक्त करना है। इस प्रकार तार्किक-विभाग सर्वदा एक वर्ग (class) को उसके उप-वर्गों (sub-classes) में बाँटना है; किसी वस्तुविशेष या व्यक्ति को उसके अवयवों में बाँटना नहीं।

तार्किक-विभाग (Logical Division) का भौतिक-विभाग (Physical Division) एवं अतिभौतिक-विभाग- (Metaphysical Division) से अन्तर समझ लेना चाहिए।

भौतिक
विभाग और

भौतिक-विभाग (Physical Division) से तात्पर्य किसी भौतिक पदार्थ को उसके अवयवों (parts) में बाँटना है। यथा 'वृक्ष' को उसके तने, शाखा, पत्ते आदि में विभक्त करना, 'मनुष्य' को उसके 'सिर', 'धड़', 'हाथ', 'पैर' आदि में बाँटना।

अतिभौतिक
विभाग से
है।

अतिभौतिक-विभाग (Metaphysical Division) किसी एक वस्तु अथवा वस्तुओं के वर्ग का उसके गुणों में विश्लेषण करना है। यथा—यदि हम 'गीशे' को उसके गुणों—'कड़ा',

‘भुरभुरा’, ‘पारदर्शी’ इत्यादि में विश्लेषित करे, तो यह अति-भौतिक विभाग (Metaphysical Division) होगा। इसी प्रकार यदि हम ‘मनुष्य’ का विभाजन उसके गुणों, यथा—‘प्राणित्व’ एवं ‘विचारशीलता’ में करे, तो यह भी अति-भौतिक-विभाग (Metaphysical Division) होगा।

भौतिक-विभाग (Physical Division) तथा अति-भौतिक-विभाग (Metaphysical Division) दोनों ही तार्किक-विभाग (Logical Division) से भिन्न हैं, क्योंकि तार्किक-विभाग किसी एक वस्तु या गुण का नहीं होता, केवल वस्तुओं या गुणों के एक वर्ग का होता है।

तार्किक-विभाग (Logical Division) में हम एक ऐसे गुण के तारे में सोचते हैं, जो कि किसी जाति के कुछ सदस्यों में तो पाया जाये, परन्तु कुछ में नहीं। और यही ‘विभाग का मूल-सिद्धान्त’ (Fundamentum Divisionis) हो जाता है। यथा—‘मनुष्य’ का विभाग करते समय हमें पता चलता है कि कुछ मनुष्य ‘सम्य’ हैं और कुछ ‘सम्य’ नहीं हैं। अतः हम विभाग का मूल सिद्धान्त सम्य होना या सम्य न होने के गुण को चुनते हैं। यह स्पष्ट है कि विभाग के विभिन्न मूल-सिद्धान्तों के आधार पर एक ही जाति को उसकी उपजातियों में अनेक प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार ‘मनुष्य’ का विभाग ‘श्वेत’ या ‘अश्वेत’ में, अथवा ‘सम्य’ या ‘असम्य’ में, अथवा ‘हिन्दू’ या ‘अहिन्दू’ में किया जा सकता है।

विभाग का
मूल नियम

टिप्पणी — विभाग (Division) और परिभाषा (Definition)

विभाग (Division) का सम्बन्ध पदों के निर्देश (Denotation) से है, और परिभाषा का सम्बन्ध उनके

‘गुण’ (Connotation) से होता है। अधिकांश पदों के ‘निर्देश’ तथा ‘गुण’ दोनों होते हैं और इन दोनों अर्थों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वास्तव में ये दोनों एक ही वस्तु के दो दृष्टिकोण समझे जाते हैं। अतः विभाग (Division) और परिभाषा (Definition) को एक साथ रखने से पदों का पूर्ण अर्थ ज्ञात हो पाता है। विभाग से पता चलता है कि पद द्वारा व्यक्त उच्च वर्ग में कौन कौन-से उपवर्ग सम्मिलित हैं, और परिभाषा उनके समान और अनिवार्य गुणों का विवरण देती है। इस प्रकार विभाग (Division) और परिभाषा (Definition) परस्पर सम्पूरक हैं।

§ २ तार्किक-विभाग के नियम (rules) तथा उनके उल्लंघन से उत्पन्न दोष (fallacies)

तार्किक-विभाग (Logical Division) निम्नलिखित नियमों के अनुसार होना चाहिए। ये नियम विभाग के स्वभाव में ही निहित रहते हैं।

नियम १ :
तार्किक
विभाग
वर्ग का
होता है।

नियम १ : तार्किक विभाग सर्वदा किसी वर्ग (class) का होता है, व्यक्ति (individual) का नहीं। उदाहरण के लिए, हम ‘मनुष्य’ का तार्किक-विभाग कर सकते हैं, परन्तु ‘अकबर महान्’ का तार्किक-विभाग नहीं कर सकते।

तार्किक-विभाग की परिभाषा से ही यह नियम फलित हो जाता है। इसी विशेषता के कारण तार्किक-विभाग (Logical Division), भौतिक (Physical) और अतिभौतिक (Metaphysical) विभाग से भिन्न माना जाता है।

नियम २ :
विभाग का
एक मूल

नियम २ तार्किक विभाग एक काल में एक ही मूल-सिद्धान्त (Fundamentum Divisionis) के अनुसार होना चाहिए, यथा—किसी जाति के कुछ सदस्यों में किसी विशेष

गुण का होना और कुछ सदस्यों में उस गुण का न होना । इस प्रकार, 'विद्यार्थी' का विभाग 'योग्य' और 'अयोग्य' में हो सकता है क्योंकि विभाग का मूल-सिद्धान्त एक ही है यथा—कुछ विद्यार्थियों में योग्यता का गुण होना और कुछ में उस गुण का न होना ।

इस नियम के उल्लंघन से संकर-विभाग (Cross Division) का दोष (fallacy) हो जाता है । यथा—'मनुष्य' का विभाग 'लम्बे', 'सम्य', 'गोरे', और 'योरपवासी' में करना । स्पष्ट है कि यह विभाजन चार मूल-सिद्धान्तों के अनुसार हुआ है, यथा—'कद', 'नस्कृति', 'त्वचा का रंग' और 'जाति' । इसी प्रकार, यदि 'त्रिभुज' का विभाग 'समत्रिबाहु त्रिभुज' और 'समकोण त्रिभुज' में करे तो विभाग के दो मूल सिद्धान्तों का उपयोग हो जाता है, यथा—'भुजाओं के प्रकार' एवं 'कोणों के प्रकार' ।

नियम ३ : तार्किक विभाग में उपजातियों का 'निर्देश' विभाजित 'जाति' के 'निर्देश' के बराबर होना चाहिए । उदाहरण के लिए, यदि हम भौतिक पदार्थों का विभाग 'ठोस', 'द्रव', और 'गैस' में करे, तो इन तीनों उपजातियों का सम्मिलित 'निर्देश' 'भौतिक पदार्थ' के 'निर्देश' के बिल्कुल बराबर होगा ।

इस नियम के उल्लंघन से या तो 'अति-संकीर्ण-विभाग का दोष' (Fallacy of too narrow Division) या 'अति-विस्तीर्ण-विभाग का दोष' (Fallacy of too wide Division) हो जाता है । यदि विभाग इस प्रकार का हो कि कोई उपजाति छूट जाय, तो ऐसा विभाग 'अति-संकीर्ण' (too narrow) कहलायेगा ; यथा—'त्रिभुज' का विभाग 'समत्रिबाहु' और 'समद्विबाहु' में । (यहाँ उपजाति 'विषमबाहु' छूट गई है ।) यदि किसी जाति का विभाग करते समय उसमें ऐसी उपजाति भी सम्मिलित कर दे जो कि उसके अन्तर्गत नहीं आती हो, तो ऐसा विभाग 'अति-विस्तीर्ण' (too wide) हो जायेगा ; उदाहरण के लिए सिक्को का विभाग सोने, चाँदी, निकिल, ताँबे के सिक्के एवं 'ब्लैक-जोट' में ।

नियम होना चाहिए ।

दोष

नियम ३ .
उपजातियों का योग विभाजित जाति के बराबर होना चाहिए ।

दोष

नियम ४ :
विभाजित
उपजातियाँ
परस्पर-
व्याप्त नहीं
होनी
चाहिए ।

नियम ४ : तार्किक-विभागमें, विभाजित उपजातियाँ पृथक्-पृथक् होनी चाहिए, परस्पर-व्याप्त नहीं ।

इस नियम का यह अर्थ है कि कोई वस्तु एक से अधिक उपजाति के अन्तर्गत नहीं आनी चाहिए । उदाहरण के लिए, यदि हम 'त्रिभुज' का विभाग 'समत्रिबाहु', 'समद्विबाहु' और 'विषम-बाहु' में करे तो विभाजित उपजातियाँ परस्पर पृथक्-पृथक् हैं, कोई भी त्रिभुज एक से अधिक उपजाति के अन्तर्गत नहीं रक्खा जा सकता ।

यह नियम दूसरे नियम से ही फलित होता है जिसके अनुसार विभाग का एक ही मूल-सिद्धान्त होना चाहिए । यदि विभाग का एक ही मूल-सिद्धान्त होगा, तो उपजातियाँ पृथक्-पृथक् होंगी; परन्तु यदि विभाग एक से अधिक मूल-सिद्धान्तों के अनुसार होगा, तो विभाजित उपजातियाँ परस्पर-व्याप्त हो जायेगी ।

दोष

इस नियम के उल्लंघन से परस्पर-व्याप्त विभाग (Overlapping Division) का दोष उत्पन्न हो जाता है । उदाहरण के लिए, यदि, 'मनुष्य' का विभाग 'गोरे' और 'लंबे' में करे, तो यह दोष हो जाता है, क्योंकि 'गोरे' मनुष्य 'लंबे' भी हो सकते हैं, अतः उपजातियाँ परस्पर-व्याप्त हो जाती हैं ।

नियम ५ :
विभाजित
जाति का
नाम उप-
जातियों में
प्रयुक्त हो
सकना
चाहिए ।

नियम ५ : विभाजित जाति का नाम उसी अर्थ में प्रत्येक उपजाति के लिए प्रयुक्त होना चाहिए । जैसे—'त्रिभुज' नाम उसकी प्रत्येक उपजाति यथा—'समत्रिबाहु', 'समद्विबाहु' और 'विषमबाहु' के लिए प्रयुक्त हो सकता है ।

यह नियम दूसरे नियम से फलित होता है । यदि कोई ऐसी उपजाति हो, जिसके लिए जाति का नाम प्रयुक्त न हो सके, तो स्पष्ट है कि उपजातियों का सम्मिलित 'निर्देश' विभाजित 'जाति' के निर्देश से अधिक हो जायगा ।

यदि इस नियम का उल्लंघन कर दिया जाय तो भौतिक-विभाग (Physical Division) अथवा अति-भौतिक-विभाग

(Metaphysical Division) का दोष हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम 'मनुष्यो' का विभाग 'सिर', 'धड़', 'हाथ', 'पैर' इत्यादि में करें तो 'मनुष्य' नाम शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि हम 'एशिया' का विभाग 'जापान', 'चीन', 'भारतवर्ष', 'ईरान' इत्यादि में करें, तो यह तार्किक-विभाग नहीं होगा, क्योंकि इन भागों के लिए महाद्वीप का नाम प्रयुक्त नहीं किया जा सकता यह भौतिक-विभाग के उदाहरण है। यदि 'मनुष्य' के गुणों का 'प्राणित्व' एवं 'विचारशीलता' में विग्लेषण करें, तो जाति का नाम 'मनुष्य' इन गुणों के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। अतः यह तार्किक-विभाग न होकर अतिभौतिक-विभाग हुआ।

दोष

नियम ६ किसी क्रमिक-विभाग (continued Division) में प्रत्येक जाति का विभाग तद्गत आसन्न-उपजातियों (proximate sub-classes) में होना चाहिए, दूरस्थ (remote) में नहीं। विभाग में उल्लघन (leap) कभी नहीं होना चाहिए (Divisio non faciat saltum)। जब कभी विभाग में एक से अधिक सोपान हों, तो वे क्रमिक होने चाहिए, ताकि एक भी मध्यवर्ती वर्ग न छूट जाय।

नियम ६ :
विभाग
आसन्न
उपजातियों
में होना
चाहिए।

इस नियम के उल्लघन करने से प्रायः अति-संकीर्ण-विभाग (too narrow division) का दोष हो जाता है। अतः 'आयताकार सरल आकृतियों' का विभाग 'समत्रिबाहु त्रिभुज', 'वर्ग', 'समानान्तर चतुर्भुज' जैसी दूरस्थ (remote) उपजातियों में नहीं करना चाहिए।

दोष

यह बात ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त सभी नियम परस्पर सम्बद्ध हैं और उनमें से किसी एक के उल्लघन करने से ही अन्य नियमों का उल्लघन हो जाता है। अतः एक ही दृष्टांत में एक से अधिक दोष हो जाते हैं।

§ ३. द्विवर्गाश्रित-विभाग (Division by Dichotomy)

विभाग के नियमों के अनुसार, विभाग का मूल-सिद्धान्त

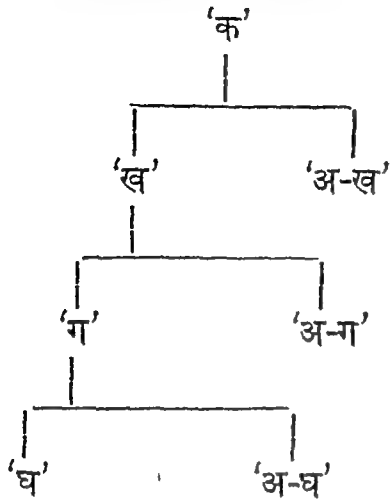
द्विवर्गाश्रित
विभाग एक
आकारगत
क्रिया है।

एक ही होना चाहिए ; विभाजित उपजातियाँ परस्पर-व्याप्त नहीं होनी चाहिए और सब उपजातियों का सम्मिलित रूप विभाजित जाति के बराबर होना चाहिए। यह स्पष्ट है कि हम इस बात के लिए सर्वदा निश्चित नहीं रहते कि किसी विभाग में इन नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है या नहीं। क्योंकि हमें विभाजित जाति द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। आकारगत तर्कशास्त्र में ऐसे ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। इसी कारण कुछ तर्कशास्त्री 'विभाग' को वस्तुगत तर्कशास्त्र का भाग समझते हैं। अतः आकारगत तर्कशास्त्रियों ने विभाग की एक ऐसी पद्धति का वर्णन किया है, जिसमें विभाग के आकार-मात्र से, बिना विषय-वस्तु के ज्ञान के ही, हम यह ज्ञान सकते हैं कि विभाग के नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। इस पद्धति को द्विवर्गाश्रित-विभाग (Division by Dichotomy) कहते हैं।

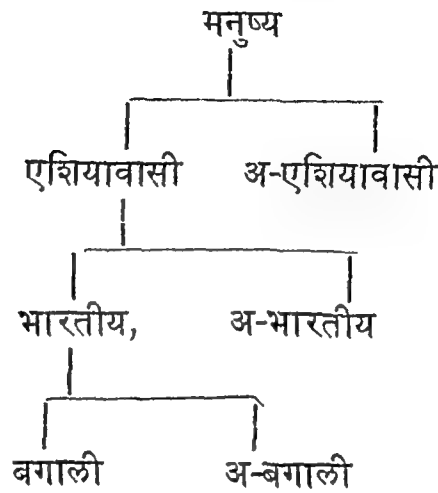
इसमें उच्च
वर्ग को दो
उपवर्गों में
विभाजित
किया जाता
है—एक वर्ग
स्वीकारा-
त्मक तथा
दूसरा उसका
निषेधात्मक
होता है।

द्विवर्गाश्रित-विभाग (Division by Dichotomy) का अर्थ दो भागों में काटना है। इसका यह अर्थ है कि किसी उच्च वर्ग को, प्रत्येक पद पर, दो उपवर्गों में विभाग करना, जिनमें से एक स्वीकारात्मक होता है, और दूसरा निषेधात्मक। क्योंकि उपवर्ग स्वीकारात्मक तथा निषेधात्मक होते हैं, अतः विभाग का मूल-नियम एक ही होता है। दोनों उपवर्ग विरोध-वाचक-नियम (Principle of Contradiction) और निर्मध्यम-नियम (Principle of Excluded Middle) के अनुसार, परस्पर पृथक् पृथक् होंगे और उनका सम्मिलित 'निर्देश' जाति (या वर्ग) के 'निर्देश' के बराबर होगा। अतः इस विधि से विभाग के नियमों का पालन हो जाता है और साथ ही विषयवस्तु के ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सूत्रात्मक उदाहरण
(Symbolic Example)



वास्तविक उदाहरण
(Concrete Example)



द्विवर्गाश्रित विभाग (Division by Dichotomy) की उपयोगिता इस बात में है कि इससे विभाग पूर्ण रूप से हो जाता है। विरोध-बाधक-नियम एवं निर्मध्यम नियम पर आधारित होने के कारण, यह 'आकार' की दृष्टि में शुद्ध है। परन्तु इस पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि निषेधात्मक पद बड़ा अनिश्चित और अस्पष्ट होता है।

उपयोगिता
तथा कमियाँ

कुछ हल किये हुए अभ्यास

सकेत —जैसा कि तार्किक परिभाषा के सम्बन्ध में होता है, उसी प्रकार तार्किक-विभाग के किसी दिए हुए उदाहरण में, एक से अधिक दोष संभव हो सकते हैं। अतः विभाग के उदाहरणों का परीक्षण करते समय हमें केवल उसके दोष का नाम ही नहीं देना चाहिए, अपितु उन कारणों का भी उल्लेख करना चाहिए, जिनसे वह दोष हुआ हो।

प्रश्न :—निम्नलिखित विभागों का परीक्षण कीजिए और बताइए कि क्या वे तार्किक-दृष्टि में शुद्ध हैं ?

(क) पौदो का विभाग तना, जड और शाखो मे ।

उत्तर —यह तार्किक-विभाग नही है, प्रत्युत भौतिक-विभाग है क्योकि इसमे पौधे को उसके घटक भौतिक अंगो मे बाँटा गया है ।

(ख) मन का विभाग सवेदन, विचार और सकल्प मे ।

उत्तर —यह तार्किक-विभाग न होकर अतिभौतिक विभाग है क्योकि इसमे 'मन' का विश्लेषण उसके गुणो मे किया गया है ।

(ग) मनुष्य का विभाग गोरे और काले, बदमाश और खूनी मे ।

उत्तर —इसमे एक से अधिक दोष वर्तमान है । इसमे इस नियम का उल्लघन किया गया है कि एक समय मे विभाग का मूल-सिद्धान्त एक ही होना चाहिए । इस उदाहरण मे अनेक मूल-सिद्धान्त है, यथा—'वर्ण' और 'नैतिकता' । अतः यह सकर-विभाग के दोष से युक्त है । इसमे परस्पर-व्याप्त विभाग का दोष भी है क्योकि विभाजित उपजातियाँ 'गोरे' और 'खूनी' परस्पर व्यावर्तक नही है—कोई व्यक्ति इन दोनो उपजातियो के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है ।

प्रश्नमाला ६

(१) तार्किक-विभाग और तार्किक परिभाषा से आप क्या समझते है ? उदाहरण देकर उनका सम्बन्ध बतलाइए (उ० प्र० १९५३) ।

(२) तर्कशास्त्र मे 'विभाग' से क्या तात्पर्य है ? निम्नलिखित विभागो का परीक्षण कीजिए —

(क) पुस्तको का विभाग धार्मिक, ऐतिहासिक तथा मनोरञ्जक मे ।

(ख) त्रिभुजो का विभाग समद्विबाहु, समत्रिबाहु तथा समत्रिभुज मे ।

(ग) पदो का विभाग विशिष्ट, स्वीकारात्मक तथा भाववाचक मे ।

(घ) भारत का विभाग बंगाल, मद्रास, बम्बई तथा उत्तर-प्रदेश में। (उ० प्र० १९५२)।

(३) तार्किक-विभाग किसे कहते हैं ? तार्किक, भौतिक तथा अतिभौतिक विभाग का अन्तर उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। (उ० प्र० १९४६, १९५१, कलकत्ता १९३४)।

(४) विभाग के नियमों का उल्लेख कीजिए तथा उनकी पुष्टि कीजिए। (उ० प्र० १९४८)।

(५) निम्नलिखित विभागों की विवेचना कीजिए।

(क) वायुयान का विभाग पख, इजन और प्रोपेलर में।

(ख) पुस्तक का विभाग साम्यवादी, मनोरंजक और बहुमूल्य में।

(ग) त्रिभुज का विभाग न्यूनकोणिक, समत्रिभुज तथा समत्रिबाहु में। (उ० प्र० १९४८)।

(६) विभाग और वर्गीकरण की तुलना कीजिए। उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए कि विभाग निगमनमूलक होता है, तथा वर्गीकरण आगमनमूलक। (उ० प्र० १९४७)

(७) निम्नलिखित विभागों की जाँच कीजिए —

(क) रंग का विभाग सफेदी, कालापन तथा हरापन में।

(ख) पदों का विभाग विशिष्ट, भाववाचक तथा गुणवाचक में।

(ग) मनुष्य का विभाग पुरुष, स्त्री तथा बच्चों में। (उ० प्र० १९४६)।

(८) द्विवर्गीकृत विभाग से क्या तात्पर्य है ? उसका क्या उपयोग है ? (बम्बई १९३०, कलकत्ता १९३७, मद्रास १९३३, पंजाब १९२६)।

(९) परिभाषा, विभाग तथा वर्गीकरण के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिए। (कलकत्ता १९४०)।

EXERCISE VI

1. What do you understand by Logical Division and Logical Definition ? Explain their mutual relation, giving examples. [U P 1953].

2. What is meant by Division in Logic ? Examine the following Divisions

- (a) Books into religious, historical and interesting.
- (b) Triangles into isosceles, equilateral and right-angled
- (c) Terms into Singular Positive and Abstract
- (d) India into Bengal, Madras, Bombay and Uttar Pradesh. [U.P 1952].

3 What is Logical Division ? Explain the difference between Logical, Physical and Metaphysical Division. Give examples [U P. 1946, 1951, Calcutta 1934].

4. Enunciate the Rules of Division and exemplify them. [U P. 1948]

5. Criticise the following divisions

- (a) Aeroplane into wings, engine and propeller.
- (b) Books into communist, interesting and valuable.
- (c) Triangles into acute-angled, right-angled and equilateral. [U P 1948].

6 Compare and distinguish between Division and Classification Give examples to support that Division is deductive while Classification is inductive [U P 1947]

7 Examine the following divisions

- (a) Colour into whiteness, blackness and greenness.
- (b) Terms into Singular, Abstract and Connotative
- (c) Human beings into men, women and children. [U P 1946].

8. What do you mean by Division by Dichotomy ? What is its utility ? [Bombay 1930, Calcutta 1937, Madras 1933, Punjab 1926].

9. Discuss the relations between Definition, Division and Classification [Calcutta 1940]

सप्तम प्रकरण

तर्क-वाक्य (Proposition)

§ १. तर्क-वाक्य (Proposition) का विश्लेषण ।

टिप्पणी — व्याकरण का वाक्य (Grammatical Sentence) तथा तर्कवाक्य (Proposition) ।

§ २. तर्कवाक्यो के प्रकार ।

(क) शुद्ध (Simple) और मिश्रित (Compound) ।

(ख) सम्बन्धानुसार (according to Relation) विभाग निरपेक्ष (Categorical) तथा सापेक्ष (Conditional) ।

(ग) गुणानुसार (according to Quality) विभाग . स्वीकारात्मक (Affirmative) तथा निषेधात्मक (Negative) ।

टिप्पणी १ : हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यो (Hypothetical Propositions) का गुण (Quality) ।

टिप्पणी २ वैकल्पिक तर्कवाक्यो (Disjunctive Propositions) का गुण (Quality) ।

(घ) परिमाणानुसार (according to Quantity) विभाग . सार्वलौकिक (या सामान्य) (Universal) तथा विशेष (Particular) ।

टिप्पणी १ . विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Propositions) ।

टिप्पणी २ सार्वलौकिक (सामान्य) तर्कवाक्य (Universal Propositions) ।

टिप्पणी ३. हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्क-
वाक्यो का परिमाण (Quantity) ।

टिप्पणी ४. वैकल्पिक (Disjunctive) तर्कवाक्यो
का परिमाण (Quantity) ।

(ड) विधि-अनुसार (according to Modality)
—आवश्यक, प्रतिज्ञात, सदिग्ध ।

(च) तात्पर्य (Import) के अनुसार—शाब्दिक
(Verbal) और वास्तविक (Real) ।

§ ३ तर्कवाक्यो का सरलीकरण (Simplification) ।
—‘गुण और परिमाण’ के अनुसार तर्कवाक्यो का आकार:
“आ” (A), “ई” (I), “ए” (E) तथा “ओ” (O) ।

§ ४ वाक्यो का तार्किक आकार में रूपान्तर ।

§ ५ पदो की व्याप्ति (Distribution) ।

टिप्पणी विधेय (Predicates) का परिमाण
जात करना (Quantification) ।

§ ६ चारो प्रकार के तर्कवाक्यो का चित्रीकरण ।
—यूलर (Euler) के वृत्त ।

§ १. तर्क-वाक्य (Proposition) का विश्लेषण

तर्कवाक्य	दो पदों के बीच के सम्बन्ध के कथन को तर्कवाक्य
उसके तीन भाग	(Proposition) कहते हैं । इस प्रकार तर्कवाक्य के तीन अंग होते हैं—अर्थात्, दो पद और एक उन दोनों के बीच का सम्बन्धसूचक शब्द । दो पदों में से एक उद्देश्य (Subject) और दूसरा विधेय (Predicate) कहलाता है, और सम्बन्ध- सूचक चिह्न को संयोजक (Copula) कहते हैं । तर्कवाक्य का ‘उद्देश्य’ उस पद को कहते हैं, जिसके बारे में स्वीकृति या निषेध के रूप में कुछ कहा जाय और जो कुछ कहा जाता है, उसे ‘विधेय’ कहते हैं । तथा संयोजक स्वीकृति या निषेध का चिह्न है । उदाहरण के लिए, ‘मनुष्य’ पूर्ण नहीं है—इस तर्कवाक्य (Proposition) में, ‘मनुष्य’ पद उद्देश्य (Subject) है,
उद्देश्य	
विधेय	
संयोजक	

‘पूर्ण’-पद विधेय (Predicate) है और ‘नहीं है’ शब्द सम्बन्ध-सूचक होने के कारण सयोजक (Copula) है।

सयोजक (Copula) के स्वरूप के विषय में तर्कशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है। इस सम्बन्ध में दो शब्द उठाए जाते हैं—
(१) क्या सयोजक वर्तमान-काल (present tense) में ही प्रयुक्त होता है या अन्य कालों में भी ? (२) क्या सयोजक सर्वदा स्वीकारात्मक ही होता है अथवा निषेधात्मक भी हो सकता है ?

(१) पहले प्रश्न के सम्बन्ध में, हैमिल्टन (Hamilton), मैन्सल (Mansel), फौलर (Fowler) इत्यादि तर्कशास्त्रियों का कहना है कि संयोजक (Copula) सर्वदा वर्तमान काल में ही होता है, परन्तु मिल (Mill) का कहना है कि वह किसी भी काल (tense) में हो सकता है। इस विवाद से दूर रहते हुए भी यह तो स्पष्ट ही है कि सयोजक उद्देश्य और विधेय के बीच का सम्बन्ध बतलाता है, अतः उसमें काल का तत्व नहीं आ सकता। अतः वह वर्तमान काल में ही होना चाहिए। वह काल के तत्व से स्वतंत्र होना चाहिए—काल के तत्व को विधेय (Predicate) के अन्तर्गत समाविष्ट किया जाना चाहिए। यथा—यह न कहकर कि ‘सुकरात एक महान् दार्शनिक था’, हमें यह कहना चाहिए कि ‘सुकरात एक व्यक्ति है, जो एक महान् दार्शनिक था।’ इसमें काल का तत्व विधेय में समाविष्ट कर दिया गया है। इसी प्रकार यह न कहकर कि ‘स्टीमर दो पहर के बाद छूटेगा’, हमें इसे तार्किक-आकार में इस प्रकार व्यक्त करना चाहिए—“स्टीमर एक यान है, जो दो पहर के बाद खाना होगा।”

अतः हमें यह दृष्टिकोण मान्य है कि संयोजक केवल वर्तमान काल में ही होना चाहिए। ‘होना’ क्रिया के वर्तमान-काल के रूप

संयोजक
‘होना’ क्रिया
के वर्तमान
काल में
होता है,
उसमें निषेध
चिह्न हो भी
सकता है
और नहीं
भी।

“है”, “हूँ”, “हैं” इत्यादि है। परिस्थिति के अनुसार संयोजक इन्हीं में से कोई रूप ले सकता है।

संयोजक
स्वीकारात्मक
अथवा
निषेधात्मक
हो सकता है।

(२) दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में, कुछ तर्कशास्त्रियों का मत है कि संयोजक (Copula) सर्वदा स्वीकारात्मक (affirmative) आकार में ही व्यक्त किया जाना चाहिए, परन्तु कुछ का यह कहना है कि परिस्थिति के अनुसार वह स्वीकारात्मक (affirmative) अथवा निषेधात्मक (negative) हो सकता है। जो लोग उसके सदा स्वीकारात्मक होने के पक्ष में हैं, वे निषेध के चिह्न को विधेय में स्थानान्तरित कर देते हैं। यह न कहकर कि “मनुष्य पूर्ण नहीं है”, वे कहेंगे कि “मनुष्य अ-पूर्ण है।” परन्तु यह बात ज्ञातव्य है कि स्वीकृति और निषेध मूल-रूप से विल्कुल भिन्न भाव हैं और उनकी विभिन्नता शब्दों के उलट-फेर से दूर नहीं हो सकती। अतः हमें यह मत मान्य है कि संयोजक (Copula) उद्देश्य और विधेय के स्वीकृति अथवा निषेध-सम्बन्ध के अनुसार क्रमशः स्वीकारात्मक और निषेधात्मक हो सकता है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संयोजक ‘होना’-क्रिया के वर्तमान काल में होना चाहिए और उसका स्वरूप स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक हो सकता है।

दूसरे शब्दों में, ‘संयोजक’ का निम्नलिखित में से कोई भी स्वरूप हो सकता है—‘है’, ‘नहीं है’, ‘हूँ’, ‘नहीं हूँ’, ‘हैं’, ‘नहीं हैं’, ‘हो’, ‘नहीं हो’ इत्यादि।

‘होना’ क्रिया को ‘अस्तित्व होना’ के अर्थ में नहीं लेना चाहिए।

संयोजक के सम्बन्ध में एक बात और महत्व की है। संयोजक दो पदों के बीच का सम्बन्ध व्यक्त करता है, वह उद्देश्य या विधेय के अस्तित्व को स्वीकार या अस्वीकार नहीं करता। वह तो उद्देश्य और विधेय की पारस्परिक सगति या असगति का प्रतीक-मान है। जब हम कहते हैं कि ‘सोना पीला है,’ तो हम ‘सोने’

के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते, वरन हम केवल 'सोना' और 'पीला' पदों के सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। यह बात निम्नांकित तर्कवाक्यों से अधिक स्पष्ट हो जाती है 'सोने का पहाड़ तो एक कल्पना है।' अथवा 'आकाशकुसुम सुगन्धियुक्त है।'।

टिप्पणी : व्याकरण के वाक्य (Grammatical sentence) और तर्कवाक्य (Proposition) ।

तर्कवाक्य प्रायः व्याकरण के वाक्य के समान ही होता है। परन्तु यद्यपि प्रत्येक तर्कवाक्य (Proposition) एक व्याकरण का वाक्य होता है, परन्तु यह सच नहीं है कि प्रत्येक व्याकरण का वाक्य एक तर्कवाक्य होगा। अनेकों ऐसे व्याकरण के वाक्य होते हैं, जो तर्कवाक्यों से भिन्न होते हैं, यथा—प्रश्नसूचक (Interrogative), इच्छासूचक (Optative), आज्ञासूचक (Operative) तथा विस्मयसूचक (Exclamatory) वाक्य। केवल व्याकरण के वर्णनसूचक (Indicative) वाक्य ही तर्कवाक्यों (Propositions) के समान होते हैं। अन्य प्रकार के वाक्यों को वर्णनसूचक वाक्य में परिवर्तित कर देने के बाद ही उनका उपयोग तर्कशास्त्र में हो सकता है। तर्कवाक्य में तीन अंग होते हैं; यथा—उद्देश्य, विधेय और सयोजक और कभी-कभी वर्णनसूचक वाक्य को भी इस प्रकार व्यक्त करना पड़ता है कि वह शुद्ध तार्किक स्वरूप में आ सके।

व्याकरण का वर्णन-सूचक वाक्य तर्कवाक्य के समान होता है।

§२ तर्कवाक्यों के (Propositions) प्रकार

(क) शुद्ध (Simple) और मिश्रित (Compound) :

तर्कवाक्य दो पदों के पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन करता है। यदि ऐसा एक ही वर्णन हो, तो उस तर्कवाक्य को शुद्ध (Simple) कहते हैं; यथा—'सब मनुष्य मरणशील हैं', 'कोई

शुद्ध तर्क-वाक्य से तात्पर्य

एक और
'मिश्रित' से
तात्पर्य एक
से अधिक
तर्कवाक्य
होता है।

मनुष्य पूर्ण नहीं है'। परन्तु यदि किसी तर्कवाक्य में एक से अधिक वर्णन हो, तो वह मिश्रित (Compound) कहलायेगा। यथा—'नैपोलियन एक महान् विजेता और महान् राजनीतिज्ञ दोनों था।' वास्तव में यह तो दो तर्कवाक्यों के वनावर है : (१) नैपोलियन एक महान् विजेता था और (२) नैपोलियन एक महान् राजनीतिज्ञ था। इसी प्रकार, यह तर्कवाक्य कि 'मनुष्य न तो अमर है और न पूर्ण है' अधोर्निग्विन दो तर्कवाक्यों में तोड़ा जा सकता है 'मनुष्य अमर नहीं है' और 'मनुष्य पूर्ण नहीं है।' अतः मिश्रित तर्कवाक्य (Compound Proposition) एक से अधिक तर्कवाक्यों के तुल्य होता है।

सन्निकृष्ट
तथा
विप्रकृष्ट

मिश्रित तर्कवाक्य के दो उपविभाग किये जा सकते हैं, यथा— सन्निकृष्ट (Copulative) तथा विप्रकृष्ट (Remotive)। 'सन्निकृष्ट' उस मिश्रित तर्कवाक्य को कहते हैं जिसमें एक से अधिक स्वीकारात्मक तर्कवाक्य हो और 'विप्रकृष्ट' उस मिश्रित तर्कवाक्य को कहते हैं जिसमें एक से अधिक निषेधात्मक तर्कवाक्य हो।

(ख) सम्बन्धानुसार (according to Relation)
विभाग—निरपेक्ष (Categorical) और सापेक्ष (Conditional)।

निरपेक्ष=
बिना किसी
शर्त के

सम्बन्ध (Relation) अर्थात् स्वीकृति और निषेध के स्वरूप के अनुसार तर्कवाक्यों को निरपेक्ष (Categorical) तथा सापेक्ष (Conditional) में बाँटा जाता है। निरपेक्ष तर्कवाक्य उसे कहते हैं जिसमें उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध बिना किसी उपाधि या शर्त (Condition) के हो; जिसमें विधेय उद्देश्य को पूर्ण रूप से स्वीकार या अस्वीकार करता हो। यथा—'सब मनुष्य मर्त्य हैं।' 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।' 'कुछ विद्यार्थी चतुर हैं।' 'कुछ मनुष्य चतुर नहीं हैं।' इत्यादि।

इन सब उदाहरणों में उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की शर्त नहीं है। सापेक्ष (Conditional) तर्कवाक्य उसे कहते हैं जिसमें उद्देश्य और विधेय के सम्बन्ध की स्वीकृति या निषेध कुछ शर्तों (conditions) के साथ किया जाय। यथा—
'यदि वह आवे, तो मैं जाऊँ।' 'यदि मैं धनी होता, तो मैं अधिक सुखी होता।' 'वह या तो कालेज जायगा, या घर पर ही रुका रहेगा।' इत्यादि। इन सब दशाओं में उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध कुछ शर्तों पर निर्भर है, जिन्हें मान लेने पर ही वह सम्बन्ध लागू हो सकता है।

सापेक्ष—
कुछ शर्तों
पर निर्भर

सापेक्ष (Conditional) तर्कवाक्य दो प्रकार के होते हैं, यथा—हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्य तथा वैकल्पिक (Disjunctive) तर्कवाक्य।

दो प्रकार
के सापेक्ष
तर्कवाक्य

हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्य उस सापेक्ष तर्कवाक्य को कहते हैं, जिसमें शर्त 'यदि' या इसके समानार्थी शब्द द्वारा व्यक्त की गई हो। यथा—'यदि वह आवे, तो मैं जाऊँगा।' 'यदि वर्षा हुई, तो वह नहीं आयेगा।' 'जहाँ सकल्प है, वहाँ राह है।' 'यदि वह मुझसे मिलता, तो वह तुरन्त मुझे पहचान लेता।' 'यदि वह आ जाता, तो मैं चला गया होता।' हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य के दो भाग होते हैं—पूर्वांग (antecedent) और उत्तरांग (consequent)। हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का पूर्वांग (antecedent) वह भाग है, जिसमें शर्त (condition) होती है और उत्तरांग (consequent) वह भाग है, जिसमें वर्णन होता है। उपर्युक्त दो उदाहरणों में 'यदि वह आवे' और 'यदि वर्षा हुई' पूर्वांग हैं तथा 'मैं जाऊँगा' तथा 'वह नहीं आयेगा' उत्तरांग हैं। यदि हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य शुद्ध तार्किक रूप में व्यक्त हो, तो शर्त वाला भाग वर्णन वाले भाग से सदा पहले आता है। इसीलिए

हेतुफलाश्रित
'यदि.....तो'

शर्तवाला भाग 'पूर्वाग' (=पहले आनेवाला भाग) और स्वीकृति या निषेध व्यक्त करनेवाला भाग 'उत्तराग' (=बाद में आनेवाला भाग) कहलाता है। अतः यह हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य 'मैं जाऊँगा, यदि वह आवे,' शुद्ध तार्किक रूप में नहीं है क्योंकि पूर्वाग 'यदि वह आवे' उत्तराग 'मैं जाऊँगा' के पहले नहीं आया है। उसे तार्किक रूप में व्यक्त करने पर वह इस प्रकार हो जायेगा— 'यदि वह आवे, तो मैं जाऊँगा।'

वैकल्पिक
“या तो...या”

वैकल्पिक तर्कवाक्य (Disjunctive Proposition) उस सापेक्ष तर्कवाक्य को कहते हैं जो कि दो विकल्प प्रस्तुत करता है और वे दोनों विकल्प 'या तोया' से पृथक् किये होते हैं। अतः वैकल्पिक तर्कवाक्य का आकार इस प्रकार होता है : “या तो वह आयेगा या मैं जाऊँगा।” “या तो वह साधु है, या वह ठग है।” इत्यादि।

(ग) गुणानुसार (according to Quality) विभाग :
स्वीकारात्मक (Affirmative) और निषेधात्मक (Negative)।

स्वीकारात्मक
और
निषेधात्मक
तर्कवाक्य

गुण (Quality) के अनुसार तर्कवाक्य स्वीकारात्मक (Affirmative) और निषेधात्मक (Negative) में बाँटे जाते हैं। स्वीकारात्मक (Affirmative) तर्कवाक्य उसे कहते हैं, जिसमें विधेय उद्देश्य को स्वीकार या समर्थन करता है। यथा—‘मनुष्य मर्त्य है।’ निषेधात्मक (Negative) तर्कवाक्य उसे कहते हैं जिसमें विधेय उद्देश्य को अस्वीकार करता है। यथा—“मनुष्य पूर्ण नहीं है।”

स्वीकारात्मक तर्कवाक्य में, संयोजक स्वीकारात्मक होता है, अर्थात् उसमें निषेध का चिह्न नहीं होता। परन्तु निषेधात्मक तर्कवाक्य में संयोजक निषेधात्मक होता है, अर्थात् उसमें निषेध

का चिह्न होता है। यथा—‘सब मनुष्य मर्त्य हैं’—स्वीकारात्मक तर्कवाक्य है तथा ‘कुछ मनुष्य चतुर नहीं हैं’—निषेधात्मक है। जब निरपेक्ष निषेधात्मक तर्कवाक्य को व्यक्त करते हैं, तो वह इस प्रकार हो जाता है—“कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है।” “कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।”

कुछ न्यायशास्त्रियों ने सब निषेधात्मक तर्कवाक्यों में निषेध के चिह्न को विधेय का भाग मानकर उन्हें स्वीकारात्मक रूप देने का प्रयत्न किया है। अतः यह न कहकर कि “कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है”, वे कहेंगे कि “सब मनुष्य अपूर्ण हैं।” इस प्रकार निषेध का चिह्न विधेय में समाविष्ट कर दिया गया है। ऐसे तर्कवाक्यों को अपरिमित तर्कवाक्य (Infinite Propositions) कहते हैं। अतः अपरिमित तर्कवाक्यों में संयोजक स्वीकारात्मक होता है, इसलिए उनका आकार स्वीकारात्मक होता है, यद्यपि उनका बल मुख्यतः निषेधात्मक ही होता है। ‘स्वीकृति’ तथा ‘निषेध’ मूल रूप में भिन्न होते हैं, अतः स्वीकारात्मक तथा निषेधात्मक तर्कवाक्यों का अन्तर मानना ही उचित है।

क्या सब निषेधात्मक तर्कवाक्य स्वीकारात्मक बनाए जा सकते हैं?

टिप्पणी १ : हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्यों का गुण (Quality)।

हेतुफलाश्रित (Hypothetical) तर्कवाक्यों का गुण उनके उत्तरांग (Consequent) के गुण पर निर्भर रहता है। पूर्वांग के गुण से उस तर्कवाक्य का गुण निश्चित नहीं किया जाता, क्योंकि पूर्वांग में तो केवल शर्त रहती है, उसमें सम्बन्ध का वर्णन नहीं होता। अतः यदि उत्तरांग स्वीकारात्मक है, तो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य भी स्वीकारात्मक होगा, और यदि उत्तरांग

हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का गुण उनके उत्तरांगों के गुण पर आश्रित रहता है।

निषेधात्मक है, तो हेतुफलाश्रित-तर्कवाक्य भी निषेधात्मक होगा ।
यथा .—

स्वीकारात्मक हेतुफलाश्रित

निषेधात्मक हेतुफलाश्रित

(१) यदि 'क' 'ख' है तो
'ग' 'घ' है ।

(१) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' नहीं है ।

(२) यदि 'क' 'ख' नहीं है तो
'ग' 'घ' है ।

(२) यदि 'क' 'ख' नहीं है, तो
'ग' 'घ' नहीं है ।

(३) यदि वह आता है तो
मैं जाऊँगा ।

(३) यदि वह आता है, तो
मैं नहीं जाऊँगा ।

(४) यदि वर्षा नहीं होगी, तो
मैं जाऊँगा ।

(४) यदि वर्षा नहीं होगी, तो
पृथ्वी नहीं भीगेगी ।

कुछ तर्कशास्त्री ऐसे भी हैं जो सब हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों को स्वीकारात्मक मानते हैं । उनके अनुसार, हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य यह व्यक्त करते हैं कि उत्तरांग और पूर्वांग में पारस्परिक सम्बन्ध है । परन्तु इस दृष्टिकोण से व्यर्थ की जटिलता बढ़ती है ।

टिप्पणी २ . वैकल्पिक तर्कवाक्यों (Disjunctive Propositions) का गुण (Quality) ।

गुण का भेद
नहीं होता ।

वैकल्पिक तर्कवाक्यों (Disjunctive Propositions) में गुण (Quality) का भेद नहीं होता क्योंकि उनका निषेधात्मक आकार ही नहीं होता । अतः सब वैकल्पिक तर्कवाक्य स्वीकारात्मक होते हैं । यह तर्कवाक्य कि “ 'क' न तो 'ख' है और न 'ग' है ”—वैकल्पिक तर्कवाक्य नहीं है क्योंकि उसमें विकल्प का विधान न होकर केवल 'दुहरा-निषेध' (double negation) मात्र है, यथा “ 'क' 'ख' नहीं है ” तथा “ 'क' 'ग' नहीं है । ” यह तो विप्रकृष्ट (Remotive) प्रकार का सयुक्त निरपेक्ष तर्कवाक्य है ।

(घ) परिमाण (Quantity) के अनुसार विभाग—
सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तथा
विशेष (Particular) ।

परिमाण (Quantity) के अनुसार तर्कवाक्यों का विभाग सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तथा विशेष (Particular) में किया जाता है। सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तर्कवाक्य उसे कहते हैं जिसमें विधेय (predicate) सम्पूर्ण उद्देश्य (subject) के लिए स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जाय; यथा—“नव मनुष्य मर्त्य हैं”, “कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।” विशेष तर्कवाक्य (Particular Proposition) उसे कहते हैं जिसमें विधेय उद्देश्य के एक अंश को ही स्वीकार या अस्वीकार करता हो। यथा—“कुछ मनुष्य चतुर हैं।”, “कुछ मनुष्य ईमानदार नहीं हैं।”

सार्वलौकिक
(सामान्य)
और विशेष
तर्कवाक्य

साधारणतया तर्कशास्त्र में परिमाण (Quantity) के चिह्न निम्नलिखित हैं सार्वलौकिक (सामान्य) के लिए ‘सब’, ‘प्रत्येक’, ‘कोई भी’, ‘जो कुछ भी’, ‘जब कभी भी’ । और विशेष के लिए ‘कुछ’ । निषेधात्मक तर्कवाक्यों में निषेध का चिह्न (अर्थात् “नहीं”) जुड़ा रहता है।

परिमाण
के चिह्न

तर्कशास्त्र में “कुछ” से जो अर्थ होता है, वह साधारणतया समझे जानेवाले अर्थ से भिन्न होता है —

तर्कशास्त्र
में ‘कुछ’ का
अर्थ

(१) साधारण बोलचाल में “कुछ” से तात्पर्य ‘सब’ या पूर्ण के एक छोटे अंश से होता है। तर्कशास्त्र में ‘कुछ’ का अर्थ कोई भी अनिश्चित परिमाण (indefinite quantity) होता है। अतः यदि किसी कक्षा में एक सौ विद्यार्थी हैं और उनमें से केवल एक या दो ने ही अपना पाठ याद किया है, तो हम तर्कशास्त्र की भाषा में कहेंगे कि “कुछ विद्यार्थियों ने अपना पाठ याद किया

है।" और यदि सी में से निन्यानवे विद्यार्थियों ने भी अपना पाठ याद किया हो तो इस बात को व्यक्त करने का भी यही तरीका है कि "कुछ विद्यार्थियों ने अपना पाठ याद किया है।" अतः तर्कशास्त्र में "कुछ" का अर्थ "कम से कम एक" होता है।

'कुछ' =
कम से कम
एक

(२) यह बात भी जातव्य है कि तर्कशास्त्र में जब हम "कुछ" शब्द का प्रयोग करते हैं तो "सब" के सम्बन्ध में कोई बात नहीं कहते। साधारण बोलचाल की भाषा में जब हम कोई वक्तव्य किसी कक्षा के कुछ व्यक्तियों के बारे में देते हैं तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि इसका विरुद्ध वक्तव्य शेष के बारे में सही होगा। उदाहरणार्थ, बोलचाल में जब हम कहते हैं कि "कुछ विद्यार्थियों ने अपना पाठ याद कर लिया है", तो हम मानो यह समझते हैं कि "शेष विद्यार्थियों ने अपना पाठ तैयार नहीं किया है।" परन्तु तर्कशास्त्र में ऐसा कोई संकेत या सुझाव नहीं होता। जब हम 'कुछ' के बारे में कोई बात कहते हैं तो 'शेष' के बारे में कुछ संकेत नहीं किया जाता। साधारण भाषा में 'कुछ' से तात्पर्य 'केवल कुछ' होता है, परन्तु तर्कशास्त्र में, 'कुछ' से तात्पर्य 'कम से कम कुछ' होता है—वह 'सब' भी हो सकता है और नहीं भी। अतः तर्कशास्त्र में "कुछ" अनिवार्यतः "सब" का व्यावर्तक नहीं है, परन्तु वह "सब" के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं करता।

'कुछ' =
कम से कम
कुछ

निरपेक्ष तर्क-
वाक्यों का
परिमाण
उद्देश्य के
परिमाण से
निर्धारित
होता है।

निरपेक्ष तर्कवाक्यों का 'परिमाण' उद्देश्य के परिमाण से निर्धारित होता है। यदि उद्देश्य अपने पूर्ण विस्तार (extent) में लिया जाता है तो तर्कवाक्य सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) होता है। और यदि उद्देश्य अपने आंशिक विस्तार में लिया जाता है, तो तर्कवाक्य विशेष (Particular) होता है। अतः सार्वलौकिक या सामान्य तर्कवाक्यों का उद्देश्य व्याप्त (distributed) होता है, तथा विशेष तर्कवाक्यों का उद्देश्य अव्याप्त (undistributed) होता है।

नानाग्रन्थ भाषा में हम सर्वदा तर्कवाक्य के परिमाण को व्यक्त नहीं करते। यदि परिमाण स्पष्टतया व्यक्त नहीं होता अथवा अनिश्चित होता है, तो ऐसे तर्कवाक्यों को अनिश्चित तर्कवाक्य (Indesignate or Indefinite Propositions) कहते हैं। यथा—'यह एक महान् दार्शनिक है', 'पुरुषों के लाभदायक है।' इत्यादि। जिन तर्कवाक्यों में परिमाण व्यक्त होता है उन्हें निश्चित तर्कवाक्य (Pecdesignate) कहते हैं। वाक्य में अनिश्चित तर्कवाक्यों का तर्कवाक्य में कोई स्थान नहीं है क्योंकि तर्कवाक्य अस्पष्ट नहीं होना चाहिए और उचित निश्चित अर्थ होना चाहिए। इन दृष्टिकोण से, तर्कवाक्य में, सब अनिश्चित तर्कवाक्य 'विशेष तर्कवाक्य' समझे जाने चाहिए।

अनिश्चित
तथा
निश्चित
तर्कवाक्य

टिप्पणी १ विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Proposition)।

जब किसी तर्कवाक्य का उद्देश्य एकवाचक या विशिष्ट (Singular) होता है तो उसे विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Proposition) कहते हैं। कुछ तर्कशास्त्रियों ने इसको 'सामान्य' (Universal) और 'विशेष' (Particular) तर्कवाक्यों से भिन्न-तर्कवाक्य परिमाण के अनुसार माना है, परन्तु ऐसा विभाग उचित नहीं है। विशिष्ट तर्कवाक्य (Singular Proposition) में जब उद्देश्य निश्चित व्यक्ति या व्यक्तिसमूह का निर्देश करता हो तो उसे सार्वलौकिक या सामान्य मानना चाहिए, यथा—'एक महान् दार्शनिक है', 'यह मनुष्य शिक्षित है।' इत्यादि। ये तर्कवाक्य सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) हैं क्योंकि इनका उद्देश्य पूर्ण विस्तार के अर्थ में है तथा विधेय उद्देश्य के पूर्ण विस्तार को स्वीकार करते हैं। यदि विशिष्ट तर्कवाक्य का उद्देश्य किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्तिसमूह का निर्देश

'विशिष्ट'
तर्कवाक्यों
का सार्व-
लौकिक या
विशेष होना
उद्देश्य के
क्रमशः
निश्चित
विशिष्ट
पद होने या
न होने पर
निर्भर है।

नहीं करता, तो वह तर्कवाक्य 'विशेष' (Particular) होता है, यथा—“एक व्यक्ति यहाँ है”, “एक धातु द्रव है।”

टिप्पणी २ : सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तर्कवाक्य।

सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तर्कवाक्य उसे कहते हैं जिसमें विधेय पूरे उद्देश्य को स्वीकार या अस्वीकार करता है, अर्थात् उद्देश्य पूर्ण 'निर्देश' (Denotation) में प्रयुक्त होता है। जब उद्देश्य एक सामान्य पद होता है तो हम उसमें 'सब' या 'कोई भी नहीं' शब्दों से अपने भाव का संकेत करते हैं। परन्तु यदि उद्देश्य विशिष्ट पद (Singular term) हो तो उसे निश्चित बनाने के लिए हम उसे पूर्ण विस्तार में लेते हैं। सार्वलौकिक तर्कवाक्यों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

- | | |
|-------------------------------|-------------------------------|
| सार्वलौकिक (सामान्य) स्वीकृति | सार्वलौकिक निषेध |
| (१) सब मनुष्य मर्त्य हैं। | (१) कोई मनुष्य अमर नहीं है। |
| (२) प्लेटो एक दार्शनिक है। | (२) प्लेटो रोमनिवासी नहीं है। |
| (३) यह मनुष्य विद्वान है। | (३) यह मनुष्य मूर्ख नहीं है। |

टिप्पणी ३ : हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का परिमाण (quantity) उनके पूर्वांगों (antecedents) के परिमाण पर निर्भर रहता है। हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य सार्वलौकिक या सामान्य तब होता है जब कि पूर्वांग सर्वदा और प्रत्येक दशा में उत्तरांग में फलित होता है। यथा—“यदि ‘क’ ‘ख’ है, तो ‘ग’ ‘घ’ है।” या और भी स्पष्टतया, “यदि सब दशाओं में ‘क’ ‘ख’ है तो ‘ग’ ‘घ’ है।” हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य विशेष तब होता है जब पूर्वांग से उत्तरांग केवल कुछ दशाओं में या कम से कम एक दशा में, फलित होता है। यथा—“यदि कुछ दशाओं में, ‘क’ ‘ख’ है तो ‘ग’ ‘घ’ है।” हेतुफलाश्रित तर्क-

हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का परिमाण पूर्वांगों पर निर्भर होता है।

वाक्यों में यदि पूर्णतः वे साय परिमाण का कोई चिह्न नहीं होता, तो वह सार्वलौकिक या सामान्य समझा जाता है।

टिप्पणी ४ वकान्वक (Disjunctive) तर्कवाक्यों का परिमाण।

वैकल्पिक तर्कवाक्य सार्वलौकिक (सामान्य) अथवा विशेष हो सकते हैं। उदा—‘गन् ‘क’ या तो ‘ख’ या ‘ग’ है।’ यह सार्वलौकिक (सामान्य) है। ‘कुछ ‘क’ या तो ‘ख’ या ‘ग’ है।’ यह विशेष है। विशेष वैकल्पिक प्रमेय तर्कशास्त्र में महत्व के नहीं होते।

वैकल्पिक
तर्कवाक्य

(ड) विधि (Modality) के अनुसार विभाग:—

आवश्यक (Necessary), प्रतिज्ञात (Assertory)
तथा संदिग्ध (Problematic)।

किसी तर्कवाक्य की आन्ध्र या विधि (Modality) विधेय के उद्देश्य को स्वीकार या अस्वीकार करने की संभावना पर नियत की जाती है। विधि (Modality) के अनुसार, तर्कवाक्यों के तीन विभाग किये गये हैं;—यथा, आवश्यक (Necessary), प्रतिज्ञात (Assertory) तथा संदिग्ध (Problematic)।

विधि= संभावना का अंशमान

किसी तर्कवाक्य को ‘आवश्यक’ तब कहते हैं जब कि उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध उनके स्वभाव में ही निहित हो अर्थात् जो सार्वलौकिक रूप में अनिवार्यतः सत्य हो। यथा, “‘क’ अवश्य ‘ख’ होगा।” “त्रिभुज के तीनों कोण अवश्य ही दो समकोण के बराबर होंगे।” इत्यादि। जब उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध इस प्रकार का होगा कि वह अनुभव के आधार पर निर्मित किया गया हो और जो अनिवार्यता के न होते हुए भी, जहाँ तक हमारा अनुभव हो, सत्य होगा, तो ऐसे तर्कवाक्य को प्रतिज्ञात (Assertory) कहते हैं यथा—“‘क’ ‘ख’ है।” “सब कौए काले हैं।” इत्यादि। संदिग्ध (Problematic)

आवश्यक :
—‘क’ अवश्य
‘ख’ होगा।

प्रतिज्ञात :
—‘क’ ‘ख’
है।

संदिग्ध :
—‘क’ कदा-

चित् 'ख'
हैं।

तर्कवाक्य उसे कहते हैं, जिसमें उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध बड़ा सदिग्ध हो अर्थात् कुछ दशाओ में तो वह सत्य हो और कुछ दशाओ में सत्य नहीं हो। यथा—“‘क’ कदाचित् ‘ख’ हो।” “वह शायद कल आएगा।”, इत्यादि।

(च) तात्पर्य (Import) के अनुसार विभाग—शाब्दिक (Verbal) तथा वास्तविक (Real) तर्कवाक्य।

शाब्दिक
तर्कवाक्य में
विधेय उद्देश्य
के ‘गुण’ या
गुण के अंश
का वर्णन
करता है।

विश्लेषणात्मक (Analytic) या शाब्दिक (Verbal) तर्कवाक्य उसे कहते हैं, जिसमें विधेय (predicate) उद्देश्य के ‘गुण’ (Connotation) अथवा गुण के एक अंश का ही वर्णन करता हो। यथा—“सब मनुष्य विचारशील हैं।” यहाँ पर विधेय केवल उसी बात को व्यक्त करता है, जो कि उद्देश्य में निहित है। अतः विश्लेषणात्मक या शाब्दिक तर्कवाक्य कोई नई सूचना नहीं देता। उसे विश्लेषणात्मक इसलिए कहते हैं, क्योंकि उसमें उद्देश्य का विश्लेषण-मात्र होता है। ऐसे तर्कवाक्यों को ‘अनिवार्य’ (Essential) अथवा व्याख्यानात्मक (Explicative) भी कहते हैं।

वास्तविक
तर्कवाक्य में
विधेय एक
नये तथ्य को
व्यक्त करता
है, जो उद्देश्य
से स्पष्ट
नहीं होता।

संश्लेषणात्मक (Synthetic) या वास्तविक (Real) तर्कवाक्य उसे कहते हैं जिसमें विधेय एक नये तथ्य को व्यक्त करता है जो कि उद्देश्य के विश्लेषण करने पर स्पष्ट नहीं होता। अतः वास्तविक तर्कवाक्य एक ऐसी नवीन सूचना देता है जो कि उद्देश्य के ‘गुण’ (Connotation) में निहित नहीं होती। ऐसे तर्कवाक्यों को ‘आकस्मिक’ (Accidental) या ‘विस्तारक’ (Ampliative) भी कहते हैं। उदाहरणार्थ, “मनुष्य एक हँसनेवाला प्राणी है।” “कुत्ता एक-पालतू जानवर है।”

इस तर्क-
वाक्यों के
विभाग की

शाब्दिक (Verbal) तर्कवाक्य में विधेय, उद्देश्य के सम्बन्ध में या तो जाति (Genus) अथवा व्यावर्तक गुण (Differentia) होता है। उदाहरणार्थ “सब मनुष्य जीव हैं” में विधेय

उद्देश्य के सम्बन्ध में 'जाति' (Genus) है। और "सब मनुष्य विचारशील हैं" में, विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध में 'व्यावर्तक गुण' (Differentia) है।

वाच्यो से तुलना

वास्तविक तर्कवाक्य में विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध में या तो सहजगुण (Proprium) अथवा प्राकल्पिक गुण (Accident) होता है। उदाहरणार्थ, "मनुष्य एक बुद्धिमान जीव है।" "मनुष्य एक हसनेवाला प्राणी है।" इत्यादि।

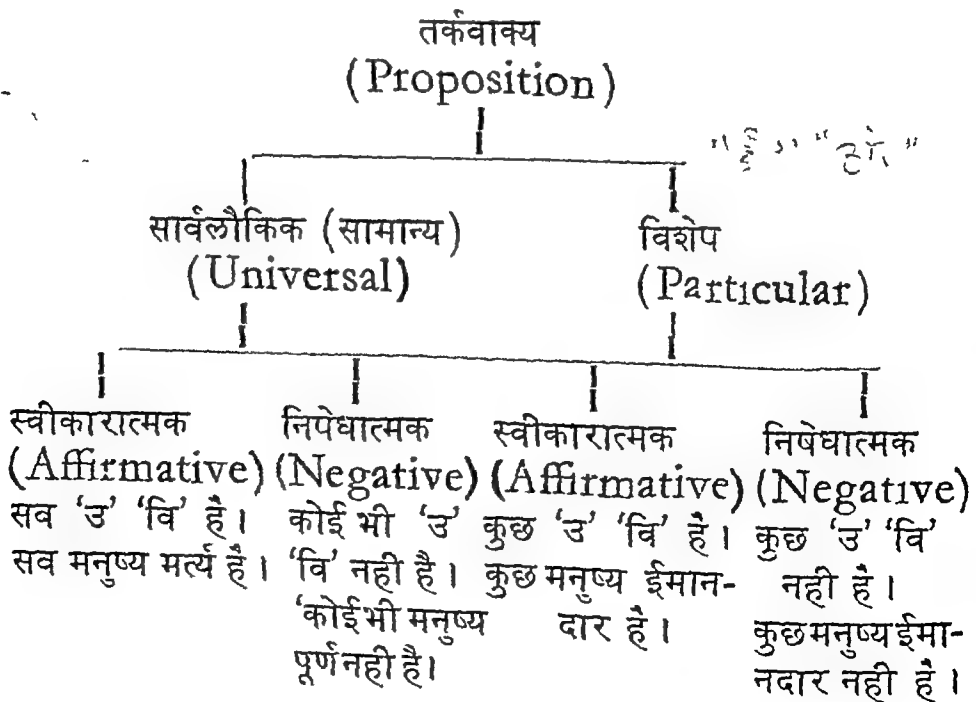
अब हमारा सामने प्रश्न यह है कि जिसे तर्कवाक्य का विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध में 'उपजाति' (Species) होगा, वह वाचिक (Verbal) होगा अथवा वास्तविक (Real)? यह बात ज्ञातव्य है कि यदि तर्कवाक्य सामान्य या सार्वलौकिक (Universal) होगा तो विधेय उद्देश्य की उपजाति (Species) नहीं हो सकता। परन्तु यदि तर्कवाक्य विशेष (Particular) हो तो विधेय उद्देश्य की उपजाति हो सकता है। यथा—"कुछ जन्तु मनुष्य हैं।" वेल्टन ने (Welton) इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित प्रकार से दिया है—"वास्तव में किसी व्यक्ति का विधेय ही उपजाति हो सकता है।" यहाँ 'उपजाति' को 'जाति' का मापेध पद नहीं माना है, प्रत्युत उसे 'व्यक्ति' से असम्बद्ध किया गया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार दो सभावनाएँ हो सकती हैं—या तो उस व्यक्ति का निर्देश व्यक्तिवाचक नाम (Proper Name) से हुआ हो अथवा सार्थक विशिष्ट नाम (Significant Singular Name) से। यदि व्यक्ति का निर्देश व्यक्तिवाचक नाम से हुआ हो, तो वह तर्कवाक्य वास्तविक (Real) है। यथा—"सुकरात एक मनुष्य है।" 'एवरेस्ट एक पर्वत है।' इत्यादि। क्योंकि व्यक्तिवाचक नामों का 'गुण' (Connotation) नहीं होता अतः उपर्युक्त उदाहरणों में विधेय कोई नई सूचना अवश्य देते हैं। परन्तु यदि उस व्यक्ति

का निर्देश सार्थक विशिष्ट नाम (Significant Singular Name) से हो, तो वह तर्कवाक्य प्रायः शाब्दिक (Verbal) होता है। यथा—“यह महान् ग्रीम-निवासी दार्शनिक एक मनुष्य है।” “ससार का सर्वोच्च पर्वत एक पर्वत है।” इन उदाहरणों में विधेय ‘मनुष्य’ तथा ‘पर्वत’ का गुण (Connotation) उद्देश्य ‘दार्शनिक’ तथा ‘सर्वोच्च पर्वत’ में ही निहित है।

गुण और
परिमाण के
अनुसार
विभाग

§३. तर्कवाक्यों का सरलीकरण (Simplification)
‘गुण और परिमाण’ के अनुसार तर्कवाक्यों के आकार : “आ” (A), “ई” (I), “ए” (E), “ओ” (O) ।

परिमाण (Quantity) के अनुसार तर्कवाक्यों का विभाग सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) तथा विशेष (Particular) में होता है। ये दोनों प्रकार के तर्कवाक्य पुनः स्वीकारात्मक (Affirmative) तथा निषेधात्मक (Negative) में बाँटे जाते हैं। यथा—



सार्वभौमिक-निषेधात्मक-तर्कवाक्य (Universal Affirmative Proposition) को "आ" (A) चिह्न से व्यक्त किया जाता है। सार्वभौमिक-निषेधात्मक तर्कवाक्य (Universal Negative Proposition) को "ए" (E) चिह्न से, विशेष सार्वभौमिक-तर्कवाक्य (Particular Affirmative Proposition) को "इ" (I) चिह्न से तथा विशेष निषेधात्मक तर्कवाक्य (Particular Negative Proposition) को "ओ" (O) चिह्न से व्यक्त किया जाता है।

§४ वाक्यों का तार्किक आकार में रूपान्तर

'आ' (A), 'ए' (E), 'इ' (I) और 'ओ' (O) ही तर्कवाक्यों के चार प्रकार हैं जो तर्कशास्त्र में मान्य हैं। और यदि कोई तर्कवाक्य शुद्ध तार्किक आकार में न दिया गया हो तो उसका इनमें से किसी एक आकार में रूपान्तरण करना होता है। अब हम कुछ अनियमित आकार के वाक्यों का परीक्षण करेंगे तथा उनके तार्किक आकार में रूपान्तरण की विधि का अध्ययन करेंगे। इस सम्बन्ध में यह बात ज्ञातव्य है कि प्रत्येक दशा में ऐसा करते समय हम तर्कवाक्य के केवल आकार पर ही ध्यान नहीं देते परन्तु उसके अर्थ पर ही ध्यान देते हैं।

(१) संयोजक (Copula) — अनियमित वाक्यों को तार्किक आकार में लाने के लिए सबसे पहले हमें उस तर्कवाक्य के संयोजक (Copula) का धना लगाना चाहिए। हमें ज्ञात है कि संयोजक 'होना' क्रिया के वर्तमान काल में निषेधात्मक अव्यय 'नहीं' के बिना या उसके साथ में हो सकता है। प्रायः ऐसा होता है कि संयोजक अलग नहीं प्रयुक्त होता परन्तु विधेय की मुख्य क्रिया के साथ जुड़ा रहता है। इस प्रकार के वाक्यों में यह आवश्यक है कि संयोजक को अलग निकाल लेना चाहिए ताकि वाक्य के गुण और

(१) संयोजक
पृथक व्यक्त
होना चाहिए

प्रमाण निश्चित किये जा सके। यथा—‘गुणवानों का आदर होना चाहिए।’ इस वाक्य का तार्किक आकार इस प्रकार होगा—‘सब गुणवान जिनका आदर होना चाहिए, मनुष्य हैं।’

कभी-कभी निषेध का चिह्न विधेय के साथ लगा रहता है। उसे अलग कर देना चाहिए। जैसे—‘उसे सफलता नहीं मिल सकती।’ इसका तार्किक आकार यह होगा—‘वह एक मनुष्य नहीं है, जिसे सफलता मिल सकती है।’ इसी प्रकार, ‘अकर्मण्य जीवन में सफल नहीं होते’ का रूपान्तरण यह होगा—‘वे अकर्मण्य मनुष्य नहीं हैं जो सफल हो सकते हैं।’

(२) उद्देश्य
सबसे पहले
रखना
चाहिए

(२) कभी-कभी बल देने के लिए, और प्रायः कविता में, विधेय को उद्देश्य के पहले रख देते हैं। यथा—‘सफल होते हैं कर्मवीर।’ इसका तार्किक आकार यह होगा—‘कर्मवीर सफल होने हैं।’ इसी प्रकार, ‘था कोलाहल अधिक वहाँ’ का तार्किक रूपान्तर ‘कोलाहल एक वस्तु है, जो वहाँ अधिक था’ होगा।

(३) उद्देश्य
के सापेक्ष
उपवाक्य
को विधेय
नहीं समझना
चाहिए

(३) कभी-कभी उद्देश्य या विधेय में भ्रम हो जाता है, जबकि उद्देश्य की विशेषता बतलानेवाला एक सम्बन्ध-वाक्य होता है, जो वाक्य के अन्त में आता है। यथा—“वह क्या जाने पीर पराई, जिसके पैर न फटी विवाई।” यहाँ सम्बन्ध-बोधक वाक्य ‘जिसके . . . विवाई’, ‘वह’ की विगोपता बतलाता है। इसलिए इसका रूपान्तर इस प्रकार करना चाहिए—“वे सब मनुष्य जिनकी विवाईयों नहीं फटी हैं, मनुष्य हैं जो दूसरे की पीर का अनुभव नहीं करते।” यह “आ”—तर्कवाक्य (A Proposition) है।

(४) ‘सब’
.....इत्यादि
निषेध चिह्न
के बिना
‘आ’ है।

(४) (क) वे सब तर्कवाक्य जो ‘सब’, ‘सभी’, ‘हरएक’, ‘सबकोई’, ‘प्रत्येक’, ‘कुल’, ‘सब के सब’, ‘सारे’, ‘सदा’, ‘सदैव’, ‘सर्वदा’, ‘निश्चय ही’, ‘अवश्य ही’ आदि शब्दों से प्रारम्भ होते हैं तथा उनके सग निषेध का चिह्न नहीं होता, उन्हें “आ” (A)-

तर्कवाक्य (अर्थात् नाशान्य स्वीकारात्मक) समझना चाहिए ।

यथा—

- (१) सब मनुष्य मर्त्य हैं। (आ)
- (२) सभी राजा ब्रह्मण्ड हैं। (आ)
- (३) हर एक मनुष्य मर्त्य है। (= सब मर्त्य कर रहे हैं) (आ)
- (४) सब मर्त्य मनुष्य हैं। (= सब मर्त्य मनुष्य हैं) (आ)
- (५) मनुष्य मर्त्य हैं। (= सब मनुष्य मर्त्य हैं) (आ)
- (६) सब विद्यार्थी पढ़ते हैं। (= सब विद्यार्थी पढ़ रहे हैं) (आ)
- (७) उस विद्यालय के सभी विद्यार्थी पढ़ते हैं। (= इस विद्यालय के सभी विद्यार्थी पढ़ रहे हैं) (आ)
- (८) नारे नारे हुए गए। (= सब नारे डूब गए हैं) (आ)
- (९) धर्मात्मा मर्त्य मनुष्य हैं। (= सब धर्मात्मा मनुष्य हैं) (आ)
- (१०) मुर्गा मर्त्य प्रातःकाल जागता है। (= सब मुर्गे प्रातःकाल जागनेवाले हैं) (आ)
- (११) भले लोग सर्वदा मर्त्य बोलते हैं। (= सब भले लोग सच बोलते हैं) (आ)
- (१२) निर्धन निश्चय ही दुखी होता है। (= सब निर्धन दुखी हैं) (आ)
- (१३) कौआ अवश्य ही काला होता है। (= सब कौए काले होते हैं) (आ)

(ख) जिन तर्कवाद्यों में उपर्युक्त शब्दों के साथ ही निषेध का चिह्न भी हो वे 'ओ'-तर्कवादय (O Proposition) (अर्थात् विशेष निषेधात्मक) समझे जाते हैं। यथा—

- (१) सब चमकनेवाली वस्तुएँ सोना नहीं होती हैं।
(=कुछ चमकनेवाली वस्तुएँ सोना नहीं होती हैं)
(ओ)

और निषेध के साथ 'ओ' होता है।

- (२) सभी मनुष्य बुरे नहीं होते । (=कुछ मनुष्य बुरे नहीं हैं ।) (ओ)
- (३) हर एक मनुष्य सुखी नहीं है । (=कुछ मनुष्य सुखी नहीं हैं ।) (ओ)
- (४) सब कोई नेता नहीं बन सकते । (=कुछ मनुष्य नेता नहीं बन सकते ।) (ओ)
- (५) प्रत्येक व्यक्ति चतुर नहीं है । (=कुछ व्यक्ति चतुर नहीं हैं ।) (ओ)
- (६) कुल विद्यार्थी पास नहीं होते । (=कुछ विद्यार्थी पास नहीं होते ।) (ओ)
- (७) सबके सब लोग विद्वान नहीं हैं । (=कुछ लोग विद्वान नहीं हैं ।) (ओ)
- (८) सारी गायें दूध नहीं देती । (=कुछ गायें दूध देने वाली नहीं हैं ।) (ओ)
- (९) बादल सदा नहीं बरसते । (=कुछ बादल बरसते नहीं हैं ।) (ओ)
- (१०) वकील सदैव सत्य नहीं बोलते । (=कुछ वकील सत्य बोलनेवाले नहीं हैं ।) (ओ)
- (११) जो गरजता है वह सर्वदा नहीं बरसता । (=कुछ दशाओ में जो गरजता है वह बरसता नहीं है ।) (ओ)
- (१२) साँप निश्चय ही विषैला नहीं होता । (=कुछ साँप जहरीले नहीं हैं ।) (ओ)
- (१३) काबुल के कुछ पशु अवश्य ही छोड़े नहीं हैं ।
(=काबुल के कुछ पशु छोड़े नहीं हैं ।) (ओ)

(५) अधि-
कांश=
'कुछ'

(५) जो वाक्य 'बहुत से', 'थोड़े से', 'कुछ', 'अनेक', 'लगभग सब', 'एक को छोड़कर सब', 'कई' शब्दों से प्रारम्भ होते हैं और साथ में यदि निषेध का चिह्न हो, तो वे विशेष

निषेधात्मक (ओ) होते हैं, और यदि माथ में निषेध का निह्न न हो, तो वे विशेष स्वीकारात्मक (ई) होते हैं। साधारण भाषा में 'यह न' वाक्य में आगम्य 'आधे से अधिक' होता है, परन्तु नकारात्मक में केवल सार्वलौकिक सामान्य तथा 'विशेष ही मान्य हो' है, अतः कोई भी अग्नित पणिमाण "कुछ" शब्द के द्वारा व्यवस्त होता है। उदाहरणार्थ,

- (१) मभा में बहुत से सदस्य उपस्थित हैं। (=कुछ सदस्य मभा में उपस्थित हैं।) (ई)
- (२) ओटें से भारतीय पारनी है। (=कुछ भारतीय पारनी हैं।) (ई)
- (३) कुछ वृद्ध व्यक्ति अनुभवी होते हैं। (ई)
- (४) अनेक फल खट्टे होते हैं। (=कुछ फल खट्टे हैं।) (ई)
- (५) लगभग सब पक्षी घोंसलो में रहते हैं। (=कुछ पक्षी घोंसलो में रहते हैं।) (ई)
- (६) एक को छोड़कर सब धातुये ठोस हैं। (=कुछ धातुये ठोस हैं।) (ई)
- (७) कई विद्यार्थी पास हुए। (=कुछ विद्यार्थी पास हुए।) (ई)
- (८) मभा में बहुत से सदस्य उपस्थित नहीं हैं। (=कुछ सदस्य मभा में उपस्थित नहीं हैं।) (ओ)
- (९) थोड़े से फल खट्टे नहीं हैं। (=कुछ फल खट्टे नहीं हैं।) (ओ)
- (१०) कुछ व्यक्ति अनुभवी नहीं होते। (ओ)
- (११) अनेक फल मीठे नहीं होते। (=कुछ फल मीठे नहीं होते।) (ओ)

(१२) लगभग सब लोग सो नहीं रहे हैं (=कुछ लोग सो नहीं रहे हैं।) (ओ)

(१३) एक को छोड़कर सब धातुयें द्रव नहीं हैं। (=कुछ धातुयें द्रव नहीं हैं।) (ओ)

(६) 'अधिक-
तर' इत्यादि—
विशेष होते
हैं।

(६) जिन वाक्यों में 'अधिकतर', 'प्रायः', 'शायद', 'कदाचित्', 'कभी-कभी', 'प्रायः सर्वदा' इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता है और यदि साथ में निषेध का चिह्न भी होता है तो वे विशेष निषेधात्मक (ओ) माने जाते हैं, और जब साथ में निषेध का चिह्न नहीं होता तो वे विशेष स्वीकारात्मक (ई) माने जाते हैं। यथा—

(१) पक्षी अधिकतर घोंसलों में रहते हैं।

(=कुछ पक्षी घोंसलों में रहते हैं।) (ई)

(२) मनुष्य अधिकतर मुखी नहीं होते। (=कुछ मनुष्य मुखी नहीं होते।) (ओ)

(३) नीली आँखोंवाली सफेद विल्लियाँ प्रायः बहरी होती हैं।
(=कुछ नीली आँखोंवाली सफेद विल्लियाँ बहरी होती हैं।) (ओ)

(४) धर्मात्मा व्यक्ति प्रायः मुखी होते हैं। (=कुछ धर्मात्मा व्यक्ति मुखी होते हैं।) (ई)

(५) भारतीय छात्र अपने गुरुओं के प्रति प्रायः अगिष्ट नहीं होते। (=कुछ भारतीय छात्र अपने गुरुओं के प्रति अगिष्ट नहीं होते।) (ओ)

(७) विरले
= 'कुछ'
नहीं—
निषेधात्मक

(७) 'विरले', 'शायद ही', 'शुद्धिकल से कोई' आदि शब्दों से युक्त वाक्य 'विशेष' होते हैं और इनका बल निषेधात्मक होता है। अतः इन शब्दों से प्रारम्भ होनेवाले वाक्य, जिनमें निषेध का चिह्न नहीं होता, वे 'ओ' होते हैं और जिनमें निषेध का चिह्न होता है, वे 'ई' होते हैं। उदाहरणार्थ —

- (१) बड़े दांतों वाले लोग विरले ही मूर्ख होते हैं।
(=बड़े दांतोंवाले कुछ लोग मूर्ख नहीं हैं।) (ओ)
- (२) विरले ही कुत्ते स्वाभिभवत नहीं होते। (=कुछ कुत्ते स्वाभिभवत हैं।) (ई)
- (३) गायद ही कोई अमेरिकन निरक्षर हो। (=कुछ अमेरिकन निरक्षर नहीं हैं।) (ओ)
- (४) गायद ही कोई योरोपियन आमिषभोजी न हो।
(=कुछ योरोपियन आमिषभोजी हैं।) (ई)
- (५) मुस्लिम से कोई काम्मीरी काला होगा।
(=कुछ काम्मीरी काले नहीं हैं।) (ओ)
- (६) मुस्लिम में कोई मनुष्य ऐसा होगा जिसने कचन पर हाथ न पमारा हो। (=कुछ मनुष्य कचन पर हाथ पमारनेवाले हैं।) (ई)

(८) ऐकान्तिक तर्कवाक्य (Exclusive Propositions) :—

(८) 'केवल'
इत्यादि

जिन वाक्यों में उद्देश्य 'केवल', 'सिर्फ', 'अतिरिक्त कोई नहीं' शब्दों से युक्त होता है, उन्हें ऐकान्तिक तर्कवाक्य (Exclusive Propositions) कहते हैं। इन वाक्यों को भिन्न-भिन्न प्रकार से तार्किक आकार में रूपान्तरित किया जा सकता है।

ऐकान्तिक वाक्य (Exclusive Proposition) को तार्किक आकार में रूपान्तरित करने की एक विधि उसके उद्देश्य और विधेय में पारस्परिक परिवर्तन करके उसे "आ"-तर्कवाक्य में बदलना है। उदाहरणार्थ, "केवल हाई स्कूल पास विद्यार्थी ही इस कालेज के छात्र हैं।" इस वाक्य को निम्नलिखित "आ"-तर्कवाक्य में रूपान्तरित किया जा सकता है "इस कालेज के सब छात्र हाई स्कूल पास विद्यार्थी हैं।"

इस सम्बन्ध में यह बात ज्ञातव्य है कि तर्कवाक्य के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। दिए हुए वाक्य का यह अर्थ नहीं है कि “सब हाई स्कूल पास विद्यार्थी इस कालेज के छात्र हैं।” स्पष्ट है कि वे हाई स्कूल पास विद्यार्थी जिन्होंने आगे पढ़ना छोड़ दिया है, इस कालेज के छात्र नहीं हैं। परन्तु वे सब विद्यार्थी जो इस कालेज के छात्र हैं अनिवार्यतः हाई स्कूल पास होने चाहिए। अतः ऐकान्तिक वाक्यों को रूपान्तरित करते समय हम उद्देश्य और विधेय को आपस में बदल देते हैं और इस प्रकार “आ”-तर्कवाक्य बना लेते हैं।

कुछ तर्कशास्त्री इस प्रकार के रूपान्तरण पर आपत्ति करते हैं क्योंकि उनके विचार में वाक्य को तार्किक आकार में रूपान्तरित करते समय उद्देश्य और विधेय के स्थान नहीं बदलने चाहिए। उनका कहना है कि यह केवल आकार का रूपान्तरण ही नहीं, प्रत्युत एक प्रकार का अनुमान (inference) है, जिसे परिवर्तन (Conversion) कहते हैं। परन्तु यह आकार काफ़ी प्रचलित है।

दूसरी विधि वाक्य के दिए हुए उद्देश्य को उसका विरुद्ध (Contradictory) बनाकर तथा विधेय को वैसा ही रहने देकर उसे ‘ए’ (E) का आकार देना है। अतः यह तर्कवाक्य कि ‘केवल हाई स्कूल पास विद्यार्थी ही इस कालेज के छात्र हैं’ निम्नलिखित ‘ए’ (E) तर्कवाक्य में रूपान्तरित हो सकता है—“कोई भी अ-हाई स्कूल पास विद्यार्थी इस कालेज का छात्र नहीं है।

एक तीसरी विधि भी है। इसमें दिए हुए तर्कवाक्य ‘केवल हाई स्कूल पास विद्यार्थी ही इस कालेज के छात्र हैं’ को निम्नलिखित ‘इ’ (I) तर्कवाक्य में रूपान्तरित करते हैं—‘कुछ हाई स्कूल पास विद्यार्थी इस कालेज के छात्र हैं।’ इस प्रकार के विशेष आकार

की अपेक्षा पहले के दोनों सार्वलौकिक आकार अधिक श्रेष्ठ है।

अन्य उदाहरण.—

(१) “केवल धर्मात्मा वास्तव में मुसी है।” यह निम्नांकित उदाहरण आकारों में रूपान्तरित किया जा सकता है —

(क) सब वास्तव में मुसी व्यक्ति धर्मात्मा है। (आ)

(ख) कोई भी अ-धर्मात्मा मुसी व्यक्ति नहीं है। (ए)

(ग) कुछ वास्तव में मुसी व्यक्ति धर्मात्मा है। (ई)

(२) “केवल ईमानदार व्यक्ति ही विज्वासपात्र होते हैं।”

यह निम्नलिखित आकारों में रूपान्तरित किया जा सकता है —

(क) सब विज्वासपात्र (व्यक्ति) ईमानदार व्यक्ति है। (आ)

(ख) कोई भी वे-ईमानदार व्यक्ति विज्वासपात्र नहीं है। (ए)

(ग) कुछ ईमानदार व्यक्ति विज्वासपात्र है। (ई)

(९) अपवादात्मक (Exceptive) तर्कवाक्य ।

जिन तर्कवाक्यों में विवेक कुछ अपवादों को छोड़कर पूर्ण उद्देश्य के बारे में स्वीकार किया जा सके उन्हें अपवादात्मक तर्कवाक्य (Exceptive Propositions) कहते हैं।

(९) नि-
श्चित और
अनिश्चित
अपवाद

जिन अपवादात्मक तर्कवाक्यों में अपवाद स्पष्टतया वर्णित हो, वे सार्वलौकिक (सामान्य) समझे जाते हैं, परन्तु जिनमें अपवाद अनिश्चित होते हैं, वे विशेष समझे जाते हैं।
उदाहरणार्थ —

‘पारे को छोड़कर’ सब धातुये ठोस हैं।’

यह शुद्ध तार्किक आकार में है और इसका आकार ‘आ’ (A) है क्योंकि अपवाद निश्चित होने के कारण उद्देश्य अपने सम्पूर्ण निर्देश (Denotation) में लिया गया है। परन्तु यह तर्कवाक्य कि

“एक को छोड़कर सब धातुये ठोस हैं।”

एक 'ई' (I)-तर्कवाक्य है, क्योंकि अपवाद अनिश्चित होने के कारण यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है

“कुछ धातुये ठोस है।”

(१०) वि-
शिष्ट तर्क-
वाक्य

(१०) विशिष्ट (Singular) तर्कवाक्य ।

जिन विशिष्ट तर्कवाक्यों के उद्देश्य निश्चित विशिष्ट पद (Definite Singular term) होते हैं, वे सार्वलौकिक या सामान्य (Universal) होते हैं और जिनके उद्देश्य अनिश्चित विशिष्ट पद (Indefinite Singular term) हैं, वे विशेष (Particular) समझे जाते हैं। यदि सयोजक के साथ निषेध का चिह्न हो तो वे निषेधात्मक और यदि निषेध का चिह्न न हो तो वे स्वीकारात्मक होते हैं। उदाहरणार्थ.—

(१) अलैग्जैण्डर महान् एक महान् विजेता था । (आ)

(२) अलैग्जैण्डर महान् रोमनिवासी नहीं था । (ए)

(३) एक ग्रीस निवासी ने भारत पर चढाई की (=कुछ ग्रीसनिवासी ने भारत पर चढाई की ।) (ई)

(४) एक धातु ठोस नहीं है (=कुछ धातु ठोस नहीं है ।) (ओ)

(११) प्रश्न-
वाचक वाक्य

(११) प्रश्नवाचक वाक्य (Interrogative Sentences) ।

प्रश्नवाचक वाक्यों में प्रायः उनका उत्तर भी निहित रहता है और इस प्रकार उनका रूपान्तरण बड़ी सरलता से हो जाता है। उदाहरणार्थ—

“क्या कोई मनुष्य है जो देशद्रोही होगा ?”

इस प्रश्न में यह बात निहित है कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं है। इसके लिए इसका तार्किक आकार यह होगा—

“कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जो देश-द्रोही होगा ।” (ए)

सारांश में, यह बात द्रष्टव्य है कि असंख्य प्रकार के वाक्यों को तार्किक आकार में बदलने के नियम प्रस्तुत करना तो संभव नहीं

है। परन्तु इतना कह देना पर्याप्त है कि दिए हुए वाक्य को तार्किक आकार में रूपान्तरित करने पर दिए हुए वाक्य का अर्थ नहीं बदलना चाहिए।

§५ पदों की व्याप्ति (Distribution of Terms)

जब किसी पद को उसके पूर्ण निर्देश में प्रयुक्त किया जाता है, तो उसे व्याप्त (distributed) कहते हैं और जब उसके निर्देश के एक अंश पर ही विचार किया जाता है तो वह पद अव्याप्त (undistributed) कहलाता है। अतः पद की व्याप्ति से हमारा तात्पर्य उसके सम्पूर्ण भाग के वर्णन से है।

व्याप्ति

अब हम तर्कवाक्यों के 'आ' (A), 'ई' (I), 'ए' (E) तथा 'ओ' (O) के विभाग पर ध्यान देंगे और देखेंगे कि उनके कौन-से पद व्याप्त होते हैं।

“आ” (A) अर्थात् सार्वलौकिक स्वीकारात्मक तर्कवाक्य इस आकार का होता है: “सब ‘उ’ ‘वि’ है।” “सब मनुष्य मर्त्य हैं।” स्पष्ट है कि इसमें उद्देश्य अपने पूरे विस्तार में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् वह व्याप्त (distributed) है और विधेय के पूर्ण निर्देश के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट सकेत नहीं है। अतः ‘आ’ (A) तर्कवाक्य में उद्देश्य व्याप्त होता है तथा विधेय अव्याप्त होता है।

‘आ’ में उद्देश्य व्याप्त तथा विधेय अव्याप्त होता है।

‘ए’ अथवा सार्वलौकिक निषेधात्मक तर्कवाक्यों का स्वरूप इस प्रकार का होता है: “कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है।” “कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।” इसमें उद्देश्य तथा विधेय दोनों ही अपने पूर्ण विस्तार में प्रयुक्त हुए हैं और इस तर्कवाक्य का यह अर्थ है कि उद्देश्य तथा विधेय द्वारा निर्दिष्ट जातियाँ परस्पर व्यावर्तक (exclusive) हैं। अतः उपर्युक्त उदाहरण में, ‘मनुष्य’ तथा ‘पूर्ण व्यक्ति’ की जातियाँ परस्पर पूर्णरूपेण

‘ए’ में उद्देश्य तथा विधेय दोनों व्याप्त होते हैं।

व्यावर्तक है और दोनों का उपयोग व्याप्त दशा में हुआ है। अतः 'ए' (E) तर्कवाक्य में उद्देश्य और विधेय दोनों व्याप्त होते हैं।

'ई' में न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।

'ई' अथवा विशेष स्वीकारात्मक तर्कवाक्यो का स्वरूप इस प्रकार होता है—“कुछ 'उ' 'वि' है।” “कुछ मनुष्य चतुर है।” इसमें उद्देश्य तो आगिक-विस्तार में प्रयुक्त हुआ है और जहाँ तक विधेय का सम्बन्ध है तो उसका परिमाण स्पष्टतया व्यवत नहीं है। अतः 'ई' (I) तर्कवाक्य में, न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।

'ओ' में केवल विधेय व्याप्त होता है।

'ओ' अथवा विशेष निषेधात्मक तर्कवाक्यो का स्वरूप इस प्रकार होता है—“कुछ 'उ' 'वि' नहीं है।” “कुछ मनुष्य चतुर नहीं है।” इसमें उद्देश्य तो स्पष्टतया अव्याप्त है। जहाँ तक विधेय का सम्बन्ध है, हम देखते हैं कि वह व्याप्त है। निषेधात्मक तर्कवाक्य का यह अर्थ होता है कि विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध में अस्वीकार किया गया है। विधेय या तो पूर्ण उद्देश्य के वारे में अस्वीकार किया जा सकता है, जैसा कि 'ए'-तर्कवाक्य में होता है। अथवा वह आगिक-उद्देश्य के वारे में अस्वीकार किया जा सकता है, जैसा कि 'ओ'-तर्कवाक्य में होता है। परन्तु दोनों दशाओ में, जहाँ तक विधेय का सम्बन्ध है, वह पूर्णता से अस्वीकार किया जाता है अन्यथा अस्वीकार अथवा निषेध का कोई अर्थ नहीं रहता। अतः 'ओ' (O) तर्कवाक्य में उद्देश्य अव्याप्त होता है, परन्तु विधेय व्याप्त होता है।

सारांश में हम इस प्रकार कह सकते हैं—

सार्वलौकिक (सामान्य) तर्कवाक्य (अर्थात् 'आ' तथा 'ए') अपने उद्देश्य को व्याप्त रखते हैं ; परन्तु विशेष तर्कवाक्य ('ई' तथा 'ओ') अपने उद्देश्य को व्याप्त नहीं रखते।

निषेधात्मक तर्कवाक्य (अर्थात् 'ए' तथा 'ओ') अपने विधेय

को व्याप्त रखते हैं, परन्तु स्वीकारात्मक तर्कवाक्य (अर्थात् 'आ' तथा 'ई') अपने विधेय को व्याप्त नहीं रखते।

इस प्रकार,

'आ' में केवल उद्देश्य व्याप्त होता है।

'ए' में उद्देश्य और विधेय दोनों व्याप्त होते हैं।

'ई' में न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।

'ओ' में केवल विधेय व्याप्त होता है।

टिप्पणी—विधेय का परिमाण ज्ञात करना (Quantification of Predicate)।

यह बात ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त तर्कवाक्यों में केवल उद्देश्य का परिमाण (Quantity) स्पष्टतया व्यक्त किया जाता है, विधेय का परिमाण स्पष्ट नहीं होता। कुछ तर्कशास्त्री, यथा— हैमिल्टन (Hamilton) आदि विधेय का परिमाण भी व्यक्त करने के पक्ष में हैं। ये लोग परिमाण के अनुसार तर्कवाक्यों के निम्नलिखित आठ विभाग करते हैं —

विधेय का
परिमाण
ज्ञात करना

'यू' (U) : पूर्ण-पूर्ण-स्वीकारात्मक (Toto-total affirmative)—“सब 'उ' सब 'वि' हैं।”

'आ' (A) : पूर्ण-अपूर्ण-स्वीकारात्मक (Toto-partial affirmative)—“सब 'उ' कुछ 'वि' हैं।”

'वाई' (Y) : अपूर्ण-पूर्ण-स्वीकारात्मक (Parti-total affirmative)—“कुछ 'उ' सब 'वि' हैं।”

'ई' (I) : अपूर्ण-अपूर्ण-स्वीकारात्मक (Parti-partial affirmative)—“कुछ 'उ' कुछ 'वि' हैं।”

'ए' (E) : पूर्ण-पूर्ण-निषेधात्मक (Toto-total negative)—“कोई भी 'उ' कोई भी 'वि' नहीं है।”

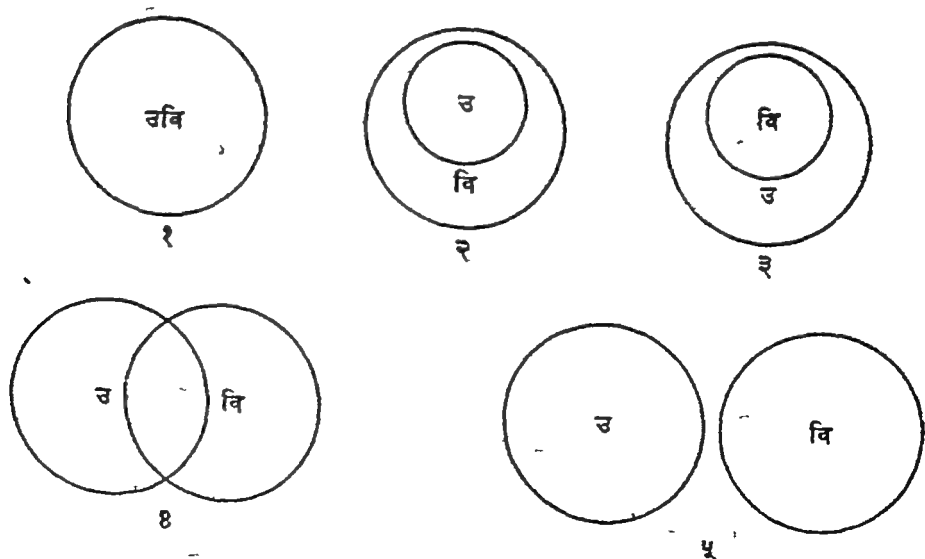
- ‘पाई’ (π) पूर्ण-अपूर्ण-निषेधात्मक (Toto-partial negative)—“कोई भी ‘उ’ कुछ ‘वि’ नहीं है।”
 ‘ओ’ (O) अपूर्ण-पूर्ण-निषेधात्मक (Parti-total negative)—“कुछ ‘उ’ कोई भी ‘वि’ नहीं है।”
 ‘ओमेगा’ (ω) अपूर्ण-अपूर्ण-निषेधात्मक (Parti-partial negative)—“कुछ ‘उ’ कुछ ‘वि’ नहीं है।”

विधेय के परिमाण को व्यक्त करने की उपर्युक्त विधि प्रायः मान्य नहीं है, क्योंकि वह व्यर्थ ही इतनी जटिल है।

§६ चारो प्रकार के तर्कवाक्यों का चित्रीकरण— यूलर के वृत्त (Euler's Circles)

यूलर के
वृत्त

अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध न्यायशास्त्री यूलर (Euler) ने चारो प्रकार के तर्कवाक्यों को व्यक्त करने के लिए कुछ चित्र प्रस्तुत किये हैं। उसने निर्देश को दृष्टि से उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध निम्नांकित चित्रों द्वारा व्यक्त किया है:—



इस सम्बन्ध में यह बात द्रष्टव्य है कि चित्र (१.) में ‘उ’ तथा ‘वि’ समव्याप्तिक (co-extensive) अथवा समरूप हैं। चित्र (२.) में, ‘वि’ में ‘उ’ समाविष्ट है। चित्र (३.) में, ‘उ’ में

‘वि’ समाविष्ट है। चित्र (४) में, ‘उ’ तथा ‘वि’ एक दूसरे में आशिक रूप में समाविष्ट है। चित्र (५) में ‘उ’ तथा ‘वि’ में कुछ भी उभयनिष्ठता नहीं है।

उपर्युक्त योजना में, ‘उ’ उद्देश्य के लिए तथा ‘वि’ विधेय के लिए प्रयुक्त हुआ है और ये दोनों पद ‘निर्देश’ के अर्थ में लिए गए हैं। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि तर्कवाक्यों का चतुर्विभाजन इस योजना में कहाँ तक स्थान पाता है और इन चित्रों की सहायता से पदों की व्याप्ति-सम्बन्धी ज्ञान कहाँ तक प्राप्त हो सकता है।

‘आ’ (A) तर्कवाक्य चित्र (१) तथा (२) से व्यक्त किया गया है। इस तर्कवाक्य की “सब ‘उ’ ‘वि’ है” का अर्थ कभी-कभी तो यह होता है कि ‘उ’ का निर्देश ‘वि’ के निर्देश के समान है जैसा कि चित्र न० (१) में प्रदर्शित है, और कभी-कभी उसका अर्थ यह होता है कि ‘उ’ का निर्देश ‘वि’ के निर्देश में समाविष्ट है, जैसा कि चित्र (२) में प्रदर्शित है। अतः जहाँ तक ‘वि’ के सम्बन्ध में, दोनों चित्रों में उभयनिष्ठ तथ्य (common element) “कुछ ‘वि’” है, “सब ‘वि’” नहीं है। चित्र (१) में हम निस्संदेह “सब ‘वि’” (अर्थात् सम्पूर्ण ‘वि’) के बारे में विचार करते हैं परन्तु चित्र (२) में, हम केवल “कुछ ‘वि’” के बारे में ही विचार करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि ‘आ’ तर्कवाक्य में उद्देश्य (अर्थात् “सब ‘उ’”) व्याप्त (distributed) होता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसका विधेय भी व्याप्त हो।

‘ए’ (E) तर्कवाक्य चित्र (५) में प्रदर्शित किया गया है। यह तर्कवाक्य कि “कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है” यह अर्थ रखता है कि ‘उ’ और ‘वि’ परस्पर पूर्ण रूप से भिन्न हैं। अतः इस दशा में स्पष्ट है कि उद्देश्य तथा विधेय दोनों व्याप्त होते हैं।

‘इ’ (I) तर्कवाक्य चित्र (१), (२), (३) तथा (४) द्वारा प्रदर्शित है। हमें ज्ञात है कि ‘सब’ में ‘कुछ’ निहित रहता है परन्तु ‘कुछ’ में ‘सब’ का निहित होना आवश्यक नहीं है। अतः यह तर्कवाक्य कि “कुछ ‘उ’ ‘वि’ है” चित्र (१) में प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसमें “सब ‘उ’ सब ‘वि’ है।” यह चित्र (२) से प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसमें “सब ‘उ’ कुछ ‘वि’ है।”

यह चित्र (३) से प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसमें “कुछ ‘उ’ सब ‘वि’ है”। और यह चित्र (४) से प्रदर्शित किया जा सकता है जिसमें “कुछ ‘उ’ कुछ ‘वि’ है।” यदि इन चारों चित्रों में उभय-निष्ठ तथ्य की खोज करे तो केवल “कुछ ‘उ’” तथा “कुछ ‘वि’” ही प्राप्त होगा। अतः हम कह सकते हैं कि ‘ई’ (I) तर्कवाक्य में न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है।

‘ओ’ (O) तर्कवाक्य चित्र (३), (४) तथा (५) से प्रदर्शित किया गया है। चित्र (३) में, “कुछ ‘उ’ कोई भी ‘वि’ नहीं है” व्यक्त है क्योंकि यह स्पष्ट है कि ‘उ’ का वह अश, जो कि ‘वि’ की सीमा के बाहर है, वह सम्पूर्ण ‘उ’ के ही बाहर होगा। इसी प्रकार चित्र (४) यह प्रदर्शित करता है कि “कुछ ‘उ’ कोई भी ‘वि’ नहीं है” क्योंकि ‘उ’ का कुछ अश सम्पूर्ण ‘वि’ के बाहर है। चित्र (५) द्वारा यह व्यक्त होता है कि “कोई भी ‘उ’ कोई भी ‘वि’ नहीं है।” यदि सम्पूर्ण ‘उ’ सम्पूर्ण ‘वि’ के बाहर हो, तो यह तो कहा ही जा सकता है कि ‘उ’ का एक अश सम्पूर्ण ‘वि’ के बाहर है। अब हम यदि अपना ध्यान उभयनिष्ठ तथ्य अर्थात् “कुछ ‘उ’ तथा सब ‘वि’” पर केन्द्रित करे, तो हम कह सकते हैं कि ‘ओ’ (O)-तर्कवाक्य सर्वदा अपने विधेय को व्याप्त रखता है।

उदाहरणों को हल करने के संकेत

अनियमित वाक्यों को तार्किक आकार में रूपान्तरित करते समय सबसे पहले हम संयोजक (Copula) ज्ञात करते हैं। संयोजक सर्वदा ‘होना’ क्रिया के वर्तमान काल में निषेध के चिह्न सहित अथवा उसके बिना ही हो सकता है।

इसके बाद हम उसके परिमाण (Quantity) को निर्धारित करते हैं। इस प्रकरण में हम उन आकारों का वर्णन करते हैं जिनमें वाक्य प्रायः होते हैं और उनका परिमाण ज्ञात करने की विधि का वर्णन भी हो चुका है।

अन्त में हम गुण (Quality) का चिह्न प्रदान करते हैं। निरपेक्ष तर्कवाक्यों में गुण का चिह्न प्रायः संयोजक के साथ ही लगा रहता है।

यह बात जातव्य है कि अपनी भाषा में सबल-अभिव्यजना तथा सौन्दर्य उपस्थित करने के लिए अनेकों प्रकार से वाक्यों को

व्यक्त किया जाता है। परन्तु तर्कशास्त्र में इन असंख्य प्रकार के वाक्यों को केवल चार प्रकार के तर्कवाक्यों में सरल कर दिया जाता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि वाक्यों को तार्किक-रूप देने से भाषा का सौन्दर्य मिट जाता है। उन्हें सरल करने से जितना लाभ होता है उतनी ही कमी उनकी सौन्दर्य-हीनता से उत्पन्न हो जाती है। इस बात का स्पष्टीकरण निम्नलिखित दृष्टान्त से हो जायेगा। प्राचीन काल में ग्रीस देश में एक लुटेरा था, जिसका नाम प्रोकुस्टीज (Procrustes) था। वह इस बात में ही आनन्द लेता था कि यात्रियों को पकड़कर वह उन्हें एक पलंग पर लिटाये। यदि वह यात्री उस पलंग से छोटा होता था तो वह लुटेरा उसके शरीर को इतना खींच लेता था कि उसके प्राण निकल जाते थे। यदि वह यात्री उस पलंग से अधिक लम्बा होता था तो वह उसके सिर का उतना भाग काट लेता था कि वह उस पलंग के ठीक बराबर हो जाये। अतः इस प्रकार भी उस यात्री का प्राणान्त हो जाता था। तर्कवाक्यों में चारों आकार प्रोकुस्टीज के पलंग के ही सदृश हैं। भाषा के असंख्य प्रकार के वाक्यों को तार्किक आकार-रूपी प्रोकुस्टीज के पलंग के बराबर ही कर देना पड़ता है ताकि उनपर तर्कशास्त्र में विचार किया जा सके। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि तर्कवाक्य इतने नग्न तथा रूखे प्रतीत होते हैं। इस उग्र परिवर्तन की क्रिया में अर्थ का सूक्ष्म-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, यद्यपि मूल अर्थ ज्यों का त्यों ही रहता है।

कुछ हल किये हुए उदाहरण

(१) कारण सहित बतलाइए कि निम्नलिखित तर्कवाद्यों के परिमाण (Quantities) क्या हैं?

(क) कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो स्वभावतः भला न हो। यह 'आ' (A)-तर्कवाक्य है तथा 'सब मनुष्य स्वभावतः भले हैं'—इस तर्कवाक्य के तुल्य है, क्योंकि एक साथ दो निषेध-चिह्नों का बल स्वीकारात्मक होता है।

(ख) नदी पार करने के प्रयत्न में अनेको आदमी डूब गये।

यह तर्कवाक्य 'ई' (I) है और निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है 'कुछ मनुष्य वे हैं जो नदी पार करने के प्रयत्न में डूब गये।'

(ग) कुछ को छोड़कर सभी व्यक्ति बन्दी बना लिये गये। यह तर्कवाक्य 'ई' (I) है क्योंकि इसमें अपवाद निश्चयपूर्वक व्यक्त नहीं है। यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है—'कुछ व्यक्ति वे हैं जो बन्दी बना लिए गए।'

(घ) कोई भी व्यक्ति उस काम को कर सकता है। इसका अर्थ है कि "सब मनुष्य वे हैं, जो उस काम को कर सकते हैं।" अतः 'आ' (A)-तर्कवाक्य है।

(२) निम्नलिखित वाक्यों को उनके तार्किक आकारों में व्यक्त कीजिए तथा प्रत्येक के गुण तथा परिमाण का उल्लेख कीजिए।

(क) पृथ्वी ही एकमात्र ग्रह है जिसके चारों ओर वायु-मंडल है।

यह तार्किक आकार में है, क्योंकि यह 'आ' (A)-तर्कवाक्य है। यहाँ यह बात ज्ञातव्य है कि इसमें उद्देश्य तथा विधेय दोनों व्याप्त हैं।

(ख) प्रगति का न होना पीछे हटना है।

तार्किक आकार 'प्रगति के न होने की सब दशाएँ पीछे हटने की दशाएँ हैं।'—'आ' तर्कवाक्य।

(ग) 'जब भिखारी मरते हैं, तो तारे नहीं टूटते !'

यह एक हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य है, तथा निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है 'यदि भिखारी मरते हैं, तो तारे नहीं टूटते !'—यह 'ए' (E) तर्कवाक्य है क्योंकि हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का परिमाण उसके पूर्वाग के परिमाण पर आधारित होता है तथा उसका गुण उसके उत्तराग पर आधारित होता है।

(घ) सब हंस श्वेत नहीं होते।

यह 'ओ' (O) तर्कवाक्य है, जिसका तार्किक-रूप यह है—
'कुछ हंस श्वेत नहीं है।'

(३) निम्नलिखित वाक्यों को तार्किक आकार में रूपान्तरित कीजिए तथा उनके गुण एवं परिमाण का संकेत कीजिए :—

(क) प्रत्येक पद का गुण नहीं होता।

यह 'ओ' (O)-तर्कवाक्य है और निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है.—“कुछ पद, पद नहीं हैं जिनके गुण होता है।”

(ख) केवल अज्ञानी व्यक्ति ही जादू में विश्वास करते हैं।

यह ऐकान्तिक (Exclusive) वाक्य है और निम्नलिखित तीन आकारों में बदला जा सकता है.—

“आ” : सब व्यक्ति जो जादू में विश्वास करते हैं, अज्ञानी हैं।

“ए” : कोई भी ज्ञानी व्यक्ति वे नहीं है, जो जादू में विश्वास करते हैं।

“इ” : कुछ अज्ञानी व्यक्ति वे हैं, जो जादू में विश्वास करते हैं।

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्यों के गुण और परिमाण का उल्लेख कीजिए तथा उनको तार्किक आकार में बदलिए :—

(क) स्वयं मूर्खों को छोड़कर कोई भी उन्हें महान् नहीं समझता।

यह ऐकान्तिक (Exclusive) वाक्य है, जो निम्नांकित तर्कवाक्यों के तुल्य है

“आ” सब व्यक्ति जो मूर्खों को महान् समझते हैं स्वयं मूर्ख हैं।

“ए” कोई भी अ-मूर्ख वे व्यक्ति नहीं हैं जो मूर्खों को महान् समझते हैं।

“इ” कुछ व्यक्ति जो स्वयं मूर्ख हैं, मूर्खों को महान् समझते हैं।

(ख) पदार्थ वैसे नहीं होते जैसे प्रतीत होते हैं।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है —“कुछ पदार्थ वैसे नहीं हैं जैसे प्रतीत होते हैं।” अतः यह 'ओ'-आकार में है।

(ग) आप में से कम से कम एक तो इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।

यह 'ई'-तर्कवाक्य है और यह निम्नलिखित तार्किक-रूप में बदला जा सकता है "आप में से कम से कम कुछ वह व्यक्ति है, जो इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है।"

(५) निम्नलिखित तर्कवाक्यों के गुण तथा परिमाण का उल्लेख कीजिए :—

(क) केवल अज्ञानी व्यक्ति ही ऐसा मत रखते हैं।

यह ऐकान्तिक वाक्य निम्नलिखित तर्कवाक्यों के तुल्य है :

"आ" . सब व्यक्ति जो ऐसा मत रखते हैं अज्ञानी हैं।

"ए" . कोई भी ज्ञानी व्यक्ति वे नहीं है जो ऐसा मत रखते हैं।

"ई" . कुछ अज्ञानी व्यक्ति वे हैं जो ऐसा मत रखते हैं।

(ख) बिरले ही व्यक्ति लालच से बचते हैं।

यह 'ओ'-आकार में है और निम्नलिखित तर्कवाक्य में रूपान्तरित हो सकता है—"कुछ व्यक्ति वे हैं जो लालच से नहीं बचते हैं।"

(ग) फॉसफॉरस पानी में नहीं घुलता।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है "फॉसफॉरस वह पदार्थ नहीं है जो पानी में नहीं घुल सके।" यह 'ए'-तर्कवाक्य है।

(घ) बहुत से योग्य व्यक्ति हैं, जो अभागे हैं।

यह 'ई'-तर्कवाक्य है जो कि निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है :—"कुछ लोग जो अभागे हैं, योग्य व्यक्ति हैं।"

(ङ) वे सब मित्र नहीं होते जो वैसा दिखावा करते हैं।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है —'कुछ व्यक्ति जो मित्र होने का दिखावा करते हैं, मित्र नहीं होते।' यह 'ओ'-आकार में है।

(६) निम्नलिखित तर्कवाक्यों में कौन से पद व्याप्त हैं :

(क) कुछ बहुमूल्य पुस्तकें शायद ही कभी पढ़ी जाती हैं।

यह निम्नलिखित तर्कवाक्य में रूपान्तरित किया जा सकता है—“कुछ बहुमूल्य पुस्तकें नहीं पढ़ी जाती।” यह ‘ओ’-आकार में है जिसमें उद्देश्य तो अव्याप्त है पर विधेय व्याप्त है।

(ख) प्रत्येक गलती भयानक नहीं होती।

यह इस तर्कवाक्य के तुल्य है : ‘कुछ गलतियाँ भयानक नहीं हैं।’ यह ‘ओ’-आकार में है, जिसका विधेय तो व्याप्त है, परन्तु उद्देश्य अव्याप्त हो है।

(७) निम्नलिखित वाक्यों को तार्किक आकार में रखिए :

(क) सब वकील मूर्ख नहीं होते।

तार्किक आकार ‘कुछ वकील मूर्ख नहीं हैं।’ (ओ)

(ख) केवल स्नातक ही अधिकारी हैं।

यह ऐकान्तिक वाक्य निम्नांकित तर्कवाक्यों के तुल्य है —

“आ” : सब व्यक्ति जो अधिकारी हैं, स्नातक हैं।

“ए” : कोई भी अ-स्नातक अधिकारी नहीं है।

“ई” : कुछ स्नातक अधिकारी हैं।

(८) निम्नलिखित अनियमित वाक्यों को तार्किक आकार में रूपान्तरित कीजिए :—

(क) कहते हैं कि वह दिवालिया है।

उत्तर :—इस कथन में ‘कहते हैं’ से तात्पर्य ‘लोग प्रायः कहते हैं’ है। अतः इसका रूपान्तरण निम्नलिखित प्रकार से होगा : ‘कुछ लोग वे हैं, जो कहते हैं कि वह दिवालिया है।’ (ई)

(ख) बड़ी गर्मी है !

उत्तर — इसमें मौसम के सम्बन्ध में बात कही गई है। अतः यह निम्नलिखित ‘आ’ तर्कवाक्य के तुल्य है—“मौसम बड़ा गर्म है।”

प्रश्नमाला ७

(१) तर्कवाक्य (Proposition) किसे कहते हैं ? उसे तार्किक-आकार में किस प्रकार रूपान्तरित किया जाता है ? निम्नलिखित तर्कवाक्यों को तार्किक आकार में रूपान्तरित कीजिए —

- (क) किञ्चिन्मात्र ही स्त्रियाँ इंजीनियर हैं।
- (ख) केवल स्नातक ही आई० सी० एस० के लिए अधिकारी हैं।
- (ग) पत्थर की दीवारे बन्दीगृह नहीं बनाती।
(उ० प्र० १९४६)

(२) निम्नलिखित तर्कवाक्यों को उनके गुण एवं परिमाण के चिह्नो सहित तार्किक आकार में रूपान्तरित कीजिए:—

- (क) डूबते हुए को तिनके का सहारा काफी है।
- (ख) जापानी गायद ही कभी आत्म-समर्पण करते हैं।
- (ग) केवल गुरखो ने ही स्थिति को मुधार लिया।
- (घ) सब विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होते।
(उ० प्र० १९४७)

(३) निम्नलिखित तर्कवाक्यों को तार्किक आकार में रूपान्तरित कीजिए:—

- (क) केवल पत्रकार ही प्रथम पक्ति में स्थान पा सकते हैं।
- (ख) किञ्चिन्मात्र ही मनुष्य चतुर होते हैं।
- (ग) प्रत्येक रोग घातक नहीं होता। (उ० प्र० १९४८)

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्यों को तार्किक आकार में व्यक्त कीजिए:—

- (क) दो को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति मारा गया।
- (ख) अधिक पढ़नेवाले सब लोग चतुर नहीं होते।
- (ग) केवल रेखागणित के विशेषज्ञ ही इस मार्ग से प्रवेश पा सकते हैं। (उ० प्र० १९५०)

(५) संयोजक का क्या स्वरूप है ? एक निर्णय में संयोजक का क्या महत्व होता है ? (कलकत्ता १९४१)

(६) तर्कवाक्यों को भिन्न-भिन्न प्रकारों में कैसे बाँटा जाता है ? सविस्तार व्याख्या कीजिए। (कलकत्ता १९३६)

(७) तर्कवाक्य की कौन-सी विशेषता उसे व्याकरणिय वाक्य से भिन्न बना देती है ? (दम्बई १९२९)

(८) निर्णय किसे कहते हैं ? एक निर्णय और एक तर्कवाक्य में क्या अन्तर है ? (कलकत्ता १९४०-१९४१)

(९) तर्कवाक्यों में पदों की व्याप्ति की व्याख्या कीजिए। (उ० प्र० १९५०)

(१०) वैकल्पिक तर्कवाक्य का क्या महत्व है ? ऐसे तर्कवाक्यों के परिमाण के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ? कारण सहित समझाइए।

(११) एक पद और तर्कवाक्य का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(१२) सम्बन्ध के अनुसार तर्कवाक्यों का विभाग कीजिए। क्या यह कहना ठीक है कि सब तर्कवाक्य स्वीकारात्मक तथा निरपेक्ष होने चाहिए ?

(१३) 'विधेय का परिमाण ज्ञात करने' से क्या तात्पर्य है ? क्या आप उसे ठीक समझते हैं ?

(१४) निम्नलिखित तर्कवाक्यों का शुद्ध तार्किक आकार व्यक्त कीजिए :-

(क) सब अच्छे लेखक अच्छे वक्ता नहीं होते।

(ख) उसे काम करना चाहिए, जो सफलता का इच्छुक है।

(ग) कक्षा के योग्य विद्यार्थियों को छोड़कर सब परीक्षा में असफल रहे।

(घ) वे सब जो यशगान करते हैं, मित्र नहीं होते।

(ङ) कोई भी उत्तर अच्छा उत्तर नहीं होता।

(च) सब मनुष्य कभी-कभी गलती कर बैठते हैं।

(छ) कोई भी विद्यार्थी इस सरल प्रश्न को हल कर सकता है।

(ज) केवल थोड़े-से व्यक्ति प्रसिद्ध हैं।

(झ) कम से कम एक विद्यार्थी उपस्थित नहीं है।

(ञ) केवल शिक्षित ही मत देने के योग्य हैं।

EXERCISE VII.

1. What is a Proposition ? How is it changed into logical form ? Change the following propositions into logical form .

- (a) Few women are engineers
- (b) Only graduates are eligible for I A S.
- (c) Stony walls do not make prison.

2 Express the following propositions in logical form giving their signs of Quality and Quantity :

- (a) A drowning man seeks for a straw.
- (b) Japanese seldom surrender.
- (c) The Gurkhas alone saved the situation.
- (d) All the students do not succeed in the examination [U.P. 1947]

3. Express the following propositions in strict logical form

- (a) Journalists alone can occupy the front row.
- (b) Few men are wise
- (c) Every disease is not fatal [U. P 1948]

4 Express the following propositions in logical form

- (a) All but two were killed.
- (b) All studious persons are not wise.
- (c) Only Geometricians can get admittance on this path [U. P 1950]

5 What is the nature of Copula ? What is the significance of Copula in a judgment ? [Calcutta 1941]

6 Discuss in detail how propositions are divided into different forms [Calcutta 1936].

7. What characteristic differentiates a logical proposition from a grammatical sentence ? [Bombay 1929].

8 What is a Judgment ? What is the difference between a Judgment and a Proposition ? [Calcutta 1940, 1941].

9. Explain the Distribution of Terms in the Propositions. [U. P. 1950].

10 What do you consider to be the precise significance of a disjunctive proposition and why? What do you know regarding the quantity of the proposition and how?

11. Distinguish between a term and a proposition.

12. Classify Propositions according to relation Is it correct to say that all propositions must be affirmative and categorical?

13. Discuss briefly the theory of the Quantification of the Predicate. Do you accept it?

14. Express the following in strict logical forms adding the symbols, A E I or O in each case

- (a) All good writers are not good speakers.
 - (b) He must work who wants to succeed.
 - (c) All but the best students in the class got plucked in the examination
 - (d) All who praise are not friends
 - (e) All answer is not a good answer
 - (f) All men sometimes fall into error
 - (g) Any student will answer this simple question
 - (h) Only a handful of men become famous.
 - (i) There is at least one student who is absent
 - (j) Only the educated are fit to vote
-

अष्टम प्रकरण

निरपेक्ष तर्कवाक्यों का तात्पर्य तथा विधान- सम्बन्धी सिद्धान्त

(Import of Categorical Propositions and
Theories of Predication)

§१. विधान सम्बन्धी सिद्धान्त ।

§२. तर्कवाक्यों के तात्पर्य के सम्बन्ध में नामवादी, धारणा-
वादी तथा वस्तुवादी सिद्धान्त ।

प्रश्नमाला ८

हमारे सामने प्रश्न यह है कि वाक्य के विधान (Predication) का वास्तविक स्वरूप क्या है ? दूसरे शब्दों में, वाक्य के विधान का निर्माण करते समय हम वास्तव में क्या करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर तर्कशास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार से दिया है । इस सम्बन्ध में दो समस्याओं पर विचार करना है । पहली समस्या यह है . तर्कवाक्य उद्देश्य और विधेय के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध व्यक्त करता है ? और दूसरी समस्या यह है कि तर्कवाक्य प्रधान-तया वास्तविक पदार्थ , नाम और विचार—इन तीनों में से किस से सम्बन्ध रखता है ? अब हम इन समस्याओं पर विस्तार से विचार करेंगे ।

§१. विधान-सम्बन्धी सिद्धान्त

हमारे सामने प्रश्न यह है—उद्देश्य का क्या अर्थ है ? विधेय का क्या अर्थ है ? और तर्कवाक्य के उद्देश्य और विधेय के पारस्परिक सम्बन्ध का क्या अर्थ है ?

इन प्रश्नों के सम्बन्ध में तर्कशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है। इन विभिन्न मतों को ही विधान के सिद्धान्त (Theories of Predication) कहते हैं।

(१) विधानात्मक मत (The Predicative view)

विधानात्मक मत (Predicative view) अथवा सामान्य मत (Common-sense view) के अनुसार, तर्कवाक्य का उद्देश्य तो उसके निर्देश के अर्थ में और विधेय उसके 'गुण' (Connotation) के अर्थ में लिया जाता है। और तर्कवाक्य का अर्थ यह होता है कि विधेय द्वारा व्यक्त गुण उद्देश्य द्वारा निर्दिष्ट वस्तु या व्यक्तियों के प्रति स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। उदाहरणार्थ, यह तर्कवाक्य कि 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' का यह अर्थ है कि 'मर्त्यता' का गुण 'सब मनुष्यों' में उपस्थित है। इसी प्रकार, 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है' का यह अर्थ है कि 'पूर्णता' का गुण 'सब मनुष्यों' में अनुपस्थित है। यह मत मार्टिनेय (Martineau) और वैन (Venn) का है।

१. विधाना-
त्मक मत :
उद्देश्य
'निर्देश' में
तथा विधेय
'गुण' में

(२) निर्देशात्मक मत (The Denotative view) .

निर्देशात्मक मत (Denotative view) के अनुसार उद्देश्य और विधेय दोनों ही 'निर्देश' के अर्थ में समझे जाते हैं और तर्कवाक्य का यह अर्थ होता है कि उद्देश्य द्वारा निर्दिष्ट जाति विधेय द्वारा निर्दिष्ट जाति में या तो सन्निहित है अथवा असन्निहित है। उदाहरण के लिए, इस मत के अनुसार इस तर्कवाक्य कि 'सब मनुष्य मर्त्य हैं'—का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्य' जाति 'मर्त्य व्यक्तियों' की जाति में सन्निहित है। और 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है' तर्कवाक्य का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्य' की जाति 'पूर्ण व्यक्तियों' की जाति में सन्निहित नहीं है।

२. निर्देशा-
त्मक मत :
उद्देश्य तथा
विधेय दोनों
ही निर्देश में

(३) गुणात्मक मत (Connotative or Attributive view) :

३. गुणात्मक
मत : उद्देश्य
तथा विधेय
दोनों ही
'गुण' के
अर्थ में

गुणात्मक (Connotative) मत के अनुसार उद्देश्य और विधेय दोनों ही अपने 'गुण' के अर्थ में लिए जाते हैं और तर्कवाक्य का यह तात्पर्य होता है कि विधेय द्वारा व्यक्त गुणों का उद्देश्य द्वारा व्यक्त गुणों से सामंजस्य है अथवा नहीं। इस दृष्टिकोण से 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' तर्कवाक्य का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्यता' के गुण से 'मर्त्यता' के गुण का सामंजस्य है। और 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है' — इस तर्कवाक्य का यह तात्पर्य है कि 'मनुष्यता' के गुण से 'पूर्णता' के गुण का सामंजस्य नहीं है। इस मत के प्रधान पोषक मिल (Mill) हैं।

(४) निर्देश-गुणात्मक मत (Denotative-Connotative view) :

४. निर्देश
गुणात्मक
मत :
उद्देश्य तथा
विधेय दोनों
ही या तो
निर्देश में
या गुण में

यह मत दूसरे और तीसरे मत का सम्मिलित रूप है। निर्देश-गुणात्मक मत के अनुसार उद्देश्य और विधेय दोनों ही या तो निर्देश के अर्थ में या गुण के अर्थ में माने जाते हैं। जब दोनों निर्देश के अर्थ में माने जाते हैं, तो उद्देश्य विधेय में सन्निहित या असन्निहित रहता है, और जब दोनों गुण के अर्थ में माने जाते हैं, तो विधेय उद्देश्य में सन्निहित या असन्निहित रहता है। यह कोई नया सिद्धान्त नहीं है, वरन् पिछले दोनों मतों का सम्मिलित रूप ही है। यह मत हैमिल्टन (Hamilton) ने प्रतिपादित किया है। इसे समन्वयवाद (Comprehensive view) भी कहते हैं।

उपर्युक्त चारों मतों में से विधानात्मक-मत (Predicative view) सबसे अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। निरपेक्ष तर्कवाक्यों में उद्देश्य परिमाण के चिह्न के सहित व्यक्त

होता है और यह स्वाभाविक ही है कि उसे निर्देश के अर्थ में लिया जाय । साथ ही विधानात्मक मत तर्कवाक्यों की चतुर् योजना के भी पूर्णरूप से अनुरूप है । क्योंकि गटि विधेय गुणों को व्यक्त करता है और उद्देश्य वस्तुओं का निर्देश करता है तो हम गुणों को वस्तुओं के सम्बन्ध में स्वीकार या अस्वीकार करते हैं । और दोनों दशाओं में स्वीकृति या अस्वीकृति व्यक्तियों की निश्चित या अनिश्चित सख्या के विषय में की जा सकती है ।

§२. तर्कवाक्यों के तात्पर्य के सम्बन्ध में नामवादी (Nominalist), धारणावादी (Conceptualist) तथा वस्तुवादी (Realist) सिद्धान्त

हमारे सामने यह समस्या है कि तर्कवाक्य प्रधानतः किस से सम्बन्ध रखता है ? इस सम्बन्ध में तीन मत हैं, यथा—तर्कवाक्य नाम (name) से, विचारों (ideas) से अथवा वास्तविक वस्तुओं (real things) से सम्बन्ध रखता है । अब हम इन मतों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे ।

(१) नामवादी मत (Nominalist view)

यह मत हॉब्स (Hobbes) ने प्रतिपादित किया है । इस मत के अनुसार तर्कवाक्य दो नामों का सम्बन्ध व्यक्त करता है । हॉब्स का कहना है कि तर्कवाक्य का तात्पर्य वक्ता के इस विश्वास पर है कि विधेय उसी वस्तु का नाम है जिसका नाम उद्देश्य है ।

यह मत दोषपूर्ण है क्योंकि इससे यह अर्थ निकलता है कि सत्य केवल आकारगत है अर्थात् सत्य के अर्थ शब्द-संगति मात्र है । परन्तु वास्तव में सत्य केवल अकारगत ही नहीं अपितु वस्तुगत भी होता है ।

(२) धारणावादी मत (Conceptualist view)

धारणावादी मत के अनुसार तर्कवाक्य दो धारणाओं (Concepts) या विचारों (ideas) के मध्य का सम्बन्ध व्यक्त करता है। अर्थात् तर्कवाक्य दो विचारों को पारस्परिक सगति या असगति व्यक्त करता है। यह मत लॉक (Locke) ने प्रतिपादित किया है।

यह मत भी दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें इस तथ्य की उपेक्षा की गई है कि 'विचार' किसी 'वस्तु का विचार' ही होता है। केवल 'विचार' कहलानेवाली किसी वस्तु की सत्ता नहीं होती। अतः तर्कवाक्य केवल 'विचारों' को ही व्यक्त नहीं कर सकता।

(३) वस्तुवादी मत (Realist view)

वस्तुवादी मत के अनुसार तर्कवाक्य 'विचारों' या 'नामों' से नहीं, प्रत्युत 'वस्तुओं' से सम्बन्ध रखता है।

उचित दृष्टिकोण धारणावादी तथा वस्तुवादी मत का सम्मिलित रूप प्रतीत होता है। यह मत ब्रैडले (Bradley) का है। यह सच है कि तर्कवाक्य को 'विचार' या धारणा से सम्बन्ध होता है, परन्तु यह 'विचार' किसी वास्तविक पदार्थ से सम्बद्ध रहता है। अतः तर्कवाक्य का 'विचार' से ही नहीं, अपितु उस वस्तु से भी जिसके बारे में वह विचार हो, सम्बन्ध है।

प्रश्नमाला ८

(१) 'तर्कवाक्य के तात्पर्य' से क्या आशय है? इस 'तात्पर्य' के सम्बन्ध में तर्कशास्त्रियों ने जो मत प्रतिपादित किए हैं, उनकी व्याख्या कीजिए। इन मतों के अनुसार निम्नलिखित तर्कवाक्य का क्या तात्पर्य है—

'सब मनुष्य मर्त्य हैं।'

(२) विधान सम्बन्धी सिद्धान्त किसे कहते हैं ? वास्तविक उदाहरण देकर इससे सम्बन्धित विभिन्न मतों को समझाइए ।

EXERCISE VIII

1 State clearly the meaning of the expression the Import of Proposition, and state the principal views, advanced by Logicians regarding Import. What precisely does the proposition 'All men are mortal' mean according to each of these views ?

2 What do you understand by the Theory of Predication ? Explain and illustrate the different theories with reference to a concrete example

नवम प्रकरण

तर्कवाक्यों का विरोध

(Opposition of Propositions)

§१ विरोध के विभिन्न प्रकार ।

(क) उपाश्रितता (Subalternation) ।

टिप्पणी—क्या उपाश्रितता विरोध का रूप है ?

(ख) वैपरीत्य (Contrariety) ।

(ग) अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety) ।

(घ) विरुद्धता (Contradictory Opposition) ।

§२ विरोध का वर्ग ।

प्रश्नमाला ९.

§१. विरोध के विभिन्न प्रकार

‘विरोध’
का अर्थ

उन दो तर्कवाक्यों को परस्पर विरोधी कहते हैं, जिनके उद्देश्य और विधेय समान होते हुए भी, जो गुण की दृष्टि से, या परिमाण की दृष्टि से, या दोनों की दृष्टि से भिन्नता रखते हो ।

चार प्रकार
के विरोध

विरोध चार प्रकार का माना जाता है; यथा—उपाश्रितता (Subalternation), वैपरीत्य (Contrariety), अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety) तथा विरुद्धता (Contradictory Opposition) ।

(क) उपाश्रितता (Subalternation)

उपाश्रितता
—केवल परि-
माण में
अन्तर

उपाश्रितता (Subalternation) उस सम्बन्ध को कहते हैं जो ऐसे दो तर्कवाक्यों में पाया जाये जिनके वही उद्देश्य हों और वही विधेय हो तथा गुण भी वही हो परन्तु जिनके

परन्तु तर्कशास्त्री 'विरोध' शब्द का उपयोग एक विशेष अर्थ में करते हैं, वे उसके अन्दर परिमाण के भेद को भी समाविष्ट करते हैं, चाहे उनमें गुण का विरोध न भी हो। यह स्पष्ट है कि इस विशेष अर्थ में उपाश्रितता को विरोध का एक ही रूप समझा जा सकता है। अतः उपाश्रितता विरोध का रूप है, अथवा नहीं इस बात पर निर्भर रहता है कि हम 'विरोध' शब्द का क्या अर्थ लेते हैं।

(ख) वैपरीत्य (Contrariety)

वैपरीत्य—
दो सार्व-
लौकिक
तर्कवाक्य
जिनके गुण
में भेद हो।

वैपरीत्य उस सम्बन्ध को कहते हैं जो कि ऐसे दो सार्वलौकिक (सामान्य) तर्कवाक्यों में होता है जिनका उद्देश्य भी समान होता है और विधेय भी समान होता है, परन्तु जिनके गुण में भेद होता है। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा सगत 'ए' (E) तर्कवाक्य का पारस्परिक सम्बन्ध है। निम्नलिखित तर्कवाक्यों में वैपरीत्य (या विपरीत विरोध) है—

- | | |
|-----------------------------------|---|
| (क) सब मनुष्य अपूर्ण हैं। | } |
| (ख) कोई भी मनुष्य अपूर्ण नहीं है। | |

(ग) अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety)

अनुवैपरीत्य
—दो विशेष
तर्कवाक्य
जिनके गुण
में भेद हो।

अनुवैपरीत्य उस सम्बन्ध को कहते हैं जो कि ऐसे दो विशेष तर्कवाक्यों में होता है, जिनका उद्देश्य भी समान होता है और विधेय भी समान होता है परन्तु जिनके गुण में भेद होता है। अर्थात् यह 'इ' (I) तथा सगत 'ओ' (O) तर्कवाक्यों का पारस्परिक सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित तर्कवाक्यों में अनुवैपरीत्य (Sub-contrariety) का सम्बन्ध है :

- | | |
|-------------------------------|---|
| (क) कुछ मनुष्य चतुर हैं। | } |
| (ख) कुछ मनुष्य चतुर नहीं हैं। | |

(घ) विरुद्धता (Contradictory Opposition)

विरुद्धता दो तर्कवाक्यों के ऐसे सम्बन्ध को कहते हैं, जिनका उद्देश्य भी समान होता है, तथा विधेय भी समान होता है परन्तु जिनके परिमाण में भी भेद होता है तथा गुण में भी भेद होता है। विरुद्ध तर्कवाक्यों के दो युग्म हैं यथा—(१) 'आ' (A) और 'ओ' (O) तथा (२) 'ए' (E) और 'ई' (I)।

विरुद्धता—
दो तर्कवाक्य
जिनके गुण
तथा परि-
माण दोनों
में भेद हो।

विरुद्धता विरोध का पूर्ण रूप है क्योंकि उसमें गुण और परिमाण दोनों में अन्तर है। 'आ' (A) अर्थात् सार्वलौकिक स्वीकारात्मक का विरुद्ध 'ओ' (O) अर्थात् विशेष निषेधात्मक होता है, तथा 'ए' (E) अर्थात् सार्वलौकिक निषेधात्मक का विरुद्ध 'ई' (I) अर्थात् विशेष स्वीकारात्मक होता है।

सारांश यह है कि 'विरोध' (Opposition) शब्द का उपयोग विस्तीर्ण एवं सकीर्ण अर्थ में किया जाता है। विस्तीर्ण अर्थ में, उपाश्रितता सहित चार प्रकार के विरोध होते हैं। सकीर्ण अर्थ में केवल दो प्रकार का विरोध होता है यथा वैपरीत्य एवं विरुद्धता।

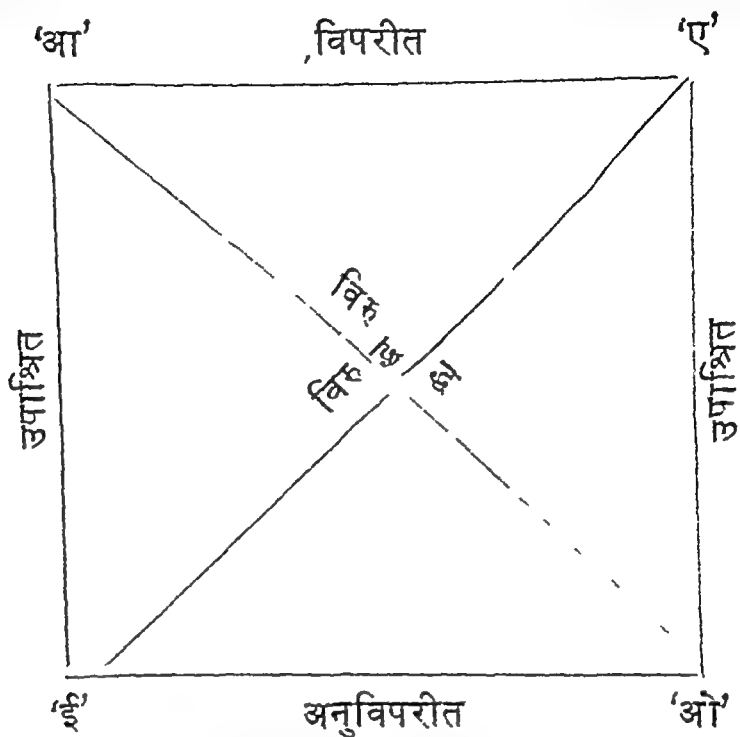
'विरोध' का सम्बन्ध केवल उन दो तर्कवाक्यों में होता है जिनका उद्देश्य समान होता है तथा विधेय भी समान होता है। उपाश्रितता (Subalternation) में केवल परिमाण का अन्तर होता है, वैपरीत्य में दो सार्वलौकिक तर्कवाक्यों में गुण का अन्तर होता है, अनुवैपरीत्य में दो विशेष तर्कवाक्यों में गुण का अन्तर होता है और विरुद्धता में गुण और परिमाण दोनों का अन्तर होता है। 'आ' तथा 'ई' एवं 'ए' तथा 'ओ' उपाश्रित हैं, 'आ' तथा 'ए' विपरीत हैं, 'ई' तथा 'ओ' अनुविपरीत हैं और 'आ' तथा 'ओ' एवं 'ए' तथा 'ई' विरुद्ध हैं।

§२. विरोध का वर्ग

विरोध का
वर्ग

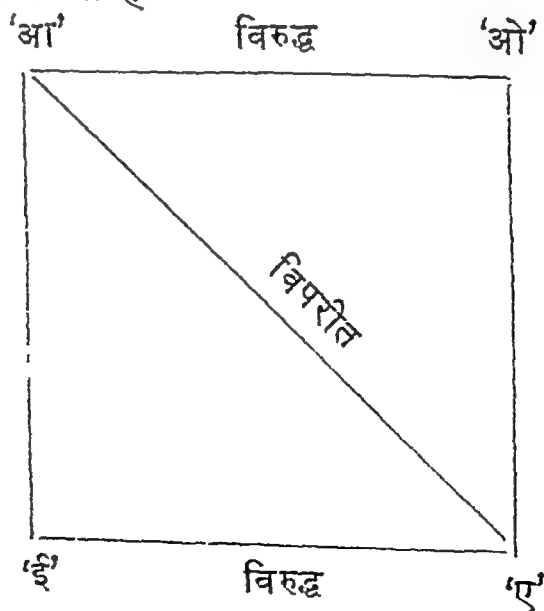
'विरोध का वर्ग' (Square of Opposition) तर्कवाक्यों

के विरोध के सिद्धान्त को याद रखने का चित्र है, जो निम्न प्रकार है :



इस चित्र में सार्वलौकिक तर्कवाक्य ऊपर लिखे हैं, विशेष तर्कवाक्य नीचे लिखे हैं; स्वीकारात्मक तर्कवाक्य बाई ओर तथा निषेधात्मक तर्कवाक्य दाई ओर लिखे हैं।

अरस्तू (Aristotle) ने विरोध के वर्ग को निम्न प्रकार प्रदर्शित किया है—



पहले वर्ग की अपेक्षा अरस्तू के वर्ग में निम्नलिखित विशेष-
ताये हैं—

(१) उपाश्रितता को विरोध का रूप नहीं माना गया है।

(२) अनुवैपरीत्य को भी विरोध का रूप नहीं माना गया है
क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि 'ई' (I) तथा
'ओ' (O) तर्कवाक्य दोनों सत्य भी हो सकते हैं। यथा—
यह तर्कवाक्य कि 'कुछ मनुष्य ईमानदार हैं' तथा 'कुछ मनुष्य ईमान-
दार नहीं हैं' दोनों सत्य हैं। अतः अरस्तू (Aristotle)
के अनुसार, 'विरोध' का अर्थ यह है कि दोनों तर्कवाक्य एक ही
समय में सत्य नहीं हैं।

(३) अरस्तू केवल वैपरीत्य तथा विरुद्धता को ही विरोध
मानता है। अरस्तू के वर्ग में विपरीत-विरोध वर्ग के विकर्ण
द्वारा प्रदर्शित किया गया है और विरुद्धता वर्ग की दो सम्मुख भुजाओं
से प्रदर्शित है।

प्रश्नमाला ९

(१) तर्कवाक्यों के विरोध से आप क्या समझते हैं ? यदि
निम्नलिखित तर्कवाक्य असत्य हो तो कौन से तर्कवाक्य सत्य, अथवा
सन्देहजनक समझे जा सकते हैं—

'कुछ सुखी मनुष्य असन्तुष्ट हैं।'

(२) 'सब चमकनेवाली वस्तुएँ स्वर्ण नहीं हैं।' इस तर्कवाक्य
के सत्य से विभिन्न प्रकार के विरोधों के द्वारा क्या अनुमान निकाले
जा सकते हैं ? क्या उपाश्रितता विरोध का ही एक प्रकार है ?

(३) विरोध का साधारण वर्ग खींचिये तथा उसका
स्पष्टीकरण कीजिये। यह अरस्तू के विरोध-वर्ग से किस प्रकार
भिन्न है ?

(४) उपाश्रितता एवं अनुवैपरीत्य का अन्तर स्पष्ट कीजिये।

(५) निम्नांकित तर्कवाक्यों का पारस्परिक तार्किक सम्बन्ध
बतलाइए—

(क) अच्छे मनुष्य चतुर हैं।

- (ख) अचतुर मनुष्य अच्छे नहीं है ।
 (ग) कुछ अचतुर मनुष्य अच्छे हैं ।
 (घ) कोई भी अच्छा मनुष्य अचतुर नहीं है ।

EXERCISE IX

1. What do you understand by Opposition of Propositions ? What propositions can be inferred as true, false or doubtful, if the following proposition is false .—

‘Some happy men are discontented.’

2 ‘All is not gold that glitters’ What inferences follow by the various kinds of Opposition from the truth of the above proposition ? Is Subalternation a kind of Opposition ?

3. Draw the common square of Opposition and explain it How does it differ from Aristotle’s square of Opposition ?

4 Distinguish between Subalternation and Subcontrary Opposition

5 State the logical relation to each other of the following propositions —

- (a) Good men are wise
 (b) Unwise men are not good
 (c) Some unwise men are good
 (d) No good men are unwise
-

दशम प्रकरण

अनन्तरानुमान

(Immediate Inference)

- §१. अनुमान (Inference) का स्वरूप : निगमनमूलक (Deductive) तथा आगमनमूलक (Inductive): अनन्तरानुमान (Immediate) तथा सान्तरानुमान (Mediate) ।
क्या अनन्तरानुमान गन्तव्य में अनुमान है ?
- §२. परिवर्तन (Conversion) ।
टिप्पणी १ : क्या 'आ' तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन हो सकता है ?
टिप्पणी २ : निषेध द्वारा परिवर्तन (Conversion by Negation) ।
टिप्पणी ३ : प्रतिलोम-सम्बन्ध द्वारा अनुमान (Inference by Converse Relation) ।
- §३. प्रतिवर्तन (Obversion) ।
टिप्पणी भौतिक प्रतिवर्तन (Material Obversion) ।
- §४. परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) ।
टिप्पणी १ : परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का एक मिश्र रूप है ।
टिप्पणी २ : परिवर्तित-प्रतिवर्तन प्रतिवर्तित-परिवर्तन से भिन्न है ।
- §५. विपर्यय (Inversion) ।
टिप्पणी अनन्तरानुमान के मुख्य रूपों की तुलनात्मक तालिका ।
- §६. विरोध (Opposition) ।

- §७. विध्याश्रित अनुमान (Modal Consequence) ।
 §८. सम्बन्ध विलोमात्मक अनुमान (Change of Relation) ।
 §९. विगेषण-सयोगानुमान (Inference by Added Determinants) ।
 §१०. मिश्र-धारणानुमान (Inference by Complex Conception) ।
 प्रश्नमाला १०.

§१ अनुमान (Inference) का स्वरूप : निगमन-मूलक (Deductive) तथा आगमनमूलक (Inductive): अनन्तरानुमान (Immediate) तथा सान्तरानुमान (Mediate)

अनुमिति को भाषा में व्यक्त करने से उसे 'युक्ति' कहते हैं ।

अनुमान (Inference) या तर्क (Reasoning) उस क्रिया को कहते हैं जिसमें हम एक या अनेक तर्कवाक्यों के आधार पर उनके परामर्श से किसी अन्य तर्कवाक्य पर पहुँचते हैं । इस क्रिया के परिणाम को 'अनुमिति' (an inference) कहते हैं । अतः अनुमिति में एक से अधिक तर्कवाक्यों की आवश्यकता पड़ती है । जब उसे भाषा में व्यक्त करते हैं तो वह एक युक्ति कहलाती है । अतः प्रत्येक युक्ति (Argument) में एक से अधिक तर्कवाक्य होते हैं ।

युक्ति में आश्रयवाक्य तथा निष्कर्ष होते हैं ।

प्रत्येक युक्ति में हम एक या अनेक तर्कवाक्यों के आधार पर एक नए तर्कवाक्य पर पहुँच जाते हैं । जो तर्कवाक्य विदित होते हैं, उन्हें आश्रय वाक्य (Premises) तथा जो तर्कवाक्य उनके आधार पर प्राप्त किया जाता है, उसे निष्कर्ष (Conclusion) कहते हैं । अतः अनुमान में हम विदित तर्कवाक्यों के आधार पर ऐसे नवीन और अविदित तर्कवाक्य पर पहुँचते हैं, जो अनिवार्यतः विदित तर्कवाक्य से फलित होता है ।

अनुमान का विभाग निगमनमूलक (Deductive) और आगमनमूलक (Inductive) अनुमान में किया जाता है। निगमनमूलक अनुमान (Deductive Inference) में निष्कर्ष आश्रयवाक्यों से अधिक व्यापक नहीं होता और आगमनमूलक (Inductive) अनुमान में निष्कर्ष आश्रय वाक्यों से अधिक व्यापक होता है।

अनुमान निगमन-मूलक तथा आगमन-मूलक होते हैं।

निगमनमूलक अनुमान के पुन दो विभाग किये जाते हैं—
(१) अनन्तरानुमान (Immediate Inference) तथा
(२) सान्तरानुमान (Mediate Inference)।

निगमनमूलक अनुमान के दो उपविभाग हैं :

अनन्तरानुमान (Immediate Inference) उस निगमनमूलक (Deductive) अनुमान को कहते हैं जिसमें निष्कर्ष केवल एक आश्रयवाक्य (Premise) से प्राप्त होता है। अनन्तरानुमान में दिए हुए तर्कवाक्य का अर्थ खोल कर स्पष्ट कर दिया जाता है। यह निगमनमूलक अनुमान का उप-विभाग है, इस कारण इसका निष्कर्ष आश्रयवाक्य (Premise) से अधिक व्यापक नहीं हो सकता। सान्तरानुमान (Mediate Inference) में निष्कर्ष एक से अधिक तर्कवाक्यों से फलित होता है। जब केवल दो ही आश्रयवाक्य होते हैं और उन्हें सम्मिलित रूप में रखने से निष्कर्ष प्राप्त होता है तो उसे 'न्यायवाक्य' या सिल्लोजिज्म (Syllogism) कहते हैं।

१. अनन्तरानुमान में एक आश्रय से निष्कर्ष प्राप्त होता है; और

२. सान्तरानुमान में एक से अधिक आश्रयों से निष्कर्ष प्राप्त होता है।

क्या अनन्तरानुमान वास्तव में अनुमान है ?

कुछ न्यायशास्त्री, यथा मिल (Mill), बेन (Bain) इत्यादि यहाँ तक कह डालते हैं कि अनन्तरानुमान वास्तव में अनुमान है ही नहीं। मिल (Mill) उन्हें 'अनुचित रीति से कहे जानेवाले अनुमान' मानता है। उसका कहना है कि "इन सब दशाओं में, वास्तव में कोई अनुमान नहीं होता—आश्रयवाक्य में पहले

क्या अनन्तरानुमान वास्तव में अनुमान है ?

से ही व्यक्त बात के सिवा कुछ भी नहीं . . . निष्कर्ष में प्रतिपादित बात मूल तर्कवाक्य में व्यक्त बात अथवा उसका कोई अंश ही है।" बेन (Bain) का कहना है कि "इन सब दशाओं में कभी भी उचित अनुमान (अर्थात् विदित बात में किसी अविदित और नई बात पर पहुँचना) नहीं होता। एक ही बात को एक प्रकार से शब्दों में व्यक्त न करके उसे दूसरे शब्दों में व्यक्त कर दिया जाता है।" प्रतिवर्तन (Obversion) का एक उदाहरण देखिये। यह तर्कवाक्य कि 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' प्रतिवर्तन के बाद यह हो जाता है 'कोई भी मनुष्य अमर्त्य नहीं है।' स्पष्ट है कि प्रतिवर्तित तर्कवाक्य आश्रय वाक्य का ही बदला हुआ रूप है।

यह सत्य है कि अनन्तरानुमान में आश्रयवाक्य से निष्कर्ष तक का कदम बहुत छोटा है, परन्तु यह कहना सत्य नहीं है कि वह कोई कदम ही नहीं है। अनन्तरानुमान का मुख्य उद्देश्य दिए हुए तर्कवाक्य का पूर्ण आशय व्यक्त करना है। अतः वह आश्रय में निहित (implicit) बात को व्यक्त (explicit) करता है। मूल तर्कवाक्य विदित हो सकता है, परन्तु उसका पूर्ण आशय विदित नहीं होता। इस दृष्टिकोण से अनन्तरानुमान में हम विदित तथ्य से अविदित तथ्य की ओर अग्रसर होते हैं।

अनन्तरानुमान
के विभिन्न
प्रकार

अनन्तरानुमान अनेक प्रकार का होता है—यथा, परिवर्तन (Conversion), प्रतिवर्तन (Obversion), परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition), विपर्यय (Inversion)—आंशिक (Partial) तथा पूर्ण (Complete), विरोध (Opposition), विध्याश्रित अनुमान (Modal Consequence), सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान (Change of Relation), विशेषण संयोगानुमान (Inference by Added Determinants) तथा मिश्र-धारणानुमान (Inference by Complex Conception)। इनमें से प्रथम चार अर्थात्

परिवर्तन, प्रतिवर्तन, परिवर्तित-प्रतिवर्तन तथा विपर्यय को 'पृथक्-भाव' (Eductions) कहते हैं।

'पृथक्-भाव' (Eductions) अनन्तरानुमान के उन रूपों को कहते हैं, जिनमें दिए हुए तर्कवाक्य को सत्य मानकर उससे एक ऐसे तर्कवाक्य को प्राप्त करते हैं जिसका उद्देश्य या विधेय या दोनों ही दिये हुए तर्कवाक्य से भिन्न हो। अब हम प्रत्येक पर अलग-अलग विचार करेंगे।

§२. परिवर्तन (Conversion)

परिवर्तन (Conversion) उस अनन्तरानुमान को कहते हैं जिसमें किसी तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय का समुचित स्थान-परिवर्तन कर दिया जाता है।

परिवर्तन की परिभाषा

दिया हुआ तर्कवाक्य जिसमें परिवर्तन किया जाता है, परिवर्त्य (Convertend) कहलाता है तथा उसके आधार पर जो निष्कर्ष निकाला जाता है, उसे परिवर्तित (Converse) कहते हैं।

परिवर्तन (Conversion) के नियम निम्नलिखित हैं —
(१) परिवर्त्य (Convertend) का उद्देश्य परिवर्तित (Converse) का विधेय हो जाता है।

परिवर्तन के नियम

(२) परिवर्त्य का विधेय परिवर्तित का उद्देश्य हो जाता है।

(३) परिवर्त्य तथा परिवर्तित का गुण (Quality) एक-सा रहता है। अर्थात् यदि परिवर्त्य स्वीकारात्मक हो तो परिवर्तित भी स्वीकारात्मक होता है और यदि परिवर्त्य निषेधात्मक हो तो परिवर्तित भी निषेधात्मक होता है।

(४) कोई भी पद (term) परिवर्तित में तब तक व्याप्त नहीं होता जब तक कि वह परिवर्त्य में व्याप्त न हो।

अब हम इन नियमों का चारों प्रकार के तर्कवाक्यों में प्रयोग करेंगे ।

‘आ’ : ‘ई’

(१) ‘आ’ (A) का परिवर्तन :—‘आ’ (A) का परिवर्तित ‘ई’ (I) होता है। परिवर्तन के नियमों के अनुसार परिवर्तित का गुण वैसा ही रहना चाहिए। अतः ‘आ’ का परिवर्तित स्वीकारात्मक होना चाहिए, अर्थात् वह या तो ‘आ’ (A) होगा अथवा ‘ई’ (I) होगा। परन्तु ‘आ’ (A) का परिवर्तित ‘आ’ (A) नहीं हो सकता क्योंकि परिवर्तित का विधेय परिवर्त्य में व्याप्त न होते हुए भी, उसमें व्याप्त हो जायेगा। अतः परिवर्तित ‘ई’ (I) होना चाहिये। यथा—

परिवर्त्य सब ‘उ’ ‘वि’ है। सब मनुष्य मर्त्य है।
परिवर्तित कुछ ‘वि’ ‘उ’ है। कुछ मर्त्य (व्यक्ति) मनुष्य है।

(२) ‘ए’ (E) का परिवर्तन :—

‘ए’ : ‘ए’

‘ए’ (E) तर्कवाक्य का परिवर्तन ‘ए’ (E) ही होता है। ‘ए’ (E)-तर्कवाक्य निषेधात्मक होता है। अतः उसका परिवर्तित भी निषेधात्मक होगा। ‘ए’ का परिवर्तित ‘ए’ ही निकाला जाय तो पद-व्याप्ति के किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता; क्योंकि परिवर्त्य में उद्देश्य तथा विधेय दोनों व्याप्त होते हैं। अतः वे परिवर्तित में भी व्याप्त हो सकते हैं। यथा—

परिवर्त्य कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है। कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।
परिवर्तित कोई भी ‘वि’ ‘उ’ नहीं है। कोई भी पूर्ण (व्यक्ति) मनुष्य नहीं है।

(३) ‘ई’ (I) का परिवर्तन :

‘ई’ : ‘ई’

‘ई’ (I) तर्कवाक्य का परिवर्तन भी ‘ई’ (I) होता है। ‘ई’ (I) तर्कवाक्य स्वीकारात्मक होने के कारण उसका परिवर्तित भी स्वीकारात्मक होगा। और ‘ई’ (I) तर्कवाक्य में न

तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है। अतः 'ई' (I) का परिवर्तित 'ई' (I) ही होगा। यथा—

परिवर्त्य . कुछ 'उ' 'वि' है। कुछ मनुष्य चतुर है।
परिवर्तित कुछ 'वि' 'उ' है। कुछ चतुर (व्यक्ति) मनुष्य है।

(४) 'ओ' (O) का परिवर्तन :

'ओ' (O) तर्कवाक्य का परिवर्तन नहीं होता। 'ओ' (O) तर्कवाक्य निषेधात्मक होता है। अतः उसका परिवर्तित, यदि कोई हो, तो निषेधात्मक होगा और ऐसी दशा में उसका विधेय व्याप्त (distributed) हो जायगा। परन्तु वह व्याप्त नहीं हो सकता क्योंकि वह परिवर्त्य में, उद्देश्य होने के कारण अव्याप्त (undistributed) है। अतः 'ओ' (O) का परिवर्तन नहीं हो सकता।

'ओ' का परिवर्तन नहीं होता

संक्षेप में, परिवर्तन करने पर, 'आ' (A) से 'ई' (I), 'ए' (E) से 'ए' (E), 'ई' (I) से 'ई' (I), प्राप्त होता है, परन्तु 'ओ' (O) से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

परिवर्तन दो प्रकार का होता है, यथा—सरल परिवर्तन (Simple Conversion) तथा असरल परिवर्तन (Conversion per accidens या Conversion by limitation)। सरल परिवर्तन में परिवर्तित का परिमाण परिवर्त्य के परिमाण के समान होता है, अर्थात् यदि परिवर्त्य सार्वलौकिक (सामान्य) हो, तो परिवर्तित भी सार्वलौकिक (सामान्य) होगा। और यदि परिवर्त्य विशेष हो तो परिवर्तित भी विशेष होगा। अतः 'ए' (E) तथा 'ई' (I) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन (Simple Conversion) होता है। असरल परिवर्तन (Conversion per accidens) में परिवर्तित का परिमाण परिवर्त्य के परिमाण से भिन्न होता है, अर्थात् परिवर्त्य सार्वलौकिक

दो प्रकार का परिवर्तन

होता है, परन्तु परिवर्तित विशेष है। अतः 'आ' (A) तर्कवाक्य का, 'ई' (I) में परिवर्तन असरल परिवर्तन है।

टिप्पणी १. क्या 'आ' (A) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन हो सकता है ?

सासान्यतया
'आ' तर्क-
वाक्य का
सरल परि-
वर्तन नहीं
होता, परन्तु

सरल-परिवर्तन (Simple Conversion) में परिवर्तित का परिमाण (Quantity) परिवर्त्य के परिमाण के समान होता है। अतः 'आ' (A) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन तब हो सकता है जब हम उसके परिवर्तन के बाद 'आ' (A) तर्कवाक्य ही फलित कर सकें। साधारणतया यह संभव नहीं होता क्योंकि यदि परिवर्तित भी 'आ' (A) तर्कवाक्य होगा तो उसका उद्देश्य व्याप्त हो जाएगा, यद्यपि वह पद परिवर्त्य में, विधेय होने के कारण, व्याप्त नहीं होगा। अतः साधारणतया 'आ' तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन नहीं हो सकता।

यदि उद्देश्य
तथा विधेय
का निर्देश
समान हो
तो 'आ'-
तर्कवाक्य
का सरल
परिवर्तन
हो सकता है।

परन्तु कुछ विशेष प्रकार के 'आ' (A) तर्कवाक्य ऐसे भी होते हैं जिनमें उद्देश्य और विधेय का समान निर्देश होता है। तब उनका सरल परिवर्तन हो सकता है। अतः 'आ' (A) तर्कवाक्य का सरल परिवर्तन तब हो सकता है जब कि उद्देश्य और विधेय दोनों निश्चित विशिष्ट पद (definite singular terms) हो अथवा जब तर्कवाक्य परिभाषा (definitions) अथवा पुनरुक्ति-कथन हो। यथा—

- | | | |
|-----|-----------------|---------------------------------|
| (१) | 'आ' । | एवरेस्ट सर्वोच्च पर्वत है । |
| | परिवर्तित 'आ' । | सर्वोच्च पर्वत एवरेस्ट है । |
| (२) | 'आ' । | सब मनुष्य विचारशील प्राणी हैं । |
| | परिवर्तित 'आ' । | सब विचारशील प्राणी मनुष्य हैं । |
| (३) | 'आ' । | सब मानव मानवीय प्राणी हैं । |
| | परिवर्तित 'आ' । | सब मानवीय प्राणी मानव हैं । |

इन 'आ' तर्कवाक्यों का परीक्षण करने पर विदित होता है कि उनके उद्देश्य तथा विधेय समान 'निर्देश' रखते हैं। यह बात स्मरणीय है कि हैमिल्टन (Hamilton) ने अपने 'विधेय-परिमाण के सिद्धान्त' (Quantification of the Predicate) में ऐसे 'आ' (A) तर्कवाक्यों को 'यु' (U) तर्कवाक्य कहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'आ'-तर्कवाक्य का

तो नहीं, परन्तु 'यु' (U) तर्कवाक्यों का सरल परिवर्तन हो सकता है।

टिप्पणी २ . निषेध द्वारा परिवर्तन (Conversion by Negation) .

'ओ' (O) तर्कवाक्य का परिवर्तन ।

यदि 'ओ' तर्कवाक्य का परिवर्तन (Conversion) करने का प्रयत्न किया जाय तो पद-व्याप्ति के नियमों का उल्लंघन हो जाता है। अतः कुछ तर्कशास्त्रियों ने 'ओ' तर्कवाक्य के निषेध के चिह्न को विधेय में स्थानान्तरित करके उसे 'ई' (I) तर्कवाक्य का रूप देकर पदों में स्थान परिवर्तन करने की चेष्टा की है। यथा—

'ओ' (O) कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। कुछ मनुष्य चतुर नहीं है।
 ∴ 'ई' (I) कुछ 'उ' अ-वि' है। कुछ मनुष्य अचतुर है।
 ∴ 'ई' (I) कुछ अ-वि' 'उ' है। कुछ अचतुर (व्यक्ति) मनुष्य है।

'ओ' तर्क-
वाक्यों का
परिवर्तन
निषेध के
चिह्न को
विधेय में
स्थानान्त-
रित करने
पर हो
जाता है।

इस प्रकार की युक्ति को परिवर्तन (Conversion) कहा ही नहीं जा सकता क्योंकि पहले तो निष्कर्ष का गुण दिए हुए तर्क-वाक्य के गुण से भिन्न है, और दूसरे, निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रयवाक्य (premise) का विधेय न होकर उसके विरुद्ध (contradictory) तर्कवाक्य का विधेय है।

टिप्पणी ३ : प्रतिलोम सम्बन्ध द्वारा अनुमान (Inference by Converse Relation)

जब किसी तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय परस्पर सापेक्ष पद हों, तो इस प्रकार का परिवर्तन संभव हो सकता है। यथा—
 राम सीता के पति थे।

∴ सीता राम की पत्नी थी।

इस उदाहरण में 'पति' तथा 'पत्नी' परस्पर सापेक्ष पद (relative terms) हैं। इसमें उद्देश्य और विधेय का

जब उद्देश्य
तथा विधेय
सापेक्ष हों

स्थान परिवर्तन कर दिया गया है और तदनुसार मध्यम-चिह्न भी बदल दिया गया है।

§ ३. प्रतिवर्तन (Obversion)

प्रतिवर्तन
की
परिभाषा

प्रतिवर्तन (Obversion) उस अनन्तरानुमान को कहते हैं, जिसमें दिए हुए तर्कवाक्य के गुण में इस प्रकार अन्तर कर दिया जाता है कि अर्थ वही रहे। दूसरे शब्दों में, प्रतिवर्तन में, स्वीकारात्मक तर्कवाक्य का समानार्थी निषेधात्मक तर्कवाक्य प्राप्त किया जाता है अथवा निषेधात्मक तर्कवाक्य का समानार्थी स्वीकारात्मक तर्कवाक्य प्राप्त किया जाता है।

जिम दिये हुए तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन (Obversion) करना होता है, उसे प्रतिवर्त्य (Obvertend) तथा निष्कर्ष को 'प्रतिवर्तित' (Obverse) कहते हैं।

नियम

प्रतिवर्तन के नियम निम्नलिखित हैं—

- (१) प्रतिवर्त्य तथा प्रतिवर्तित का उद्देश्य समान होता है।
- (२) प्रतिवर्तित का विधेय प्रतिवर्त्य के विधेय का विरुद्ध (contradictory) होता है।
- (३) प्रतिवर्तित का गुण प्रतिवर्त्य के गुण का उलटा होता है। अर्थात् यदि प्रतिवर्त्य स्वीकारात्मक हो तो प्रतिवर्तित निषेधात्मक होता है, तथा यदि प्रतिवर्त्य निषेधात्मक हो तो प्रतिवर्तित स्वीकारात्मक होता है।

(४) प्रतिवर्तित का परिमाण (Quantity) प्रतिवर्त्य के परिमाण के तुल्य होता है। अर्थात् यदि प्रतिवर्त्य सार्वलौकिक (सामान्य) हो, तो प्रतिवर्तित भी सार्वलौकिक (सामान्य) होगा और यदि प्रतिवर्त्य विशेष हो तो प्रतिवर्तित भी विशेष होगा।

(१) 'आ' (A) का प्रतिवर्तन

'आ' : 'ए'

'आ' (A) का प्रतिवर्तन 'ए' (E) होता है। यथा—
प्रतिवर्त्य, 'आ' (A) · सब 'उ' 'वि' है। सब मनुष्य मर्त्य है।

प्रतिवर्तित, 'ए' (E) कोई भी 'उ' अ-'वि' नहीं है। कोई भी मनुष्य अमर्त्य नहीं है।

यहाँ यह बात द्रष्टव्य है कि प्रतिवर्त्य स्वीकारात्मक है तथा प्रतिवर्तित निषेधात्मक है। दिए हुए विधेय का विरुद्ध (contradictory) पद निष्कर्ष का विधेय बना है तथा उद्देश्य वही है और गुण में भी भेद नहीं हुआ है।

(२) 'ए' (E) का प्रतिवर्तन .

'ए' (E) का प्रतिवर्तन 'आ' (A) है।

'ए' : 'आ'

प्रतिवर्त्य 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है। कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।

प्रतिवर्तित 'आ' सब 'उ' अ-'वि' है। सब मनुष्य अपूर्ण है।

(३) 'ई' (I) का प्रतिवर्तन :

'ई' (I) का प्रतिवर्तन 'ओ' (O) होता है। यथा—

'ई' : 'ओ'

प्रतिवर्त्य 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। कुछ मनुष्य योग्य है।

प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ 'उ' अ-'वि' नहीं है। कुछ मनुष्य अ-योग्य नहीं है।

(४) 'ओ' (O) का प्रतिवर्तन .

'ओ' (O) का प्रतिवर्तन 'ई' (I) होता है। यथा—

'ओ' : 'ई'

प्रतिवर्त्य 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। कुछ मनुष्य चतुर नहीं है।

प्रतिवर्तित 'ई' कुछ 'उ' अ-'वि' है। कुछ मनुष्य अ-चतुर है।

साराण में, प्रतिवर्तन से, 'आ' (A) से 'ए' (E), 'ए' (E) से 'आ' (A); 'ई' (I) से 'ओ' (O) तथा 'ओ' (O) से 'ई' (I) निष्कर्ष प्राप्त होता है।

टिप्पणी भौतिक प्रतिवर्तन (Material Obversion)

बेन (Bain) का विचार है कि उपर्युक्त आकारगत भौतिक प्रतिवर्तन की क्रियाओं के अतिरिक्त 'ऐसा प्रतिवर्तन भी होता प्रतिवर्तन

आकारगत
क्रिया नहीं
है, वरन् अनु-
भवजन्य है।

है, जिसे तर्कवाक्यों की विषयवस्तु (Matter) का परीक्षण करने के बाद ही समझा जा सकता है।' यथा—

- (१) गरमाहट अच्छी है।
∴ ठंडक बुरी है।
- (२) युद्ध से बुराई बढ़ती है।
∴ शान्ति से भलाई बढ़ती है।
- (३) ज्ञान अच्छा होता है।
अज्ञान बुरा होता है।
- (४) प्रसन्न व्यक्तियों का हृदय सुखदायी होता है।
∴ अप्रसन्न व्यक्तियों का हृदय दुःखदायी है।

स्वयं बेन (Bain) ही इस बात को मानता है कि इस प्रकार का प्रतिवर्तन आकारगत प्रतिवर्तन से पूर्णरूपेण भिन्न है। इसमें प्रतिवर्तन के किसी भी नियम का पालन नहीं किया गया है। प्रतिवर्तन में प्रतिवर्त्य तथा प्रतिवर्तित का उद्देश्य समान होना चाहिए परन्तु इसमें वह विपरीत (contrary) है। प्रतिवर्तन में दिए हुए तर्कवाक्य के विधेय का विरुद्ध (contradictory) निष्कर्ष का विधेय बनता है, परन्तु यहाँ दोनों विधेय परस्पर विपरीत (contrary) है, विरुद्ध (contradictory) नहीं। प्रतिवर्तन में, प्रतिवर्तित का गुण दिए हुए तर्कवाक्य के गुण का उलटा होता है परन्तु यहाँ दोनों का गुण समान है। अतः इस प्रकार का अनुमान आकारगत अनुमान न होकर वस्तुगत अनुमान है जो कि हमारे अनुभव और ज्ञान पर आधारित है, अतः वह निगमनमूलक तर्कशास्त्र का पाठ्यविषय नहीं हो सकता।

§४. परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition)

परिवर्तित-
प्रतिवर्तन की
परिभाषा

परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) उस अनन्तरा-
नुमान को कहते हैं, जिसमें दिए हुए तर्कवाक्य से निष्कर्ष के

रूप में एक ऐसा तर्कवाक्य प्राप्त करते हैं, जिसका उद्देश्य दिए हुए विधेय का विरुद्ध (contradictory) हो।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) के नियम नियम निम्नलिखित हैं—

(१) निष्कर्ष का उद्देश्य दिये हुए तर्कवाक्य के विधेय का विरुद्ध होता है।

(२) निष्कर्ष का विधेय दिये हुए तर्कवाक्य का उद्देश्य होता है।

(३) गुण बदल जाता है। अर्थात् यदि दिया हुआ तर्कवाक्य स्वीकारात्मक है, तो निष्कर्ष निषेधात्मक होता है, और यदि दिया हुआ तर्कवाक्य निषेधात्मक है तो निष्कर्ष स्वीकारात्मक होता है।

(४) कोई भी पद, जो दिए हुए तर्कवाक्य में व्याप्त न हो, निष्कर्ष में भी व्याप्त नहीं हो सकता। जब इस प्रकार की अनियमित व्याप्ति नहीं होती, तो निष्कर्ष का परिमाण वही होता है जो दिए हुए तर्कवाक्य का परिमाण होता है। परन्तु जब ऐसी अनियमित व्याप्ति की संभावना होती है, तो ऐसा भी हो जाता है कि आश्रय वाक्य के सार्वलौकिक होने पर भी निष्कर्ष विशेष हो जाता है।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का एक मिश्र-रूप है जिसमें परिवर्तन और प्रतिवर्तन दोनों की ही क्रियाएँ सम्मिलित हैं। परिवर्तित-प्रतिवर्तन का सुगम नियम यह है

‘पहले प्रतिवर्तन करो फिर परिवर्तन।’

(First obvert, then convert)

पहले प्रतिवर्तन फिर परिवर्तन

(१) ‘आ’ (A) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन .

यदि ‘आ’ (A) तर्कवाक्य का परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) किया जाय तो पहले प्रतिवर्तन (Obversion)

‘आ’ : ‘ए’

करने से 'ए' (E) आयेगा। फिर 'ए' (E) का परिवर्तन (Conversion) करने से 'आ' (A) आयेगा। अतः 'आ' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन 'ए' (E) होता है। यथा—

- 'आ' सब 'उ' 'वि' है। (१)
 ∴ प्रतिवर्तित 'ए' कोई भी 'उ' अ-'वि' नहीं है। (२)
 ∴ (२) का परिवर्तित 'ए' कोई भी अ-'वि' 'उ' नहीं है। (३)
 (१) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

(२) 'ए' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

'ए' : 'ई'

'ए' (E) का प्रतिवर्तन करने पर 'आ' (A) आता है तथा 'आ' (A) का परिवर्तन होने पर 'ई' (I) होता है। अतः 'ए' (E) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन 'ई' (I) होता है। यथा—

- 'ए' कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है। (१)
 ∴ प्रतिवर्तित 'आ' सब 'उ' अ-'वि' है। (२)
 ∴ (२) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है। (३)
 (१) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

इसमें दिया हुआ तर्कवाक्य सार्वलौकिक है परन्तु उसका परिवर्तित प्रतिवर्तन विशेष है क्योंकि यदि हम निष्कर्ष सार्वलौकिक निकालें तो उद्देश्य अ-'वि' व्याप्त करना होगा, परन्तु वह आश्रय (२) में व्याप्त नहीं है।

(३) 'ई' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

'ई' का
नहीं होता

'ई' (I) तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन करने पर 'ओ' (O) आता है, परन्तु 'ओ'-तर्कवाक्य का परिवर्तन नहीं हो सकता। अतः 'ई' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन नहीं होता।

(४) 'ओ' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

'ओ' का 'ई'

'ओ' (O) तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन करने पर 'ई' (I) तर्कवाक्य आता है, उसका पुनः परिवर्तन करने पर 'ई' होता है। अतः 'ओ' का परिवर्तित-प्रतिवर्तन 'ई' होता है। यथा—

- 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। (१)
 ∴ प्रतिवर्तित 'ई' कुछ 'उ' अ-'वि' है। (२)
 ∴ (२) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है। (३)
 (१) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन।

सारंश—परिवर्तित-प्रतिवर्तन करने से, 'आ' (A) से 'ए' (E); 'ए' (E) से 'ई' (I); 'ओ' (O) से 'ई' (I) निष्कर्ष प्राप्त होता है परन्तु 'ई' (I) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन नहीं होता।

टिप्पणी १ : परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का मिश्र-रूप है।

किसी तर्कवाक्य का परिवर्तित-प्रतिवर्तन उसे पहले प्रतिवर्तित करने तथा फिर परिवर्तित करने पर प्राप्त होता है। अब हम यह देखेंगे कि क्या ऊपर लिखे परिवर्तित-प्रतिवर्तन के नियमों से तुरन्त निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं ?

पहले हम 'आ' और 'ओ' तर्कवाक्यों को लेंगे।

- (१) 'आ' सब 'उ' 'वि' है।
 ∴ 'ए' कोई भी अ-'वि' 'उ' नहीं है। }
 (२) 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है।
 ∴ 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है। }

इन दोनों दशाओं में हम परिवर्तित-प्रतिवर्तन के नियमों के अनुसार तुरन्त निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं। इस प्रकार, (१) निष्कर्ष का उद्देश्य दिए हुए विधेय का विरुद्ध है, (२) निष्कर्ष का विधेय दिए हुए तर्कवाक्य का उद्देश्य है, (३) गुण उल्टा है तथा (४) कोई पद निष्कर्ष में तब तक व्याप्त नहीं है जब तक कि वह आश्रय में व्याप्त न हो। यह बात द्रष्टव्य है कि 'आ' (A) का परिवर्तित-प्रतिवर्तन करने पर निष्कर्ष का उद्देश्य (अ-'वि') व्याप्त है। परन्तु यह पद दिये हुए तर्कवाक्य में ही नहीं, अतः उसके निष्कर्ष में व्याप्त होने की बात को हम अपवाद (exception) मान सकते हैं।

अब 'ए' (E) तर्कवाक्य को देखिए। परिवर्तित-प्रतिवर्तन

परिवर्तित-प्रतिवर्तन अनन्तरानुमान का एक मिश्र-रूप है जिसमें निष्कर्ष पहले प्रतिवर्तित तथा फिर परिवर्तित का परिवर्तन करने से प्राप्त होता है।

के नियमों का उपयोग करने से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

‘ए’ (E) · कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है।
 ∴ ‘आ’ (A) · सब अ-‘वि’ ‘उ’ है।

निष्कर्ष पर ‘अ-वि’ व्याप्त है। परन्तु यह पद दिए हुए तर्कवाक्य में नहीं है, अतः इसे अनियमित व्याप्ति नहीं कहते। परन्तु यह निष्कर्ष वैध नहीं है जैसा कि दिए हुए तर्कवाक्य को पहले प्रतिवर्तित करके फिर परिवर्तित करने में पर जात होगा।

‘ए’ (E) · कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है। (१)
 ∴ प्रतिवर्तित · ‘आ’ (A) · सब ‘उ’ अ-‘वि’ है। (२)
 ∴ (२) का परिवर्तित · ‘ई’ (I) · कुछ अ-‘वि’ ‘उ’ है। (३)

यह स्पष्ट है कि यदि हम “सब अ-‘वि’ ‘उ’ है” निष्कर्ष मान लें तो ऐसा करने से अनियमित व्याप्ति हो जायेगी, जैसा कि परिवर्तन के नियम से पता चलेगा। अतः ‘ए’ (E) तर्कवाक्य में शुद्ध निष्कर्ष नियमों के उपयोग से तुरन्त प्राप्त नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि प्रतिवर्तित-परिवर्तन अनन्तरानुमान का शुद्ध सरल रूप न होकर एक मिश्र-रूप है, जिसमें शुद्ध निष्कर्ष तभी प्राप्त हो सकता है जब पहले हम दिए हुए तर्कवाक्य को प्रतिवर्तित करें और तब उसे परिवर्तित करें।

टिप्पणी २ : परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contrapositive)
 प्रतिवर्तित-परिवर्तन (Obverted Converse)
 से भिन्न है।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contrapositive) प्रतिवर्तित-परिवर्तन (Obverted Converse) से भिन्न है। परिवर्तित-प्रतिवर्तन में हम पहले प्रतिवर्तन करते हैं, फिर उसका परिवर्तन करते हैं। परन्तु प्रतिवर्तित-परिवर्तन में हम पहले

परिवर्तन करते हैं, फिर उसका प्रतिवर्तन करते हैं। यथा—

‘आ’ · सब ‘उ’ ‘वि’ है। . (१)

∴ (१) का परिवर्तित . ‘ई’ कुछ ‘वि’ ‘उ’ है। . (१)

(२) का प्रतिवर्तित : ‘ओ’ कुछ ‘वि’ अ-‘उ’ नहीं है। (३)

(१) का प्रतिवर्तित-परिवर्तन (Obverted
Converse)

उसी तर्कवाक्य का परिवर्तित-परिवर्तन (Contraposition)

यह होता :—“कोई भी अ-‘वि’ ‘उ’ है।”

§५. विपर्यय (Inversion)

विपर्यय उस अनन्तरानुमान को कहते हैं जिसमें एक दिए विपर्यय हुए तर्कवाक्य से ऐसा तर्कवाक्य निष्कर्ष में प्राप्त करते हैं जिसका उद्देश्य दिए हुए उद्देश्य का विरुद्ध हो।

जिस तर्कवाक्य का विपर्यय किया जाता है, उसे विपर्यय (Invertend) और जो निष्कर्ष उससे फलित होता है, उसे विपर्यस्त (Inverse) कहते हैं।

विपर्यय दो प्रकार का होता है—पूर्ण (Complete) पूर्ण तथा तथा आंशिक (Partial)। इन दोनों में यह अन्तर है कि पूर्ण आंशिक विपर्यय में विपर्यस्त का विधेय दिए हुए विधेय का विरुद्ध होता है। और आंशिक विपर्यय में विपर्यस्त का विधेय दिये हुए विधेय के समान होता है। विपर्यय

विपर्यय में निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है—

(१) विपर्यस्त का उद्देश्य विपर्यय के उद्देश्य का विरुद्ध होता है। विपर्यय के नियम

(२) आंशिक विपर्यय में दोनों विधेय समान होते हैं, परन्तु पूर्ण विपर्यय में विपर्यस्त का विधेय विपर्यय के विधेय का विरुद्ध होता है।

(३) विपर्यय का परिमाण सार्वलौकिक (Universal) होता है। और विपर्यस्त का परिमाण विशेष (Particular) होता है। अतः केवल सार्वलौकिक तर्कवाक्यों का ही विपर्यय हो सकता है।

(४) पूर्ण विपर्यय में, दोनों का गुण समान होता है ।
परन्तु आशिक विपर्यय में दोनों का गुण भिन्न होता है ।

विपर्यस्त
कैसे प्राप्त
करें ?

विपर्यय भी परिवर्तन-प्रतिवर्तन की भाँति अगन्तगन्तमान का एक मिश्र-रूप है जिसमें प्रतिवर्तन तथा परिवर्तन की क्रियाएँ सम्मिलित हैं । परिवर्तित प्रतिवर्तन में हम पहले प्रतिवर्तन करते हैं, तब परिवर्तन करते हैं । परन्तु विपर्यय में ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है । विपर्यय में हमारा ध्येय ऐसा नाशाय प्राप्त करना है जिसका उद्देश्य दिये हुए उद्देश्य का विरुद्ध हो, उस ध्येय में हम प्रतिवर्तन तथा परिवर्तन की क्रिया तब तक करते रहते हैं जब तक कि वाछित निष्कर्ष नहीं निकल जाता । यदि प्रतिवर्तन में प्रारम्भ करने पर हमारी प्रगति रुक जाती है तो उस क्रिया को छोड़ देते हैं और परिवर्तन की क्रिया में प्रारम्भ करने लगते हैं । यथा—

[१] 'आ' (A) का विपर्यय ।

विपर्यय 'आ' : सब 'उ' 'वि' है । ... (१)

(१) 'आ' : ∴ (१) का प्रतिवर्तित 'ए' कोई भी 'उ' अ-वि नहीं है । (२)

'ई' (पूर्ण) ∴ (२) का परिवर्तित 'ए' : कोई भी अ-वि 'उ' नहीं है । (३)

: 'ओ' ∴ (३) का प्रतिवर्तित 'आ' सब अ-वि अ-उ है । ... (४)

(आंशिक) ∴ (४) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-उ अ-वि है । ... (५)

(पूर्ण विपर्यस्त ।)

∴ (५) का प्रतिवर्तित 'ओ' : कुछ अ-उ 'वि' नहीं है । (६)

(आशिक विपर्यस्त ।)

यदि हमने परिवर्तन से प्रारम्भ किया होता, तो हमारी प्रगति विपर्यस्त तक पहुँचने से बहुत पहले ही रुक गई होती । अतः हमने प्रतिवर्तन से प्रारम्भ किया । अतः 'आ' का निष्कर्ष पूर्ण विपर्यय के बाद 'ई' तथा आंशिक विपर्यय के बाद 'ओ' होता है । यह बात द्रष्टव्य है कि आशिक विपर्यस्त में 'वि' व्याप्त है, यद्यपि वह विपर्यय में व्याप्त नहीं है । परन्तु परिवर्तन और प्रतिवर्तन की क्रियाओं में कोई त्रुटि न होने के कारण हमारा निष्कर्ष शुद्ध है ।

(२) 'ए' : [२] 'ए' (E) का विपर्यय ।

'ओ' (पूर्ण) विपर्यय 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है । (१)

: 'ई' ∴ (१) का परिवर्तित 'ए' : कोई भी 'वि' 'उ' नहीं है । (२)

(आंशिक) ∴ (२) का प्रतिवर्तित : 'आ' : सब 'वि' अ-उ है । ... (३)

∴ (३) का परिवर्तित : 'ई' कुछ अ-'उ' 'वि' है। ... (४)
(आशिक विपर्यस्त ।)

∴ (४) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ अ-'उ' अ-'वि' नहीं है। (५)
(पूर्ण विपर्यस्त ।)

अतः 'ए' (E) का निष्कर्ष पूर्ण विपर्यय के बाद 'ओ' (O)
तथा आशिक-विपर्यय के बाद 'ई' (I) होता है। यदि हम परिवर्तन
से प्रारम्भ न करके प्रतिवर्तन से प्रारम्भ करते तो विपर्यस्त पर नहीं
पहुँच पाते ।

[३] 'ई' (I) का विपर्यय ।

पहले हम प्रतिवर्तन से प्रारम्भ करेंगे ।

विपर्यय 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। (१)

∴ (१) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ 'उ' 'अ-वि' नहीं है।... (२)

अब इसका परिवर्तन नहीं हो सकता ।

अतः हम परिवर्तन से प्रारम्भ करेंगे ।

विपर्यय : 'ई' कुछ 'ई' 'वि' है। (१)

∴ (१) का परिवर्तित 'ई' कुछ 'वि' 'उ' है। (२)

∴ (२) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ 'वि' अ-'उ' नहीं है। (३)

इसका परिवर्तन नहीं हो सकता ।

अतः हम किसी भी विधि से विपर्यस्त पर नहीं पहुँच सकते ।

अतः 'ई' (I) का विपर्यय नहीं हो सकता ।

[४] 'ओ' (O) का विपर्यय ।

पहले हम प्रतिवर्तन से प्रारम्भ करेंगे ।

विपर्यय 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। ... (१)

∴ (१) का प्रतिवर्तित 'ई' कुछ 'उ' अ-'वि' है। ... (२)

∴ (२) का परिवर्तित 'ई' कुछ अ-'वि' 'उ' है। ... (३)

∴ (३) का प्रतिवर्तित 'ओ' कुछ अ-'वि' अ-'उ' नहीं है। (४)

अब इसका परिवर्तन नहीं हो सकता ।

अतः हम परिवर्तन से प्रारम्भ करेंगे ।

विपर्यय 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है ।

इसका परिवर्तन नहीं हो सकता ।

अतः किसी भी दशा में विपर्यस्त प्राप्त नहीं होता । अतः

'ओ' तर्कवाक्य का विपर्यय नहीं हो सकता ।

(३) 'ई' का
विपर्यय नहीं
होता

(४) 'ओ'
का विपर्यय
नहीं होता

सारांश—पूर्ण विपर्यय में, 'आ' (A) से 'ई' (I) और 'ए' (E) से 'ओ' (O) प्राप्त होता है ; आंगिक विपर्यय में 'आ' (A) से 'ओ' (O) तथा 'ए' (E) से 'ई' (I) प्राप्त होता है । परन्तु 'ई' (I) तथा 'ओ' (O) तर्कवाक्यों का विपर्यय नहीं होता ।

टिप्पणी—अनन्तरानुमान के मुख्य रूपों की तुलनात्मक तालिका ।

	परिवर्तन	प्रतिवर्तन	परिवर्तित- प्रतिवर्तन	आंगिक विपर्यय	पूर्ण विपर्यय
निष्कर्ष का उद्देश्य	=आश्रय का विधेय	=आश्रय का उद्देश्य	=आश्रय के विधेय का विरुद्ध	=आश्रय के उद्देश्य का विरुद्ध	=आश्रय के उद्देश्य का विरुद्ध
निष्कर्ष का विधेय	=आश्रय का उद्देश्य	=आश्रय के विधेय का विरुद्ध	=आश्रय का उद्देश्य	=आश्रय का विधेय	=आश्रय के विधेय का विरुद्ध
निष्कर्ष का परिमाण	'ए' तथा 'ई' में समान । 'आ' में भिन्न । 'ओ' में कोई निष्कर्ष नहीं ।	समान	आ' तथा 'ओ' में समान । 'ए' में भिन्न । 'ई' में कोई निष्कर्ष नहीं ।	विपर्यय— सार्व- लौकिक, विपर्यस्त— विशेष ।	विपर्यय— सार्व- लौकिक; विपर्यस्त —विशेष ।
निष्कर्ष का गुण	समान	विरोधी	विरोधी	विरोधी	समान

इस तालिका से विदित होता है कि चारों प्रकार के अनन्तरानुमानों की तुलना निम्नांकित चार दृष्टिकोणों से की जा सकती है—

(१) निष्कर्ष का उद्देश्य ।

परिवर्तन (Conversion) में, निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय का विधेय होता है। प्रतिवर्तन (Obversion) में निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय के उद्देश्य के समान होता है, परिवर्तित-प्रतिवर्तन में, निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय के विधेय का विरुद्ध होता है, और विपर्यय (Inversion) में निष्कर्ष का उद्देश्य आश्रय के उद्देश्य का विरुद्ध है।

(२) निष्कर्ष का विधेय ।

परिवर्तन में, निष्कर्ष का विधेय आश्रय का उद्देश्य होता है। प्रतिवर्तन में, निष्कर्ष का विधेय आश्रय के विधेय का विरुद्ध होता है, परिवर्तित-प्रतिवर्तन में, निष्कर्ष का विधेय आश्रय का उद्देश्य होता है और पूर्ण विपर्यय में, निष्कर्ष का विधेय आश्रय के विधेय का विरुद्ध होता है तथा आंशिक विपर्यय में निष्कर्ष का विधेय आश्रय के विधेय के समान होता है।

(३) निष्कर्ष का परिमाण ।

परिवर्तन में, 'ए' (E) तथा 'ई' (I) में, निष्कर्ष का परिमाण आश्रय के परिमाण के तुल्य होता है, और 'आ' (A) में निष्कर्ष विशेष होता है, जब कि आश्रय सार्वलौकिक होता है। अतः परिमाण कभी तो समान होता है, और कभी भिन्न होता है।

प्रतिवर्तन में, निष्कर्ष का परिमाण आश्रय के परिमाण के समान होता है।

परिवर्तित-प्रतिवर्तन में, 'आ' (A) तथा 'ओ' (O) में निष्कर्ष का परिमाण समान होता है परन्तु 'ए' (E) में निष्कर्ष विशेष होता है, जब कि आश्रय सार्वलौकिक होता है। अतः परिमाण कभी तो समान होता है और कभी भिन्न होता है।

विपर्यय में, निष्कर्ष का परिमाण सर्वदा विशेष होता है तथा आश्रय का परिमाण सर्वदा सार्वलौकिक होता है। अतः निष्कर्ष का परिमाण आश्रय के परिमाण से सर्वदा भिन्न होता है।

(४) निष्कर्ष का गुण।

परिवर्तन में, निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण के समान होता है, प्रतिवर्तन में तथा परिवर्तित-प्रतिवर्तन में निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण का विरोधी होता है, पूर्ण विपर्यय में निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण के समान होता है, और आश्रित विपर्यय में निष्कर्ष का गुण आश्रय के गुण का विरोधी होता है।

निम्नलिखित तालिका से ये समस्त परिणाम एक ही दृष्टि में ज्ञात हो जाते हैं।

दिया हुआ तर्कवाक्य	परिवर्तन	प्रतिवर्तन	परिवर्तित- प्रतिवर्तन	पूर्ण विपर्यय	आश्रित विपर्यय
'आ'	'इ'	'ए'	'न'	'उ'	'ओ'
'ए'	'ए'	'आ'	'इ'	'अं'	'इ'
'इ'	'इ'	'ओ'	—	—	—
'ओ'	—	'इ'	'इ'	—	—

अनन्तरा-
नुमान के
रूप में
'विरोध'

§६. विरोध (Opposition)

'विरोध' शब्द का उपयोग दो तर्कवाक्यों के एक विशेष प्रकार के सम्बन्ध के लिए तथा अनन्तरानुमान के एक प्रकार के लिये भी होता है। पहले अर्थ में विरोध के चार भेद हैं, यथा—उपाश्रितता (Subalternation), विरुद्धता (Contradictory Opposition), वैपरीत्य (Contrary Opposition) तथा अनुवैपरीत्य (Sub-contrary Opposition)। 'विरोध' को जब अनन्तरानुमान के एक रूप के अर्थ में मानते हैं तो उससे यह आशय होता है कि किसी तर्कवाक्य से एक

अन्य तर्कवाक्य, उपर्युक्त चार प्रकार के सम्बन्धों में से किसी एक के अनुसार, प्राप्त किया जाता है। अब हम इन चारों प्रकारों का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे।

(१) उपाश्रितता (Subalternation):

उपाश्रितता दो तर्कवाक्यों के उस सम्बन्ध को कहते हैं, जिनके उद्देश्य समान होते हैं तथा विधेय भी समान होते हैं परन्तु जिनमें परिमाण (quantity) का भेद होता है। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा 'ई' (I), एव 'ए' (E) तथा 'ओ' (O) का पारस्परिक सम्बन्ध है। उपाश्रितता के अनुमान के नियम निम्नलिखित हैं

उपाश्रितता

नियम (१) : सार्वलौकिक के सत्य में सगत विशेष का सत्य निहित रहता है; परन्तु इस बात का विलोम शुद्ध नहीं होता।

नियम (२) : विशेष के असत्य में सगत सार्वलौकिक का सत्य निहित रहता है; परन्तु इस बात का विलोम शुद्ध नहीं होता।

नियम (१) :—यदि सार्वलौकिक सत्य है, तो उसका सगत विशेष भी सत्य होगा। यदि 'आ' (A) सत्य है, तो 'ई' (I) भी सत्य होगा; यदि 'ए' (E) सत्य है, तो 'ओ' (O) भी सत्य होगा। यदि यह तर्कवाक्य—'सब मनुष्य मर्त्य हैं' सत्य है, तो यह तर्कवाक्य—'कुछ मनुष्य मर्त्य हैं' भी सत्य होगा। इसी प्रकार यदि 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है' सत्य है, तो 'कुछ मनुष्य पूर्ण नहीं है' भी सत्य होगा।

(१) यदि सार्वलौकिक सत्य है तो विशेष भी सत्य है, परन्तु

परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। यदि विशेष तर्कवाक्य सत्य हो तो सगत सार्वलौकिक सन्देहात्मक होता है अर्थात् कभी तो सत्य होता है और कभी असत्य होता है। उदाहरणार्थ, 'कुछ मनुष्य मर्त्य हैं'—यह तर्कवाक्य सत्य है और उसका सगत सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' भी सत्य है। परन्तु विशेष तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर हैं' तो सत्य है, परन्तु

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य चतुर है' असत्य है। अतः जब विशेष सत्य होता है, तो सार्वलौकिक सन्देहात्मक होता है।

(२) यदि विशेष असत्य है, तो सार्वलौकिक असत्य है परन्तु

नियम (२) — यदि विशेष असत्य है, तो सार्वलौकिक भी असत्य होगा। यदि 'ई' (I) असत्य है, तो 'आ' (A) भी असत्य होगा और यदि 'ओ' (O) असत्य है तो 'ए' (E) भी असत्य होगा। यदि तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य पूर्ण है' असत्य है, तो सगत सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण है' अवश्य ही असत्य होगा। यदि तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य नहीं है' असत्य है, तो सगत सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य मर्त्य नहीं है' अवश्य ही असत्य होगा।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। अर्थात् यदि सार्वलौकिक असत्य है, तो हम सगत विशेष के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। अर्थात् विशेष असत्य भी हो सकता है तथा सत्य भी। उदाहरणार्थ, सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण है' असत्य है और साथ ही उसका सगत विशेष तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य पूर्ण है' भी असत्य है। परन्तु सार्वलौकिक तर्कवाक्य 'सब मनुष्य चतुर है' तो असत्य है, परन्तु सगत विशेष तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर है' सत्य है। अतः जब सार्वलौकिक असत्य होता है तो विशेष सन्देहात्मक होता है।

सारांश. यदि 'आ' (A) सत्य है, तो 'ई' (I) सत्य है और यदि 'ए' (E) सत्य है, तो 'ओ' (O) सत्य है। परन्तु यदि 'ई' (I) सत्य है, तो 'आ' (A) सन्देहात्मक है और यदि 'ओ' (O) सत्य है, तो 'ए' (E) सन्देहात्मक होता है। फिर, यदि 'ई' (I) असत्य है, तो 'आ' असत्य है; यदि 'ओ' (O) असत्य है, तो 'ए' (E) असत्य है, परन्तु यदि 'आ' (A) असत्य है, तो 'ई' (I) सन्देहात्मक है और यदि 'ए' (E) असत्य है, तो 'ओ' सन्देहात्मक है।

(२) वैपरीत्य (Contrary Opposition) .

वैपरीत्य ऐसे दो सार्वलौकिक तर्कवाक्यों का पारस्परिक सम्बन्ध होता है, जिनके उद्देश्य भी समान होते हैं तथा विधेय भी समान होते हैं परन्तु जिनके गुण (quality) में अन्तर होता है। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा 'ए' (E) तर्कवाक्यों का सम्बन्ध होता है। वैपरीत्य द्वारा अनुमान का नियम निम्नलिखित है

नियम :—एक के सत्य में दूसरे का असत्य निहित रहता है; परन्तु इसका विलोम शुद्ध नहीं होता।

यदि 'आ' (A) सत्य है, तो 'ए' (E) असत्य है, यदि 'ए' (E) सत्य है, तो 'आ' (A) असत्य है। यदि 'आ' तर्कवाक्य 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' सत्य है, तो सगत 'ए' (E) तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य मर्त्य नहीं है' असत्य है। इसी प्रकार, यदि 'ए' (E) तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है' सत्य है तो सगत 'आ' (A) तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण हैं' असत्य है।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। एक की असत्यता में दूसरे की सत्यता निहित नहीं होती। उम प्रकार 'आ'-तर्कवाक्य 'सब मनुष्य चतुर हैं' असत्य है और सगत 'ए' (E) तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य चतुर नहीं है' भी असत्य है। परन्तु 'आ' तर्कवाक्य 'सब मनुष्य पूर्ण हैं' असत्य है और सगत 'ए' तर्कवाक्य 'कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है' सत्य है। अतः यदि 'आ' (A) असत्य है, तो 'ए' (E) सन्देहात्मक है। इसी प्रकार यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि 'ए' (E) असत्य है, तो 'आ' (A) सन्देहात्मक होता है।

सारांश—यदि 'आ' सत्य है, तो 'ए' असत्य है, और यदि 'ए' सत्य है, तो 'आ' असत्य है। परन्तु यदि 'आ' अनन्य है, तो 'ए' सन्देहात्मक है और यदि 'ए' अनन्य है तो 'आ' सन्देहात्मक है।

वैपरीत्य

नियम यदि एक सत्य है तो दूसरा असत्य है, परन्तु

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

(३) अनुवैपरीत्य (Sub-contrary Opposition):

अनुवैपरीत्य

अनुवैपरीत्य ऐसे दो विशेष तर्कवाक्यों का पारस्परिक सम्बन्ध है जिनका उद्देश्य समान होता है, तथा विधेय भी समान होता है, परन्तु जिनके गुण (quality) में भेद होता है। अर्थात् यह 'ई' (I) तथा 'ओ' (O) का पारस्परिक सम्बन्ध है। अनुवैपरीत्य द्वारा अनुमान का नियम निम्नलिखित है।

नियम: यदि
एक असत्य
है, तो दूसरा
सत्य है,
परन्तु

एक की असत्यता में दूसरे का सत्य निहित रहता है। परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

यदि 'ई' (I) असत्य है, तो 'ओ' (O) सत्य है, और यदि 'ओ' (O) असत्य है, तो 'ई' (I) सत्य है। यदि 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य पूर्ण हैं' असत्य है, तो 'कुछ मनुष्य पूर्ण नहीं हैं' सत्य होगा। यदि 'ओ' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य नहीं हैं' असत्य है, तो सगत 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य हैं' सत्य होगा।

इस नियम
का विलोम
शुद्ध नहीं
होता।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। अर्थात् एक के सत्य में दूसरे का असत्य निहित नहीं होता। इस प्रकार, 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर हैं' सत्य है और साथ ही सगत 'ओ' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य चतुर नहीं हैं' भी सत्य है। परन्तु 'ई' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य हैं' तो सत्य है परन्तु सगत 'ओ' तर्कवाक्य 'कुछ मनुष्य मर्त्य नहीं हैं' असत्य है। अतः यदि 'ई' सत्य है तो 'ओ' सन्देहात्मक होता है। इसी प्रकार यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि यदि 'ओ' सत्य है, तो 'ई' सन्देहात्मक होता है।

सारांश—यदि 'ई' असत्य है, तो 'ओ' सत्य है, और यदि 'ओ' असत्य है, तो 'ई' सत्य है। परन्तु यदि 'ई' सत्य है, तो 'ओ' सन्देहात्मक है और यदि 'ओ' सत्य है, तो 'ई' सन्देहात्मक है।

(४) विरुद्धता (Contradictory Opposition)

विरुद्धता दो ऐसे तर्कवाक्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को कहते हैं जिनका उद्देश्य समान हो तथा विधेय भी समान हो परन्तु जिनमें गुण तथा परिभाषण दोनों का अन्तर हो। अर्थात् यह 'आ' (A) तथा 'ओ' (O) एवं 'ए' (E) तथा 'ई' (I) का सम्बन्ध है। वैपरीत्य द्वारा अनुमान का नियम निम्नलिखित है—

नियम :—एक के सत्य से दूसरे का असत्य निहित रहता है, तथा एक के असत्य से दूसरे का सत्य निहित रहता है।

इस नियम से ज्ञात होता है कि दो विरुद्ध तर्कवाक्यों में से यदि एक सत्य है, तो दूसरा असत्य होता है और यदि एक असत्य होता है तो दूसरा सत्य होता है। दोनों सत्य नहीं हो सकते और न दोनों असत्य ही हो सकते हैं। उनमें से एक सत्य होना चाहिए और एक असत्य। विरोधवाधक नियम (Law of Contradiction) के अनुसार, दो विरुद्ध तर्कवाक्यों में से एक असत्य होना चाहिए। और निर्मध्यम नियम (Law of Excluded Middle) के अनुसार दोनों में से एक तर्कवाक्य सत्य होना चाहिए। अतः विरुद्धता में विरोध-सम्बन्ध पारस्परिक होता है। एक विरोधी से दूसरे का अनुमान लगाया जा सकता है। दोनों में सत्य एवं असत्य दोनों की दृष्टि से विरोध होता है। अतः विरुद्धता तार्किक-विरोध का पूर्ण आकार है।

अतः विरुद्धता में, निम्नलिखित परिणाम निकल सकते हैं—

- यदि 'आ' सत्य है तो 'ओ' असत्य है।
- यदि 'आ' असत्य है तो 'ओ' सत्य है।
- यदि 'ओ' सत्य है तो 'आ' असत्य है।
- यदि 'ओ' असत्य है तो 'आ' सत्य है।
- यदि 'ए' सत्य है तो 'ई' असत्य है।
- यदि 'ए' असत्य है, तो 'ई' सत्य है।

विरुद्धता

विरुद्धता
विरोध का
पूर्ण आकार
है।

यदि एक
सत्य है तो
दूसरा असत्य
है और यदि
एक असत्य
है तो दूसरा
सत्य है।

यदि 'ई' सत्य है, तो 'ए' असत्य है ।

यदि 'ई' असत्य है, तो 'ए' सत्य है ।

निम्नलिखित तालिका से उपर्युक्त सभी परिणाम एक ही दृष्टि में ज्ञात हो जाते हैं—

दिया है		'आ'	'ए'	'ई'	'ओ'
१	'आ' सत्य	—	असत्य	सत्य	असत्य
२	'आ' असत्य	—	संदेहात्मक	संदेहात्मक	सत्य
३	'ए' सत्य	असत्य	—	असत्य	सत्य
४	'ए' असत्य	संदेहात्मक	—	सत्य	संदेहात्मक
५	'ई' सत्य	संदेहात्मक	असत्य	—	संदेहात्मक
६	'ई' असत्य	असत्य	सत्य	—	सत्य
७	'ओ' सत्य	असत्य	संदेहात्मक	संदेहात्मक	—
८	'ओ' असत्य	सत्य	असत्य	सत्य	—

§७ विध्याश्रित अनुमान (Modal Consequence)

विध्याश्रित
अनुमान

विधि (Modality) के अनुसार तर्कवाक्य आवश्यक (Necessary), प्रतिज्ञात (Assertory) तथा संदिग्ध (Problematic) में बाँटे जाते हैं । विध्याश्रित अनुमान उसे कहते हैं जिसमें किसी विधि के तर्कवाक्य से अन्य विधि का तर्कवाक्य प्राप्त करते हैं । इस प्रकार के अनुमान के नियम निम्नलिखित हैं—
नियम १ : अधिक संभावना के तर्कवाक्य में कम संभावना के

तर्कवाक्य का सत्य निहित रहता है, परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

यदि आवश्यक तर्कवाक्य सत्य है, तो सगत प्रतिज्ञात तथा सदिग्ध तर्कवाक्य भी सत्य होंगे। यथा—यदि यह तर्कवाक्य कि “‘क’ अवश्य ‘ख’ होगा” सत्य है तो ये तर्कवाक्य कि “‘क’ ‘ख’ है” तथा “‘क’ ‘ख’ हो सकता है” भी अवश्य ही सत्य होंगे। इसी प्रकार यदि प्रतिज्ञात तर्कवाक्य सत्य है, तो सगत—सदिग्ध तर्कवाक्य भी सत्य होगा। यदि “‘क’ ‘ख’ है” सत्य है, तो “‘क’ ‘ख’ हो सकता है” भी सत्य होगा। यह स्पष्ट है कि इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता अर्थात् कम संभावना के तर्कवाक्य के सत्य होने से हम यह अनुमान नहीं निकाल सकते कि सगत अधिक संभावना का तर्कवाक्य भी सत्य होगा।

नियम २ : कम संभावना वाले तर्कवाक्य के असत्य में अधिक संभावना वाले तर्कवाक्य का असत्य निहित रहता है। परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता।

यदि एक सदिग्ध तर्कवाक्य असत्य हो, तो सगत प्रतिज्ञात तथा आवश्यक तर्कवाक्य भी असत्य होगा। और यदि एक प्रतिज्ञात तर्कवाक्य असत्य हो, तो सगत आवश्यक तर्कवाक्य भी असत्य होगा। इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। अर्थात् हम यह अनुमान नहीं कर सकते कि क्योंकि अधिक संभावना का तर्कवाक्य असत्य है, इसलिये कम संभावना का सगत तर्कवाक्य भी असत्य होगा।

§८ सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान (Change of Relation)

सम्बन्ध के अनुसार तर्कवाक्य निरपेक्ष तथा सापेक्ष में बाँटे जाते हैं। सापेक्ष तर्कवाक्य पुनः हेतुफलाश्रित तथा वकल्पिक में विभाजित किये जाते हैं। एक सम्बन्ध के तर्कवाक्य से किसी अन्य सम्बन्ध के तर्कवाक्य का अनुमान करना सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान (Inference by Change of Relation)

नियम : १.
यदि अधिक संभावना का तर्कवाक्य सत्य है तो कम संभावना का तर्कवाक्य भी सत्य होगा, परन्तु इसका विलोम नहीं।

(२) यदि कम संभावना का तर्कवाक्य असत्य है तो अधिक संभावना का तर्कवाक्य भी असत्य होगा; परन्तु इसका विलोम नहीं।

सम्बन्ध-
विलोमात्मक
अनुमान

कहलाता है । अतः इस प्रकार के अनुमान के निम्नलिखित चार रूप हो सकते हैं

- (१) निरपेक्ष से हेतुफलाश्रित
- (२) हेतुफलाश्रित से निरपेक्ष
- (३) वैकल्पिक से हेतुफलाश्रित
- (४) हेतुफलाश्रित से वैकल्पिक

अब हम इनका पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे ।

निरपेक्ष (Categorical) तर्कवाक्य से हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य प्राप्त करने के लिए अथवा हेतुफलाश्रित से निरपेक्ष तर्कवाक्य प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए —

(क) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का पूर्वांग (Antecedent) निरपेक्ष तर्कवाक्य का उद्देश्य (Subject) होता है ।

(ख) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का उत्तरांग (Consequent) निरपेक्ष तर्कवाक्य का विधेय (Predicate) होता है ।

(ग) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का परिमाण (Quantity) उसके पूर्वांग पर निर्भर होता है ।

(घ) हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य का गुण (Quality) उसके उत्तरांग पर निर्भर होता है ।

(१) निरपेक्ष से हेतुफलाश्रित

निरपेक्ष से
हेतुफलाश्रित

निरपेक्ष (Categorical) हेतुफलाश्रित (Hypothetical)

‘आ’ . सब ‘उ’ ‘वि’ है । = यदि ‘उ’ है, तो ‘वि’ है ।

सब मनुष्य मर्त्य हैं । = यदि मनुष्य है, तो मर्त्यता है ।

‘ए’ . कोई भी ‘उ’ ‘वि’ = यदि ‘उ’ है, तो ‘वि’ नहीं है ।
नहीं है ।

कोई भी मनुष्य पूर्ण = यदि मनुष्य है, तो पूर्णता
नहीं है । नहीं है ।

‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘वि’ है । = यदि कुछ दशाओ में ‘उ’ है,
तो ‘वि’ है ।

कुछ मनुष्य चतुर हैं । = यदि कुछ दशाओ में मनुष्य है,
तो चतुरता भी है ।

- 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं = यदि कुछ दशाओ में 'उ' है,
है। तो 'वि' नहीं है।
कुछ मनुष्य चतुर = यदि कुछ दशाओ में मनुष्य है,
नहीं है। तो चतुरता नहीं है।

(२) हेतुफलाश्रित से निरपेक्ष

हेतुफलाश्रित (Hypothetical) निरपेक्ष (Categorical)

- 'आ' यदि 'क', 'ख' है, = 'क' के 'ख' होने की सब दशाएँ
तो 'ग' 'घ' है। 'ग' के 'घ' होने की सब दशाएँ हैं।
यदि वह आता है, = उसके आने की सब दशाएँ
तो मैं जाता हूँ। मेरे जाने की सब दशाएँ हैं।

- 'ए' यदि 'क', 'ख' है, = 'क' के 'ख' होने की कोई भी
तो 'ग' 'घ' नहीं है। दशा 'ग' के 'घ' होने की दशा
नहीं है।

यदि वर्षा होती है तो = वर्षा होने की कोई भी दशा
मैं बाहर नहीं जाता। मेरे बाहर जाने की दशा नहीं है।

- 'इ' यदि कुछ दशाओ में = 'क' के 'ख' होने की कुछ
'क' 'ख' है, तो 'ग' दशाएँ 'ग' के 'घ' होने की
'घ' है। दशाएँ हैं।

यदि कुछ दशाओ = मनुष्य के गरीब पैदा होने की
में, एक मनुष्य गरीब कुछ दशाएँ सफल मनुष्य की
पैदा हुआ है, तो वह दशाएँ हैं।

सफलता प्राप्त करता
है।

- 'ओ' यदि कुछ दशाओ में, = 'क' के 'ख' होने की कुछ
'क' 'ख' है, तो 'ग' दशाएँ 'ग' के 'घ' होने की
'घ' नहीं है। दशाएँ नहीं हैं।

यदि कुछ दशाओ में = धनी मनुष्यों की कुछ दशाएँ
मनुष्य धनी हो, तो सुखी मनुष्यों की कुछ दशाएँ
वे सुखी नहीं होते। नहीं हैं।

(३) वैकल्पिक से हेतुफलाश्रित

मिल (Mill) के अनुसार, वैकल्पिक तर्कवाच्य के किमी
एक विकल्प के असत्य में दूसरे विकल्प का सत्य निहित रहना

हेतुफलाश्रित
से निरपेक्ष

वैकल्पिक से
हेतुफलाश्रित

मिल के
अनुसार दो
और

है। परन्तु इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता। अतः मिल के अनुसार इस वैकल्पिक तर्कवाक्य कि “ ‘क’ या तो ‘ख’ या ‘ग’ है” से निम्नलिखित दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य फलित होते हैं।

- (क) यदि ‘क’ ‘ग’ नहीं है, तो ‘क’ ‘ख’ है। और—
(ख) यदि ‘क’ ‘ख’ नहीं है, तो ‘क’ ‘ग’ है।

यूबरवेग के
अनुसार
चार
हेतुफलाश्रित
तर्कवाक्य
होते हैं।

यूबरवेग (Ueberweg) के अनुसार एक विकल्प के असत्य में दूसरे विकल्प का सत्य निहित रहता है तथा एक विकल्प के सत्य में दूसरे का असत्य निहित रहता है। अतः यूबरवेग के अनुसार, इन तर्कवाक्य कि “ ‘क’ या तो ‘ख’ या ‘ग’ है” से निम्नलिखित चार हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य फलित होते हैं

- (क) यदि ‘क’ ‘ग’ नहीं है, तो ‘क’ ‘ख’ है।
(ख) यदि ‘क’ ‘ख’ नहीं है, तो ‘क’ ‘ग’ है।
(ग) यदि ‘क’ ‘ग’ है, तो ‘क’ ‘ख’ नहीं है। और—
(घ) यदि ‘क’ ‘ख’ है, तो ‘क’ ‘ग’ नहीं है।

अतः यूबरवेग के अनुसार वैकल्पिक तर्कवाक्य के दोनों विकल्प दो विरुद्ध-तर्कवाक्यों के समान होते हैं, परन्तु मिल के अनुसार, वे दो अनुविपरीत तर्कवाक्यों के समान होते हैं।

यूबरवेग—
दो विकल्प
दो विरुद्ध
तर्कवाक्यों के
समान हैं।
यदि एक सत्य
है तो दूसरा
असत्य है,
और इसका
विलोम भी।

निम्नलिखित उदाहरण देखिये : “वह या तो गुणवान या अगुणवान है।” यह स्पष्ट है कि इसमें दोनों विकल्प, यथा ‘वह गुणवान है’ तथा ‘वह अगुणवान है’ परस्पर व्यावर्तक हैं। अतः इस वैकल्पिक तर्कवाक्य से निम्नलिखित चार हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों का अनुमान हो जाता है—

- (क) यदि वह गुणवान नहीं है, तो वह अ-गुणवान है।
(ख) यदि वह अ-गुणवान नहीं है, तो वह गुणवान है।
(ग) यदि वह गुणवान है, तो वह अ-गुणवान नहीं है। और
(घ) यदि वह अ-गुणवान है, तो वह गुणवान नहीं है।

मिल—
दोनों विकल्प
दो अनु-

इस दृष्टिकोण से यूबरवेग का मत शुद्ध है। अब निम्नलिखित तर्कवाक्य को देखिये—“वह या तो मूर्ख है या ठग है।”

इसके दोनो विकल्प, यथा 'वह मूर्ख है' तथा 'वह ठग है' परस्पर व्यावर्तक नहीं है। अतः यहाँ यूबरवेग का दृष्टिकोण लागू नहीं हो सकता। यहाँ पर मिल का मत ही लागू होगा और यह वैकल्पिक तर्कवाक्य निम्नलिखित दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों के तुल्य होगा—

- (क) यदि वह मूर्ख नहीं है, तो वह ठग है। और,
(ख) यदि वह ठग नहीं है, तो वह मूर्ख है।

उपर्युक्त दोनो मतों में कौन सा शुद्ध है, यह बात विकल्पों के परस्पर व्यावर्तक होने या न होने पर निर्भर है। यदि वे परस्पर व्यावर्तक हैं, तो यूबरवेग का मत शुद्ध है और यदि वे परस्पर व्यावर्तक नहीं हैं तो मिल का मत शुद्ध है। यह बात ज्ञातव्य है कि यूबरवेग का मत केवल उन विशेष दशाओं में सत्य होता है जब कि दोनो विकल्प परस्पर व्यावर्तक होते हैं, परन्तु मिल का मत सब दशाओं में सत्य होने के कारण अधिक मान्य है।

(४) हेतुफलाश्रित से वैकल्पिक

यह उपर्युक्त क्रिया का विलोम रूप है। यह बात फिर कहने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि यूबरवेग के अनुसार चार हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों से एक वैकल्पिक तर्कवाक्य का अनुमान लगाया जाता है। परन्तु मिल के अनुसार एक वैकल्पिक तर्कवाक्य का अनुमान केवल दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों से हो जाता है।

§९. विशेषण-संयोगानुमान (Inference by Added Determinants)

'विशेषण' (Determinant) उसे कहते हैं जो किसी पद के उपयोग को सीमित कर देता है। क्योंकि वह विशेषता पद के सम्पूर्ण निर्देश पर लागू नहीं होती। अतः 'विशेषण' में पद का अर्थ निश्चित अथवा संकीर्ण हो जाता है।

विपरीत
तर्कवाक्यों के
समान हैं—
यदि एक
असत्य है तो
दूसरा सत्य
है, परन्तु
इसका वि-
लोम नहीं।

(४) हेतु-
फलाश्रित से
वैकल्पिक

विशेषण-
संयोगानुमान

उद्देश्य तथा
विधेय समान
रूप से सीमित
होने चाहिए।

विशेषण-संयोगानुमान उस क्रिया को कहते हैं जिसमें एक दिए हुए तर्कवाक्य से अपेक्षाकृत कम विस्तार वाला तर्कवाक्य, दिए हुए तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय को समान रूप से सीमित करके, प्राप्त किया जाता है। यथा :—

एक तारा एक भौतिक पदार्थ है।

∴ एक दिखाई देनेवाला तारा एक दिखाई देनेवाला भौतिक पदार्थ है।

इस प्रकार के अनुमान की सत्यता इस बात पर निर्भर रहती है कि उद्देश्य तथा विधेय समान-रूप से सीमित किये जायें। जब विशेषण का अर्थ उद्देश्य तथा विधेय दोनों के सम्बन्ध में समान होता है, तो वह अनुमान शुद्ध होगा। यह आवश्यक नहीं कि उद्देश्य तथा विधेय के साथ एक ही शब्द को जोड़ने से ऐसा हो जाय, क्योंकि ऐसा होना भी संभव है कि एक ही शब्द विभिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थ रखता हो और तब वह अनुमान दोषपूर्ण हो जायेगा। यदि विशेषण की भाँति प्रयुक्त होनेवाला गुण सापेक्ष हो, तो अनुमान के दोषपूर्ण होने की संभावना और भी अधिक हो जाती है। यथा :—

एक चीटी एक जीव है।

∴ एक बड़ी चीटी एक बड़ा जीव है।

स्पष्टतया यह अनुमान दोषपूर्ण है क्योंकि विशेषण 'बड़ा' उद्देश्य तथा विधेय को भिन्न-भिन्न प्रकार से सीमित करता है।

शुद्ध-अनुमान के उदाहरण—

(१) सब हव्शी मनुष्य हैं।

∴ सब ईमानदार हव्शी ईमानदार मनुष्य हैं।

(२) कविता बुद्धि का भोजन है।

∴ अच्छी कविता बुद्धि का अच्छा भोजन है।

(३) सब धातुएँ तत्व हैं।

∴ सब भारी धातुएँ भारी तत्व हैं।

- (४) एक कुत्ता एक जन्तु है।
 ∴ एक स्वाभिभक्त कुत्ता एक स्वाभिभक्त जन्तु है।

अगुद्ध अनुमान के उदाहरण—

- (१) एक गवैया मनुष्य है।
 ∴ एक बुरा गवैया बुरा मनुष्य है।
 (२) एक राजनीतिज्ञ एक मनुष्य है।
 ∴ एक अच्छा राजनीतिज्ञ एक अच्छा मनुष्य है।
 (३) एक कुटिया एक इमारत है।
 ∴ एक बड़ी कुटिया एक बड़ी इमारत है।
 (४) कम ज्ञान खतरनाक होता है।
 ∴ बहुत ज्ञान बहुत खतरनाक होता है।
 (५) एक हाथी एक जन्तु है।
 एक छोटा हाथी एक छोटा जन्तु है।

§ १० मिश्र-धारणानुमान (Inference by Complex Conception)

मिश्र-धारणानुमान में किसी तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय को एक मिश्र-धारणा का भाग इस प्रकार बना देते हैं कि उनके पारस्परिक सम्बन्ध में अन्तर न हो सके। यथा—

एक घोड़ा एक जन्तु है।
 ∴ एक घोड़े का सिर एक जन्तु का सिर है।

इस प्रकार का अनुमान पूर्व-वर्णित विशेषण-संयोगानुमान के समान ही है। परन्तु इन दोनों में एक विशेष अन्तर यह है कि विशेषण-संयोगानुमान में विशेषण उद्देश्य तथा विधेय में संयुक्त किया जाता है, परन्तु मिश्र-धारणानुमान में, स्वयं उद्देश्य तथा विधेय ही विशेषण की भाँति प्रयुक्त किये गये हैं, अर्थात् वे किसी तीसरे पद की विशेषता प्रदर्शित करते हैं।

इस प्रकार के अनुमान में भी दोष हो सकते हैं। यदि मिश्र-धारणा (Complex Conception) के उद्देश्य तथा विधेय

मिश्र-
धारणानुमान

‘विशेषण-
संयोगानुमान’
तथा ‘मिश्र-
धारणानुमान’

दोष

में भिन्न-भिन्न अर्थ हो, तो वह अनुमान दोषपूर्ण हो जायेगा ।
उदाहरणार्थ —

सब न्यायाधीन मनुष्य हैं ।

∴ न्यायाधीशों की बहुसंख्या मनुष्यों की बहुसंख्या है ।

शुद्ध अनुमान :

(१) सखिया विप है ।

∴ सखिया की एक मात्रा विप की एक मात्रा है ।

(२) गरीबी अपराध की जड़ है ।

∴ गरीबी का निवारण अपराध की जड़ का निवारण है ।

(३) घोड़ा एक जन्तु है ।

∴ घोड़े का पंजर एक जन्तु का पंजर है ।

अशुद्ध अनुमान :

(१) सब न्यायाधीन न्यायकुशल हैं ।

∴ न्यायाधीशों की बहुसंख्या न्यायकुशल व्यक्तियों की बहुसंख्या है ।

(२) सब कवि पद्य-लेखक हैं ।

∴ कवियों की बहुसंख्या पद्यलेखकों की बहुसंख्या है ।

(३) सब पारसी भारतीय हैं ।

∴ पारसियों की बहुसंख्या भारतीयों की बहुसंख्या है ।

कुछ हल किये हुए अभ्यास

(१) निम्नलिखित का परीक्षण कीजिए :—

पुस्तकें ज्ञान का साधन हैं ।

अतः हमें ज्ञान पुस्तकों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है ।

उत्तर — इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—

‘आ’ सब पुस्तकें ज्ञान का साधन हैं ।

∴ ‘आ’ सब ज्ञान के साधन पुस्तकें हैं ।

यह ‘आ’-तर्कवाक्य के सरल परिवर्तन का अनियमित रूप है जिसका विधेय अव्याप्त है । शुद्ध अनुमान निम्नलिखित होगा—

‘ई’ : कुछ ज्ञान के साधन पुस्तकें हैं ।

(२) निम्नलिखित में किस प्रकार का अनुमान है ?

केवल अज्ञानी ही ज्ञान से घृणा करते हैं।

∴ कुछ ज्ञान से घृणा करनेवाले व्यक्ति अज्ञानी हैं।

उत्तर — तार्किक आकार में व्यक्त करने से यह युक्ति इस प्रकार होगी —

‘आ’ सब ज्ञान से घृणा करनेवाले व्यक्ति अज्ञानी हैं।

∴ ‘ई’ कुछ ज्ञान से घृणा करनेवाले व्यक्ति अज्ञानी हैं।

यह उपाश्रितता का शुद्ध रूप है।

(३) यदि यह बात असत्य मान ली जाय कि ‘कुछ पत्थर खनिज नहीं हैं,’ तब इसके विरोधी तर्कवाक्यों के सत्य अथवा असत्य के बारे में आप क्या कह सकते हैं ?

उत्तर — इसके विरोधी निम्नलिखित हैं —

(१) विरुद्ध ‘आ’ सब पत्थर खनिज हैं। (सत्य)

(२) अनुविपरीत ‘ई’ कुछ पत्थर खनिज हैं। (सत्य)

(३) उपाश्रित ‘ए’ कोई भी पत्थर खनिज नहीं है। (असत्य)

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्य को आश्रय मानकर परिवर्तन, प्रतिवर्तन, परिवर्तित-प्रतिवर्तन तथा विपर्यय से क्या निष्कर्ष प्राप्त होते हैं ?

‘सब मनुष्य कवि नहीं हैं।’

उत्तर — (क) इसका परिवर्तन नहीं हो सकता।

(ख) प्रतिवर्तन ‘ई’ कुछ मनुष्य अकवि हैं,।

(ग) परिवर्तित-प्रतिवर्तन : ‘ई’ कुछ अकवि मनुष्य हैं।

(घ) इसका विपर्यय नहीं हो सकता।

(५) क्या निम्नलिखित का परिवर्तन हो सकता है ? अपने

उत्तर की पुष्टि कीजिए।

विरले व्यक्ति ही लालच से दूर है।

उत्तर — यह तर्कवाक्य, तार्किक आकार में इस प्रकार व्यक्त होगा,

‘ओ’ कुछ व्यक्ति लालच से दूर नहीं हैं।

यह ‘ओ’ तर्कवाक्य है। अतः इसका परिवर्तन नहीं हो सकता।

(६) निम्नलिखित का प्रतिवर्तन कीजिए :—

केवल अज्ञानी व्यक्ति ही ऐसा मत रखते हैं।

उत्तर — इसका तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—सब व्यक्ति जो ऐसा मत रखते हैं, अज्ञानी हैं। प्रतिवर्तन के पश्चात्

‘ए’ (E) निष्कर्ष प्राप्त होता है—“कोई भी व्यक्ति जो गंगा मत रखते हैं, अ-अज्ञानी नहीं है।

(७) ‘मेहनती व्यक्ति’ के सिवा कोई भी सफलता प्राप्त नहीं करता।’ इस तर्कवाक्य से जो निष्कर्ष फलित होते हैं, उन्हें व्यक्त कीजिए।

उत्तर —यह तर्कवाक्य निम्नलिखित तर्कवाक्य के तुल्य है -
‘सब सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्ति मेहनती होते हैं।’ इससे निम्नांकित निष्कर्ष निकल सकते हैं —

(क) परिवर्तित (Converse) ‘इ’ (I) कुछ मेहनती व्यक्ति वे हैं, जो सफलता प्राप्त करते हैं।

(ख) प्रतिवर्तित (Obverse) ‘ए’ (E) कोई भी व्यक्ति जो सफलता प्राप्त करते हैं, अ-मेहनती नहीं होते।

(ग) परिवर्तित-प्रतिवर्तित (Contrapositive) ‘ए’ (E) कोई भी अ-मेहनती व्यक्ति नहीं है जो सफलता प्राप्त करते हैं।

(घ) विपर्यस्त (Inverse) पूर्ण ‘ई’ (I) कुछ अ-सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्ति वे हैं जो अ-मेहनती हैं।
आशिक. ‘ओ’ (O) कुछ असफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्ति वे हैं, जो मेहनती नहीं हैं।

(८) निम्नलिखित तर्कवाक्यों का परिवर्तन तथा परिवर्तित-प्रतिवर्तन के पश्चात् जो निष्कर्ष निकलता हो, उसे व्यक्त कीजिए—

(क) कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो स्वभावतः भला न हो।

उत्तर —तार्किक आकार

सब मनुष्य स्वभावतः भले हैं।

परिवर्तित ‘ई’ (I) कुछ स्वभावतः भले व्यक्ति मनुष्य हैं।

परिवर्तित-प्रतिवर्तित ‘ए’ (E) कोई भी अ-स्वभावतः भला व्यक्ति मनुष्य नहीं है।

(ख) मनुष्य कभी सुखी नहीं होता, यदि वह गुणी न हो।

उत्तर —तार्किक आकार —कोई भी अगुणी मनुष्य सुखी नहीं होता।

परिवर्तित ‘ए’ कोई भी सुखी व्यक्ति अगुणी नहीं होता।

परिवर्तित-प्रतिवर्तित ‘ई’ कुछ अ-सुखी व्यक्ति अ-गुणी हैं।

(९) निम्नलिखित वाक्य को तार्किक आकारमें व्यक्त कीजिए और बतलाइए कि परिवर्तन तथा प्रतिवर्तन से क्या निष्कर्ष निकलता है

सब वकील धूर्त नहीं होते।

उत्तर — तार्किक आकार कुछ वकील धूर्त नहीं है। 'ओ'।
 ∴ परिवर्तित 'ओ' तर्कवाक्य का परिवर्तन नहीं होता।
 प्रतिवर्तित 'ई' कुछ वकील अधूर्त है।

प्रश्नमाला १०

(१) अनुमान किसे कहते हैं? अनन्तरानुमान तथा सान्तरानुमान का अन्तर उदाहरण सहित समझाइए।

(२) क्या एक ही आश्रय-वाक्य से कोई निष्कर्ष प्राप्त करना संभव है? यदि हाँ, तो उसके विभिन्न रूपों का उल्लेख कीजिए।

(३) सरल परिवर्तन तथा असरल परिवर्तन का अन्तर स्पष्ट कीजिए। निषेध द्वारा परिवर्तन से क्या तात्पर्य है?

(४) निम्नलिखित तर्कवाक्य से जितने निष्कर्ष निकलते हो, उन्हें स्पष्ट कीजिए

'केवल गुणी ही सुखी है।'

(५) क्या मध्य तर्कवाक्यों का सरल परिवर्तन संभव हो सकता है? यदि नहीं, तो किस विशेष गीति से उनका सरल परिवर्तन किया जा सकता है?

(६) निम्नलिखित तर्कवाक्यों का परिवर्तन तथा प्रतिवर्तन कीजिए —

(क) मुकगत मर्त्य है।

(ख) मनुष्य जाति का उचित अध्ययन मनुष्य ही है।

(ग) हाइड्रोजन सबसे हल्की गैस है।

(७) बतलाइए कि 'ओ' तर्कवाक्य का परिवर्तन तथा 'ई' तर्कवाक्य का परिवर्तित-प्रतिवर्तन क्यों संभव नहीं है?

(८) निम्नलिखित अनन्तरानुमानों का परीक्षण कीजिए—

(क) मिठास अच्छी लगती है।

∴ कड़ुआहट बुरी लगती है।

(ख) वकील एक मनुष्य है।

∴ अच्छा वकील एक अच्छा मनुष्य है।

(९) विपर्यय किसे कहते हैं ? उसके विभिन्न रूप कौन-कौन-से हैं ? निम्नलिखित का विपर्यय कीजिए—

‘सर्व मनुष्य मर्त्य हैं।’

(१०) कौन-से तर्कवाक्य सत्य, असत्य अथवा सन्देहात्मक होते हैं, जब—

(क) ‘आ’ सत्य हो।

(ख) ‘ओ’ असत्य हो।

(११) विरोध द्वारा अनुमान कितने प्रकार का होता है ? उदाहरण सहित समझाइए।

(१२) निम्नलिखित अनुमानों का परीक्षण कीजिए .—

(क) सब आलोचना ध्वसात्मक नहीं होती।

∴ कुछ आलोचना ध्वसात्मक होती है।

(ख) ‘क’ ‘ख’ से प्यार करता है।

‘ख’ ‘क’ से प्यार करता है।

(ग) प्रकाश लाभदायक है।

∴ अन्धकार हानिकारक है।

(घ) कवि शिक्षक होता है।

∴ महान् कवि महान् शिक्षक होता है।

(ङ) गुण से सुख प्राप्त होता है।

∴ सुख से गुण प्राप्त होता है।

(च) प्रोफेसर एक मनुष्य है।

∴ बुरा प्रोफेसर बुरा मनुष्य है।

(छ) सब आम मीठे नहीं होते।

∴ सब मीठी चीजे आम नहीं होती।

एकादश प्रकरण

न्यायवाक्य

(Syllogism)

- § १ न्यायवाक्य की परिभाषा—उसकी विशेषताये ।
- § २ न्यायवाक्य की रचना ।
- § ३ न्यायवाक्य के प्रकार ।
- § ४ विगुद्ध निरपेक्ष न्यायवाक्य के मूल सिद्धांत (Canons) ।
- § ५ अरस्तू का सिद्धान्त (Dictum de omni et nullo) ।
- § ६ लैम्बार्ट का सिद्धान्त ।
- § ७ निरपेक्ष न्यायवाक्य के सामान्य नियम तथा उनके उल्लंघन से उत्पन्न दोष ।
- § ८ न्यायवाक्य के आकार (Figures) ।
- § ९ न्यायवाक्य के सयोग (Moods) ।
- § १० सिद्ध सयोगों को ज्ञात करना ।
 - (क) प्रथम आकार ।
 - टिप्पणी १ प्रथम आकार के विशेष नियम ।
 - टिप्पणी २ प्रथम आकार की विशेषताये ।
 - (ख) द्वितीय आकार ।
 - टिप्पणी . द्वितीय आकार के विशेष नियम ।
 - (ग) तृतीय आकार ।
 - टिप्पणी तृतीय आकार के विशेष नियम ।
 - (घ) चतुर्थ आकार ।
 - टिप्पणी चतुर्थ आकार के विशेष नियम ।
- § ११ आकारान्तरण (Reduction)—अनुलोम (Direct)
तथा प्रतिलोम (Indirect) ।

टिप्पणी • क्या आकारान्तरण आवश्यक है ?

- § १२ स्मृति-सहायक छन्द (Mnemonic Lines) ।
 § १३. सब अपूर्ण सयोगो का अनुलोम आकारान्तरण ।
 § १४. सब अपूर्ण सयोगो का प्रतिलोम आकारान्तरण ।
 § १५ मूल (Fundamental), निर्बल (Weakened)
 तथा सबल (Strengthened) न्यायवाक्य ।
 § १६ शुद्ध हेतुफलाश्रित तथा शुद्ध वैकल्पिक न्यायवाक्य ।
 प्रश्नमाला ११ ।

§ १. न्यायवाक्य (Syllogism) की परिभाषा

—उसकी विशेषताये

परिभाषा

न्यायवाक्य उस निगमनमूलक सान्तरानुमान (mediate inference) को कहते हैं, जिनमें दोनो आश्रय-वाक्यों को एक साथ रखने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है । यह निगमनमूलक (Deductive) अनुमान है, अतः निष्कर्ष आधारवाक्य से अधिक व्यापक नहीं हो सकता । यह सान्तरानुमान है, जिसका निष्कर्ष केवल एक आश्रयवाक्य से नहीं, अपितु दो आश्रयवाक्यों से प्राप्त होता है । एक उदाहरण देखिए —

सब मनुष्य मर्त्य हैं ।

सब नरेश मनुष्य हैं ।

∴ सब नरेश मर्त्य हैं ।

न्यायवाक्य
की विशेष-
तायें :—

अतः न्यायवाक्य या सिलोजिज्म में निम्नलिखित विशेषताये होती हैं, जिनके कारण वह अन्य प्रकार के अनुमानों से भिन्न समझा जाता है ।

(क) निष्कर्ष दोनो आश्रयों के सम्मिलित रूप से प्राप्त होता है ।

(क) न्यायवाक्य का निष्कर्ष दोनों आश्रयवाक्यों को एक साथ रख कर प्राप्त होता है; उनमें से किसी एक ही आश्रयवाक्य से नहीं । निष्कर्ष उन दोनो आश्रयवाक्यों का योग-मात्र ही नहीं होता, परन्तु उन दोनो को एक साथ रखने से अनिवार्यतः फलित होता है । उपर्युक्त उदाहरण में, निष्कर्ष 'सब नरेश मर्त्य हैं' केवल

एक ही आश्रयवाक्य से प्राप्त नहीं किया गया है, वरन उनको सम्मिलित करने से ही प्राप्त हुआ है।

इसी विशेषता के कारण न्यायवाक्य अनन्तरानुमान से भिन्न माना जाता है। अन्य प्रकार के सान्तरानुमानों से भी वह भिन्न है, क्योंकि उनमें दो से अधिक आश्रयवाक्य होते हैं।

(ख) न्यायवाक्य का निष्कर्ष आश्रयवाक्यों के निष्कर्ष से अधिक व्यापक नहीं हो सकता। न्यायवाक्य निगमनमूलक-अनुमान है और किसी भी निगमनमूलक अनुमान में निष्कर्ष आश्रय में अधिक व्यापक नहीं होता।

(ख) निष्कर्ष आश्रय से अधिक व्यापक नहीं होता।

उपर्युक्त उदाहरण में, निष्कर्ष 'सब नरेश मर्त्य हैं' स्पष्टतया इस आश्रय से कम व्यापक है—'सब मनुष्य मर्त्य हैं', यह व्यक्तियों की अपेक्षाकृत अधिक सख्या पर लागू होता है।

इस विशेषता के कारण न्यायवाक्य (तथा अन्य प्रकार के निगमनमूलक अनुमान), उद्गमन (Induction) से भिन्न माने जाते हैं, क्योंकि उद्गमन में निष्कर्ष आश्रय में सर्वदा अधिक व्यापक होता है।

(ग) यदि दिए हुए आश्रयवाक्य सत्य हो, तो निष्कर्ष भी सत्य होता है।

न्यायवाक्य (तथा अन्य प्रकार के निगमनमूलक अनुमान) में हम इस प्रश्न पर विचार नहीं करते कि दिए हुए आश्रयवाक्य वास्तव में सत्य हैं, या असत्य हैं। हमारे सामने केवल यह प्रश्न रहता है कि यदि आश्रयवाक्यों को सत्य मान लिया जाय, तो निष्कर्ष अनिवार्यतः सत्य होगा। निगमनमूलक अनुमानों में आश्रयवाक्यों का सत्य सिद्ध मान लिया जाता है, अतः यह स्पष्ट है कि निष्कर्ष का सत्य आश्रय वाक्यों के सत्य पर निर्भर रहता है, जिन्हें पहले से ही सत्य मान लिया जाता है। हमारे शब्दों में न्यायवाक्य (Syllogism) का निगमनमूलक अनुमान होने के

(ग) आश्रयवाक्य सत्य मान लिए जाते हैं, तब निष्कर्ष सत्य होता है।

काग्न, सम्बन्ध केवल आकारगत सत्य (Formal Truth) से हैं, वस्तुगत सत्य (Material Truth) में नहीं।

§ २. न्यायवाक्य की रचना

तीन तर्क-
वाक्य

न्यायवाक्य में तीन तर्कवाक्य होते हैं, यथा—दो दिये हुए तर्कवाक्य और एक वह तर्कवाक्य जो उनसे प्राप्त किया जाता है। जो उर्वान तर्कवाक्य प्राप्त किया जाता है, उसे निष्कर्ष (Conclusion) कहते हैं और दोनों दिये हुए तर्कवाक्य, जिनसे निष्कर्ष निकाला जाता है, आश्रय (Premises) कहलाते हैं।

तीन पद

प्रत्येक तर्कवाक्य में दो पद होते हैं। अतः सम्पूर्ण न्यायवाक्य में, तीन तर्कवाक्य होने के कारण, छ पद होने चाहिए। न्यायवाक्य का परीक्षण करने पर विदित होता है कि उसमें छ भिन्न पद नहीं, वरन् केवल तीन ही पद होते हैं, जिनमें से प्रत्येक दो बार प्रयुक्त होता है।

ये तीनों विभिन्न पद, जिनमें से प्रत्येक दो बार प्रयुक्त होता है, भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं। निष्कर्ष का विधेय साध्य (Major term) कहलाता है और निष्कर्ष का उद्देग्य (Subject) पक्ष (Minor term) कहलाता है, और वह पद जो दोनों आश्रयवाक्यों में तो होता है, परन्तु निष्कर्ष में नहीं होता, मध्यस्थ-पद या हेतु (Middle term) कहलाता है।

मध्यस्थपद
का कार्य

मध्यस्थ पद दोनों आश्रयवाक्यों में उपस्थित रहता है और उनका उभयनिष्ठ तथ्य होता है। निष्कर्ष में साध्य और पक्ष के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। ये दोनों पद प्रारम्भ में एक दूसरे से अपरिचित रहते हैं और हेतु या मध्यस्थ पद उस मध्यस्थ व्यक्ति की भाँति कार्य करता है, जो इन दोनों से परिचित हो और इस प्रकार उन दोनों का परस्पर परिचय करा दे। यदि

यह उभयनिष्ठ मित्र न होता, तो साध्य और पक्ष एक दूसरे से अपरिचित ही रह जाते। अतः साध्य-वाक्य (Major Premise) में साध्य (Major term) की मध्यस्थ-पद (Middle term) से तुलना की जाती है, और पक्ष-वाक्य (Minor Premise) में पक्ष (Minor term) की मध्यस्थ-पद (Middle term) से तुलना की जाती है और इसके बाद निष्कर्ष में साध्य तथा पक्ष के बीच सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है। मध्यस्थ-पद इस अर्थ में मध्यस्थ है कि वह ऐसा उभयनिष्ठ तथ्य होता है, जिससे अन्य दोनों पदों की तुलना की जा सकती है और वह उनके बीच मध्यस्थता का कार्य कर सकता है। साध्य और पक्ष को पास-पास लाकर मध्यस्थ-पद का कार्य पूर्ण हो जाता है, अतः वह निष्कर्ष से लुप्त हो जाता है। अतः न्यायवाक्य में, हम निष्कर्ष को तुरन्त और साक्षात् रीति से प्राप्त नहीं करते, वरन् मध्यस्थ-पद की सहायता से करते हैं।

दिये हुए तर्कवाक्यों या आश्रयों में, जिसमें साध्य उपस्थित रहता है, वह साध्य-वाक्य (Major Premise) कहलाता है और जिसमें पक्ष उपस्थित रहता है, वह पक्ष-वाक्य (Minor Premise) कहलाता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित न्यायवाक्य देखिए :—

सब मनुष्य मर्त्य हैं।

सब नरेश मनुष्य हैं।

∴ सब नरेश मर्त्य हैं।

इसमें 'मर्त्य' पद 'साध्य' है, क्योंकि वह निष्कर्ष का विधेय है और 'नरेश' पद निष्कर्ष का उद्देश्य होने के कारण पक्ष है। 'मनुष्य' पद जो दोनों आश्रय-वाक्यों में तो उपस्थित है, परन्तु निष्कर्ष में उपस्थित नहीं है, मध्यस्थ-पद या हेतु है। पहला आश्रयवाक्य—'सब मनुष्य मर्त्य हैं' साध्यवाक्य है, क्योंकि

न्यायवाक्य
के आश्रय

उसमे साध्य 'मर्त्य' उपस्थित है, दूसरा आश्रयवाक्य—'सब नरेश मनुष्य है' पक्ष-वाक्य है, क्योंकि उसमे पक्ष 'नरेश' उपस्थित है।

यह बात ज्ञातव्य है कि मध्यस्थ पद को 'म' से, पक्ष को 'उ' से तथा साध्य को 'वि' से सकेत रूप में व्यक्त किया जाता है।

§ ३. न्यायवाक्य के प्रकार

शुद्ध और
मिश्र न्याय-
वाक्य

न्यायवाक्यों का विभाग शुद्ध (Pure) और मिश्र (Mixed) में किया जाता है। शुद्ध न्याय-वाक्य (Pure Syllogism) में घटक तर्कवाक्य एक से सम्बन्ध के होते हैं। यदि वे सब निरपेक्ष (Categorical) हों, तो ऐसे न्यायवाक्य को शुद्ध-निरपेक्ष (Pure Categorical) कहते हैं, यदि वे सब हेतुफलाश्रित (Hypothetical) हों, तो ऐसे न्यायवाक्य को शुद्ध-हेतुफलाश्रित (Pure Hypothetical) कहते हैं और यदि वे सब वैकल्पिक (Disjunctive) हों, तो ऐसे न्यायवाक्य को शुद्ध वैकल्पिक (Pure Disjunctive) कहते हैं।

मिश्र न्याय
वाक्य के
तीन उप-
विभाग

मिश्र-न्यायवाक्य (Mixed Syllogism) में, घटक तर्कवाक्य विभिन्न सम्बन्ध के होते हैं। मिश्र-न्यायवाक्य तीन प्रकार के होते हैं —

(१) हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष (Hypothetical-Categorical)—इसमें साध्यवाक्य (major premise) हेतुफलाश्रित (Hypothetical) होता है, पक्ष-वाक्य (minor premise) निरपेक्ष (Categorical) होता है, तथा निष्कर्ष (conclusion) भी निरपेक्ष होता है।

(२) वैकल्पिक-निरपेक्ष (Disjunctive-Categorical) इसमें साध्यवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) होता है, पक्ष-वाक्य निरपेक्ष (Categorical) होता है तथा निष्कर्ष भी निरपेक्ष (Categorical) होता है।

(३) उभयतोपाश (Dilemma) . इसमें साध्यवाक्य मिश्र-हेतुफलाश्रित (Compound Hypothetical) होता है, पक्षवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) होता है तथा निष्कर्ष या तो निरपेक्ष होता है, या वैकल्पिक होता है।

§ ४. विशुद्ध-निरपेक्ष-न्यायवाक्य के मूल सिद्धान्त (Canons)

न्यायवाक्य कुछ मूल-सिद्धान्तों पर आधारित होता है, जो इस प्रकार के अनुमान के मुख्य आधार हैं। ये मूलसिद्धान्त निम्न-लिखित हैं —

सिद्धान्त १ : दो पद, जो कि किसी एक तीसरे पद के अनुकूल हों, वे परस्पर भी अनुकूल होंगे।

उदाहरणार्थ : 'सबसे सस्ती धातु' तथा 'सबसे उपयोगी धातु' ये दोनों पद 'लोहा' पद के अनुकूल हैं। अतः वे परस्पर भी अनुकूल होंगे। यथा —

लोहा सबसे सस्ती धातु है।

लोहा सबसे उपयोगी धातु है।

∴ सबसे सस्ती धातु सबसे उपयोगी धातु है।

इस दृष्टान्त में, अनुकूलता पूर्ण तादात्म्य (identity) है। परन्तु कभी-कभी अनुकूलता इतनी पूर्ण नहीं होती। यथा—सुकरात एक मनुष्य है और मनुष्य मर्त्य है। यहाँ 'सुकरात' तथा 'मर्त्य' दोनों पदों की 'मनुष्य' पद में अनुकूलता है, अतः वे परस्पर भी अनुकूल होंगे। यथा —

सब मनुष्य मर्त्य हैं।

सुकरात एक मनुष्य है।

∴ सुकरात मर्त्य है।

सिद्धान्त २ दो पद यदि ऐसे हों कि उनमें से एक किसी तीसरे पद के अनुकूल हो, तथा दूसरा अनुकूल न हो, तो वे परस्पर भी अनुकूल नहीं होंगे।

उदाहरणार्थ, 'सुकरात' पद 'मनुष्य' पद के अनुकूल है, परन्तु 'अमर' पद 'मनुष्य' पद के अनुकूल नहीं है। अतः 'सुकरात' और 'अमर' पद परस्पर अनुकूल नहीं होंगे। यथा —

कोई भी मनुष्य अमर नहीं है।

सुकरात एक मनुष्य है।

∴ सुकरात अमर नहीं है।

अब हम अरस्तू (Aristotle) के न्यायवाक्य सम्बन्धी प्रसिद्ध सिद्धान्त (Dictum de Omni et Nullo) पर पहुँचते हैं।

§ ५. अरस्तू का सिद्धान्त

(Aristotle's Dictum de Omni et Nullo)

अरस्तू का
सिद्धान्त

अरस्तू का न्यायवाक्य सम्बन्धी सिद्धान्त इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

‘सब और
किसी भी
नहीं’ का
व्यवस्था

‘निर्देशार्थ में ग्रहण किए हुए पद के विषय में, चाहे स्वीकार रूप से या निषेध रूप से जो कुछ विधान किया गया है, वह विधान उसी प्रकार हर एक वस्तु के विषय में, जो उसके अन्तर्गत है, किया जा सकता है।’

निर्देश में ग्रहण किए हुए किसी वर्ग के विषय में जो बात सत्य है, वह उस वर्ग के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के विषय में भी सत्य हो सकती है और जो कुछ एक निर्देश में ग्रहण किए हुए वर्ग के विषय में असत्य है, वह उस वर्ग के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के विषय में भी असत्य होगा।

उदाहरणार्थ, जो कुछ भी सब मनुष्यों के लिए सत्य होगा वह सुकरात, प्लैटो अथवा अन्य किसी व्यक्ति के बारे में भी सत्य होगा। और जो कुछ ‘सब मनुष्यों’ के बारे में सत्य नहीं होगा, वह सुकरात, प्लैटो अथवा अन्य किसी व्यक्ति के बारे में भी सत्य नहीं होगा। यदि ‘मरणशीलता’ का गुण सब मनुष्यों के बारे में सत्य है तो अवश्य ही व्यक्ति विशेषों के बारे में भी सत्य होगा। और यदि ‘पूर्णता’ का गुण मनुष्य-वर्ग के बारे में सत्य नहीं होगा, तो वह व्यक्ति-विशेष के बारे में भी सत्य नहीं होगा।

यह सिद्धान्त
केवल प्रथम
आकार पर
लागू होता
है।

यह सिद्धान्त प्रथम आकार के न्यायवाक्यों पर सरलता से लागू हो जाता है और अन्य आकारों (figures) के न्यायवाक्य पर लागू नहीं होता। अतः अरस्तू (Aristotle) ने प्रथम आकार (First Figure) को ही पूर्ण आकार

(Perfect Figure) माना है तथा अन्य आकारों को अपूर्ण आकार (Imperfect figures) माना है। अरस्तू ने केवल प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आकारों को मान्यता दी थी; चतुर्थ आकार बाद में गैलन (Galen) (सन् १३०-२०० ई०) नामक न्यायशास्त्री ने जोड़ दिया था। अरस्तू के दृष्टिकोण से द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ आकारों को अपूर्ण समझना चाहिए, क्योंकि उसका सिद्धान्त उनपर लागू नहीं होता।

§ ६. लैम्बर्ट का सिद्धान्त (Lambert's Canons)

अरस्तू ने प्रथम आकार को ही पूर्ण आकार माना था, क्योंकि उसका सिद्धान्त सरलता से उस पर लागू हो जाता था। अन्य आकारों को उसने अपूर्ण माना था, क्योंकि उसका सिद्धान्त उन पर लागू नहीं होता था। परन्तु कुछ तर्कशास्त्री, यथा—लैम्बर्ट (Lambert) का मत है कि चारों आकार उतने ही पूर्ण एवं मौलिक हैं और उनमें से प्रत्येक एक विशेष सिद्धान्त पर आधारित है। अरस्तू के सिद्धान्त के अतिरिक्त लैम्बर्ट ने निम्नलिखित तीन सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं, जो कि क्रमशः द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ आकारों के आधार हैं.—

(क) 'भेद का सिद्धान्त' (Dictum de Diverso)

“यदि एक पद किसी तीसरे के अन्तर्भूत है, तथा दूसरा तीसरे से पृथक् या बहिर्भूत, तो पहला तथा दूसरा पद परस्पर पृथक् या बहिर्भूत होंगे।”

(ख) 'निदर्शन का सिद्धान्त' (Dictum de Exemplo)

“यदि दो पदों में कोई अंश उभयनिष्ठ हो, तो वे आगिक रूप में अनुकूल होते हैं, अथवा यदि एक में ऐसा अंश हो, जो दूसरे में न हो, तो वे आशिक रूप में प्रतिकूल होते हैं।”

(ग) 'परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त' (Dictum de Reciproco)

वैल्टन (Welton) ने इस सिद्धान्त को इस प्रकार

व्यक्त किया है “जिस किसी प्रकार किसी पद के विषय में किसी पद की स्वीकृति की गई है या सामान्य रूप से निषेध किया गया है, उसी प्रकार उसका विरोध रूप से भी उमी गुण के साथ किसी वस्तु का विधान किया जा सकता है, जिसकी स्वीकृति उस विधेय के साथ की गई है , तथा जिस किसी प्रकार उसके बारे में सामान्य रूप से किसी विधेय की स्वीकृति की गई है उसका उसी प्रकार सामान्य रूप से, जिसका सामान्य रूप से उस विधेय का निषेध किया गया है, निषेध भी किया जा सकता है।”

§ ७. निरपेक्ष-न्यायवाक्य के सामान्य नियम तथा उनके उल्लघन से उत्पन्न दोष

नियम (१) . प्रत्येक न्यायवाक्य में तीन, और केवल तीन पद होने चाहिए।

तीन पद

यह न्यायवाक्य द्वारा अनुमान का नियम न होकर केवल इस बात के निश्चय करने का नियम है कि क्या हमारी युक्ति 'न्याय-वाक्य' है भी अथवा नहीं। न्यायवाक्य में तीन पद होते हैं; यथा—साध्य (Major term), पक्ष (Minor term) तथा मध्यस्थ-पद या हेतु (Middle term) जिनमें से प्रत्येक दो बार प्रयुक्त होता है।

टिप्पणी—चतुष्पदी-दोष (Fallacy of Four Terms) तथा अनेकार्थक-दोष (Fallacy of Equivocation)।

चतुष्पदी
दोष

इस नियम का उल्लघन करने से एक दोष या आभास (Fallacy) हो जाता है। इसे चतुष्पदी-दोष (Fallacy of Four Terms) कहते हैं। यथा—

(क) सब मनुष्य मर्त्य हैं।

सब घोड़े चतुष्पद हैं।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों आश्रयवाक्यों से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(ख) मेरा हाथ मेज़ को स्पर्श करता है।

मेज़ जमीन को स्पर्श करता है।

∴ मेरा हाथ जमीन को स्पर्श करता है।

इस युक्ति में चार पद हैं, यथा—‘मेरा हाथ’, ‘वह जो मेज को स्पर्श करता है,’ ‘जमीन’, ‘वह जो जमीन को स्पर्श करता है।’ अतः कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(ग) सोहन मेरा मित्र है।

राम सोहन का मित्र है।

∴ राम मेरा मित्र है।

स्पष्ट है कि इस युक्ति में भी चतुष्पदी दोष है।

इस नियम की मुख्य सार्थकता इस बात में है कि यह तीनों पदों के विषय में किसी प्रकार के अनेकार्थक शब्दों के प्रयोग को रोकता है। यदि कोई पद एक से अधिक अर्थ में प्रयोग किया जायगा, तो वहाँ, अनेकार्थक दोष (Fallacy of Equivocation) हो जाएगा। वास्तव में अनेकार्थक शब्द उतने ही पदों के बराबर होगा जितने अर्थों में उसका प्रयोग किया गया है। साध्य भी अनेकार्थक हो सकता है, पक्ष भी अनेकार्थक हो सकता है और मध्यस्थ-पद अथवा हेतु भी अनेकार्थक हो सकता है। अतः तीन प्रकार के अनेकार्थक दोष हो सकते हैं, यथा, अनेकार्थक साध्य (Ambiguous Major), अनेकार्थक पक्ष (Ambiguous Minor) तथा अनेकार्थक हेतु (Ambiguous Middle)।

अनेकार्थक दोष

उदाहरण —

(क) अनेकार्थक साध्य (Ambiguous Major)

(१) धोबी की पत्नी स्त्री (Iron) नहीं है।

धोविन धोबी की पत्नी है।

∴ धोविन स्त्री (औरत) नहीं है।

इस युक्ति में अनेकार्थक साध्य का दाख है, क्योंकि स्त्री साध्य है, जिसका अर्थ साध्यवाक्य में तो कपड़ा कटा उन्नत 'आयरन' है और निष्कर्ष में 'औरत' है।

अनेकार्थक साध्य

(ख) अनेकार्थक पक्ष (Ambiguous Minor)

(१) जलाशय मछलियों का घर है।

चश्मा (जलमोत) जलाशय है।

∴ चश्मा (ऐनक) मछलियों का घर है।

अनेकार्थक पक्ष

यहाँ पक्ष 'चश्मा' दो अर्थों, यथा जलस्रोत' तथा 'ऐनक', में प्रयुक्त हुआ है, अतः इस युक्ति में अनेकार्थक पक्ष का दोष है।

(२) कोई मनुष्य उडनेवाला नहीं है।

सब 'द्विज' मनुष्य हैं।

∴ कोई 'द्विज' उडनेवाला नहीं है।

इस युक्ति में अनेकार्थक पक्ष का दोष है, क्योंकि 'द्विज' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त किया गया है—पक्षवाक्य में 'द्विज' का अर्थ 'ब्राह्मण' तथा निष्कर्ष में 'पक्षी' है।

अनेकार्थक
हेतु

(ग) अनेकार्थक हेतु (Ambiguous Middle)

(१) द्विज (ब्राह्मण) जनेऊधारी है।

पक्षी द्विज (दो बार जन्म लेनेवाले) है।

∴ पक्षी जनेऊधारी है।

यहाँ मध्यस्थ पद अथवा हेतु दो अर्थवाला है—'ब्राह्मण' तथा 'दो बार जन्म लेनेवाले'। अतः अनेकार्थक-हेतु का दोष हुआ।

(२) सब 'आचार्य' पंडित होते हैं।

यह ब्राह्मण आचार्य हैं।

∴ यह ब्राह्मण पंडित हैं।

इस युक्ति में भी अनेकार्थक-हेतु का दोष है, क्योंकि मध्यस्थ-पद अथवा हेतु 'आचार्य' दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। साध्यवाक्य में तो 'आचार्य' का अर्थ है 'आचार्य-परीक्षा पास' तथा पक्षवाक्य में आचार्य का अर्थ है 'कर्म करानेवाला'।

तीन तर्क-
वाक्य

नियम (२) : न्यायवाक्य में तीन और केवल तीन तर्क-वाक्य होने चाहिए।

यह भी न्यायवाक्य सम्बन्धी अनुमान का नियम न होकर यह निश्चय करने का नियम है कि दी हुई युक्ति वास्तव में न्याय-वाक्य है भी अथवा नहीं। न्यायवाक्य की परिभाषा से ही यह नियम प्राप्त हो जाता है, अतः इस सम्बन्ध में और कुछ कहना व्यर्थ ही होगा।

नियम (३) मध्यस्थ-पद या हेतु (Middle term) कम से कम एक बार आश्रयवाक्यों में व्याप्त होना चाहिए।

मध्यस्थ पद
(हेतु) कम
से कम एक
बार व्याप्त
होना चाहिए।

यह नितान्त आवश्यक है कि मध्यस्थ-पद अर्थात् हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में से कम से कम एक में व्याप्त हो, अन्यथा हम यह कैसे जान सकते हैं कि एक ऐसा उभयनिष्ठ तत्व है, जो साध्य और पक्ष के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सके? जबतक साध्य तथा पक्ष हेतु के एक ही तथा अनन्य अंश में सम्बन्धित नहीं होंगे, तबतक उनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। हेतु उस सम्बन्ध का बन्धक है, परन्तु यदि हेतु के एक अंश की तो साध्य से तुलना की जाय और उसके किसी दूसरे अंश की पक्ष से तुलना की जाय, तो कोई भी निष्कर्ष सम्भव नहीं हो सकेगा। उदाहरणार्थ —

सब मनुष्य मर्त्य हैं।

सब कुत्ते मर्त्य हैं।

इन तर्कवाक्यों से कोई भी निष्कर्ष प्राप्त नहीं हो सक्त।

टिप्पणी—अव्याप्त-हेतु का दोष।

इस नियम का उल्लंघन करने से अव्याप्त-हेतु का दोष उत्पन्न हो जाता है, जिसके निम्नांकित उदाहरण देखिए —

प्रधान हेतु
का दोष

(१) प्रवेश पानेवाले सब व्यक्ति पुरस्कार-विजेता हैं।

मोहन पुरस्कार-विजेता है।

∴ मोहन प्रवेश पानेवाला व्यक्ति है।

इस युक्ति में अव्याप्त-हेतु का दोष है, क्योंकि हेतु 'पुरस्कार-विजेता' एक बार भी आश्रयवाक्यों में व्याप्त नहीं है।

(२) सब मनुष्य मर्त्य हैं।

सब जानवर मर्त्य हैं।

∴ सब जानवर मनुष्य हैं।

(३) सब घोड़े चतुष्पद हैं।

सब कुत्ते चतुष्पद हैं।

∴ सब कुत्ते घोड़े हैं।

- (४) कुछ अनुष्य नरेग है।
सब खाना पका कर खानेवाले प्राणी अनुष्य है।
∴ सब खाना पकाकर खानेवाले प्राणी नरेग है।
- (५) सब ईमानदार व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ है।
यह व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ है।
∴ यह व्यक्ति ईमानदार है।
- (६) सब धर्मात्मा व्यक्ति सुखी है।
सब धनी व्यक्ति सुखी है।
∴ सब धनी व्यक्ति धर्मात्मा है।
- (७) सब ग्रह गोल है।
एक पहिया गोल है।
∴ एक पहिया एक ग्रह है।

नियम (४) : कोई भी पद आश्रयवाक्य में व्याप्त हुए बिना निष्कर्ष में व्याप्त नहीं हो सकता।

पदों की अनियमित व्याप्ति नहीं होनी चाहिए।

न्यायवाक्य निगमनसूलक (deductive) अनुमान है, अतः निष्कर्ष आश्रय से अधिक व्यापक नहीं हो सकता। अतः यदि कोई पद अपने पूर्ण विस्तार में आश्रय में प्रयुक्त न हो, तो वह पूर्ण विस्तार में निष्कर्ष में भी प्रयुक्त न हो सकेगा।

दोष

टिप्पणी—अवैध-साध्य-दोष तथा अवैध-पक्ष-दोष।

अवैध-साध्य

इस नियम का उल्लंघन करने से अवैध-प्रक्रिया (Illicit Process) का दोष हो जाता है। यदि साध्य आश्रय में व्याप्त हुए बिना ही निष्कर्ष में व्याप्त हो जाता है, तो अवैध-साध्य का दोष (Fallacy of Illicit Major) हो जाता है। और यदि पक्ष आश्रय में व्याप्त हुए बिना निष्कर्ष में व्याप्त हो जाता है, तो अवैध-पक्ष का दोष (Fallacy of Illicit Minor) हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरण देखिए —

(क) अवैध-साध्य दोष।

(१) सब गायें चतुष्पद हैं।

कोई भी कुत्ता गाय नहीं है।

∴ कोई भी कुत्ता चतुष्पद नहीं है।

इस युक्ति में अवैध-साध्य-दोष है, क्योंकि साध्य 'चतुष्पद' निष्कर्ष में तो व्याप्त है, परन्तु आश्रय में व्याप्त नहीं है।

- (२) सब हिन्दू आर्य्य हैं।
कोई भी पारसी हिन्दू नहीं है।
∴ कोई भी पारसी आर्य्य नहीं है।
- (३) सब स्पष्टवक्ता व्यक्ति ईमानदार है।
राम स्पष्टवक्ता नहीं है।
∴ राम ईमानदार नहीं है।
- (४) सब कांग्रेसी देशभक्त हैं।
कोई समाजवादी कांग्रेसी नहीं है।
∴ कोई समाजवादी देशभक्त नहीं है।

(ख) अवैध-पक्ष दोष।

अवैध पक्ष

- (१) कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।
सब मनुष्य जन्तु हैं।
∴ कोई भी जन्तु पूर्ण नहीं है।

इस युक्ति में अवैध-पक्ष दोष है, क्योंकि पक्ष 'जन्तु' निष्कर्ष में तो व्याप्त है, परन्तु पक्षवाक्य में व्याप्त नहीं है।

- (२) सब हिन्दू भारतीय हैं।
सब भारतीय जीवधारी हैं।
∴ सब जीवधारी हिन्दू हैं।
- (३) सब जापानी बौद्ध हैं।
सब बौद्ध निरीश्वरवादी हैं।
∴ सब निरीश्वरवादी जापानी हैं।
- (४) सब मनुष्य मर्त्य हैं।
सब मनुष्य विचारशील हैं।
∴ सब विचारशील (व्यक्ति) मर्त्य हैं।
- (५) सब धातुये ताप तथा विद्युत् की सुचालक हैं।
सब धातुये तत्व हैं।
∴ सब तत्व ताप तथा विद्युत् के सुचालक हैं।

दो निषेधा-
त्मक आश्रयों
से कोई
निष्कर्ष नहीं
निकलता।

नियम (५) : दो निषेधात्मक आश्रयों से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

उपपत्ति—निषेधात्मक तर्कवाक्य से यह अर्थ निकलता है कि विधेय उद्देश्य के सम्बन्ध में अस्वीकार किया गया है। और जब दोनों आश्रयवाक्य निषेधात्मक होंगे, तो इसका अर्थ यह होगा, कि न तो साध्य और न पक्ष किसी भी प्रकार हेतु से सम्बन्धित है। जब हेतु का सम्बन्ध न तो साध्य से और न पक्ष से होगा तो इनमें कोई भी सम्बन्ध-बन्धक नहीं होगा। साध्य या पक्ष में से कम से कम जब किसी एक का सम्बन्ध हेतु के साथ होगा, तभी हम उसका दूसरे पद से सम्बन्ध निर्धारित कर सकेंगे। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित दो तर्कवाक्यों को देखिए :—

कोई भी मनुष्य चतुष्पदी नहीं है।

कोई भी चतुष्पदी विचारशील नहीं है।

इनसे कोई भी निष्कर्ष नहीं निकलता।

निषेधात्मक
आश्रयों का
दोष

टिप्पणी—निषेधात्मक आश्रयों का दोष।

इस नियम का उल्लंघन करने से निषेधात्मक आश्रयों का दोष (Fallacy of Negative Premises) हो जाता है, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण में दिखलाया गया है। निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कम से कम एक आश्रय स्वीकारात्मक हो। निम्नलिखित उदाहरण देखिए :—

कोई भी स्कॉटलैण्ड का निवासी इस व्यंग को नहीं समझ सकता।

वह इस व्यंग को नहीं समझ सकता।

∴ वह स्कॉटलैण्ड का निवासी है।

इस युक्ति में निषेधात्मक आश्रयों का दोष है, क्योंकि दोनों आश्रयवाक्य निषेधात्मक हैं।

एक निषेधा-
त्मक आश्रय

नियम (६) : यदि एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो,

तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा और निष्कर्ष को निषेधात्मक सिद्ध करने के लिए एक आश्रय निषेधात्मक होगा।

से निषेधा-
त्मक निष्कर्ष
प्राप्त होता
है

उपपत्ति—नियम (५) के अनुसार दोनो आश्रयवाक्य निषेधात्मक नहीं हो सकते। अतः निष्कर्ष तभी प्राप्त हो सकता है जब कम से कम एक आश्रय स्वीकारात्मक हो। नियम (६) के अनुसार यदि एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। निषेधात्मक आश्रय से केवल यह ज्ञात होता है कि हेतु तथा अन्य पद (साध्य अथवा पक्ष) में कोई सम्बन्ध नहीं है और दूसरे आश्रय से, जो स्वीकारात्मक है, यह ज्ञात होता है कि हेतु तथा दूसरे पद में कोई सम्बन्ध है। इन दोनों से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि दोनों पदों (साध्य तथा पक्ष) में कोई संबंध नहीं है।

इस नियम का विलोम भी शुद्ध होता है, अर्थात् यह सिद्ध करने के लिए कि निष्कर्ष निषेधात्मक है, एक आश्रय निषेधात्मक होना चाहिए। यदि निष्कर्ष निषेधात्मक है, तो इसका यह अर्थ हुआ कि साध्य तथा पक्ष में कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तभी सिद्ध किया जा सकता है, जब एक आश्रय निषेधात्मक हो, जो यह प्रदर्शित करे कि हेतु तथा एक पद (साध्य अथवा पक्ष) में कोई सम्बन्ध नहीं है, एवं एक आश्रय स्वीकारात्मक हो, जो यह प्रदर्शित करे कि हेतु तथा दूसरे पद में कोई सम्बन्ध है।

और इसका
विलोम।

नियम (७) : यदि दोनों आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक हों, तो निष्कर्ष भी स्वीकारात्मक होता है, और यदि निष्कर्ष स्वीकारात्मक हो तो दोनों आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक होते हैं।

दो स्वीका-
रात्मक आ-
श्रय वाक्यों
से स्वीका-
रात्मक नि-
ष्कर्ष प्राप्त
होता है

उपपत्ति—यदि दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक हों, तो इसका यह अर्थ होगा कि हेतु का साध्य तथा पक्ष दोनों से सम्बन्ध है और इस बात से यह निष्कर्ष अनिवार्यतः प्राप्त हो जाता है कि साध्य तथा पक्ष में सम्बन्ध है।

यदि निष्कर्ष स्वीकारात्मक हो, तो दोनो आश्रयवाक्य भी स्वीकारात्मक होंगे। यदि दोनो आश्रय स्वीकारात्मक नहीं होंगे, तो या तो वे दोनों निषेधात्मक होंगे अथवा उनमें से एक निषेधात्मक तथा दूसरा स्वीकारात्मक होगा। यदि दोनो आश्रय-

और इसका
विलोम।

वाक्य निषेधात्मक होंगे, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकेगा ; और यदि उनमें से कोई एक निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक हो जायेगा । अतः निष्कर्ष स्वीकारात्मक तभी हो सकता है, जब दोनों आश्रय स्वीकारात्मक हों ।

दो विशेष
आश्रयवाक्यों
से कोई
निष्कर्ष नहीं
निकलता ।

नियम (८) : यदि दोनों आश्रय विशेष हों, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकलता ।

उपपत्ति—इन नियमों को निम्न प्रकार में निरूपित किया जा सकता है.—

यदि दोनों आश्रयवाक्य विशेष हों, तो उनके संभावित युग्म 'ई-ई' (I-I), 'ई-ओ' (I-O), 'ओ-ई' (O-I) तथा 'ओ-ओ' (O-O) हो सकते हैं । अब हम इन चारों पर पृथक्-पृथक् विचार करेंगे ।

'ई-ई' (I-I) से कोई सिद्ध निष्कर्ष नहीं प्राप्त होता, क्योंकि 'ई' (I) तर्कवाक्य में न तो उद्देश्य और न विधेय व्याप्त होता है । अतः यदि दोनों आश्रयवाक्य 'ई' (I) तर्कवाक्य होंगे, तो दोनों आश्रयों में कोई भी पद व्याप्त नहीं होगा । परन्तु नियम (३) के अनुसार, मध्यस्थ-पद अर्थात् हेतु कम से कम एक बार आश्रय में व्याप्त होना चाहिए । अतएव यदि दोनों आश्रयवाक्य 'ई' (I) होंगे, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा ।

'ई-ओ' (I-O) तथा 'ओ-ई' (O-I)

यदि एक आश्रय 'ई' (I) हो तथा दूसरा 'ओ' (O) हो, तो दोनों आश्रयों में केवल एक ही पद व्याप्त हो सकेगा । यह पद मध्यस्थपद अर्थात् हेतु होना चाहिए, अन्यथा अव्याप्त-हेतु का दोष हो जाएगा । परन्तु एक आश्रय निषेधात्मक है; अतः निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा, जिसमें साध्य अर्थात् निष्कर्ष का विधेय निष्कर्ष में व्याप्त हो जायेगा, परन्तु वह साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं होगा । अतः यदि हम कोई निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करेंगे, तो या तो अव्याप्त-हेतु का दोष हो जायेगा अथवा अवैध-साध्य का दोष हो जायेगा ।

'ओ-ओ' (O-O) .—दोनों आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने

के कारण, नियम (५) के अनुसार कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।

अतः दोनों आश्रयवाक्यों के विशेष होने पर कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

नियम (९) यदि एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो निष्कर्ष भी विशेष होगा।

एक आश्रय-
वाक्य विशेष
हो, तो नि-
ष्कर्ष भी दि-
शेष होगा।

उपपत्ति—इस नियम को निम्नलिखित प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है।

यदि एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो दूसरा आश्रयवाक्य सार्वलौकिक होगा। अतः सभावित युग्म निम्नलिखित हो सकते हैं 'आ-ई' (A-I), 'ई-आ' (I-A), 'आ-ओ' (A-O), 'ओ-आ' (O-A), 'ए-ई' (E-I), 'ई-ए' (I-E), 'ए-ओ' (E-O), तथा 'ओ-ए' (O-E)।

इन आठ सभावित युग्मों से हम 'ए-ओ' (E-O) तथा 'ओ-ए' (O-E) को तुरन्त छोड़ सकते हैं, क्योंकि उनमें दोनों आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने के कारण कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। अब हम अन्य युग्मों का पृथक्-पृथक् परीक्षण करेंगे।

'आ-ई' (A-I) तथा 'ई-आ' (I-A)

यदि एक आश्रयवाक्य 'आ' (A) हो तथा दूसरा आश्रयवाक्य 'ई' (I) हो, तो दोनों आश्रयों में केवल एक ही पद व्याप्त होगा, जो मध्यस्थ-पद या हेतु होना चाहिए, अन्यथा अव्याप्त-हेतु का दोष हो जायेगा। अतः निष्कर्ष में कोई भी पद व्याप्त नहीं हो सकता। अतः निष्कर्ष यदि कोई होगा, तो वह 'ई' (I) तर्कवाक्य होगा; क्योंकि उसमें ही कोई पद व्याप्त नहीं होता। अतः निष्कर्ष विशेष होता है।

'आ-ओ' (A-O) और 'ओ-आ' (O-A)

यदि एक आश्रय 'आ' (A) हो, तथा दूसरा 'ओ' (O) हो, तो उनमें केवल दो पद व्याप्त होते हैं—यथा, 'आ' (A) का उद्देश्य तथा 'ओ' (O) का विधेय। इन दोनों पदों में एक हेतु होगा। अतः निष्कर्ष में केवल एक ही पद व्याप्त हो सकता है। परन्तु

एक आश्रय निषेधात्मक होने के कारण निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा, जिसका विधेय व्याप्त होगा, अर्थात् साध्य व्याप्त होगा। हम ऊपर कह चुके हैं कि निष्कर्ष में केवल एक ही पद व्याप्त हो सकता है, और वह पद साध्य होगा। अतः पक्ष निष्कर्ष में अव्याप्त होगा। इसलिए निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा, जो विशेष है।

‘ए-ई’ (E-I) और ‘ई-ए’ (I-E)

इनके आश्रयवाक्यों में केवल दो पद व्याप्त होते हैं—यथा, ‘ए’ (E) तर्कवाक्य के उद्देश्य तथा विधेय। इनमें से एक हेतु होगा और दूसरा साध्य होगा क्योंकि निष्कर्ष निषेधात्मक होने के कारण अपने विधेय अर्थात् साध्य को व्याप्त करेगा। अतः निष्कर्ष में उद्देश्य व्याप्त नहीं होता। दूसरे शब्दों में, यदि कोई निष्कर्ष निकल सकता है, तो वह ‘ओ’ (O) होगा, जो विशेष है। [नियम (१०) में हम देखेंगे कि ‘ई-ए’ से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।]

इस नियम से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि निष्कर्ष सार्वलौकिक हो, तो दोनों आश्रय भी सार्वलौकिक होने चाहिए। क्योंकि यदि एक आश्रय विशेष होगा तो निष्कर्ष भी विशेष होगा। अतः सार्वलौकिक निष्कर्ष तभी प्राप्त होता है, जब आश्रय स्वीकारात्मक हो।

इस नियम का विलोम शुद्ध नहीं होता, अर्थात् यह बात शुद्ध नहीं होती कि यदि निष्कर्ष विशेष हो तो आश्रय भी विशेष होंगे। ऐसा भी हो सकता है कि दोनों आश्रयवाक्य सार्वलौकिक हों, परन्तु तो भी उनसे विशेष निष्कर्ष निकले।

यदि साध्य-
वाक्य विशेष
तथा पक्ष-
वाक्य निषे-
धात्मक हो
तो कोई
निष्कर्ष नहीं
निकलता।

नियम (१०) यदि साध्यवाक्य विशेष हो, तथा पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

उपपत्ति—यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होगा तथा निष्कर्ष निषेधात्मक होगा। निष्कर्ष के निषेधात्मक होने के कारण उसमें साध्य व्याप्त होगा। परन्तु साध्यवाक्य में, उसके विशेष स्वीकारात्मक होने के कारण, कोई भी पद व्याप्त नहीं है। अतः यदि कोई निष्कर्ष निकालने का

प्रयत्न किया जाय, तो अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है।

यह बात द्रष्टव्य है कि अन्तिम चार नियम पहले चार नियमों के द्वारा ही प्राप्त हो जाते हैं। अन्तिम चार नियमों में से किसी एक का उल्लंघन पहले के किन्हीं नियमों के उल्लंघन का परिणाम होता है। अतः पहले छ नियमों को प्रधान नियम, तथा अन्तिम चार नियमों को अप्रधान नियम मानते हैं।

सारांश : पहले दो नियमों का सम्बन्ध न्यायवाक्य की रचना से है ; तीसरे और चौथे नियमों का सम्बन्ध पक्ष व्याप्ति के प्रश्न से है, पाँचवाँ, छठा और सातवाँ नियम घटक-तर्कवाक्यों के गुण से सम्बन्ध रखता है, आठवे और नवे नियमों का सम्बन्ध घटक-तर्कवाक्यों के परिभाषण से है और दसवाँ नियम परिभाषण तथा गुण दोनों के मिश्रित-प्रश्न से सम्बन्धित है।

§ ८. न्यायवाक्य के “आकार” (Figures)

‘आकार’ (Figure) न्यायवाक्य का वह रूप है, जिसका निर्णय साध्य और पक्ष के सम्बन्ध में हेतु के आश्रयवाक्यों में स्थान से किया जाता है।

न्यायवाक्य का आकार हेतु के स्थान से निश्चित होता है।

हेतु साध्यवाक्य तथा पक्षवाक्य दोनों में उपस्थित होता है, परन्तु प्रत्येक न्यायवाक्य में हेतु का स्थान एक-सा नहीं होता। दोनों आश्रयवाक्यों में हेतु का स्थान चार प्रकार से भिन्न होता है। अतः न्यायवाक्य के चार आकार होते हैं —

(१) प्रथम आकार (First Figure)

प्रथम आकार में हेतु साध्यवाक्य का उद्देश्य तथा पक्षवाक्य का विधेय होता है। अतः

‘म’ ‘वि’

‘उ’ ‘म’

‘उ’ ‘वि’ ।

(२) द्वितीय आकार (Second Figure) :

द्वितीय आकार में, हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में विधेय होता है।

इस प्रकार,

‘वि’ ‘म’
‘उ’ ‘म’
∴ ‘उ’ ‘वि’ ।

(३) तृतीय आकार (Third Figure) .

तृतीय आकार में, हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में उद्देश्य होता है।

इस प्रकार,

‘म’ ‘वि’
‘म’ ‘उ’
∴ ‘उ’ ‘वि’ ।

(४) चतुर्थ आकार (Fourth Figure)

चतुर्थ आकार में, हेतु साध्यवाक्य का विधेय तथा पक्षवाक्य का उद्देश्य होता है। इस प्रकार,

‘वि’ ‘म’
‘म’ ‘उ’
∴ ‘उ’ ‘वि’ ।

§ ९. न्यायवाक्य के “संयोग” (Moods)

‘संयोग’ शब्द का उपयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया जाता है।

(१) केवल
आश्रयवाक्यों
के आधार
पर ६४
संयोग

(१) न्यायवाक्य का संयोग (Mood) उस रूप को कहते हैं, जिसका निर्णय घटक आश्रयवाक्यों के गुण तथा परिमाण के आधार पर किया जाता है।

हमें ज्ञात है कि तर्कवाक्य चार प्रकार के होते हैं, यथा—
‘अ’ (A), ‘ए’ (E), ‘ई’ (I) और ‘ओ’ (O) । और प्रत्येक न्यायवाक्य में दो आश्रयवाक्य होते हैं। अतः प्रत्येक आकार में सोलह संभावित संयोग होते हैं। यथा—

आ-आ	ए-आ	ई-आ	ओ-आ
आ-ए	ए-ए	ई-ए	ओ-ए
आ-ई	ए-ई	ई-ई	ओ-ई
आ-ओ	ए-ओ	ई-ओ	ओ-ओ

आकार चार होते हैं, इसलिए कुल मिलाकर $१६ \times ४ = ६४$ संयोग संभव हैं।

अत यदि हम आश्रयवाक्यों के गुण तथा परिमाण के आधार पर ही संयोग बनाये, तो प्रत्येक आकार में १६ संयोग हो सकते हैं, तथा चारों आकारों में मिलाकर ६४ संयोग संभव हैं।

(२) अधिक व्यापक अर्थ में, 'संयोग' से तात्पर्य न्याय-वाक्य के उस रूप से होता है, जिसका निर्णय न्यायवाक्य के घटक-अवयवों (दोनों आश्रयवाक्य तथा निष्कर्ष) के गुण तथा परिमाण के आधार पर किया जाता है।

(२) तीनों तर्कवाक्यों के आधार पर २५६ संयोग

इस दृष्टिकोण से उपर्युक्त ६४ संयोगों में से प्रत्येक के चार रूप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, प्रथम आकार में 'आ-आ' का संयोग निम्नलिखित चार रूप ले सकता है —

आ-आ-आ
आ-आ-ए
आ-आ-ई
आ-आ-ओ।

अत इस दृष्टिकोण से $६४ \times ४ = २५६$ संयोग चारों आकारों में हो सकते हैं।

(३) कुछ तर्कशास्त्री 'संयोग' शब्द को बड़े सकीर्ण अर्थ में प्रयुक्त करते हैं और उससे उनका तात्पर्य सिद्ध संयोग (valid moods) होता है, अर्थात् वे संयोग जिनसे विशुद्ध निष्कर्ष निकले। हम आगे चलकर देखेंगे कि चारों आकारों में, केवल आश्रयवाक्यों के आधार पर कुल मिलाकर केवल १९ सिद्ध संयोग हैं। यथा—

यदि केवल आश्रयों पर विचार करें तो ६४ में से केवल १९ संयोग सिद्ध हैं।

आ-आ; ए-आ, आ-ई; ए-ई, — प्रथम आकार ।
 ए-आ, आ-ए, ए-ई; आ-ओ; — द्वितीय आकार ।
 आ-आ; ई-आ; आ-ई; ए-आ, ओ-आ, ए-ई, — तृतीय आकार ।
 आ-आ, आ-ए, ई-आ; ए-आ; ए-ई; — चतुर्थ आकार ।

यह बात द्रष्टव्य है कि इन उन्नीस सिद्ध संयोगों में से 'ए-आ' तथा 'ए-ई' चारों आकारों में उपस्थित हैं। अर्थात् 'ए-आ' तथा 'ए-ई' से चारों आकारों में विशुद्ध निष्कर्ष निकलता है।

परन्तु यदि हम तीनों घटक तर्कवाक्यों के अनुसार देखें तो २४ सिद्ध-संयोग होंगे।

आ-आ-आ, आ-आ-ई, ए-आ-ए, ए-आ-ओ; आ-ई-ई; ए-ई-ओ,
 — प्रथम आकार ।
 ए-आ-ए; ए-आ-ओ; आ-ए-ए, आ-ए-ओ, ए-ई-ओ, आ-ओ-ओ,
 — द्वितीय आकार ।
 आ-आ-ई, ई-आ-ई, आ-ई-ई, ए-आ-ओ; ओ-आ-ओ, ए-ई-ओ;
 — तृतीय आकार ।
 आ-आ-ई, आ-ए-ए; आ-ए-ओ; ई-आ-ई; ए-आ-ओ; ए-ई-ओ,
 — चतुर्थ आकार ।

यह बात द्रष्टव्य है कि 'ए-आ-ओ' तथा 'ए-ई-ओ' चारों आकारों में सिद्ध है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि संयोगों की सिद्धि किस प्रकार जात की जाती है।

यदि हम § १०. सिद्ध-संयोगों को जात करना

केवल आश्रय वाक्यों पर ही विचार करें, तो १६ संभावित संयोग होते हैं जिनमेंसे ८ से किसी भी आकार

यदि 'संयोग' से तात्पर्य न्यायवाक्य के उन रूपों को समझा जाय जिनका निर्णय आश्रयवाक्यों के गुण तथा परिमाण के आधार पर किया जाय, तो प्रत्येक आकार में १६ संयोग होते हैं। यथा—

'आ'-आ'	'ए'-आ'	'ई'-आ'	'ओ'-आ'
'आ'-ए'	'ए'-ए'	'ई'-ए'	'ओ'-ए'
'आ'-ई'	'ए'-ई'	'ई'-ई'	'ओ'-ई'
'आ'-ओ'	'ए'-ओ'	'ई'-ओ'	'ओ'-ओ'

इन सोलह सभावित संयोगो में से 'ए-ए' (E-E), 'ए-ओ' (E-O), 'ओ-ए' (O-E), तथा 'ओ-ओ' (O-O) से किसी भी आकार में निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि दोनों आश्रयवाक्य निषेधात्मक हैं। और 'ई-ई' (I-I), 'ई-ओ' तथा 'ओ-ई' (O-I) से भी किसी आकार में विशुद्ध निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि दोनों आश्रयवाक्य विशेष हैं। 'ई-ए' (I-E) से भी कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता, क्योंकि साध्यवाक्य विशेष है, तथा पक्षवाक्य निषेधात्मक है, (नियम १०)। अतः सोलह संभावित संयोगो में से आठ से किसी भी आकार से निष्कर्ष नहीं निकलता।

में निष्कर्ष नहीं निकलता।

अब हम यह देखेंगे कि शेष आठ संयोगो यथा—'आ'-'आ' (A-A), 'आ'-'ए' (A-E), 'आ'-'ई' (A-I), 'आ'-'ओ' (A-O), 'ए'-'आ' (E-A), 'ए'-'ई' (E-I), 'ई'-'आ' (I-A), तथा 'ओ'-'आ' (O-A) से कौन-कौन से निष्कर्ष निकलते हैं और उनसे से कौन से निष्कर्ष विशुद्ध अथवा सिद्ध हैं।

(एक) प्रथम आकार के सिद्ध-संयोग :

प्रथम आकार

प्रथम आकार में, हेतु साध्यवाक्य में उद्देश्य तथा पक्षवाक्य में विधेय होता है।

(१) 'आ'-'आ' .

'आ-आ-आ'
(वार्त्ता)

'आ' सब 'म' 'वि' है। सब मनुष्य मर्त्य है।

'आ' सब 'उ' 'म' है। सब नरेश मनुष्य है।

∴ 'आ' सब 'उ' 'वि' है। ∴ सब नरेश मर्त्य है।

इसमें दोनों आश्रय स्वीकारात्मक हैं, अतः यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह स्वीकारात्मक होगा। हेतु साध्यवाक्य में व्याप्त है। निष्कर्ष में 'आ'—तर्कवाक्य रखने से न्यायवाक्य के किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि पक्ष, जो कि निष्कर्ष में व्याप्त है, वह पक्षवाक्य में भी व्याप्त है। अतः 'आ-आ' से

प्रथम आकार में 'आ'-निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को 'बार्बारा' (Barbara) कहते हैं।

'आ' - 'ए'
(कोई नि-
ष्कर्ष नहीं)

(२) 'आ'-'ए' :

'आ' : सब 'म' 'वि' है।

'ए' : कोई भी 'उ' 'म' नहीं है।

इनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह निषेधात्मक होगा, इसलिए साध्य 'वि', जो कि साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं है, निष्कर्षमें व्याप्त हो जायेगा। अतः 'आ'-'ए' प्रथम आकारमें सिद्ध-सयोग नहीं है।

(३) 'आ'-'ई' :

'आ-ई - ई'
(दारीई)

'आ' सब 'म' 'वि' है। सब मनुष्य विचारशील है।

'ई' : कुछ 'उ' 'म' है। कुछ जीव मनुष्य है।

∴ 'ई' : कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ जीव विचारशील है।

इसमें दोनों आश्रय स्वीकारात्मक हैं, और एक आश्रय विशेष है, अतः निष्कर्ष विशेष स्वीकारात्मक होगा अर्थात् 'ई' (I) होगा। हेतु साध्यवाक्य में व्याप्त है और निष्कर्ष में कोई भी पद व्याप्त नहीं है। अतः 'आ'-'ई' से प्रथम आकार में 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को 'दारीई' (Darrii) कहते हैं।

(४) 'आ'-'ओ' :

'आ - ओ'
(कोई नि-
ष्कर्ष नहीं)

'आ' सब 'म' 'वि' है।

'ओ' : कुछ 'उ' 'म' नहीं है।

इनसे प्रथम आकार में कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। एक आश्रयवाक्य के निषेधात्मक होने के कारण यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह निषेधात्मक होगा, जिसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा। परन्तु साध्य साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं है। अतः प्रथम आकार में 'आ'-'ओ' सिद्ध-सयोग नहीं है।

'ए-आ-ए'
(केलारेट)

(५) 'ए'-'आ' :

'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नहीं है। कोई भी जीव अमर नहीं है।

‘आ’ . सब ‘उ’ ‘म’ है। सब मनुष्य जीव है।

∴ ‘ए’ . कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है ∴ कोई भी मनुष्य अमर नहीं है।

इसमें एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। यदि निष्कर्ष ‘ए’ (E) आकार में निकाले, तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि हेतु साध्यवाक्य में व्याप्त है और साध्य तथा पक्ष, जो कि निष्कर्ष में व्याप्त है, वे आश्रयो में भी व्याप्त है। अतः ‘ए-आ’ से प्रथम आकार में ‘ए’ निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को ‘केलारेन्ट’ (Celaient) कहते हैं।

(६) ‘ए’-‘ई’ :

‘ए’ : कोई भी ‘म’ ‘वि’ नहीं है। कोई भी चतुष्पद मनुष्य नहीं है।

‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘म’ है। कुछ जन्तु चतुष्पद है।

∴ ‘ओ’ : कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है। ∴ कुछ जन्तु मनुष्य नहीं है।

एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक तथा दूसरा विशेष होने के कारण यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह विशेष-निषेधात्मक अर्थात् ‘ओ’ (O) हो सकता है। निष्कर्ष में ‘ओ’ तर्कवाक्य रखने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि हेतु साध्यवाक्य में व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष में व्याप्त है, वह साध्यवाक्य में भी व्याप्त है। अतः ‘ए’-‘ई’ (E-I) से प्रथम आकार में ‘ओ’ (O) निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को ‘फेरीओ’ (Ferio) कहते हैं।

(७) ‘ई’-‘आ’ .

‘ई’ कुछ ‘म’ ‘वि’ है।

‘आ’ सब ‘उ’ ‘म’ है।

इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि हेतु किसी भी आश्रय में व्याप्त नहीं है। अतः ‘ई’-‘आ’ प्रथम आकार में सिद्ध-सयोग नहीं है।

‘ए’-‘ई’ - ‘ओ’
(फेरीओ)

‘ई’-‘आ’ से
कोई निष्कर्ष
नहीं निकलता।

‘ओ’-‘आ’ से
कोई निष्कर्ष
नहीं निक-
लता ।

(८) ‘ओ-‘आ’ .

‘ओ’ . कुछ ‘म’ ‘वि’ नहीं है ।
∴ ‘आ’ सब ‘उ’ ‘म’ है ।

इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि हेतु एक बार भी आश्रय में व्याप्त नहीं है । अतः ‘ओ-आ’ प्रथम आकार में सिद्ध-संयोग नहीं है ।

अतः प्रथम आकार में केवल चार संयोगों से विशुद्ध निष्कर्ष निकलता है । यथा—‘आ-आ’ (बार्बारा), ‘ए-आ’ (कैलारेन्ट), ‘आ-ई’ (दारीई) तथा ‘ए-ई’ (फेरीओ) ।

टिप्पणी १ : प्रथम आकार के विशेष नियम ।

प्रथम आकार के विशेष नियम निम्नलिखित हैं :—

- (१) साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए ।
- (२) पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए ।

नियम (१) साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए ।

उपपत्ति—यदि साध्यवाक्य सार्वलौकिक न हो तो वह विशेष होगा । प्रथम आकार में, हेतु साध्यवाक्य का उद्देश्य होता है । साध्यवाक्य विशेष होने के कारण, वह उसमें व्याप्त नहीं होगा । परन्तु हेतु आश्रयवाक्यों में एक बार व्याप्त अवश्य होना चाहिए । यदि वह साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं है, तो वह पक्षवाक्य में व्याप्त होगा । प्रथम आकार में हेतु पक्षवाक्य का विधेय होता है । वह उसमें तभी व्याप्त हो सकता है, जब पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, क्योंकि केवल निषेधात्मक तर्कवाक्यों में ही विधेय व्याप्त होता है । यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा तथा साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होगा ।

हम यह मानकर चले थे कि साध्यवाक्य विशेष है । अब हमें ज्ञात हुआ कि वह स्वीकारात्मक भी है । साध्यवाक्य, विशेष-स्वीकारात्मक होने के कारण, साध्य को व्याप्त नहीं करता । परन्तु साध्य निष्कर्ष में व्याप्त है । अतः यदि हम यह मानकर चलते हैं कि साध्यवाक्य विशेष है, तो अन्त में अद्वैत-साध्य का:

दोष हो जाता है। इसलिए साध्यवाक्य विशेष नहीं हो सकता, वह सार्वलौकिक (सामान्य) ही होगा।

नियम (२) . पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होता चाहिए।

यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक न हो, तो वह निषेधात्मक होगा। यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा तथा साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होगा। प्रथम आकार में साध्य साध्यवाक्य का विधेय होता है। साध्यवाक्य के स्वीकारात्मक होने के कारण उसमें साध्य व्याप्त नहीं होगा। परन्तु निष्कर्ष में, उसके निषेधात्मक होने के कारण, साध्य व्याप्त होगा। अतः यह मानकर चलने से कि पक्षवाक्य निषेधात्मक होगा, अव्याप्तमाध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है। अतः पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होता चाहिए।

टिप्पणी २ : प्रथम आकार की विशेषताये।

प्रथम आकार में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(१) अरस्तू का सिद्धान्त (Dictum de omni et nullo) प्रथम आकार में सरलता से लागू होता है। यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि अपने पूर्ण निर्देश में किसी पद का विधान किया जाता है। दूसरे शब्दों में, साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए। दूसरा आश्रय यह बतलाता है कि व्याप्त पद में कुछ वस्तुएँ सम्मिलित हैं। दूसरे शब्दों में, पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए। ये दोनों गते प्रथम आकार में सरलता में चरितार्थ होती हैं।

(२) प्रथम आकार ही ऐसा आकार है, जिसका निष्कर्ष 'आ' (A) तर्कवाक्य हो सकता है।

(३) प्रथम आकार ही ऐसा आकार है, जो चारों प्रकार के तर्कवाक्य—यथा, 'आ' (A), 'ए' (E), 'ई' (I), तथा 'ओ' (O) सिद्ध करता है।

(४) प्रथम आकार में न तो साध्य और न पक्ष के स्थानों में परिवर्तन होता है। क्योंकि आश्रयवाक्यों में तथा निष्कर्ष में पक्ष तो उद्देश्य होता है, तथा साध्य विधेय होता है।

(दो) द्वितीय आकार के सिद्ध-सयोग—

द्वितीय आकार मे, हेतु दोनो आश्रयवाक्यों का विधेय होता है।

अब हम आठो मयोगो का पृथक-पृथक अध्ययन करेंगे।

‘आ-आ’ से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

(१) ‘आ-आ’ :

‘आ’ सब ‘वि’ ‘म’ है।

‘आ’ सब ‘उ’ ‘म’ है।

इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि हेतु एक बार भी आश्रयवाक्यों मे व्याप्त नहीं है। अतः द्वितीय आकार मे ‘आ-आ’ से विशुद्ध निष्कर्ष नहीं प्राप्त होता।

‘आ-ए-ए’
(कामेस्ट्रेस)

(२) ‘आ-ए’ :

‘आ’ : सब ‘वि’ ‘म’ है।

सब धातुये तत्व है।

‘ए’ कोई भी ‘उ’ ‘म’
नहीं है।

कोई भी यौगिक तत्व नहीं है।

∴ ‘ए’ कोई भी ‘उ’ ‘वि’
नहीं है।

कोई भी यौगिक धातु नहीं है।

इसमे एक आश्रयवाक्य निपेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष भी निपेधात्मक होगा। यदि हम निष्कर्ष ‘ए’ निकाले, तो न्याय-वाक्य के किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि हेतु पक्षवाक्य मे व्याप्त है और साध्य तथा पक्ष, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वे आश्रयो मे भी व्याप्त है। अतः ‘आ-ए’ से द्वितीय आकार मे ‘ए’ निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को कामेस्ट्रेस (Camestres) कहते है।

‘आ-ई’ से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

(३) ‘आ-ई’

‘आ’ . सब ‘वि’ ‘म’ है।

‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘म’ है।

इससे कोई कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि हेतु दोनो आश्रय वाक्यों मे अव्याप्त है। अतः द्वितीय आकार मे ‘आ-ई’ से विशुद्ध निष्कर्ष नहीं प्राप्त होता।

(४) 'आ-ओ' :

'आ' सब 'वि' 'म' है। सब घोड़े चतुष्पद हैं।

'ओ' कुछ 'उ' 'म' नहीं है। कुछ जन्तु चतुष्पद नहीं है।

.. 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है ∴ कुछ जन्तु घोड़े नहीं है।

'आ-ओ-ओ'
(बानेबाने)

इसमें एक आश्रयवाक्य के विशेष निषेधात्मक होने के कारण निष्कर्ष भी विशेष तथा निषेधात्मक हो सकता है। अतः निष्कर्ष 'ओ' निकालने से न्यायवाक्य के किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि हेतु पक्षवाक्य में व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष में व्याप्त है, वह साध्यवाक्य में भी व्याप्त है। अतः 'आ-ओ' से द्वितीय आकार में 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस मित्र-संयोग को 'बारोको' (Baroco) कहते हैं।

(५) 'ए-आ' :

'ए' कोई भी 'वि' 'म' नहीं है। कोई भी पुरुष अविवाहित नहीं है।

'आ' सब 'उ' 'म' है। सब मनुष्य क्षत्रिय हैं।

.. 'ए' कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है। ∴ कोई भी मनुष्य पुरुष नहीं है।

'ए-आ'
(केसारे)

इसका निष्कर्ष निषेधात्मक होगा, क्योंकि एक उल्लंघनात्मक निषेधात्मक है। निष्कर्ष को 'ए' निकालने पर साध्यवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। क्योंकि हेतु पक्षवाक्य में व्याप्त है, और साध्य तथा पक्ष में कि निष्कर्ष में व्याप्त है, वे अपने आश्रयवाक्यों में भी व्याप्त हैं। अतः 'ए-आ' से द्वितीय आकार में 'ए' निष्कर्ष निकलता है। इन मित्र-संयोग को 'केसारे' (Cesare) कहते हैं।

(६) 'इ-ई'

'इ' कोई भी 'वि' 'म' नहीं है। नाई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है।

'ई' कुछ 'उ' 'म' है। कुछ व्यक्ति पूर्ण हैं।

'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। कुछ व्यक्ति मनुष्य नहीं हैं।

'इ-ई-ई'
(फेनीने)

इसमें एक आश्रय निषेधात्मक है, तथा दूसरा आश्रय विशेष है। अतः यदि कोई निष्कर्ष निकल सकता है, तो वह 'ओ' होगा। 'ओ' निष्कर्ष निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि हेतु साध्यवाक्य में व्याप्त है, तथा साध्य, जो कि निष्कर्ष में व्याप्त है, वह साध्यवाक्य में भी व्याप्त है। अतः 'ए-ई' से द्वितीय आकार में 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को 'फेस्तीनो' (Festino) कहते हैं।

(७) 'ई-आ' :

'ई-आ' से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

'ई' : कुछ 'वि' 'म' है।

'आ' : सब 'उ' 'म' है।

इसमें हेतु एक भी आश्रय में व्याप्त नहीं है, अतः कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

(८) 'ओ-आ' :

'ओ-आ' से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

'ओ' : कुछ 'वि' 'म' नहीं है।

'आ' : सब 'उ' 'म' है।

इसमें यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह विशेष निषेधात्मक होगा क्योंकि एक आश्रयवाक्य विशेष और निषेधात्मक है। निषेधात्मक निष्कर्ष का विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा, परन्तु वह साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं है। अतः द्वितीय आकार में, 'ओ-आ' से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता।

इस प्रकार द्वितीय आकार में केवल चार संयोगों से विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। यथा—'ए-आ' (केसारे) 'आ-ए' (कामेस्ट्रेस), 'ए-ई' (फेस्तीनो) तथा 'आ-ओ' (बारोको)।

टिप्पणी—द्वितीय आकार के विशेष नियम।

द्वितीय आकार के विशेष नियम निम्नलिखित हैं :—

(१) साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

(२) एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होना चाहिए।

नियम (१) : साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

उपपत्ति—यदि साध्यवाक्य सार्वलौकिक नहीं होगा, तो वह विशेष होगा। द्वितीय आकार में, साध्य साध्यवाक्य का उद्देश्य होता है। साध्यवाक्य, विशेष होने के कारण, उसमें साध्य अव्याप्त होता है। अतः साध्य निष्कर्ष में भी व्याप्त नहीं हो सकता, जहाँ वह विधेय के स्थान पर है। अतः निष्कर्ष स्वीकारात्मक होना चाहिए, क्योंकि केवल स्वीकारात्मक तर्कवाक्यों के विधेय ही अव्याप्त होते हैं। निष्कर्ष तभी स्वीकारात्मक होता है, जब दोनों आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक हों। अतः आश्रयवाक्यों के विधेय अव्याप्त होंगे। द्वितीय आकार में हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में विधेय होना है, अतः वह एक बार भी व्याप्त न हो सकेगा।

अतः साध्यवाक्य को विशेष मान लेने से, 'अव्याप्त-हेतु का दोष' (Fallacy of Undistributed Middle) है माना है। अतः साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

नियम (२) : एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होना चाहिए।

उपपत्ति—द्वितीय आकार में हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में विधेय होता है। परन्तु स्वीकारात्मक तर्कवाक्यों के विधेय व्याप्त नहीं होते, पर हेतु कम से कम एक बार अवश्य व्याप्त होना चाहिए। अतः एक आश्रयवाक्य का निषेधात्मक होना अनिवार्य है।

(तीन) तृतीय आकार के सिद्ध-स्थान।

तृतीय आकार में, हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में उद्देश्य होता है।

(१) 'आ-आ' :

'आ' सब 'म' 'वि' है। मध्य मनुष्य विचारग्राहक है।

'आ' सब 'म' 'उ' है। मध्य मनुष्य मर्त्य है।

'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। कुछ मर्त्य (ध्वजिन) मनुष्य हैं।

इसमें दोनों आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक हैं, अतः निष्कर्ष भी स्वीकारात्मक होगा। यदि हम निष्कर्ष में 'आ'-निरुपवाच्य निष्कर्ष

लने का प्रयत्न करे, तो उसमें पक्ष व्याप्त हो जायेगा, यद्यपि वह पक्ष-वाक्य में व्याप्त नहीं होगा। अतः निष्कर्ष 'आ' नहीं हो सकता। परन्तु यदि निष्कर्ष 'ई' निकाला जाय, तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि हेतु दोनों आश्रयों में व्याप्त होता है तथा निष्कर्ष में किसी भी पद की अनियमित-व्याप्ति नहीं होती। अतः तृतीय आकार में 'आ-आ' का निष्कर्ष 'ई' होता है। इस सिद्ध-संयोग को 'दाराप्ती' (Darapti) कहते हैं।

'आ-ए' में
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

(२) 'आ-ए' :

'आ' : सब 'म' 'वि' है।

'ए' : कोई भी 'म' 'उ' नहीं है।

इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह निषेधात्मक होगा। और उसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा, परन्तु साध्य साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं है।

(३) 'आ-ई'

'आ-ई-ई'
(दातीसी)

'आ' : सब 'म' 'वि' है।

कुछ रोग कष्टदायक है।

'ई' : कुछ 'म' 'उ' है।

कुछ रोग उपचारयोग्य है।

'ई' : कुछ 'उ' 'वि' है।

∴ कुछ उपचारयोग्य वस्तुये कष्टदायक है।

इसमें एक आश्रय विशेष है, तथा दोनों आश्रयवाक्यों के स्वीकारात्मक होने के कारण, निष्कर्ष, यदि कोई हो, तो 'ई' हो सकता है। 'ई' निष्कर्ष निकालने से न्यायवाक्य का कोई नियम नहीं टूटता, क्योंकि हेतु साध्यवाक्य में व्याप्त है तथा निष्कर्ष में पदों की अनियमित-व्याप्ति नहीं है। अतः 'आ-ई' से तृतीय आकार में 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को 'दातीसी' (Datisi) कहते हैं।

(४) 'आ-ओ'

'आ-ओ' से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

'आ' : सब 'म' 'वि' है।

'ओ' : कुछ 'म' 'उ' नहीं है।

इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह निषेधात्मक होगा। जिसका विधेय, अर्थात् साध्य व्याप्त हो जाएगा, परन्तु वह साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं है।

(५) 'ए-आ' :

'ए-आ-ओ'
(फेलाप्तोन)

'ए' . कोई भी 'म' 'वि' कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है। नहीं है।

'आ' . सब 'म' 'उ' है। सब मनुष्य विचारणीय है।

∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं ∴ कुछ विचारणीय (व्यक्ति) पूर्ण नहीं है।

इसमें एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने के कारण निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। यदि हम निष्कर्ष 'ए' निकाले, तो उसमें पक्ष व्याप्त हो जायगा, परन्तु वह पक्षवाक्य में व्याप्त नहीं है, लेकिन यदि निष्कर्ष 'ओ' निकाले, तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष में व्याप्त है, वह साध्यवाक्य में भी व्याप्त है। अतः 'ए-आ' में तृतीय आकार में 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को फेलाप्तोन (Felapton) कहते हैं।

(६) 'ए-ई' :

'ए-ई-ओ'
(फेरीनोन)

'ए' कोई भी 'म' 'वि' कोई भी आक्रमण न्याययुक्त नहीं है। नहीं है।

'ई' कुछ 'म' 'उ' है। कुछ आक्रमण सफल होते हैं।

∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'वि' नहीं ∴ कुछ वस्तुयें न्याययुक्त नहीं हैं।

इसमें एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक, तथा दूसरा आश्रयवाक्य विशेष होने के कारण, यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा तो वह विशेष निषेधात्मक ही हो सकता है। निष्कर्ष को 'ओ' निकालने में न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता, अतः

हेतु साध्यवाक्य मे व्याप्त है और साध्य, जो कि निष्कर्ष मे व्याप्त है, वह साध्यवाक्य मे भी व्याप्त है। अत 'ए-ई' से तृतीय आकार मे 'ओ' निष्कर्ष प्राप्त होता है। इस सिद्ध-संयोग को 'फेरीसोन' (Ferison) कहते हैं।

'ई-आ-ई'
(दीसामीस)

(७) 'ई-आ' :

'ई' कुछ 'म' 'वि' है। कुछ मनुष्य चतुर है।

'आ' सब 'म' 'उ' है। सब मनुष्य मर्त्य है।

∴ 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) चतुर है।

इसमे एक आश्रयवाक्य विशेष है, तथा दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक है, अत यदि कोई निष्कर्ष निकल सकता है, तो वह 'ई' होगा। निष्कर्ष 'ई' निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। अत. तृतीय आकार मे 'ई-आ' से 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को 'दीसामीस' (Disamis) कहते हैं।

'ओ आ ओ'
(बोकार्दो)

(८) 'ओ-आ' :

'ओ' कुछ 'म' 'वि' कुछ मनुष्य चतुर नहीं है।

'आ' सब 'म' 'उ' है। सब मनुष्य मर्त्य है।

∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। ∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) चतुर नहीं है।

इसमे एक आश्रयवाक्य विशेष निषेधात्मक है, अत निष्कर्ष 'ओ' हो सकता है। 'ओ' निष्कर्ष निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। अत. 'ओ-आ' से तृतीय आकार मे 'ओ' निष्कर्ष प्राप्त होता है। इस सिद्ध-संयोग को 'बोकार्दो' (Bocardo) कहते हैं।

अत. तृतीय आकार मे छ संयोगो से विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त होता है, यथा—'आ-आ' (दाराप्ती), 'ई-आ' (दीसामीस), 'आ-ई' (दातीसी), 'ए-आ' (फेलाप्तोन्), 'ओ-आ' (बोकार्दो) तथा 'ए-ई' (फेरीसोन्)।

टिप्पणी—तृतीय आकार के विशेष नियम ।

तृतीय आकार के विशेष नियम निम्नलिखित है :—

(१) पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए ।

(२) निष्कर्ष विशेष होना चाहिए ।

नियम (१) : पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए ।

उपपत्ति—यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक न हो तो वह निषेधात्मक होगा । यदि पक्षवाक्य निषेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए तथा निष्कर्ष निषेधात्मक होना चाहिए । तृतीय आकार में, साध्य साध्यवाक्य का विधेय होता है । साध्यवाक्य स्वीकारात्मक होने के कारण, उसमें साध्य व्याप्त नहीं हो सकता । परन्तु निष्कर्ष के निषेधात्मक होने के कारण साध्य उसमें व्याप्त है । अतः पक्षवाक्य को निषेधात्मक मान लेने से अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है । अतः पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए ।

नियम (२) : निष्कर्ष विशेष होना चाहिए ।

उपपत्ति—तृतीय आकार में पक्ष पक्षवाक्य का विधेय है । नियम (१) के अनुसार, पक्षवाक्य स्वीकारात्मक होना चाहिए । स्वीकारात्मक तर्कवाक्य का विधेय व्याप्त नहीं होता । अतः पक्ष आश्रय में व्याप्त नहीं है, अतः वह निष्कर्ष में भी व्याप्त नहीं हो सकता । पक्ष निष्कर्ष का उद्देश्य होता है और केवल विशेष तर्कवाक्यों के उद्देश्य ही अव्याप्त होते हैं । अतएव निष्कर्ष विशेष होना चाहिए, अन्यथा हम अव्याप्त-हेतु का दोष कर बैठेंगे ।

(चार) चतुर्थ आकार के सिद्ध-संयोग ।

चतुर्थ आकार में हेतु साध्यवाक्य का विधेय तथा पक्षवाक्य का उद्देश्य होता है ।

(१) 'आ-आ'

'आ-आ-ई'
(ब्रामान्तीष)

'आ' सब 'वि' 'म' है । सब मनुष्य जन्तु हैं ।

'आ' सब 'म' 'उ' है । सब जन्तु मर्त्य हैं ।

∴ 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है । ∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) मनुष्य हैं ।

इसमे दोनो आश्रयवाक्य स्वीकारात्मक होने के कारण, निष्कर्ष भी स्वीकारात्मक होगा। यदि हम निष्कर्ष 'आ' निकाले, तो पक्ष बिना पक्षवाक्य से व्याप्त हुए ही निष्कर्ष से व्याप्त हो जायगा। परन्तु यदि निष्कर्ष 'ई' निकाले तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। अतः 'आ-आ' से चतुर्थ आकार में 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को 'ब्रामान्तीप्' (Bramantip) कहते हैं।

'आ-ए-ए'
(कामेनेस्)

(२) 'आ-ए' :

'आ' . सब 'वि' 'म' है।

सब मनुष्य मर्त्य हैं।

'ए' . कोई भी 'म' 'उ' नहीं है।

कोई भी मर्त्य (व्यक्ति) पूर्ण नहीं है।

∴ 'ए' . कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है। ∴ कोई भी पूर्ण (व्यक्ति) मनुष्य नहीं है।

इसमे एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष भी निषेधात्मक होगा। निष्कर्ष 'ए' निकालने से न्यायवाक्य का कोई भी नियम नहीं टूटता। अतः 'आ-ए' का चतुर्थ आकार में 'ए' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को 'कामेनेस' (Camenes) कहते हैं।

'आ-ई' से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

(३) 'आ-ई' .

'आ' . सब 'वि' 'म' है।

'ई' . कुछ 'म' 'उ' है।

हेतु दोनो आश्रयवाक्यों में अव्याप्त है, अतः इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।

'आ-ओ' से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

(४) 'आ-ओ'

'आ' . सब 'वि' 'म' है।

'ओ' . कुछ 'म' 'उ' नहीं है।

इसमे भी हेतु किसी भी आश्रय में व्याप्त नहीं है, अतः कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।

(५) 'ए-आ' :

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' कोई भी चतुष्पद मनुष्य नहीं
नहीं है। है।
'आ' सब 'म' 'उ' है। सब मनुष्य जन्तु है।
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं ∴ कुछ जन्तु चतुष्पद नहीं
है। है।

'ए-आ-ओ'
(फेसापो)

इसमें एक आश्रय निषेधात्मक होने के कारण, निष्कर्ष निषेधात्मक हो सकता है। परन्तु यदि हम 'ए' निष्कर्ष निकाले, तो निष्कर्ष में पक्ष व्याप्त हो जायेगा, परन्तु वह आश्रय में व्याप्त नहीं होगा। परन्तु यदि निष्कर्ष 'ओ' निकाले तो न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। अतः 'ए-आ' से चतुर्थ आकार में 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को 'फेसापो' (Fesapo) कहते हैं।

(६) 'ए-ई'

'ए' कोई भी 'वि' 'म' कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं
नहीं है। है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' है। कुछ पूर्ण (व्यक्ति) विचार-
शील है।
∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं ∴ कुछ विचारशील (व्यक्ति)
है। मनुष्य नहीं है।

'ए-ई-ओ'
(फ्रेसीसोन्)

इसमें एक आश्रय निषेधात्मक तथा दूसरा विशेष होने के कारण, यदि कोई निष्कर्ष निकलेगा, तो वह 'ओ' होगा। निष्कर्ष 'ओ' निकालने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। अतः चतुर्थ आकार में 'ए-ई' का 'ओ' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-संयोग को फ्रेसीसोन् (Fresison) कहते हैं।

(७) 'ई-आ'

'ई' कुछ 'वि' 'म' है। कुछ जीव मनुष्य है।
'आ' सब 'म' 'उ' है। सब मनुष्य मर्त्य है।
∴ 'ई' कुछ 'उ' 'वि' है। ∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) जीव है।

'ई-आ-ई'
(दीमारीस्)

इसमे एक आश्रय विशेष तथा दोनो आश्रय स्वीकारात्मक होने के कारण, निष्कर्ष 'ई' हो सकता है। निष्कर्ष को 'ई' रखने से न्यायवाक्य के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। अतः 'ई-आ' से चतुर्थ आकार मे 'ई' निष्कर्ष निकलता है। इस सिद्ध-सयोग को 'दीमारीस्' (Dimaris) कहते हैं।

'ओ-आ' से
कोई नि-
ष्कर्ष नहीं
निकलता।

(८) 'ओ-आ' .

'ओ' . कुछ 'वि' 'म' नहीं है।

'आ' सब 'म' 'उ' है।

इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, क्योंकि एक आश्रयवाक्य निपेधात्मक होने से यदि कोई निष्कर्ष प्राप्त होगा, वह निपेधात्मक ही होगा, जिसमे साध्य व्याप्त होगा, परन्तु साध्य आश्रय मे व्याप्त नहीं है।

अतः चतुर्थ आकार मे, पाँच सयोगो से विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त होता है, यथा—'आ-आ' (ब्रामान्तीप्), तथा 'आ-ए' (कामेनेस्), 'ई-आ' (दीमारीस्), 'ए-आ' (फेसापो) 'ए-ई' (फेसीसोन्)।

टिप्पणी—चतुर्थ आकार के विशेष नियम।

चतुर्थ आकार के विशेष नियम निम्नलिखित हैं.—

(१) यदि साध्यवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो पक्षवाक्य सार्वलौकिक (सामान्य) होगा।

(२) यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो निष्कर्ष विशेष होगा।

(३) यदि कोई भी आश्रय निपेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य सार्वलौकिक होगा।

नियम (१) : यदि साध्यवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो पक्ष-वाक्य सार्वलौकिक होगा।

चतुर्थ आकार मे, हेतु साध्यवाक्य का विधेय है। अतः यदि साध्यवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो उसमे हेतु व्याप्त नहीं होगा। अतः हेतु पक्षवाक्य मे व्याप्त होना चाहिए। विशेष तर्कवाक्यो के

उद्देश्य व्याप्त नहीं होते। अतः हेतु को पक्षवाक्य में व्याप्त होने के लिए यह आवश्यक है कि पक्षवाक्य सार्वलौकिक हो।

नियम (२) : यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो निष्कर्ष विशेष होगा।

चतुर्थ आकार में, पक्ष पक्षवाक्य में विधेय होता है। यदि पक्षवाक्य स्वीकारात्मक हो, तो उसमें पक्ष अव्याप्त रहेगा, और इस कारण निष्कर्ष में भी व्याप्त न हो सकेगा। निष्कर्ष में पक्ष उद्देश्य होता है और केवल विशेष तर्कवाक्यों के उद्देश्य ही अव्याप्त होते हैं। अतः निष्कर्ष विशेष होगा।

नियम (३) : यदि कोई एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

यदि कोई सा भी आश्रयवाक्य निषेधात्मक होगा, तो निष्कर्ष निषेधात्मक होगा, जिसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त होगा। अतः साध्यवाक्य में साध्य व्याप्त होगा। चतुर्थ आकार में साध्य साध्यवाक्य का उद्देश्य होता है, और केवल सार्वलौकिक तर्कवाक्यों के ही उद्देश्य व्याप्त होते हैं। अतः साध्यवाक्य सार्वलौकिक होना चाहिए।

संक्षेप में यदि 'संयोग' से तात्पर्य न्यायवाक्य के आश्रयों के गुण तथा परिमाण से निर्धारित रूप हो, तो प्रत्येक आकार में १६ संभावित संयोग होते हैं और चारों आकारों में कुल मिलाकर ६४ संयोग होते हैं। इन ६४ संयोगों में से केवल १९ संयोगों से ही विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त होता है—चार प्रथम आकार में, चार द्वितीय आकार में, छः तृतीय आकार में और पाँच चतुर्थ आकार में।

सारांश

§ ११ आकारान्तरण (Reduction) .

—अनुलोम (Direct) तथा प्रतिलोम (Indirect)

आकारान्तरण (Reduction) का शाब्दिक अर्थ होता है 'आकार में परिवर्तन करना।' कुछ तर्कशास्त्री 'आकारान्तरण' शब्द का उपयोग बड़े व्यापक अर्थ में करते हैं। उनके

आकारान्तरण से तात्पर्य अपूर्ण आकारों के

संयोगो को पूर्ण आकार के संयोगों में बदलना है, ताकि उनकी विशुद्धि का प्रदर्शन हो सके।

विचार में 'आकारान्तरण' किसी भी आकार के संयोगों (moods) को किसी अन्य आकार के संयोगों में बदलने को कहते हैं। इस प्रकार, प्रथम आकार के संयोग द्वितीय आकार के संयोगों में आकारान्तरित किये जा सकते हैं। द्वितीय आकार के संयोग तृतीय आकार के संयोगों में आकारान्तरित किये जा सकते हैं, तृतीय आकार के संयोग चतुर्थ आकार के संयोगों में आकारान्तरित किए जा सकते हैं। यही नहीं, वरन किसी भी आकार के संयोगों को किसी अन्य आकार के संयोगों में बदला जा सकता है।

'आकारान्तरण' शब्द का उपयोग सकीर्ण अर्थ में भी किया जाता है। इससे तात्पर्य द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के संयोगों को प्रथम आकार के संयोगों में बदलना होता है।

अरस्तू (Aristotle) ने प्रथम आकार को 'पूर्ण आकार' (perfect figure) माना था, क्योंकि उसका न्यायवाक्य संबंधी सिद्धान्त (Dictum de omni et nullo) उस पर सरलता से लागू हो जाता था। यह सिद्धान्त द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के संयोगों पर सरलता से लागू नहीं होता। अतः उन आकारों को उसने 'अपूर्ण आकार' (imperfect figure) कहा है। परन्तु यदि अपूर्ण आकारों के संयोगों को पूर्ण आकार के संयोगों में आकारान्तरित कर दिया जाय तो अरस्तू का सिद्धान्त उन पर भी लागू किया जा सकता है। अतः आकारान्तरण के द्वारा यथाकथित अपूर्ण आकारों की अपूर्णता दूर की जा सकती है। दूसरे शब्दों में यह सिद्ध हो जाता है कि यद्यपि यह सिद्धान्त यथाकथित अपूर्ण आकारों पर लागू नहीं होता, परन्तु तो भी यह तथ्य कि ये संयोग पूर्ण आकार के संयोगों में बदले जा सकते हैं, यह बतलाता है कि इन संयोगों के निष्कर्ष भी, प्रथम आकार के संयोगों की भाँति, विशुद्ध हैं। अतः आकारान्तरण (Reduc-

tion) का उद्देश्य द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के संयोगों की विशुद्धि को सिद्ध करना है ।

अतएव आकारान्तरण (Reduction) उस क्रिया को कहते हैं जिससे अपूर्ण आकारों (imperfect figures) के संयोग (moods) पूर्ण आकारों (perfect figures) के संयोगों में बदले जा सके, ताकि यथाकथित अपूर्ण आकारों के संयोगों की विशुद्धि सिद्ध की जा सके ।

आकारान्तरण (Reduction) दो प्रकार का होता है :

(क) अनुलोम — (Direct या Ostensive Reduction), जिसमें अपूर्ण आकारों का संयोग, परिवर्तन (Conversion), प्रतिवर्तन (Obversion), परिवर्तित-प्रतिवर्तन (Contraposition) अथवा आश्रय-स्थानान्तरण (Transposition of Premises) के द्वारा अनुलोम रीति में प्राप्त किया जाता है । उसे 'अनुलोम' (direct) इसलिए कहते हैं, कि दिए हुए न्यायवाक्य के आश्रयों के द्वारा दिया हुआ निष्कर्ष तुरन्त प्राप्त हो जाता है ।

अनुलोम
आकारान्तरण

(ख) प्रतिलोम आकारान्तरण (Indirect Reduction) में पूर्ण आकार की सहायता से यह सिद्ध किया जाता है कि अपूर्ण आकारों के निष्कर्ष का विरुद्ध (contradictory) असत्य है, अतः वह निष्कर्ष सत्य होना चाहिए ।

प्रतिलोम
आकारान्तरण

टिप्पणी—क्या आकारान्तरण आवश्यक है ?

अरस्तू के समय में आकारान्तरण (Reduction) ही एक ऐसी क्रिया ज्ञात थी, जिसके द्वारा यथाकथित अपूर्ण आकारों के संयोगों को विशुद्ध सिद्ध किया जा सकता था । अतः यह क्रिया नितान्त रूप से अनिवार्य समझी जाती थी । परन्तु वर्तमान काल में अन्य विधियाँ भी ज्ञात हैं, जिनकी सहायता से न्यायवाक्य की विशुद्धता जाँची जा सकती है, यथा न्यायवाक्य के नामान्वय नियम तथा विशेष नियमों का उपयोग । अतः अब आकारान्तरण

क्या आकार-
ान्तरण अ-
वश्यक है ?

का उतना महत्व नहीं रहा, जितना कि अग्रस्तू के समय में था। अब यह अपूर्ण आकारों के संयोगों की विशुद्धि की जाँच की एकमात्र विधि न होकर अनेकों विधियों में से एक है। यह बात मानते हुए भी, कि आकारान्तरण की क्रिया का महत्व कम हो गया है, यह नहीं सोचना चाहिए कि आकारान्तरण पूर्णरूपेण व्यर्थ है। आकारान्तरण से, एक आकार के संयोगों को दूसरे आकार के संयोगों में बदल सकने के कारण, यह सिद्ध हो जाता है कि विभिन्न आकार यद्यपि भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु वे मूलरूप में अनन्य हैं। अतः आकारान्तरण सब प्रकार के न्यायवाक्य द्वारा अनुमान की क्रियाओं की एकता प्रदर्शित करता है।

§ १२. स्मृति-सहायक छन्द (The Mnemonic Verses)

तेरहवीं शताब्दी के लैटिन-स्कूलमैनो (Latin schoolmen) ने सिद्ध-संयोगों (valid moods) को याद रखने के लिए कुछ स्मृति-सहायक छन्दों (the Mnemonic Lines) की रचना की थी। इन स्मृति-सहायक छन्दों का निर्माण काल्पनिक शब्दों से किया गया था, जिनमें ये आदेश छिपे हुए थे कि द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के संयोगों को प्रथम आकार के संयोगों में किस प्रकार अनुलोम-रीति से आकारान्तरित किया जा सकता है। प्रथम आकार में चार, द्वितीय आकार में चार, तृतीय आकार में छ तथा चतुर्थ आकार में पाँच सिद्ध-संयोग होते हैं। निम्नलिखित छन्द की प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तथा चतुर्थ पक्तियाँ क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आकार के सिद्ध-संयोगों के नाम व्यक्त करती हैं।

बारबारा, केलारेन्ट, दारीड, फेरीओ,
 BARBARA, CELARENT, DARI, FERIO,
 केसारे, कामेस्ट्रेस, फेस्तीनो, वारोको,
 CESARE, CAMESTRES, FESTINO, BAROCO,
 दाराप्ती, दीसामीस, दातीसी, फेलाप्टोन्, बोकार्डो, फेरीसोन्,
 DARAPTI, DISAMIS, DATISI, FELAPTON, BOCARDO, FERISON;
 ब्रामान्तीप, कामेनेस्, दीमारीस, फेसापो, फ्रेसीसोन्।
 BRAMANTIP CAMENES, DIMARIS, FESAPO, FRESISON.

चारों आकार
के सिद्ध
संयोग

इनमें से प्रत्येक शब्द में तीन स्वरों का उपयोग है। पहला स्वर साध्यवाक्य के लिए, दूसरा पक्षवाक्य के लिए और तीसरा सार्थक अक्षर निष्कर्ष के लिए प्रयुक्त है। अर्थात् इन शब्दों में जो स्वर हैं, वे 'सयोग' का संकेत करते हैं। यथा—'बार्बारा' प्रथम आकार में 'आ-आ-आ' सयोग को व्यक्त करता है। इसी प्रकार केलारेट प्रथम आकार में 'ए-आ-ए' सयोग को व्यक्त करता है।

प्रथम आकार के सयोगों के नाम के प्रथम अक्षर अंग्रेजी वर्ण-माला के प्रथम चार व्यंजन हैं—यथा, 'ब' (B), 'क' (C), 'द' (D) तथा 'फ' (F)। 'बरोको' (Baroco) तथा 'बोकार्डो' (Bocardo) के अतिरिक्त, अपूर्ण आकारों के सयोगों के प्रथम अक्षर से यह संकेत मिलता है कि उस सयोग का आकारान्तरण प्रथम आकार के उस सयोग में होगा, जिसका प्रारम्भिक अक्षर भी वही व्यंजन हो। इस प्रकार 'ब्रामान्तीप' (Bramantip) का प्रथम अक्षर 'ब' (B) यह संकेत करता है कि उसका आकारान्तरण (Reduction) बार्बारा (Barbara) में होगा। 'केसारे' (Cesare) का 'क' (C) यह संकेत करता है कि उसका आकारान्तरण 'केलारेट' (Celarent) में होगा। 'दाराप्ती' (Darapti) का 'द' (D) यह संकेत करता है कि उसका आकारान्तरण, 'दारीई' (Darii) में होगा। 'फेस्तीनो' (Festino) का 'फ' (F) यह संकेत करता है कि उसका आकारान्तरण 'फेरीओ' (Ferio) में होगा। इसी प्रकार अन्य सयोगों के आकारान्तरण की बात समझी जा सकती है।

[इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि अंग्रेजी भाषा में तो स्वर (vowels) अलग-अलग स्पष्ट दिखलाई देते हैं, परन्तु हिन्दी में वे पिछले व्यंजनों में मात्रा के रूप में लगे रहते हैं।]

‘स’ (s), पहले आये हुए स्वर द्वारा वतलाये गये तर्कवाक्य के सरल परिवर्तन (Simple Conversion) करने का सकेत देता है।

‘प’ (p), पहले आये हुए स्वर द्वारा वतलाए गये तर्कवाक्य के असरल परिवर्तन (Conversion per accidens) करने का सकेत देता है।

जब ‘स’ (s) तथा ‘प’ (p) तीसरे स्वर के बाद आते हैं, तो उसका अर्थ यह होता है कि नवीन न्यायवाक्य के निष्कर्ष का, अवस्थानुसार, सरल परिवर्तन अथवा असरल परिवर्तन करना है।

‘म’ (m) से तात्पर्य आश्रयवाक्यों का स्थानान्तरण है ; अर्थात् दिए हुए न्यायवाक्य का साध्यवाक्य नये न्यायवाक्य का पक्षवाक्य बन जाता है और दिए हुए न्यायवाक्य का पक्षवाक्य नये न्यायवाक्य का साध्यवाक्य बन जाता है। यह प्रथम आकार (First Figure) में ही होता है।

‘क’ (k) से तात्पर्य इससे पूर्व के तर्कवाक्य का प्रतिवर्तन (obversion) होता है। अतः ‘क्स’ (ks) से यह तात्पर्य है कि पहले प्रतिवर्तन, फिर परिवर्तन, अर्थात् परिवर्तित प्रतिवर्तन। ‘स्क’ (sk) से यह तात्पर्य है कि पहले सरल परिवर्तन, फिर प्रतिवर्तन। यदि ‘स्क’ (sk) तीसरे स्वर के बाद हो, तो इससे यह तात्पर्य होता है कि नये न्यायवाक्य के निष्कर्ष का सरल परिवर्तन होना है, फिर उसका प्रतिवर्तन करना है।

‘क’ (c) यह वतलाता है कि न्यायवाक्य का प्रतिलोम आकारान्तरण होगा। ‘बारोको’ (Baroco) तथा ‘बोकार्दो’ (Bocardo) ही ऐसे दो सयोग हैं, जिनमें ‘क’ (c) अक्षर का प्रयोग होता है। प्राचीन न्यायशास्त्रियों ने उनका आकारान्तरण प्रतिलोम-विधि से किया था। अब यह भी संभव है कि उनका आकारान्तरण अनुलोम विधि से भी हो सके। ऐसी दशा

मे उनको क्रमशः फाक्सोको (Faksoko) तथा 'दोक्सामोस्क' (Doksamosk) कहेंगे ।

अन्य अक्षर, यथा 'र' (r), 'त' (t), 'ल' (l), 'ब' (b), 'द' (d), तथा 'न' (n), अर्थहीन हैं । इनका उपयोग केवल इसलिए किया गया है, कि उच्चारण में सुभीता हो जाय ।

अर्थहीन
अक्षर

§ १३. अपूर्ण आकारों का अनुलोम आकारान्तरण

(एक) द्वितीय आकार के संयोग ।

(१) कैसारे (Cesare) केलारेन्ट (Celarent)

कैसारे

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' (स) कोई भी 'म' 'वि' नहीं
नहीं है । है । 'ए'

'आ' : सब 'उ' 'म' है । सब 'उ' 'म' है । 'आ'

∴ 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' ∴ कोई भी 'उ' 'वि' नहीं
नहीं है । है । 'ए'

(२) कामेस्ट्रेस (Camestres) केलारेन्ट (Celarent)

कामेस्ट्रेस

'आ' : सब 'वि' 'म' है । कोई भी 'म' 'उ' नहीं है 'ए'

'ए' : कोई भी 'उ' 'म' नहीं है सब 'वि' 'म' है । 'आ'

∴ 'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' ∴ कोई भी 'वि' 'उ' नहीं है 'ए'
नहीं है । ∴ कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है ।

(परिवर्तन से)

फेस्तीनो

(३) फेस्तीनो (Festino) फेरीओ (Ferio)

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' (स) कोई भी 'म' 'वि' नहीं
नहीं है । है । 'ए'

'ई' : कुछ 'उ' 'म' है । कुछ 'उ' 'म' है । 'ई'

∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नहीं ∴ कुछ 'उ' 'वि' नहीं है । 'ओ'
है ।

(४) बारोको (Baroco) फेरीओ (Ferio)

बारोको

==फाक्सोको (Faksoko)

'आ' : सब 'वि' 'म' है । (क्स) कोई भी अ-'म' 'वि' नहीं
है । 'ए'

‘ओ’ . कुछ ‘उ’ ‘म’ नहीं है (क) कुछ ‘उ’ अ-‘म’ है। ‘ई’
 ∴ ‘ओ’ कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है ∴ कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है। ‘ओ’

(दो) तृतीय आकार के संयोग

द्वाराप्ती

(१) द्वााराप्ती (Darapti)

द्वारीई (Darii)

‘आ’ . सब ‘म’ ‘वि’ है। . सब ‘म’ ‘वि’ है। ‘आ’

‘आ’ . सब ‘म’ ‘उ’ है। (प) कुछ ‘उ’ ‘म’ है। ‘ई’

∴ ‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘वि’ है। ∴ कुछ ‘उ’ ‘वि’ है। ‘ई’

दीसामीस्

(२) दीसामीस् (Disamis)

द्वारीई (Darii)

‘ई’ . कुछ ‘म’ ‘वि’ है। . सब ‘म’ ‘उ’ है। ‘आ’

‘आ’ . सब ‘म’ ‘उ’ है। . कुछ ‘वि’ ‘म’ है। ‘ई’

∴ ‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘वि’ है। ∴ कुछ ‘वि’ ‘उ’ है। ‘ई’

∴ कुछ ‘उ’ ‘वि’ है।

(परिवर्तन से)

दातीसी

(३) दातीसी (Datisi)

द्वारीई (Darii)

‘आ’ : सब ‘म’ ‘वि’ है। . सब ‘म’ ‘वि’ है। ‘आ’

‘ई’ : कुछ ‘म’ ‘उ’ है। (म) कुछ ‘उ’ ‘म’ है। ‘ई’

∴ ‘ई’ : कुछ ‘उ’ ‘वि’ है। ∴ कुछ ‘उ’ ‘वि’ है। ‘ई’

फेलाप्तोन्

(४) फेलाप्तोन् (Felapton)

फेरीओ (Ferio)

‘ए’ . कोई भी ‘म’ ‘वि’ . कोई भी ‘म’ ‘वि’ नहीं
 नहीं है। है। ‘ए’

‘आ’ . सब ‘म’ ‘उ’ है। (प) कुछ ‘उ’ ‘म’ है। ‘ई’

∴ ‘ओ’ . कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है। ∴ कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है। ‘ओ’

बोकार्दो

(५) बोकार्दो (Bocardo)

द्वारीई (Darii)

—दोक्सामोस् (Doksamosk)

‘ओ’ : कुछ ‘म’ ‘वि’ नहीं है . सब ‘म’ ‘उ’ है। ‘आ’

‘आ’ . सब ‘म’ ‘उ’ है। . कुछ अ-‘वि’ ‘म’ है। ‘ई’

∴ ‘ओ’ : कुछ ‘उ’ ‘वि’ . ∴ कुछ अ-‘वि’ ‘उ’ है। ‘ई’
 नहीं है।

∴ कुछ 'उ' अ-वि' है ।

(परिवर्तन से) ।

∴ कुछ 'उ' 'वि' नहीं है ।

(प्रतिवर्तन से)

(६) फेरीसोन् (Ferison) फेरीओ (Ferio)

फेरीसोन्

'ए' कोई भी 'म' 'वि' कोई भी 'म' 'वि' नहीं है ।
नहीं है ।

'ई' . कुछ 'म' 'उ' है । (स) कुछ 'उ' 'म' है ।

∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'वि' नहीं है ∴ कुछ 'उ' 'वि' नहीं है । 'ओ'

(तीन) चतुर्थ आकार के सयोग

(१) ब्रामान्तीप् (Bramantip) बार्बारा (Barbara)

ब्रामान्तीप्

'आ' : सब 'वि' 'म' है । सब 'म' 'उ' है । 'आ'

'आ' सब 'म' 'उ' है । सब 'वि' 'म' है । 'आ'

∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है । ∴ सब 'वि' 'उ' है । 'आ'

∴ कुछ 'उ' 'वि' है ।

(परिवर्तन से)

(२) कामेनेस् (Camenes) केलारेन्ट (Celarent)

कामेनेस्

'आ' . सब 'वि' 'म' है । कोई भी 'म' 'उ' नहीं है । 'ए'

'ए' . कोई भी 'म' 'उ' सब 'वि' 'म' है । 'आ'

नहीं है ।

∴ 'ए' . कोई भी 'उ' 'वि' ∴ कोई भी 'वि' 'उ' नहीं है । 'ए'

नहीं है ।

∴ कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है ।

(परिवर्तन से)

(३) दीमारीस् (Dimaris) दारीई (Darri)

दीमारीस्

'ई' कुछ 'वि' 'म' है । सब 'म' 'उ' है । 'आ'

'आ' सब 'म' 'उ' है । कुछ 'वि' 'म' है । 'ई'

∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है । ∴ कुछ 'वि' 'उ' है । 'ई'

∴ कुछ 'उ' 'वि' है ।

(परिवर्तन से)

फेसापो

(४) फेसापो (Fesapo) फेरीओ (Ferio)

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' (स) कोई भी 'म' 'वि' नहीं है। 'ए'

'आ' . सब 'म' 'उ' है। (प) कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'

∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'वि' नहीं है ∴ कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। 'ओ'

फ्रेसीसोन्

(५) फ्रेसीसोन् (Fresison) फेरीओ (Ferio)

'ए' . कोई भी 'वि' 'म' (स) कोई भी 'म' 'वि' नहीं है। 'ए'

'ई' . कुछ 'म' 'उ' है। (स) कुछ 'उ' 'म' है। 'ई'

∴ 'ओ' . कुछ 'उ' 'वि' नहीं है ∴ कुछ 'उ' 'वि' नहीं है। 'ओ'

§ १४. सब अपूर्ण आकारों का प्रतिलोम आकारान्तरण

(Indirect Reduction)

प्रतिलोम
आकारान्तरण में मूल
निष्कर्ष के
विरुद्ध को
असत्य सिद्ध
करके मूल
निष्कर्ष को
सिद्ध किया
जाता है ।

उस आकारान्तरण को प्रतिलोम (Indirect) कहते हैं, जिसमें प्रथम आकार का एक ऐसा न्यायवाक्य बना लिया जाता है जो कि मूल निष्कर्ष के सत्य को, उससे विरुद्ध को असत्य सिद्ध करके, सिद्ध किया जाता है। जब मूल निष्कर्ष का विरुद्ध असत्य सिद्ध कर दिया जाता है, तो मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जाता है। इस क्रिया को मूर्खतापूर्ण आकारान्तरण (Reductio ad absurdum) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें यह बात मान कर चलते हैं कि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध (contradictory) सत्य है, परन्तु अन्त में वह मूर्खतापूर्ण तथा असत्य विदित होता है। इसको असंभाव्य आकारान्तरण (Reductio per impossibile) भी कहते हैं।

प्रतिलोम आकारान्तरण (Indirect Reduction) किसी भी अपूर्ण सयोग पर लागू हो सकता है, यद्यपि प्रारम्भ में उसका उपयोग केवल 'बारोको' (Baroco) तथा बोकार्दो (Bocardo) के लिए ही किया जाता था, जैसा कि स्मृति-सहायक छन्द (Mnemonic lines) से विदित होता है।

अब हम एक-एक करके समस्त अपूर्ण आकारों के संयोगों का प्रति-
लोम आकारान्तरण करेंगे ।

(एक) द्वितीय आकार के संयोग .

(१) केसारे (Cesare) ।

‘ए’ : कोई भी ‘वि’ ‘म’ नहीं है ।

‘आ’ सब ‘उ’ ‘म’ है ।

∴ ‘ए’ कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है ।

यदि मूल-निष्कर्ष सत्य नहीं है, तो उसका विरुद्ध (contra-
dictory) यथा—“कुछ ‘उ’ ‘वि’ है” (‘ई’) सत्य होगा ।
इस तर्कवाक्य को पक्षवाक्य मानकर और मूल साध्यवाक्य को साध्य-
वाक्य मानकर, प्रथम आकार में निम्नलिखित नया न्यायवाक्य
बनता है :—

‘ए’ : कोई भी ‘वि’ ‘म’ नहीं है । (मूल साध्यवाक्य)

‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘वि’ है । (मूलनिष्कर्ष का विरुद्ध)

∴ ‘ओ’ . कुछ ‘उ’ ‘म’ नहीं है । (नया निष्कर्ष)

यह प्रथम आकार का सिद्ध-संयोग ‘फेरीओ’ (Ferio)
है, क्योंकि हेतु ‘वि’ साध्यवाक्य में उद्देश्य तथा पक्षवाक्य में विधेय है ।

परन्तु हम देखते हैं कि नया निष्कर्ष मूल पक्षवाक्य (अर्थात्
“सब ‘उ’ ‘म’ है”) का विरुद्ध (contradictory)
है, जो कि न्यायवाक्य के नियमों के अनुसार सत्य माना जाना
चाहिए । अतः उसका विरुद्ध अर्थात् नया निष्कर्ष असत्य होना
चाहिए । अब विचारणीय बात यह है कि यह क्यों असत्य है ?
यह असत्यता तर्क-क्रिया के दोषपूर्ण होने के कारण नहीं हो सकती,
क्योंकि वह ‘फेरीओ’ (Ferio) है, और न नये साध्यवाक्य
के कारण हो सकती है, जो कि मूल-साध्यवाक्य के ही समान है ।
अतः यह असत्यता नये पक्षवाक्य के कारण ही हो सकती है । अर्थात्
नया पक्षवाक्य असत्य है । अतः उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल-
निष्कर्ष असत्य होगा ।

टिप्पणी :—इस दशा में, मूल निष्कर्ष का विरुद्ध पक्षवाक्य
बनाया गया है तथा साध्यवाक्य दिए हुए न्यायवाक्य से ही ले लिया

द्वितीय
आकार :
केसारे

गया है। परन्तु यदि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध साध्यवाक्य बना लिया जाता तथा पक्षवाक्य दिए हुए न्यायवाक्य से ही प्राप्त किया जाता, तो हम प्रथम आकार के किसी सिद्ध-संयोग को प्राप्त नहीं कर सकते थे। प्रतिलोम आकारान्तरण में, अनुलोम-आकारान्तरण की भाँति दिया हुआ न्यायवाक्य प्रथम आकार के न्यायवाक्य में बदला जाता है। अतः प्रतिलोम आकारान्तरण में, मूल निष्कर्ष का विरुद्ध साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य इस प्रकार बनाया जाता है कि मूल-न्यायवाक्य से दूसरा आश्रय उसमें सम्मिलित करके प्रथम आकार के न्यायवाक्य का सिद्ध संयोग बन जाय। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध या तो साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य अपनी इच्छानुसार बनाया जा सकता है, क्योंकि दोनों दशाओं में दूसरे आश्रय के साथ प्रथम आकार में सिद्ध-संयोग प्राप्त हो जाता है।

कामेस्ट्रेस

(२) कामेस्ट्रेस (Camestres) ।

‘आ’ · सब ‘वि’ ‘म’ है।

‘ए’ · कोई भी ‘उ’ ‘म’ नहीं है।

∴ ‘ए’ : कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है।

यदि मूल-निष्कर्ष सत्य नहीं होगा, तो उसका विरुद्ध “कुछ ‘उ’ ‘वि’ है” सत्य होना चाहिए। इस तर्कवाक्य को पक्षवाक्य तथा मूल-साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है.—

‘आ’ सब ‘वि’ ‘म’ है।

‘ई’ कुछ ‘उ’ ‘वि’ है।

‘ई’ कुछ ‘उ’ ‘म’ है। दारीई (Darii) के अनुसार, क्योंकि नये न्यायवाक्य में ‘वि’ हेतु है।

नया निष्कर्ष मूल पक्ष-वाक्य का विरुद्ध (contradictory) है। अतः नया निष्कर्ष असत्य है। इस असत्यता का कारण क्या है? तर्क-प्रक्रिया के कारण यह असत्यता नहीं हो सकती, क्योंकि वह ‘दारीई’ (Darii) है। और न वह नये-साध्यवाक्य के कारण हो सकती है, क्योंकि वह मूल साध्यवाक्य के ही तुल्य होने से सत्य है। अतः निष्कर्ष के असत्य होने का कारण नये पक्षवाक्य की असत्यता है। इस प्रकार नये पक्षवाक्य

को असत्य सिद्ध कर देने से यह सिद्ध हो जाता है कि उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष, सत्य है।

(३) फेस्तीनो (Festino)।

फेस्तीनो

‘ए’ . कोई भी ‘वि’ ‘म’ नहीं है।

‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘म’ है।

‘ओ’ : कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है।

यदि निष्कर्ष सत्य नहीं हो, तो उसका विरुद्ध (contradictory) “सब ‘उ’ ‘वि’ है” सत्य है। इस तर्कवाक्य को पक्षवाक्य बनाकर और मूल-साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर, प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है।

‘ए’ . कोई भी ‘वि’ ‘म’ नहीं है।

‘आ’ . सब ‘उ’ ‘वि’ है।

∴ ‘ए’ . कोई भी ‘उ’ ‘म’ नहीं है। केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार, क्योंकि ‘वि’ हेतु है।

नया निष्कर्ष मूल-पक्षवाक्य का विरुद्ध होने के कारण सत्य नहीं हो सकता। यह नया निष्कर्ष क्यों असत्य है? यह असत्यता न तो तर्क-प्रक्रिया के कारण हो सकती है (क्योंकि वह ‘केलारेन्ट’ है) और न नये साध्यवाक्य के कारण हो सकती है, क्योंकि वह तो मूल साध्यवाक्य के ही समान है। अतः यह असत्यता नये पक्षवाक्य के कारण हो सकती है। इस प्रकार, पक्षवाक्य के असत्य होने से उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होगा।

(४) बारोको (Baroco)

बारोको

‘आ’ . सब ‘वि’ ‘म’ है। . सब घोड़े चतुष्पद हैं।

‘ओ’ . कुछ ‘उ’ ‘म’ नहीं है। . कुछ जन्तु चतुष्पद नहीं हैं।

∴ ‘ओ’ . कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है। ∴ कुछ जन्तु घोड़े नहीं हैं।

यदि निष्कर्ष सत्य नहीं है, तो उसका विरुद्ध अर्थात् “सब ‘उ’ ‘वि’ है” या “सब जन्तु घोड़े हैं” सत्य होगा। इस तर्कवाक्य को पक्षवाक्य मानकर तथा मूल-साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर, प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है।

‘आ’ . सब ‘वि’ ‘म’ है। . सब घोड़े चतुष्पद हैं।

‘आ’ . सब ‘उ’ ‘वि’ है। . सब जन्तु घोड़े हैं।

∴ ‘आ’ . सब ‘उ’ ‘म’ है। ∴ सब जन्तु चतुष्पद हैं।

यह युक्ति 'बारबारा' (Barbara) है, जिसमें 'वि' (या घोड़े) हेतु है। नया निष्कर्ष मूल पक्षवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। यह असत्यता किस कारण हो सकती है? यह तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं होती, क्योंकि वह तो 'बारबारा' (Barbara) है और न वह साध्यवाक्य के कारण हो सकती है, क्योंकि वह मूल साध्यवाक्य के समान है। अतः नवीन पक्षवाक्य असत्य है। इसलिए उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होना चाहिए।

द्रष्टव्य—द्वितीय आकार का प्रतिलोम आकारान्तरण करते समय प्रथम आकार में विशुद्ध न्यायवाक्य तभी प्राप्त होता है जबकि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध नये न्यायवाक्य का पक्षवाक्य बनाया जाय।

तृतीय
आकार :
द्वाराप्ती

(दो) तृतीय आकार के संयोग :

(१) द्वाराप्ती (Darapti)

'आ' : सब 'म' 'वि' है।

'आ' . सब 'म' 'उ' है।

∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि मूलनिष्कर्ष सत्य नहीं है, तो उसका विरुद्ध अर्थात् "कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है" सत्य होना चाहिए। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बनाया जा सकता है —

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है।

'आ' सब 'म' 'उ' है।

∴ 'ए' : कोई भी 'म' 'वि' नहीं है। (केलारेन्ट के अनुसार, जिसमें 'उ' हेतु है।)

नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विपरीत (contrary) होने के कारण असत्य होना चाहिए। यह असत्यता किस कारण हो सकती है? यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं हो सकती, क्योंकि वह 'केलारेन्ट' (Celarent) है; और वह नये पक्षवाक्य के कारण भी नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अतः उसका कारण नया साध्यवाक्य हो सकता है, जिसे इस प्रकार असत्य सिद्ध कर देने पर उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जाता है।

(२) 'दीसामीस्' (Disamis)

दीसामीस्

'ई' कुछ 'म' 'वि' है।
'आ' . सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि मूल निष्कर्ष असत्य है, तो उसका विरुद्ध, "कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है" सत्य होगा। इस तर्कवाक्य को साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है ---

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है।
'आ' . सब 'म' 'उ' है।
∴ 'ए' कोई भी 'म' 'वि' नहीं है। [केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार, जिसमें 'उ' हेतु है।]

इसमें नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य होगा। यह असत्यता न तो तर्क-प्रक्रिया के कारण हो सकती है क्योंकि वह 'केलारेन्ट' (Celarent) है, और न नये पक्षवाक्य के कारण हो सकती है, क्योंकि वह मूल-पक्षवाक्य के समान है। इसलिए नया साध्यवाक्य असत्य होगा। अतः उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य है।

(३) दातीसी (Datisi)

दातीसी

'आ' . सब 'म' 'वि' है।
'ई' . कुछ 'म' 'उ' है।
∴ 'ई' . कुछ 'उ' 'वि' है।

यदि मूल-निष्कर्ष सत्य नहीं हो, तो उसका विरुद्ध अर्थात् "कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है" सत्य होना चाहिए। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है ---

'ए' : कोई भी 'उ' 'वि' नहीं है।
'ई' कुछ 'म' 'उ' है।
∴ 'ओ' कुछ 'म' 'वि' नहीं है। ['फेरीओ' (Ferio) के अनुसार, जिसमें 'उ' हेतु है।]

नया निष्कर्ष मूल-साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य होना चाहिए। यह असत्यता किस कारण हो सकती है ?

यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं हो सकती, क्योंकि वह 'फेरीओ' (Ferio) है, जो कि प्रथम आकार में शुद्ध संयोग है। यह असत्यता पक्षवाक्य के कारण भी नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अतः इस असत्यता का कारण नया साध्यवाक्य ही हो सकता है। उसके असत्य सिद्ध हो जाने से उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होगा।

(४) फेलाप्तोन् (Felapton)

फेलाप्तोन्

'ए' . कोई भी 'म' 'वि' नहीं है।

'आ' : सब 'म' 'उ' है।

∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नहीं हैं।

यदि इसका निष्कर्ष सत्य नहीं है तो उसका विरुद्ध, "सब 'उ' 'वि' है" सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर निम्नलिखित नया न्यायवाक्य बन सकता है

'आ' : सब 'उ' 'वि' है।

'आ' . सब 'म' 'उ' है।

∴ 'आ' सब 'म' 'वि' है। [बार्बारा (Barbara)
के अनुसार, जिसमें 'उ' हेतु है।]

नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विपरीत (contrary) होने के कारण असत्य है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं हो सकती क्योंकि वह बार्बारा (Barbara) है। और न पक्षवाक्य के कारण हो सकती है क्योंकि वह मूल-पक्षवाक्य के समान है। अतः वह नये साध्यवाक्य के कारण है। इसलिए साध्यवाक्य के असत्य सिद्ध होने के कारण उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य होना चाहिए।

बोकार्दो

(५) बोकार्दो (Bocardo) :

'ओ' : कुछ 'म' 'वि' नहीं है। कुछ मनुष्य चतुर नहीं है।

'आ' . सब 'म' 'उ' है। सब मनुष्य मर्त्य है।

∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं हैं। ∴ कुछ मर्त्य (व्यक्ति) चतुर नहीं हैं।

यदि मूल निष्कर्ष सत्य नहीं है, तो उसका विरुद्ध "सब 'उ' 'वि' है" या "सब मर्त्य (व्यक्ति) चतुर है" सत्य होगा।

इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है —

‘आ’ सब ‘उ’ ‘वि’ है। सब मर्त्य (व्यक्ति) चतुर है।
‘आ’ सब ‘म’ ‘उ’ है। सब मनुष्य मर्त्य है।
‘आ’ . सब ‘म’ ‘वि’ है। ∴ सब मनुष्य चतुर है।

यह नया निष्कर्ष मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं है, क्योंकि वह ‘बाबारा’ (Barbara) है। और न वह नये पक्षवाक्य के कारण ही हो सकती है क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अतः नया साध्यवाक्य असत्य है। अतः उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य है।

(६) फेरीसोन् (Ferison) :

फेरीसोन्

‘ए’ . कोई भी ‘म’ ‘वि’ नहीं है।
‘ई’ कुछ ‘म’ ‘उ’ है।
‘ओ’ कुछ ‘उ’ ‘वि’ नहीं है।

यदि मूल-निष्कर्ष सत्य नहीं है तो उसका विरुद्ध, अर्थात् “सब ‘उ’ ‘वि’ है” सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल-पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है —

‘आ’ : सब ‘उ’ ‘वि’ है।
‘ई’ कुछ ‘म’ ‘उ’ है।
∴ ‘ई’ : कुछ ‘म’ ‘वि’ है। [दारीई (Darri) के अनुसार,
जिसमें ‘उ’ हेतु है।]

यह नया निष्कर्ष असत्य है क्योंकि यह मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं हो सकती क्योंकि वह ‘दारीई’ (Darri) है और न पक्षवाक्य के कारण हो सकती है क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अतः वह साध्यवाक्य के कारण है, जिसके असत्य सिद्ध किये जाने पर उसका विरुद्ध अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य होगा।

द्रष्टव्य — तृतीय आकार के संयोगों का प्रतिलोम आकारान्तरण करते समय मूल निष्कर्ष का विरुद्ध नये न्यायवाक्य का साध्यवाक्य बनाने पर ही प्रथम आकार में विशुद्ध न्यायवाक्य प्राप्त होता है।

चतुर्थ आकार. [तीन] चतुर्थ आकार के संयोग ।

ब्राह्मन्तीप्

(१) ब्राह्मन्तीप्

‘आ’ : सब ‘वि’ ‘म’ है ।

‘आ’ : सब ‘म’ ‘उ’ है ।

∴ ‘ई’ : कुछ ‘उ’ ‘वि’ है ।

यदि निष्कर्ष सत्य नहीं है तो उसका विरुद्ध, अर्थात् कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है” सत्य होगा । इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल-पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्न-लिखित न्यायवाक्य प्राप्त होता है ।

‘ए’ : कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है ।

‘आ’ : सब ‘म’ ‘उ’ है ।

∴ ‘ए’ : कोई भी ‘म’ ‘वि’ नहीं है । [केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार, जिसमें ‘उ’ हेतु है ।]

∴ कोई भी ‘वि’ ‘म’ नहीं है । (परिवर्तन के द्वारा) ।

इसमें तर्कवाक्य “कोई भी ‘वि’ ‘म’ नहीं है” मूल साध्य-वाक्य का विपरीत (contrary) होने के कारण असत्य होगा । यह तर्कवाक्य, जो कि असत्य सिद्ध किया जा चुका है, नये निष्कर्ष का ‘परिवर्तित’ (Converse) है । अतः उसकी असत्यता का कारण या तो परिवर्तन (Conversion) के नियमों का उल्लंघन है अथवा परिवर्त्य (Convertend) की असत्यता है । परन्तु परिवर्तन के नियमों का पूर्ण रूप से पालन हुआ है । अतः परिवर्त्य अर्थात् नया निष्कर्ष असत्य है ।

यदि नया निष्कर्ष असत्य है, तो इस असत्यता का कारण क्या हो सकता है ? तर्क-प्रक्रिया में तो कोई अशुद्धि नहीं है क्योंकि वह केलारेन्ट (Celarent) है और पक्षवाक्य भी मूल पक्षवाक्य के समान है । अतः वह असत्यता नये साध्यवाक्य के कारण ही हो सकती है । साध्यवाक्य को असत्य सिद्ध कर लेने पर, उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल-निष्कर्ष, सत्य सिद्ध हो जाता है । अतः दिया हुआ न्यायवाक्य शुद्ध है ।

कामेनेस्

(२) कामेनेस् (Camenes)

‘आ’ : सब ‘वि’ ‘म’ है ।

‘ए’ : कोई भी ‘म’ ‘उ’ नहीं है ?

∴ ‘ए’ : कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है ।

यदि निष्कर्ष सत्य नहीं है तो उसका विरुद्ध “कुछ ‘उ’ ‘वि’ है” सत्य होना चाहिए। इसे पक्षवाक्य मानकर तथा मूल साध्यवाक्य को साध्यवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है:

‘आ’ : सब ‘वि’ ‘म’ है।

‘ई’ : कुछ ‘उ’ ‘वि’ है।

∴ ‘ई’ : कुछ ‘उ’ ‘म’ है। [दारीई (Darii) के अनुसार, जिसमें ‘वि’ हेतु है।]

∴ कुछ ‘म’ ‘उ’ है। (परिवर्तन में)।

यह तर्कवाक्य कि “कुछ ‘म’ ‘उ’ है” असत्य है क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य का विरुद्ध है। उसकी असत्यता तर्क-प्रक्रिया अर्थात् ‘परिवर्तन’ (Conversion) के कारण नहीं हो सकती क्योंकि उसके सभी नियमों का पालन किया गया है। अतः वह इस आध्यवाक्य “कुछ ‘उ’ ‘म’ है” के कारण है। अतः नये न्यायवाक्य का निष्कर्ष “कुछ ‘उ’ ‘म’ है” असत्य है।

यह असत्यता किस कारण है? यह साध्यवाक्य के कारण नहीं है क्योंकि वह मूल साध्यवाक्य के समान है। और यह तर्क-प्रक्रिया के कारण भी नहीं हो सकती, क्योंकि वह ‘दारीई’ (Darii) है। अतः यह असत्यता नये पक्षवाक्य के कारण होगी, जिसे असत्य सिद्ध कर देने पर, उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य सिद्ध हो जाता है।

(३) दीमारीस् (Dimaris)

दीमारीस्

‘ई’ : कुछ ‘वि’ ‘म’ है।

‘आ’ : सब ‘म’ ‘उ’ है।

∴ ‘ई’ : कुछ ‘उ’ ‘वि’ है।

यदि निष्कर्ष सत्य नहीं हो, तो उसका विरुद्ध, अर्थात् “कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है” सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर तथा मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है —

‘ए’ : कोई भी ‘उ’ ‘वि’ नहीं है।

‘आ’ : सब ‘म’ ‘उ’ है।

∴ ‘ए’ : कोई भी ‘म’ ‘वि’ नहीं है। [केलारेट के अनुसार, जिसमें ‘उ’ हेतु है।]

.. 'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नहीं है। (परिवर्तन से)।

नये निष्कर्ष का परिवर्तित (Converse) असत्य है क्योंकि वह मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध है। अतः नया निष्कर्ष असत्य है। नये निष्कर्ष की असत्यता नये साध्यवाक्य की असत्यता के कारण होगी क्योंकि तर्क-प्रक्रिया 'केलारेन्ट' (Celarent) होने के कारण विशुद्ध है और नया पक्षवाक्य मूल पक्षवाक्य के समान है। नया साध्यवाक्य असत्य होने के कारण, उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य होगा।

फेसापो

(४) फेसापो (Fesapo) :

'ए' : कोई भी 'वि' 'म' नहीं है।

'आ' : सब 'म' 'उ' है।

∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नहीं है।

यदि निष्कर्ष सत्य नहीं है, तो उसका विरुद्ध, "सब 'उ' 'वि' है" सत्य होगा। इसे साध्यवाक्य मानकर और मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन जाता है :

'आ' : सब 'उ' 'वि' है।

'आ' : सब 'म' 'उ' है।

∴ 'आ' : सब 'म' 'वि' है। [बार्बारा (Barbara) के अनुसार, क्योंकि 'उ' हेतु है।]

∴ 'ई' : कुछ 'वि' 'म' है। (परिवर्तन से)।

अन्तिम तर्कवाक्य, मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण, असत्य है। इस असत्यता का कारण दोषपूर्ण परिवर्तन (Conversion) नहीं है क्योंकि परिवर्तन के सभी नियमों का पालन किया गया है। अतः परिवर्त्य (Convertend) "सब 'म' 'वि' है" अर्थात् नया निष्कर्ष, असत्य है। यह असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं हो सकती क्योंकि वह बार्बारा (Barbara) है, और न पक्षवाक्य के कारण हो सकती है क्योंकि वह मूल पक्षवाक्य के समान है। अतः वह नये साध्यवाक्य के कारण होगी। अतः नया साध्यवाक्य असत्य है, इसलिए उसका विरुद्ध, अर्थात् मूल-निष्कर्ष सत्य है।

द्रष्टव्य — मूल निष्कर्ष का विरुद्ध पक्षवाक्य माना जाता है और उस दशामे भी प्रथम आकार में विगुद्ध न्यायवाक्य बन सकता है।

(५) 'फ्रेसीसोन्' (Fresison) :

फ्रेसीसोन्

'ए' कोई भी 'वि' 'म' नहीं है।

'ई' कुछ 'म' 'उ' है।

∴ 'ओ' कुछ 'उ' 'वि' नहीं है।

यदि यह निष्कर्ष सत्य नहीं है तो इसका विरुद्ध अर्थात् "सब 'उ' 'वि' है" सत्य होगा। इसको साध्यवाक्य मानकर और मूल पक्षवाक्य को पक्षवाक्य मानकर प्रथम आकार में निम्नलिखित न्यायवाक्य बन सकता है।

'आ' सब 'उ' 'वि' है।

'ई' कुछ 'म' 'उ' है।

∴ 'ई' कुछ 'म' 'वि' है। [दारीई (Darii) के अनुसार, जिसमें 'उ' हेतु है।]

∴ 'ई' कुछ 'वि' 'म' है। (परिवर्तन से) ।

अन्तिम तर्कवाक्य मूल साध्यवाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। उसकी असत्यता परिवर्त्य (Convertend) अर्थात् नये निष्कर्ष के कारण होगी क्योंकि परिवर्तन के सभी नियमों का पालन किया गया है। अतः नया निष्कर्ष असत्य है। नये निष्कर्ष की असत्यता तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं है, क्योंकि वह 'दारीई' (Darii) है। और न वह नये पक्षवाक्य के कारण हो सकती है, क्योंकि वह मूल-पक्षवाक्य के समान है। अतः नया साध्यवाक्य असत्य है; इसलिए उसका विरुद्ध अर्थात् मूल निष्कर्ष सत्य है।

फ्रेसीसोन् (Fresison) का प्रतिलोम आकारान्तरण इस प्रकार भी हो सकता है कि मूल निष्कर्ष का विरुद्ध (अर्थात् "सब 'उ' 'वि' है") को नये न्यायवाक्य का पक्षवाक्य मान लिया जाय और मूल साध्यवाक्य ('ए' . कोई भी 'वि' 'म' नहीं है) को साध्यवाक्य मान लिया जाय। इस प्रकार निम्नलिखित न्यायवाक्य प्रथम आकार में बनता है—

'ए' . कोई भी 'वि' 'म' नहीं है। (मूल साध्यवाक्य)

'आ' . सब 'उ' 'वि' है। (मूल निष्कर्ष का विरुद्ध)

∴ 'ए' . कोई भी 'उ' 'म' नहीं है। [केलारेन्ट (Celarent) के अनुसार]

∴ 'ए' कोई भी 'म' 'उ' नहीं है। (परिवर्तन से) ।

दिए हुए निष्कर्ष का विरुद्ध प्रथम आकार के न्यायवाक्य का या तो साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य हो सकता है।

यह अन्तिम तर्कवाक्य “कोई भी ‘म’ ‘उ’ नहीं है” मूल पक्ष-वाक्य का विरुद्ध होने के कारण असत्य है। इस असत्यता का क्या कारण हो सकता है? यह दोषपूर्ण परिवर्तन (Conversion) के कारण नहीं हो सकती, अतः आश्रयवाक्य “कोई भी ‘उ’ ‘म’ नहीं है” असत्य है। यह असत्यता दोषपूर्ण तर्क-प्रक्रिया के कारण नहीं हो सकती क्योंकि वह केलारेन्ट (Cela-
rent) है। और न नये साध्यवाक्य के कारण हो सकती है क्योंकि वह मूल साध्यवाक्य के समान है। अतः मूल पक्षवाक्य असत्य है। अतः मूल निष्कर्ष सत्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूल निष्कर्ष के विरुद्ध को इच्छा-नुसार नये न्यायवाक्य का या तो साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य बनाया जा सकता है क्योंकि दोनों दगाओ में अन्य आश्रयवाक्य के साथ उसे सम्मिलित कर लेने पर प्रथम आकार में विशुद्ध संयोग प्राप्त हो जाता है।

परिणामों का सारांश :—

(१) द्वितीय आकार के संयोग तथा कामेनेस् (Camenes) (चतुर्थ आकार) का प्रतिलोम आकारान्तरण मूल निष्कर्ष के विरुद्ध को पक्षवाक्य बनाकर हो सकता है।

(२) तृतीय तथा चतुर्थ आकार के संयोग [कामेनेस् (Camenes) को छोड़कर] का प्रतिलोम आकारान्तरण मूल निष्कर्ष के विरुद्ध को साध्यवाक्य बनाकर किया जा सकता है।

(३) फेसापो (Fesapo) तथा फ्रेसीसोन् (Fresison) का प्रतिलोम आकारान्तरण मूल-निष्कर्ष के विरुद्ध को साध्यवाक्य अथवा पक्षवाक्य बनाकर किया जा सकता है।

मूल न्याय-
वाक्य में
कोई भी पद
आश्रयों में
अनावश्यक
रीति से
व्याप्त नहीं
होता।

§१५ मूल (Fundamental), निर्बल (Weakened)
तथा सबल (Strengthened) न्यायवाक्य
(क) मूल (Fundamental) तथा अ-मूल (Non-
Fundamental) न्यायवाक्य।

मूल न्यायवाक्य उसे कहते हैं, जिसमें साध्य तथा पक्ष बिना निष्कर्ष में व्याप्त हुए आश्रयवाक्यों में व्याप्त नहीं होते तथा हेतु

केवल एक बार व्याप्त होता है। अर्थात् कोई भी पद अनावश्यक रीति से व्याप्त नहीं होता।

न्यायवाक्य के नियमों के अनुसार हेतु कम से कम एक बार आश्रयवाक्यों में व्याप्त होना चाहिए और कोई भी पद निष्कर्ष में तब तक व्याप्त (distributed) नहीं होना चाहिए जब तक वह आश्रयवाक्यों (premises) में व्याप्त न हो। यदि हम उन्नीस सिद्ध-सयोगों का परीक्षण करें, तो विदित होगा कि तीन सयोग, यथा—दाराप्ती (Darapti) (तृतीय आकार), फेलाप्तोन (Felapton) (तृतीय आकार) तथा फेसापो (Fesapo) (चतुर्थ आकार) में हेतु दोनों आश्रयवाक्यों में व्याप्त है। और एक सयोग यथा—‘ब्रामान्तीप’ (Bramantip) (चतुर्थ आकार) में साध्य (major term) साध्यवाक्य में तो व्याप्त है, परन्तु निष्कर्ष में व्याप्त नहीं है। अतः हम कह सकते हैं कि दाराप्ती (Darapti), फेलाप्तोन (Felapton) तथा फेसापो (Fesapo) में हेतु एक बार अनावश्यक रीति से व्याप्त है और ब्रामान्तीप (Bramantip) में साध्य आश्रय से अनावश्यक रीति से व्याप्त है। अर्थात् इस प्रकार की व्याप्ति निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए आवश्यक नहीं है। यदि दाराप्ती (Darapti), फेलाप्तोन (Felapton) और फेसापो (Fesapo) में हेतु दोनों आश्रयों में व्याप्त न होकर केवल एक बार व्याप्त होता और यदि ब्रामान्तीप (Bramantip) में साध्य व्याप्त नहीं होता, तो भी वही निष्कर्ष निकल सकते थे।

दाराप्ती,
फेलाप्तोन,
ब्रामान्तीप
और फेसापो
मूल नहीं हैं।

अतः १९ सिद्ध-सयोगों में से १५ तो मूल हैं और ४ (यथा—दाराप्ती, फेलाप्तोन, ब्रामान्तीप और फेसापो) अ-मूल (Non-Fundamental) हैं।

(ख) निर्बल (Weakened) तथा अ-निर्बल (Non-Weakened) न्यायवाक्य ।

निर्बल न्याय-
वाक्य में
निष्कर्ष एक
विशेष तर्क-
वाक्य
निकाला
जाता है :
यद्यपि उन
आश्रय-
वाक्यों की
सहायता से
एक सार्व-
लौकिक
निष्कर्ष
निकाला
जा सकता
है ।

निर्बल न्यायवाक्य (Weakened Syllogism or Subaltern Mood) उस न्यायवाक्य को कहते हैं जिसमें निष्कर्ष 'विशेष' (Particular) निकाला जाता है, यद्यपि उन्हीं आश्रयवाक्यों की सहायता से सार्वलौकिक (Universal) निष्कर्ष निकाला जा सकता था । उदाहरणार्थ 'आ-आ' से 'आ' निष्कर्ष निकलता है । [बार्बारा (Barbara) प्रथम आकार में] अब यदि निष्कर्ष 'आ' हो, तो वह 'ई' (I) भी हो सकता है, क्योंकि 'सार्वलौकिक' के सत्य में 'विशेष' का सत्य निहित रहता है । इसी प्रकार, जहाँ निष्कर्ष 'ए' (E) होता है, वहाँ वह 'ओ' (O) भी हो सकता है । अतः जब कभी भी सार्वलौकिक निष्कर्ष निकाला जा सकता है, तो उसका सगत विगप निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है । अतः जब किसी न्यायवाक्य में एक विशेष निष्कर्ष निकाला जाय, जब कि सार्वलौकिक निष्कर्ष निकल सकता हो, तो ऐसे न्यायवाक्य को निर्बल कहते हैं । इनमें निष्कर्ष निर्बल होता है ।

पाँच निर्बल
न्यायवाक्य

चारो आकारो के १९ सिद्ध सयोगो में पाँच सयोगो के निष्कर्ष सार्वलौकिक (Universal) होते हैं; यथा—बार्बारा (Barbara), केलारेन्ट (Celarent), केसारे (Cesare), कामेस्ट्रेस (Camestres) और कामेनेस् (Camenes) । इन पाँचो न्यायवाक्यों को निर्बल किया जा सकता है और उन निर्बल न्यायवाक्यों को बार्बारी (Barbari)—('आ-आ-ई') और केलारोन्ट (Celaront)—('ए-आ-ओ'), (प्रथम आकार में), केसारो (Cesaro)—('ए-आ-ओ') तथा कामेस्ट्रोस् (Camestros)—('आ-ए-ओ'), (द्वितीय आकार में), और कामेनोस (Camenos)—('आ-ए-ओ') (चतुर्थ आकार में) कहा

जा सकता है। तृतीय आकार में निष्कर्ष विशेष होते हैं, अतः तृतीय आकार में निर्वल न्यायवाक्य नहीं होते।

(ग) सबल (Strengthened) तथा असबल (Non-Strengthened) न्यायवाक्य।

सबल (Strengthened) न्यायवाक्य उसे कहते हैं जिसमें एक आश्रयवाक्य अनावश्यक रीति से सबल हो। अर्थात् उसका एक सार्वलौकिक आश्रय विशेष हो सकता है और उस दशा में भी वही निष्कर्ष निकलेगा। उदाहरणार्थ दाराप्ती (Darapti) को देखिए।

दाराप्ती

‘आ’ . सब ‘म’ ‘वि’ है।

‘आ’ . सब ‘म’ ‘उ’ है।

∴ ‘ई’ कुछ ‘उ’ ‘वि’ है।

यदि मूल-साध्यवाक्य के स्थान पर ‘आ’ के बदले ‘ई’ (I) तर्कवाक्य रख दिया जाय, तो भी वही निष्कर्ष निकलेगा। यथा—

‘ई’ . कुछ ‘म’ ‘वि’ है।

‘आ’ . सब ‘म’ ‘उ’ है।

∴ ‘ई’ . कुछ ‘उ’ ‘वि’ है।

इस संयोग को एक विशेष नाम से सम्बोधित किया जाता है।

यथा—दीसामीस (Disamis)।

इसी प्रकार, यदि मूल-पक्षवाक्य (‘आ’) के बदले सगत ‘ई’ (I) तर्कवाक्य ले लिया जाय, तो भी वही निष्कर्ष निकलेगा। उसे दातीसी (Datisi) कहेंगे।

हम देखते हैं कि वे न्यायवाक्य जो कि मूल (Fundamental) नहीं हैं (अर्थात् दाराप्ती, फेलाप्ती, ब्रामान्ती और फेसापी), वे सबल हैं। हम दाराप्ती (Darapti) का उदाहरण ऊपर देख चुके हैं। फेलाप्ती (Felapton) (ए-आ-ओ . तृतीय आकार) में साध्यवाक्य अनावश्यक रीति

सबल न्याय-वाक्य में, एक आश्रय-वाक्य सार्व-लौकिक होता है, यद्यपि उसके विशेष होने पर भी वही निष्कर्ष निकलता है।

से सबल है और यदि साध्यवाक्य (O) होता, तो भी वही निष्कर्ष निकलता। ('ओ-आ-ओ' : वोकादों) इसी प्रकार ब्रामान्तीष (Bramantip) ('आ-आ-ई' : चतुर्थ आकार) में, साध्यवाक्य 'आ' के बदले 'ई' (I) रक्खा जा सकता है ('ई-आ-ई' : दीमारीस्) और फेसापो (Fesapo) में ('ए-आ-ओ' : चतुर्थ आकार) में, पक्षवाक्य को आ (A) के बदले 'ई' (I) रक्खा जा सकता है ('ए-ई-ओ' : फेसीसोन्) और निष्कर्ष वही प्राप्त होता है।

यह बात ज्ञातव्य है कि इन चार सयोगों के अतिरिक्त कामेनोस (Camenos) ('आ-ए-ओ' : चतुर्थ आकार) को छोड़कर सब निर्बल न्यायवाक्य (Subaltern mood) भी सबल होते हैं। जहाँ तक कामेनोस (Camenos) का सम्बन्ध है, हम यह नहीं कह सकते कि उसमें कोई आश्रयवाक्य आवश्यकता से अधिक सबल है, क्योंकि यदि सार्वलौकिक आश्रयवाक्य के स्थान पर विशेष रक्खा जाय तो कोई निष्कर्ष नहीं प्राप्त होता। यथा—

कामेनोस (Camenos)

'आ' सब 'वि' 'म' है।

'ए' : कोई भी 'म' 'उ' नहीं है।

∴ 'ओ' : कुछ 'उ' 'वि' नहीं है।

इसमें यदि हम साध्यवाक्य को 'ई' (I) रक्खे अथवा पक्षवाक्य को 'ए' (E) रक्खे, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा, अतः कामेनोस (Camenos) को सबल न्यायवाक्य नहीं कह सकते।

कामेनोस न
तो मूल है
और न सबल
क्योंकि
यद्यपि एक

यह बात द्रष्टव्य है कि कामेनोस (Camenos) में, पक्ष 'उ' अनावश्यक रीति से व्याप्त है अर्थात् वह पक्षवाक्य में तो व्याप्त है, परन्तु निष्कर्ष में अव्याप्त है। अतः वह मूल-न्यायवाक्य (Fundamental Syllogism) नहीं है, जिसमें कोई भी

पद अनावश्यक रीति से व्याप्त नहीं होना चाहिए। अतः कामेनोस (Camenos) एक मूल न्यायवाक्य नहीं है, परन्तु उसे सबल न्यायवाक्य नहीं कहा जा सकता।

गेप चारो निर्वल न्यायवाक्य अर्थात् बारबारी (Barbari : 'आ-आ-ई' प्रथम आकार), कैलारोन्ट (Celaront 'ए-आ-ओ' : प्रथम आकार), केसरो (Cesaro 'ए-आ-ओ' द्वितीय आकार) और कामेस्ट्रोस (Camestios 'आ-ए-ओ' द्वितीय आकार), सबल न्यायवाक्य (Strengthened Syllogism) है। बारबारी (Barbari) में पक्षवाक्य को निर्वल करके 'ई' (I) किया जा सकता है, और निष्कर्ष वही प्राप्त हो जाता है—'आ-ई-ई', प्रथम आकार दारिई (Darii)। 'कैलारोन्ट' (Celaront) में पक्षवाक्य निर्वल करके 'ई' (I) किया जा सकता है, और वही निष्कर्ष प्राप्त हो जाता है—'ए-ई-ओ'—फेरीओ (Ferio)। केसरो (Cesaro) में, पक्षवाक्य 'ई' (I) हो सकता है और वही निष्कर्ष अर्थात् 'ओ' (O) फलित होता है—'ए-ई-ओ'—फेस्तीनो। तथा कामेस्ट्रोस (Camestros) में पक्षवाक्य 'ओ' (O) हो सकता है, और वही निष्कर्ष प्राप्त हो जाता है—'आ-ओ-ओ'—बारेको।

अतः यदि हम निर्वल न्यायवाक्यों को भी सम्मिलित कर ले तो आठ सबल न्यायवाक्य प्राप्त होते हैं। यथा—

बारबारी (Barbari), कैलारोन्ट (Celaront) प्रथम आकार।

दाराप्टी (Darapti), कामेस्ट्रोस (Camestros) द्वितीय आकार।

केसरो (Cesaro), फेलाप्टोन (Felapton) : तृतीय आकार।

ब्रामान्तीप (Bramantip), फेसापो (Fesapo) चतुर्थ आकार।

पद अनावश्यक रीति से व्याप्त है, परन्तु किसी भी पक्ष को निर्वल नहीं किया जा सकता।

सबल न्यायवाक्य आठ हैं।

फिर, यदि हम निर्वल न्यायवाक्यो को भी सम्मिलित कर लें तो अ-मूल (Non-Fundamental) संयोगो की संख्या पाँच है। यथा—दागप्ती (Darapti), फेलाप्तोन् (Felapton), ब्रामान्तीप (Bramantip), फेसापो (Fesapo) तथा कामेनोस (Camenos)।

अन्त में, यह बात द्रष्टव्य है कि एक न्यायवाक्य को 'सवल' तब कहा जाता है, जब उसका एक आश्रयवाक्य सवल हो। और न्यायवाक्य को 'निर्वल' तब कहा जाता है जब निष्कर्ष निर्वल हो। सवल न्यायवाक्य में एक आश्रयवाक्य को निर्वल किया जा सकता है और निर्वल न्यायवाक्य में निष्कर्ष सवल किया जा सकता है।

§१६. शुद्ध हेतुफलाश्रित (Pure Hypothetical) तथा शुद्ध वैकल्पिक (Pure Disjunctive) न्यायवाक्य

अब तक हमने अपना ध्यान निरपेक्ष न्यायवाक्यो (Categorical Syllogisms) तक ही केन्द्रित किया था, जिसमें तीनो घटक तर्कवाक्य निरपेक्ष होते हैं। इसी प्रकार सब घटक तर्कवाक्य हेतुफलाश्रित (Hypothetical) हो सकते हैं; तब उस न्यायवाक्य को शुद्ध हेतुफलाश्रित (Pure Hypothetical) कहते हैं। या फिर तीनो घटक तर्कवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) हो सकते हैं, तब उस न्यायवाक्य को शुद्ध-वैकल्पिक (Pure Disjunctive) कहते हैं।

शुद्ध हेतु-
फलाश्रित

शुद्ध हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य में तीन हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होते हैं। हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों में गुण तथा परिमाण का भेद निरपेक्ष तर्कवाक्यो की ही भाँति होता है। अतः शुद्ध निरपेक्ष न्यायवाक्यो के अनुरूप ही शुद्ध हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यो के रूप हो सकते हैं।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित शुद्ध हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य 'बार्बारा' (Barbara) के संयोग (Mood) में है —

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है।

यदि 'घ' 'ङ' है, तो 'क' 'ख' है।

∴ यदि 'घ' 'ङ' है, तो 'ग' 'घ' है।

शुद्ध-वैकल्पिक न्यायवाक्य में तीनों घटक तर्कवाक्य वैकल्पिक (Disjunctive) होते हैं। यह बात स्मरणीय है कि सब वैकल्पिक तर्कवाक्य स्वीकारात्मक (Affirmative) होते हैं। अतः न्यायवाक्य के गुण-सम्बन्धी नियम उन पर चरितार्थ नहीं होते। शुद्ध वैकल्पिक न्यायवाक्यों की संख्या इतनी कम होती है कि उन पर विचार करना व्यर्थ ही है।

शुद्ध
वैकल्पिक

§१७. भारतीय न्याय में 'अनुमान'

यह कहा जाता है कि भारतीय न्याय में जिसे 'अनुमान' कहते हैं, वह पाश्चात्य तर्कशास्त्र के निरपेक्ष न्यायवाक्य (Categorical Syllogism) के अनुरूप है। अब हम अनुमान के स्वरूप पर संक्षेप में विचार करेंगे तथा उसकी न्यायवाक्य से तुलना करेंगे।

अनुमान
तथा न्याय-
वाक्य

अनुमान (अनु=पीछे, मान=ज्ञान) अनुमान का शाब्दिक अर्थ होता है "पीछे से प्राप्त ज्ञान", अर्थात् ऐसा ज्ञान जो किसी अन्य ज्ञान के बाद प्राप्त हो। न्याय-विचारधारा के अनुसार प्रत्यक्ष (Perception) ज्ञान का प्रथम साधन है। प्रत्यक्ष के बाद अनुमान (Inference) आता है। अनुमान ज्ञान-प्राप्ति की उस क्रिया को कहते हैं, जिसमें ज्ञान, प्रत्यक्ष के द्वारा नहीं, अपितु एक चिह्न की सव्यस्थता के कारण प्राप्त होता है। एक उदाहरण देखिए। पर्वत पर अग्नि है, क्योंकि वहाँ धूम्र है। यह अनुमान है, क्योंकि 'अग्नि' का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा

अनुमान

प्राप्त नहीं हुआ है, वरन 'धूम्र' की मध्यस्थता के कारण हुआ है; 'धूम्र' 'अग्नि' का चिह्न है।

उसके तीन
पद

'अनुमान' की परिभाषा से विदित होता है कि उसमें 'तीन पद' होते हैं। इन तीनों पदों को (१) पक्ष, (२) साध्य तथा (३) लिङ्ग (हेतु अथवा साधन) कहते हैं। 'पक्ष' उस विषय को कहते हैं जिसके बारे में अनुमान किया जाता है। 'साध्य' उस विधेय को कहते हैं जिसका सम्बन्ध 'पक्ष' से स्थापित करना होता है और लिङ्ग उस चिह्न को कहते हैं जो इस सम्बन्ध को स्थापित करने में सहायता देता है। उपर्युक्त दृष्टान्त में, 'पर्वत' पक्ष है, क्योंकि उसके बारे में अनुमान किया गया है, 'अग्नि' साध्य है क्योंकि उसका सम्बन्ध 'पर्वत' (पक्ष) से स्थापित करना है और धूम्र लिङ्ग है, क्योंकि यह वह चिह्न है, जिसकी मध्यस्थता से अनुमिति (Inferential knowledge) प्राप्त होती है।

यदि हम उपर्युक्त दृष्टान्त को पाश्चात्य तर्कशास्त्र के न्यायवाक्य (Syllogism) का रूप दे, तो वह इस प्रकार होगा —

सब धूम्रवाली वस्तुओं में अग्नि है।

पर्वत धूम्रवाली वस्तु है।

∴ पर्वत में अग्नि है।

इसमें पर्वत पक्ष (Minor term) है, अग्नि साध्य (Major term) है तथा धूम्र हेतु (Middle term) है। इस प्रकार भारतीय न्याय के अनुमान के पदों तथा पाश्चात्य न्यायवाक्य के पदों में अनुरूपता है।

अतः 'अनुमान' में तीन पद होते हैं, यथा—साध्य, पक्ष और लिङ्ग, जो पाश्चात्य निरपेक्ष न्यायवाक्य के साध्य (Major term), पक्ष (Minor term) तथा हेतु (Middle term) के समान होते हैं।

'अनुमान' में तर्कवाक्यों की संख्या के सम्बन्ध में भारतीय

पाँच
तर्कवाक्य
(अवयव)

न्याय-विचारक अनुमान के दो विभाग मानते हैं—(१) स्वार्थानुमान तथा (२) परार्थानुमान । स्वार्थानुमान (=स्वयं अपने लिए अनुमान) को तर्कवाक्य में व्यक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं होती । परार्थानुमान में 'अनुमान' को निम्नलिखित पाँच अवयवों में व्यक्त किया जाता है :—

पर्वत पर अग्नि है । (प्रतिज्ञा)

क्योंकि वहाँ धूम्र है । (हेतु)

जहाँ धूम्र होता है, वहाँ अग्नि होती है, जैसे रसोई घर में ।

(उदाहरण)

पर्वत पर भी ऐसा ही है । (उपनय)

∴ पर्वत पर अग्नि है । (निगमन)

'प्रतिज्ञा' उस तर्कवाक्य को कहते हैं, जिसमें कोई बात समर्थित की जाती है । 'हेतु' उस तर्कवाक्य को कहते हैं, जिसमें उस समर्थन का कारण व्यक्त होता है । 'उदाहरण' उस सार्वलौकिक सम्बन्ध (व्याप्ति) को व्यक्त करता है, जो कि हेतु तथा समर्थित वस्तु में होता है, साथ में एक दृष्टान्त भी दे दिया जाता है । 'उपनय' में उस सार्वलौकिक-सम्बन्ध का उपयोग अपने विशेष दृष्टान्त में किया जाता है । और अन्त में 'निगमन' निष्कर्ष को सूचित करता है ।

अतः परार्थानुमान में, जब दूसरों को किसी सत्य का प्रदर्शन कराना होता है, तो पूर्ण रूप से व्यक्त करने में पाँच तर्कवाक्य होते हैं; परन्तु न्यायवाक्य (Syllogism) में केवल तीन तर्कवाक्य होते हैं ।

यह बात द्रष्टव्य है कि पक्ष, साध्य और लिङ्ग के अतिरिक्त भारतीय न्याय-विचारकों ने व्याप्ति (अर्थात् लिङ्ग और साध्य का अनन्य सहचार) पर भी विचार किया है । उपर्युक्त उदाहरण में 'धूम्र' तथा 'अग्नि' में अनन्य-सहचार (invariable concomitance) है । और इस सवध को इस प्रकार

व्यक्त किया जाता है। 'जहाँ कहीं भी 'धूम्र' है, वहाँ अग्नि है।' यह अनन्य-महचार अथवा व्याप्ति ही अनुमान का आधार है। न्यायदर्शन की सबसे मुख्य समस्याये ये हैं—व्याप्ति किसे कहते हैं? हम व्याप्ति का निर्माण किस प्रकार करते हैं? पाश्चात्य तर्कशास्त्र में न्यायवाक्य का वर्णन करते समय ऐसी समस्याओं पर विचार नहीं करते। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य तर्कशास्त्री आकारगत तथा वस्तुगत तर्कशास्त्र में भेद मानते हैं और वे न्यायवाक्य को 'आकारगत-तर्क' के रूप में मानते हैं। भारतीय न्याय में ऐसा कोई भेद मान्य नहीं है। अनुमान केवल आकारगत तर्क का रूप नहीं है। वरन् वह वस्तुगत (Material) भी है। अतः न्याय विचारको की गवेषणा का विषय वास्तविक सत्य (Material truth) भी है। वास्तव में 'अनुमान' का वर्णन करते समय न्याय विचारक उन प्रश्नों पर भी स्वतन्त्रता से विचार कर लेते हैं, जो अध्यात्म अथवा दर्शन (metaphysics) के क्षेत्र में आते हैं। इतना ही नहीं, वरन् वे सत्य की प्राप्ति जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य अर्थात् मुक्ति-प्राप्ति का साधन मानते हैं।

कुछ हल किये हुए अभ्यास

(१) सिद्ध कीजिए कि यदि निष्कर्ष सार्वलौकिक (Universal) हो तो हेतु आश्रयवाक्यों में केवल एक बार व्याप्त हो सकता है।

उपपत्ति—यदि निष्कर्ष सार्वलौकिक हो, तो वह या तो 'आ' (A) होगा, या 'ए' (E)।

यदि निष्कर्ष 'आ' (A) हो, तो दोनों आश्रय 'आ' होंगे। दोनों आश्रयवाक्य 'आ' होने के कारण आश्रयवाक्यों में केवल दो पद व्याप्त होते हैं। निष्कर्ष 'आ' होने के कारण उसमें पक्ष व्याप्त होता है। अतः वह पक्षवाक्य में भी व्याप्त होना चाहिए। आश्रयवाक्यों के दोनों व्याप्त पदों में से एक पक्ष होगा। अतः हेतु केवल एक बार व्याप्त होता है।

यदि निष्कर्ष 'ए' (E) हो, तो एक आश्रयवाक्य 'ए' (E) तथा दूसरा आश्रयवाक्य 'आ' (A) होगा। यदि एक आश्रय-वाक्य 'ए' तथा दूसरा 'आ' होगा, तो उन दोनों में तीन पद व्याप्त होंगे। निष्कर्ष 'ए' होने के कारण पक्ष और साध्य दोनों ही निष्कर्ष में व्याप्त होंगे; अतः वे पहले से ही आश्रयों में व्याप्त होंगे। आश्रयों के तीनों व्याप्त पदों में से एक तो पक्ष तथा दूसरा साध्य है। अतः हेतु केवल एक बार व्याप्त हो सकता है।

(२) सिद्ध कीजिए कि 'ओ' (O) प्रथम आकार में आश्रय-वाक्य नहीं हो सकता।

उपपत्ति.—प्रथम आकार में हेतु साध्यवाक्य में उद्देश्य तथा पक्षवाक्य में विधेय होता है।

यदि साध्यवाक्य 'ओ' (O) हो, तो पक्षवाक्य 'आ' (A) होगा तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। इस प्रकार, हेतु एक बार भी व्याप्त न हो सकेगा। अतः कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा।

यदि पक्षवाक्य 'ओ' (O) हो, तो साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा और निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। निष्कर्ष के 'ओ' (O) होने के कारण उसमें साध्य व्याप्त होगा। साध्यवाक्य के 'आ' (A) होने के कारण, प्रथम आकार में, उसमें साध्य व्याप्त नहीं होगा। अतः कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा।

इस प्रकार 'ओ' (O) प्रथम आकार में न तो साध्यवाक्य और न पक्षवाक्य हो सकता है।

(३) सिद्ध कीजिए कि 'ओ' (O) द्वितीय आकार को छोड़कर किसी भी आकार में पक्षवाक्य नहीं हो सकता।

(क) प्रथम आकार में 'ओ' (O) पक्षवाक्य नहीं हो सकता, क्योंकि जैसा कि प्रश्न (२) में प्रदर्शित कर दिया गया है, ऐसा करने से अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जायगा।

(ख) तृतीय आकार में यदि 'ओ' (O) पक्षवाक्य हो, तो साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा, तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। इस प्रकार निष्कर्ष में साध्य व्याप्त हो जायेगा। अतः वह साध्यवाक्य में भी व्याप्त होना चाहिए। परन्तु साध्यवाक्य 'आ' है; इसलिए उसका विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त नहीं है। अतः तृतीय आकार में 'ओ' (O) को पक्षवाक्य मानने से अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष हो जाता है।

(ग) चतुर्थ आकार में यदि 'ओ' (O) पक्षवाक्य हो, तो साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा। अतः उसमें पक्षवाक्य के 'ओ' (O) होने से, हेतु उसमें भी अव्याप्त रहेगा। अतः चतुर्थ आकार में, 'ओ' को पक्षवाक्य मानने से 'अव्याप्त-हेतु' (Undistributed Middle) का दोष हो जायगा।

(घ) परन्तु यदि द्वितीय आकार में 'ओ' (O) पक्षवाक्य हो, तो विशुद्ध निष्कर्ष निकल जाता है। पक्षवाक्य 'ओ' (O) होने पर, साध्यवाक्य 'आ' (A) होगा, तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा। निष्कर्ष में साध्य व्याप्त होगा, जो कि 'आ' (A) साध्यवाक्य का उद्देश्य होने के कारण उसमें भी व्याप्त होगा। हेतु पक्षवाक्य में व्याप्त है। अतः विशुद्ध निष्कर्ष निकल आता है।

अतः 'ओ' (O) द्वितीय आकार को छोड़कर किसी भी आकार में पक्षवाक्य नहीं हो सकता।

(४) सिद्ध कीजिए कि 'ओ' (O) चतुर्थ आकार में कोई आश्रयवाक्य नहीं हो सकता।

उपपत्ति — चतुर्थ आकार में हेतु साध्यवाक्य में विधेय तथा पक्षवाक्य में उद्देश्य होता है। यदि एक आश्रय 'ओ' (O) हो, तो दूसरा आश्रय 'आ' (A) होगा, तथा निष्कर्ष 'ओ' (O) होगा।

यदि 'ओ' (O) साध्यवाक्य हो, तो उसमें साध्य अव्याप्त रहेगा, अतः वह निष्कर्ष में भी व्याप्त नहीं हो सकता। परन्तु निष्कर्ष

‘ओ’ (O) होने के कारण अपने विधेय (अर्थात् साध्य) को व्याप्त रखता है। अतः अवैध-साध्य का दोष हो जायगा।

यदि ‘ओ’ (O) पक्षवाक्य हो, तो हेतु उसमें अव्याप्त रहेगा। विशुद्ध निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वह साध्य-वाक्य में व्याप्त हो। परन्तु ऐसा नहीं है। अतः ‘ओ’ (O) चतुर्थ आकार में कोई आश्रय नहीं हो सकता।

(५) सिद्ध कीजिए कि यदि निष्कर्ष ‘आ’ (A) हो तो न्याय-वाक्य प्रथम आकार में होगा।

उपपत्ति.—यदि निष्कर्ष ‘आ’ (A) है, तो दोनों आश्रयवाक्य ‘आ’ (A) होंगे और पक्ष निष्कर्ष में व्याप्त होगा। पक्ष आश्रय में तभी व्याप्त हो सकता है, जब पक्ष पक्षवाक्य का उद्देश्य हो। इस प्रकार हेतु पक्षवाक्य का विधेय होता है। अतः हेतु पक्षवाक्य में व्याप्त नहीं होता। इसलिए उसे साध्यवाक्य में व्याप्त होना पड़ेगा। अतः वह साध्यवाक्य का उद्देश्य होगा।

अतः यदि निष्कर्ष ‘आ’ (A) हो, तो हेतु साध्यवाक्य का उद्देश्य तथा पक्षवाक्य का विधेय होगा। अर्थात् वह युक्ति प्रथम आकार में होगी।

प्रश्नमाला ११

(१) न्यायवाक्य किसे कहते हैं? यह बतलाइए कि वह सान्तरानुमान का एक रूप है तथा निगमनमूलक अनुमान है।

(२) यदि किसी न्यायवाक्य के आश्रयवाक्य असत्य हो, तो क्या वह तर्क असत्य हो जाता है? उदाहरण सहित समझाइए।

(३) न्यायवाक्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(४) न्यायवाक्य में हेतु की क्या उपयोगिता है? हेतु का कमसे कम एक बार व्याप्त होना क्यों आवश्यक है?

(५) प्रथम आकार को 'पूर्ण आकार' क्यों कहते हैं? अरस्तू के न्यायवाक्य-सम्बन्धी सिद्धान्त (Dictum de omni et nullo) की व्याख्या कीजिए।

(६) न्यायवाक्य के नियमों का सक्षेप में वर्णन कीजिए।

(७) आकारान्तरण किसे कहते हैं? अनुलोम तथा प्रतिलोम आकारान्तरण में क्या भेद है?

(८) 'वारोको' तथा 'फेलाप्तोन' का अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों प्रकार से आकारान्तरण कीजिए।

(९) उदाहरण सहित निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए -

(क) अवैध-साध्य (ख) सदिग्ध हेतु

(ग) आकार (घ) संयोग। (उ० प्र० १९५२)

(१०) सिद्ध कीजिए कि प्रथम आकार में 'ओ' कोई भी आश्रयवाक्य नहीं हो सकता। (उ० प्र० १९५०)

(११) 'आ-ए-ए' किस आकार में विशुद्ध संयोग है? (केवल न्यायवाक्य के सामान्य नियमों के आधार पर उत्तर दीजिए।)
(उ० प्र० १९४८)

(१२) स्वीकारात्मक साध्यवाक्य के साथ पक्षवाक्य का प्रथम आकार में स्वीकारात्मक तथा द्वितीय आकार में निषेधात्मक होना क्यों आवश्यक है? (उ० प्र० १९४८)

(१३) सिद्ध कीजिए कि 'ओ'-तर्कवाक्य प्रथम आकार में आश्रय की भाँति, द्वितीय आकार में साध्यवाक्य की भाँति, तृतीय आकार में पक्षवाक्य की भाँति तथा चतुर्थ आकार में आश्रय की भाँति प्रयुक्त नहीं हो सकता। (उ० प्र० १९४७)

(१४) सिद्ध कीजिए कि 'ई-ए' से किसी भी आकार में विशुद्ध निष्कर्ष नहीं निकलता तथा 'ए-ई' से प्रत्येक आकार में विशुद्ध निष्कर्ष निकलता है। (उ० प्र० १९४६)

(१५) आकारान्तरण से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार का होता है? प्रत्येक प्रकार के आकारान्तरण को उदाहरण सहित समझाइए। (उ० प्र० १९५१, १९४८)

(१६) भारतीय न्याय के अनुसार 'अनुमान' की आवश्यक शर्तें कौन-सी हैं? न्यायवाक्य तथा अनुमान का अन्तर स्पष्ट कीजिए। (उ० प्र० १९४६, १९५३)

(१८) 'पराधीनमान' की व्याख्या कीजिए । उसकी अवयवों के सम्यक्त्व में तुलना कीजिए । (उ० प्र० १९४८)

(१९) 'व्याधीनमान' तथा 'परार्थानमान' का अन्तर स्पष्ट कीजिए । उपरिष्ठान्त 'परार्थानमान' के अवयवों को सम-जातिए । (उ० प्र० १९५०, १९५१)

(२०) इनमान के पांच अवयव कौन-कौन-से हैं ? उनकी सम्यक्त्व के नातो अवयवों में तुलना कीजिए । क्या अवयवों में नात्यात्म्य भी पा जाती है ? (उ० प्र० १९५२)

(२१) निम्नलिखित में क्या नात्यात्म्य है —

पद्म, नाग हेतु ।

द्वादश प्रकरण

मिश्र न्यायवाक्य (Mixed Syllogisms)

- § १ हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य ।
 (क) नियम ।
 (ख) दोष ।
 (ग) निरपेक्ष न्यायवाक्य में परिवर्तन ।
- § २ वैकल्पिक-निरपेक्ष न्यायवाक्य ।
- § ३ उभयतोपाग (Dilemma) ।
 (क) उभयतोपाग का स्वरूप ।
 (ख) उभयतोपाग के प्रकार ।
 (ग) उभयतोपाग का प्रतिधेप ।
 (घ) उभयतोपाग की शुद्धि की जाँच ।
 उभयतोपाग की आकारगत विगुद्धि ।
 उभयतोपाग की वस्तुगत विगुद्धि ।
 प्रश्नमाला १२ ।

मिश्र-न्याय-
वाक्य के तीन
प्रकार

मिश्र-न्यायवाक्य उसे कहते हैं, जिसके घटक तर्कवाक्य एक से सम्बन्ध के न हो । उसके तीन उप-विभाग हैं यथा (१) हेतु-फलाश्रित निरपेक्ष (अथवा हेतुफलाश्रित) न्यायवाक्य (२) वैकल्पिक-निरपेक्ष (अथवा वैकल्पिक) न्यायवाक्य तथा (३) उभय-तोपाग ।

§ १ हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य (Hypothetical-Categorical Syllogism)

हेतुफलाश्रित
निरपेक्ष

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य उस मिश्र-न्यायवाक्य को कहते हैं जिसका साध्यवाक्य हेतुफलाश्रित हो, पक्षवाक्य निरपेक्ष हो तथा निष्कर्ष भी निरपेक्ष हो । इसे साधारणतया हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य (Hypothetical Syllogism) भी कहते हैं ।

(क) नियम - इस प्रकार के अनुमान के निम्नलिखित दो नियम हैं.—

नियम

(१) पूर्वाङ्ग को स्वीकार करने से उत्तराङ्ग को भी स्वीकार किया जा सकता है; परन्तु इसका विलोम सत्य नहीं होता, और,

(ख) उत्तराङ्ग को अस्वीकार करने से पूर्वाङ्ग को अस्वीकार किया जा सकता है; परन्तु इसका विलोम सत्य नहीं होता।

पहले प्रकार के न्यायवाक्य को विधायक या 'विधि-प्रकार' और दूसरे प्रकार के न्यायवाक्य को विधातक या 'निषेध-प्रकार' कहते हैं।

विधायक
और
विधातक

(१) विधि-प्रकार (Modus Ponens) या विधायक (Constructive) :—

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य को 'विधि-प्रकार' का अथवा विधायक तब कहते हैं, जब साध्य-वाक्य के पूर्वाङ्ग को पक्षवाक्य में स्वीकार करने से, साध्यवाक्य के उत्तराङ्ग को निष्कर्ष में स्वीकार कर लेते हैं। यथा—

विधायक

(क) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' है।

'क' 'ख' है।

∴ 'ग' 'घ' है।

(क) यदि वह आता है, तो मैं
जाऊँगा।

वह आता है।

∴ मैं जाऊँगा।

(ख) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' नहीं है।

'क' 'ख' है।

∴ 'ग' 'घ' नहीं है।

(ख) यदि वर्षा होगी तो वह
नहीं आएगा।

वर्षा हुई।

∴ वह नहीं आएगा।

(ग) यदि 'क' 'ख' नहीं है,
तो 'ग' 'घ' है।

'क' 'ख' नहीं है।

∴ 'ग' 'घ' है।

(ग) यदि वह नहीं आए, तो
मैं जाऊँगा।

वह नहीं आया।

∴ मैं जाऊँगा।

उदाहरण

(घ) यदि 'क' 'ख' नहीं है,
तो 'ग' 'घ' नहीं है।
'क' 'ख' नहीं है।
∴ 'ग' 'घ' नहीं है।

(घ) यदि वर्षा नहीं होगी, तो
फसल नहीं उगेगी।
वर्षा नहीं होगी।
∴ फसल नहीं उगेगी।

विघातक

(२) निषेध-प्रकार (Modus Tollens) या विघातक
(Destructive) —

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य को निषेध-प्रकार का या विघातक तब कहते हैं, जब कि साध्यवाक्य के उत्तराङ्ग को पक्षवाक्य में अस्वीकार करने से साध्यवाक्य के पूर्वाङ्ग को निष्कर्ष में अस्वीकार किया जा सकता है।

इस प्रकार,

उदाहरण

(क) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' है।
'ग' 'घ' नहीं है।
∴ 'क' 'ख' नहीं है।

(क) यदि वह आता है, तो
मैं जाऊँगा।
मैं नहीं जाऊँगा :
∴ वह नहीं आता है।

(ख) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' नहीं है।
'ग' 'घ' है।
∴ 'क' 'ख' नहीं है।

(ख) यदि वर्षा होती है, तो
वह नहीं आएगा।
वह आयेगा।
∴ वर्षा नहीं होगी।

(ग) यदि 'क' 'ख' नहीं है,
तो 'ग' 'घ' है।
'ग' 'घ' नहीं है।
∴ 'क' 'ख' है।

(ग) यदि वह नहीं आए,
तो मैं जाऊँगा।
मैं नहीं जाऊँगा।
∴ वह आयेगा।

(घ) यदि 'क' 'ख' नहीं है,
तो 'ग' 'घ' नहीं है।
'ग' 'घ' है।
∴ 'क' 'ख' है।

(घ) यदि वर्षा नहीं होती तो
फसल नहीं उगती।
फसल उगती है।
∴ वर्षा होती है।

यह बात ज्ञातव्य है कि 'विधि-प्रकार' या विधायक और 'निषेध-प्रकार' या विघातक रूप पक्षवाक्य या निष्कर्ष के गुण से

सम्बन्ध नहीं रखता, उसका सबध केवल इस बात में है कि पक्षवाक्य में हम साध्यवाक्य के पूर्वाङ्ग को स्वीकार करते हैं, अथवा उसके उत्तराङ्ग को अस्वीकार करते हैं—पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग चाहे कुछ भी क्यों न हो।

(ख) दोष (Fallacies)

दोष

यदि हम इन नियमों का उल्लंघन कर देते हैं, तो या तो 'उत्तराङ्ग की स्वीकृति' (Affirming the Consequent) का दोष हो जाता है अथवा 'पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति' (Denying the Antecedent) का दोष उत्पन्न हो जाता है। यथा—

यदि 'क' 'ख' है, तो	यदि वह आता है तो
'ग' 'घ' है।	मैं जाऊँगा।
'क' 'ख' नहीं है।	वह नहीं आता है।
∴ 'ग' 'घ' नहीं है।	∴ मैं नहीं जाऊँगा।

यह उक्ति दोषपूर्ण है और इसमें पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति का दोष है, क्योंकि पक्षवाक्य में हमने पूर्वाङ्ग को अस्वीकार कर लिया है और उसी के बल पर उत्तराङ्ग को निष्कर्ष में अस्वीकार कर लिया है। यह नियम-विरुद्ध है।

१. पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति का दोष

यदि हम दिए हुए हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य के साध्यवाक्य को निरपेक्ष रूप देकर निरपेक्ष न्यायवाक्य बना लें, तो वह इस प्रकार होगा :—

शुद्ध-निरपेक्ष

'आ' . 'क' के 'ख' होने की सब दशाएँ 'ग' के 'घ' होने की दशाएँ हैं।
 'ए' यह दशा 'क' के 'ख' होने की दशा नहीं है।
 ∴ 'ए' . यह दशा 'ग' के 'घ' होने की दशा नहीं है।
 यहाँ पर हम देखते हैं कि साध्य " 'ग' के 'घ' होने की दशा " साध्यवाक्य में तो व्याप्त नहीं है, परन्तु निष्कर्ष में व्याप्त है. अतः यहाँ अवैध-साध्य (Illicit Major) का दोष उत्पन्न हो गया

है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति' का दोष शुद्ध निरपेक्ष न्यायवाक्य के अवैध-साध्य के दोष के अनुरूप है।

अब निम्नलिखित युक्ति को देखिए —

यदि 'क' 'ख' है, तो	यदि वह आता है तो
'ग' 'घ' है।	मैं जाऊँगा।
'ग' 'घ' है।	मैं जाऊँगा।
∴ 'क' 'ख' है।	∴ वह आता है।

२. उत्तराङ्ग की स्वीकृति

इस युक्ति में 'उत्तराङ्ग की स्वीकृति' का दोष है, क्योंकि पक्ष-वाक्य में हमने उत्तराङ्ग को स्वीकार किया है, तथा उन्नी के बल पर निष्कर्ष में पूर्वाङ्ग को स्वीकार किया है। यह नियम-विरुद्ध है।

यदि हम दिए हुए हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य को निरपेक्ष रूप देकर, उसे निरपेक्ष न्यायवाक्य में परिवर्तित कर दे, तो वह इस प्रकार होगा —

शुद्ध-निरपेक्ष

'आ' 'क' के 'ख' होने की सब दशाएँ 'ग' के 'घ' होने की दशाएँ हैं।

'आ' यह दशा 'ग' के 'घ' होने की दशा है।

∴ 'आ' यह दशा 'क' के 'ख' होने की दशा है।

इसमें हम देखते हैं कि मध्यस्थ-पद " 'ग' के 'घ' होने की दशा" आश्रयवाक्यों में एक बार भी व्याप्त नहीं है, अतः "अव्याप्त-मध्य" (Undistributed Middle) का दोष उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार, 'उत्तराङ्ग की स्वीकृति' का दोष शुद्ध-निरपेक्ष न्यायवाक्य के अव्याप्त-मध्य के दोष के अनुरूप है।

(ग) निरपेक्ष-न्यायवाक्य में परिवर्तन।

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यों को, उनके साध्यवाक्य को निरपेक्ष तर्कवाक्य में बदलकर, निरपेक्ष न्यायवाक्य का रूप दिया जा सकता है, यथा—

हेतुकलाश्रित-निरपेक्ष

शुद्ध-निरपेक्ष

(१) यदि 'क' 'ख' है, तो
'ग' 'घ' है।

'क' 'ख' है।

• 'ग' 'घ' है।

(२) यदि वह आता है,
तो मैं जाऊँगा।

वह आता है।

∴ मैं जाऊँगा।

'क' के 'ख' होने की सब दशाएँ
'ग' के 'घ' होने की
दशाएँ हैं।

यह 'क' के 'ख' होने की
दशा है।

∴ यह 'ग' के 'घ' होने की
दशा है।

उसके आने की सब दशाएँ
मेरे जाने की दशाएँ हैं।

यह उसके आने की दशा है।

∴ यह मेरे जाने की दशा है।

§ २. वैकल्पिक-निरपेक्ष न्यायवादय

(Disjunctive-Categorical Syllogism)

वैकल्पिक-निरपेक्ष न्यायवादय उसे कहते हैं, जिसका साध्य-
वाक्य वैकल्पिक होता है, पक्षवाक्य निरपेक्ष होता है तथा निष्कर्ष
निरपेक्ष होता है। इसे सामान्यतः वैकल्पिक न्यायवादय भी
कहते हैं।

परिभाषा

नियम—इस प्रकार के अनुमान का नियम यह है वैक-
ल्पिक साध्यवाक्य के किसी एक विकल्प को पक्षवाक्य में अस्वीकार
करने से दूसरे विकल्प को निष्कर्ष में स्वीकार किया जा सकता
है। एक विकल्प की असत्यता में दूसरे की सत्यता निहित रहती
है। यथा—

(१) या तो 'क' 'ख' है, या 'ग' 'घ' है।

'क' 'ख' नहीं है।

∴ 'ग' 'घ' है।

(२) या तो 'क' 'ख' है, या 'ग' 'घ' है।

'ग' 'घ' नहीं है।

∴ 'क' 'ख' है।

नियम : एक
की अस्वी-
कृति

∴ दूसरे की
स्वीकृति

उपर्युक्त नि-
यम का वि-
लोम कुछ
परिस्थितियों
में सत्य
होता है।

कुछ तर्कशास्त्री, यथा यूबरवेग (Ueberweg) ऐसे भी हैं, जिनके विचार में उपर्युक्त नियम का विलोम भी सत्य होता है, अर्थात् साध्यवाक्य के एक विकल्प को पक्षवाक्य में स्वीकार करने से दूसरे विकल्प को निष्कर्ष में अस्वीकार किया जा सकता है। यथा—

(३) या तो 'क' 'ख' है या 'ग' 'घ' है।

'क' 'ख' है।

• 'ग' 'घ' नहीं है।

(४) या तो 'क' 'ख' है या 'ग' 'घ' है।

'ग' 'घ' है।

∴ 'क' 'ख' नहीं है।

यह स्पष्ट है कि दूसरा नियम केवल तब ही सत्य होता है जब कि दोनों विकल्प विरुद्ध-तर्कवाक्यों के समान परस्पर व्यावर्तक हों। अतः सामान्य नियम के रूप में केवल पहले दो आकार ही (जिनमें किसी एक विकल्प को अस्वीकार करने से दूसरे विकल्प को स्वीकार किया जाय) सत्य होते हैं। तीसरे और चौथे आकार तो केवल विगुद्ध दशाओं में ही सत्य होते हैं।

§ ३. उभयतोपाश (Dilemma)

परिभाषा

(क) उभयतोपाश उस मिश्र-अनुमान को कहते हैं, जिसमें साध्यवाक्य एक संयुक्त हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होता है, पक्षवाक्य एक वैकल्पिक तर्कवाक्य होता है (जिसके विकल्प साध्यवाक्य के या तो पूर्वाङ्गों को स्वीकार करते हैं, या उत्तराङ्गों को अस्वीकार करते हैं) और निष्कर्ष या तो निरपेक्ष होता है या वैकल्पिक होता है। अब हम उभयतोपाश को उसके अवयव तर्कवाक्यों में विश्लेषित करते हैं :—

(क) साध्य-
वाक्य : सं-
युक्त हेतु-
फलाश्रित

(क) साध्यवाक्य एक संयुक्त हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होता है : अर्थात् उसमें दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होते हैं, जो कि परस्पर जुड़े रहते हैं।

(ख) पक्षवाक्य एक वैकल्पिक तर्कवाक्य होता है। हेतुफलाश्रित निरपेक्ष न्यायवाक्य के नियमों के अनुसार, साध्यवाक्य के पूर्वाङ्ग को पक्षवाक्य में स्वीकार करने से, उसके उत्तराङ्ग को निष्कर्ष में स्वीकार किया जा सकता है और इसी प्रकार, साध्यवाक्य के उत्तराङ्ग को पक्षवाक्य में अस्वीकार करने पर, उसके पूर्वाङ्ग को निष्कर्ष में अस्वीकार किया जा सकता है। उभयतोपाश तो केवल दो हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यों का योग होता है। अतः वैकल्पिक पक्षवाक्य के दोनों विकल्प साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गों को स्वीकार करते हैं अथवा उत्तराङ्गों को अस्वीकार करते हैं, ताकि निष्कर्ष में पहली दशा में उत्तराङ्ग स्वीकार किये जा सकें एवं दूसरी दशा में पूर्वाङ्ग अस्वीकार किये जा सकें।

(ख) पक्ष-
वाक्य वैक-
ल्पिक

(ग) निष्कर्ष निरपेक्ष हो सकता है अथवा वैकल्पिक।

साधारण बोलचाल में उभयतोपाश को 'द्विविधा' कहते हैं, और इस शब्द से उसके तार्किक अर्थ का संकेत मिलता है। साधारणतया हम द्विविधा में तब पड़ जाते हैं, जब कि हमारे सामने केवल दो ही मार्ग होते हैं और दोनों में से किसी एक को ग्रहण करने से हम असुविधापूर्ण स्थिति में फँस जाते हैं। वास्तव में हमारी दशा 'इधर कुआँ तो उधर खाई' वाली होती है। तर्क में भी इसी प्रकार दो विकल्पों में से एक को ग्रहण करना पड़ता है और दोनों अवस्थाओं में सिवाय फँसने के और कोई रक्षा का मार्ग नहीं दीखता।

(ग) निष्कर्ष
या तो नि-
रपेक्ष या
वैकल्पिक

(घ) उभयतोपाश के प्रकार

विधायक
तथा
विघातक

किसी उभयतोपाश में यदि वैकल्पिक पक्षवाक्य हेतुफलाश्रित-साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गों को वैकल्पिक रूप में स्वीकार करता हो, तो उसे विधायक उभयतोपाश कहते हैं। यदि उभयतोपाश में पक्षवाक्य साध्यवाक्य के उत्तराङ्गों को वैकल्पिक रूप में अस्वीकार करते हैं तो उसे विघातक कहते हैं। अतः उभय-

तोषाण का विधायक या विघातक होना पक्षवाक्य पर निर्भर होता है ।

शुद्ध तथा
मिश्र

विधायक तथा विघातक दोनों प्रकार के उभयोपाग या तो शुद्ध हो सकते हैं अथवा मिश्र हो सकते हैं । शुद्ध उभयोपाग में निष्कर्ष निरपेक्ष होता है और मिश्र उभयोपाग में निष्कर्ष वैकल्पिक होता है । अतः उभयोपाग का शुद्ध या मिश्र होना निष्कर्ष पर निर्भर रहता है ।

चार प्रकार :

अतः उभयोपाग के चार प्रकार होते हैं —

- (१) शुद्ध विधायक (Simple Constructive) ।
- (२) मिश्र विधायक (Complex Constructive) ।
- (३) शुद्ध विघातक (Simple Destructive) ।
- (४) मिश्र विघातक (Complex Destructive) ।

अब हम इन चारों प्रकार के उभयोपागों के दृष्टांत देखेंगे ।

शुद्ध विधायक

(१) शुद्ध-विधायक उभयोपाग

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है, और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ग' 'घ' है ।

या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है ।

∴ 'ग' 'घ' है ।

यदि मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है, और यदि वह दूसरों की इच्छानुसार कार्य करता है, तो भी उसकी आलोचना होती है ।

मनुष्य या तो अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, या दूसरों की इच्छानुसार ।

∴ प्रत्येक दशा में उसकी समालोचना होती है ।

यह उभयोपाग शुद्ध (Simple) है, क्योंकि इसका निष्कर्ष निरपेक्ष है, और यह विधायक (Constructive) है क्योंकि इसके पक्षवाक्य में साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गों को स्वीकार किया गया है ।

अन्य उदाहरण—शुद्ध-विधायक उभयतोपाश का एक सुन्दर उदाहरण इंग्लैण्ड के राजा हेनरी सप्तम के अन्यायी कर्मचारी एम्पसन (Empson) का है, जिसके द्वारा वह अपराधियों को राजकोष में अर्थ-दाण्ड के रूप में बड़ी-बड़ी रकमों को देने के लिए बाध्य किया करता था। वह कहता था—

यदि अपराधी मितव्ययिता से रहता है, तो उसने प्रचुर धन इकट्ठा किया होगा और यदि वह खुले हाथ खर्च करता है तो इससे सिद्ध होता है कि वह धनी है।

किन्तु वह या तो मितव्ययिता से रहता है या खुले हाथ खर्च करता है।

∴ प्रत्येक अवस्था में उसके पास प्रचुर धन है (अर्थात् वह राजकोष में अधिक मात्रा में धन दे सकता है)।

इस तर्क को 'एम्पसन की डुधारी' (Empson's Fork) कहते हैं।

मिश्र विधायक

(२) मिश्र-विधायक उभयतोपाश

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है, और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ज' 'झ' है।

या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।

∴ या तो 'ग' 'घ' है या 'ज' 'झ' है।

इस प्रकार के उभयतोपाश का एक प्रसिद्ध उदाहरण सेनापति उमर खलीफा का है, जो सन् ६४० ईस्वी में अलक्जेन्द्रिया के पुस्तकालय के अधीक्षक के समक्ष इस प्रकार रखा गया था —

यदि पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं तो वे अनावश्यक हैं, और यदि वे कुरान के अनुकूल नहीं हैं, तो अधर्म फैलानेवाली हैं।

या तो पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं या उसके अनुकूल नहीं हैं।

∴ या तो वे अनावश्यक हैं, या अधर्म फैलानेवाली हैं।

(३) शुद्ध-विधायक उभयतोपाश

शुद्ध विधायक

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है, और यदि 'क' 'ख' है तो 'च' 'छ' है।

या तो 'ग' 'घ' नहीं है, या 'च' 'छ' नहीं है ।
 ∴ 'क' 'ख' नहीं है ।

(क) यदि मुझे अपनी योजना पूरी करनी है, तो मुझे अपने विद्यार्थियों को पढ़ाना होगा, और यदि मुझे अपनी योजना पूरी करनी है, तो मुझे अपनी पुस्तक लिखनी है ।

या तो मैं अपने विद्यार्थियों को नहीं पढ़ा सकता या मैं अपनी पुस्तक नहीं लिख सकता ।

∴ मैं अपनी योजना पूरी नहीं कर सकता ।

(ख) इसका एक ऐतिहासिक उदाहरण दार्शनिक जेनो (Zeno) का है, जो अपने उभयतोपाश के द्वारा गति की असम्भवा सिद्ध करना चाहता था । वह इस प्रकार है —

यदि भौतिक पदार्थ गतिमान है तो उसे वही गतिमान होना चाहिए, जहाँ वह है अथवा जहाँ वह नहीं है ।

किन्तु भौतिक पदार्थ जहाँ है, वहाँ गतिमान नहीं हो सकता और न वहाँ, जहाँ वह नहीं है ।

∴ एक भौतिक पदार्थ गतिमान नहीं हो सकता । (अर्थात् गति असम्भव है) ।

यहाँ यह बात द्रष्टव्य है कि पक्षवाक्य वैकल्पिक नहीं है । पक्षवाक्य साध्यवाक्य के उत्तराङ्गो को वैकल्पिक रूप में नहीं, अपितु एक साथ अस्वीकार करता है । जो कुछ भी विकल्प यहाँ है, वह साध्यवाक्य के दूसरे भाग में है ।

कुछ तर्कशास्त्री यथा व्हाटेली (Whately), मैन्सल (Mansel), जैवन्स (Jevons) इत्यादि केवल तीन प्रकार के उभयतोपाश को ही मानते हैं । वे शब्द विधायक उभयतोपाश को नहीं मानते ।

मिश्र विघातक (४) मिश्र-विघातक उभयतोपाश

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ग' 'घ' है; और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ज' 'झ' है ।

या तो 'ग' 'घ' नहीं है, या 'ज' 'झ' नहीं है ।

∴ या तो 'क' 'ख' नहीं है, या 'च' 'छ' नहीं है ।

यदि मनुष्य कर्तव्यनिष्ठ है तो वह आदेश का पालन करेगा और यदि वह बुद्धिमान है, तो वह उसे समझेगा।

या तो वह आदेश का पालन नहीं करता है या उसे समझता नहीं है।

∴ या तो वह कर्तव्यनिष्ठ नहीं है या वह बुद्धिमान नहीं है।

अन्य उदाहरण :

यदि मनुष्य बुद्धिमान है, तो वह अपने तर्क की व्यर्थता समझ लेगा और यदि वह ईमानदार है, तो वह अपनी गलती मान लेगा।

या तो वह अपने तर्क की व्यर्थता नहीं समझता या समझते हुए भी अपनी गलती नहीं मानता।

∴ या तो वह बुद्धिमान नहीं है या वह ईमानदार नहीं है।

(ग) उभयतोपाश का प्रतिक्षेप

किसी उभयतोपाश के सर्वथा विरुद्ध उसी प्रकार का उभयतोपाश रखकर ठीक उल्टा निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया को उभयतोपाश का प्रतिक्षेप (Rebutting a dilemma) कहते हैं।

जब हम किसी उभयतोपाश का प्रतिक्षेप करते हैं, तो हमें साध्यवाक्य के उत्तराङ्गों को परस्पर बदल देना चाहिए और उनका गुण भी बदल देना चाहिए। यह नियम केवल मिश्र-विधातक उभयतोपाश पर लागू हो सकता है। यह बात ज्ञातव्य है कि केवल अशुद्ध उभयतोपाश का ही प्रतिक्षेप हो सकता है, क्योंकि उसके आश्रयवाक्यों में कुछ दोष होता है। विशुद्ध उभयतोपाश का प्रतिक्षेप नहीं होता।

अब हम सर्वप्रथम मिश्र विधातक उभयतोपाश के उपर्युक्त साकेतिक उदाहरण का प्रतिक्षेप करेंगे।

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है और यदि 'च' 'छ' है तो 'ज' 'झ' है।

या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।

∴ या तो 'ग' 'घ' है या 'ज' 'झ' है।

प्रतिक्षेप= विरुद्ध उभयतोपाश प्रस्तुत करना

नियम

साकेतिक उदाहरण

प्रतिक्षेप के बाद यह इस प्रकार का होगा :—

यदि 'क' 'ख' है, तो 'ज' 'झ' नहीं है और यदि 'च' 'छ' है, तो 'ग' 'घ' नहीं है।

या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।

∴ या तो 'ज' 'झ' नहीं है या 'ग' 'घ' नहीं है।

वास्तविक
उदाहरण

अब हम कुछ वास्तविक उदाहरण देखेंगे :—

प्रस्तुत उभयतोपाश :

(१) यदि पुस्तके कुरान के अनुकूल है तो वे निरर्थक है और यदि वे कुरान के अनुकूल नहीं हैं तो वे हानिकारक है।

या तो पुस्तके कुरान के अनुकूल है या नहीं है।

∴ या तो वे निरर्थक है या हानिकारक है।

प्रतिक्षेप-रूप :

यदि पुस्तके कुरान के अनुकूल है, तो वे हानिकारक नहीं है और यदि वे कुरान के अनुकूल नहीं है तो वे निरर्थक नहीं है।

या तो पुस्तके कुरान के अनुकूल है या उसके अनुकूल नहीं है।

∴ या तो वे हानिकार नहीं है या निरर्थक नहीं है।

(२) एथेन्सवासिनी भ्राता का उभयतोपाश :

यदि तुम न्यायपूर्वक कार्य करोगे तो मनुष्य तुमसे घृणा करेगा और यदि तुम अन्याय से कार्य करोगे तो देवता तुमसे घृणा करेगा।

या तो तुम न्यायपूर्वक कार्य करोगे या अन्यायपूर्वक कार्य करोगे।

∴ या तो मनुष्य तुमसे घृणा करेगा या देवता तुमसे घृणा करेगा।

पुत्र ने भ्राता के उभयतोपाश का निम्नलिखित प्रकार से प्रतिक्षेप किया :—

यदि मैं न्यायपूर्वक कार्य करूँगा तो देवता मुझसे घृणा नहीं करेगा और यदि मैं अन्यायपूर्वक कार्य करूँगा तो मनुष्य मुझसे घृणा नहीं करेगा।

या तो मैं न्यायपूर्वक कार्य करूँगा या अन्याय पूर्वक कार्य करूँगा।

∴ या तो देवता मुझसे घृणा नहीं करेगा या मनुष्य मुझसे घृणा नहीं करेगा।

(३) प्रस्तुत उभयतोपाश :—

यदि मनुष्य अविवाहित है, तो उसकी परवाह करनेवाला कोई नहीं है (अतः दुखी है) और यदि कोई मनुष्य विवाहित है तो उसे अपनी पत्नी की परवाह करनी होगी (अतः दुखी है) ।

या तो मनुष्य अविवाहित है या विवाहित ।

∴ या तो उसकी कोई परवाह करनेवाला नहीं है, या उसे अपने पत्नी की परवाह करनी होगी । (अतः दोनों दशाओ में वह दुखी है ।)

प्रतिक्षेप-रूप :—

यदि मनुष्य अविवाहित है, तो उसे अपनी पत्नी की परवाह नहीं करनी होगी (अतः सुखी है) , और यदि मनुष्य विवाहित है तो उसकी परवाह करनेवाली उसकी पत्नी है ही (अतः वह सुखी है ।)

या तो मनुष्य अविवाहित है या विवाहित ।

∴ या तो उसे अपनी पत्नी की परवाह नहीं करनी है या उसकी परवाह करनेवाली उसकी पत्नी है । (अतः दोनों दशाओ में वह सुखी है ।)

(४) इतिहास में एक प्रसिद्ध उभयतोपाश है, 'जिसे लिटि-जिओस' (Litigious) कहते हैं । कहा जाता है कि प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्रोटेगोरस (Protagoras) ने यूअथलस (Euathlus) को न्याय की शिक्षा इस शर्त पर दी कि आधी फीस तो उसे उसी समय मिलनी चाहिए और आधी पहला मुकदमा जीतने पर । परन्तु यूअथलस ने बहुत दिनों तक कोई मुकदमा ही नहीं लिया और प्रोटेगोरस को उसकी आधी फीस न मिली । अतः प्रोटेगोरस ने उस पर अभियोग चलाया और निम्नलिखित उभयतोपाश उसके सामने रक्खा —

“यदि तुम अभियोग में हार गये तो न्यायालय की आज्ञा से तुम्हें फीस देनी होगी और यदि तुम जीत गये तो भी तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार फीस देनी होगी ।”

उसके योग्य शिष्य ने इस उभयतोपाश का प्रतिक्षेप निम्न-लिखित उभयतोपाश से किया—

“यदि मैं अभियोग में हार गया, तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार फीस नहीं दूँगा और यदि मैं जीत गया तो न्यायालय की आज्ञा से मुझे फीस नहीं देनी होगी।”

(घ) उभयतोपाश का परीक्षण । ५

तार्किक दृष्टि में, उभयतोपाश को विशुद्ध तब माना जाता है, जब उसमें आकारगत एवं वस्तुगत दोनों प्रकार का सत्य हो। इस प्रकार के नियमों का पालन करना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उभयतोपाश के अवयव-तर्कवाक्यों में वस्तुगत-सत्य भी होना चाहिए।

उभयतोपाश
की आकार-
गत विशु-
द्धता हेतु-
लाश्रित न्याय-
वाक्यों के
नियमों को
पालन करने
में निर्भर
है।

उभयतोपाश की आकारगत विशुद्धता

उभयतोपाश दो हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यों का सम्मिलित रूप होता है। अतः यह जात करने के लिए कि किसी उभयतोपाश में आकारगत सत्य है या नहीं, हम उसको दो हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यों में विश्लेषित कर देते हैं, और तब इस बात का परीक्षण करते हैं कि इस प्रकार के न्यायवाक्यों के नियमों का पालन किया गया है या नहीं। हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यों के नियम ये हैं कि यदि पक्षवाक्य में हम हेतुफलाश्रित-साध्य के पूर्वाङ्ग को स्वीकार करते हैं, तो निष्कर्ष में हम उसके उत्तराङ्ग को स्वीकार कर सकते हैं। परन्तु इसका विलोम सत्य नहीं होता। और यदि हम पक्षवाक्य में हेतुफलाश्रित साध्य के उत्तराङ्ग को अस्वीकार करते हैं तो निष्कर्ष में उसके पूर्वाङ्ग को अस्वीकार किया जा सकता है। परन्तु इसका विलोम भी सत्य नहीं होता। यदि उभयतोपाश का विश्लेषण करने पर पता चले कि इन नियमों का पालन कर लिया गया है, तो उभयतोपाश में आकारगत सत्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित शुद्ध विधायक उभयतोपाश देखिए —

यदि 'क' 'ख' है तो 'ग' 'घ' है और यदि 'च' 'छ' है तो 'ग' 'घ' है।

या तो 'क' 'ख' है या 'च' 'छ' है।

∴ 'ग' 'घ' है।

जब हम इस उभयतोपाश का उसके अवयव हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो में विग्लेषण करते हैं, तो वह इस प्रकार होता है

(१) यदि 'क' 'ख' है, तो	(२) यदि 'च' 'छ' है तो
'ग' 'घ' है।	'ग' 'घ' है।
'क' 'ख' है।	'च' 'छ' है।
∴ 'ग' 'घ' है।	∴ 'ग' 'घ' है।

इन दोनों हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यो में हम देखते हैं कि पूर्वाङ्गो को पदवाक्य में स्वीकार किया गया है और निष्कर्ष में उत्तराङ्गो को स्वीकार किया गया है। अतः दिए हुए उभयतोपाश में आकार-गत नृत्य है।

शुद्ध-विधायक उभयतोपाश का एक वास्तविक उदाहरण देखिए :—

यदि कोई मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है, और—

यदि कोई मनुष्य दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है।—साध्यवादय।

मनुष्य या तो अपनी इच्छानुसार कार्य करता है अथवा दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है।—पक्षवादय।

∴ प्रत्येक दशा में उसकी आलोचना होती है।— निष्कर्ष।

यह उभयतोपाश निम्नलिखित शुद्ध हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यो में विग्लेषित किया जा सकता है :—

(१) यदि कोई मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है।

एक मनुष्य अपनी इच्छानुसार कार्य करता है।

∴ उसकी आलोचना होती है।

(२) यदि कोई मनुष्य दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है, तो उसकी आलोचना होती है।

एक मनुष्य दूसरो की इच्छानुसार कार्य करता है।
 ∴ उसकी आलोचना होती है।

अतः उपर्युक्त उभयतोपाश में आकारगत सत्य है, क्योंकि हमने पक्षवाक्यों में पूर्वाङ्गों को स्वीकार करके निष्कर्षों में उत्तराङ्गों को स्वीकार किया है।

इसी प्रकार, यदि हम मिश्र-विधायक उभयतोपाश, सरल-विधातक उभयतोपाश तथा मिश्र - विधातक उभयतोपाश का विग्लेषण करे, तो ज्ञात होगा कि उन सब में आकारगत सत्य है, क्योंकि हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष-न्यायवाक्य सम्बन्धी नियमों का पूर्ण पालन किया गया है। यदि इन नियमों का उल्लंघन हो जाय तो उभयतोपाश में आकारगत सत्य नहीं होगा। अतः उभयतोपाश के आकारगत सत्य का प्रदर्शन उसे उसके अवयव हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्यों में विश्लेषित करने तथा यह बतलाने में है कि उसके किसी नियम का उल्लंघन नहीं हुआ है।

उभयतोपाश
का वस्तु-
गत सत्य

उभयतोपाश का वास्तविक सत्य (अथवा वस्तुगत विशुद्धि)

उभयतोपाश का शुद्ध होना केवल आकारगत सत्य पर ही निर्भर नहीं रहता, वरन् वास्तविक सत्य का होना भी आवश्यक है। उभयतोपाश में वास्तविक सत्य तब होता है, जबकि उसके दोनों आश्रयवाक्य वास्तव में सत्य हों। जब साध्यवाक्य के पूर्वाङ्गों और उत्तराङ्गों का सम्बन्ध वास्तविक होता है, तो साध्यवाक्य में वास्तविक सत्य होता है और पक्षवाक्य में वास्तविक सत्य तब होता है जब उसके विकल्प परस्पर विरोधी होते हैं और उनके अतिरिक्त और कोई सभावना नहीं होती।

उभयतोपाश में वास्तविक सत्य तभी हो सकता है जब वह इन सब शर्तों को पूरा करे।

जैवन्स (Jevons) का कहना है कि “उभयतोपाश सत्य होने की अपेक्षा असत्य अधिक होते हैं।” इसका कारण यह

है कि ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, जहाँ दोनों विकल्प (पक्षवाक्य में) एक दूसरे के सर्वथा विरुद्ध हों। निम्नलिखित न्यायवाक्य को देखिए :—

एक शिष्य को पढ़ने में रुचि है, तो उसे प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं; और यदि उसकी पढ़ने से घृणा है तो भी प्रोत्साहन उसके लिए लाभप्रद नहीं है।

या तो उसकी पढ़ने में रुचि है या पढ़ने से घृणा है।

∴ प्रोत्साहन या तो उसके लिए अनावश्यक है या लाभप्रद नहीं है।

इस उभयतोपाश में यह मानना शुद्ध नहीं है कि पक्षवाक्य के दोनों विकल्प, यथा (१) पढ़ने में रुचि तथा (२) पढ़ने से घृणा ही संभावित विकल्प हैं। ऐसा भी हो सकता है कि कुछ शिष्य ऐसे हों, जो न तो पढ़ने में रुचि रखते हों और न पढ़ने से घृणा करते हों और उनको पुरस्कार के रूप में प्रोत्साहन देना लाभप्रद हो सकता हो। अतः दिया हुआ उभयतोपाश दोषपूर्ण है, क्योंकि पक्षवाक्य वास्तव में असत्य है। इसी प्रकार यह भी प्रदर्शित किया जा सकता है कि उभयतोपाश इस कारण दोषपूर्ण हो जाता है कि उसका साध्य-वाक्य वास्तव में सत्य नहीं होता अर्थात् हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यों के पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग का सम्बन्ध वास्तविक नहीं होता।

उभयतोपाश की वस्तुगत असत्यता दो प्रकार से प्रदर्शित की जा सकती है —

(१) साध्यवाक्य (Major Premise) अशुद्ध हो।

उभयतोपाश के साध्यवाक्य में दो हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य होते हैं। यदि परीक्षण के बाद पता चले कि इन हेतुफलाश्रित तर्कवाक्यों के उत्तराङ्ग पूर्वाङ्ग से स्वतः फलित नहीं होते, तो स्पष्ट है कि साध्यवाक्य वास्तव में अशुद्ध है। जब आश्रयवाक्य ही अशुद्ध है तो उससे निकाला गया निष्कर्ष भी असत्य होगा।

दो प्रकार

(१) साध्य-वाक्य अशुद्ध हो; अर्थात् पूर्वाङ्ग से उत्तराङ्ग स्वतः फलित न हो।

(§ ३ ख २) में दिए गए मिश्र-विधायक उभयतोपाश के उदाहरण में उत्तराङ्ग 'वे अनावश्यक हैं' पूर्वाङ्ग 'यदि वे कुरान के अनुकूल हैं' से स्वतः फलित नहीं होता क्योंकि इसका कोई कारण समझ में नहीं आता कि कुरान के अनुकूल होने से ही पुस्तक अनावश्यक हो जायेगी। इसी प्रकार, दूसरा हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य कि 'यदि पुस्तक के कुरान के अनुकूल नहीं हैं तो वे अधर्म फैलानेवाली हैं' भी वास्तव में असत्य है। यह भी तो संभव हो सकता है कि पुस्तक के कुरान के अनुकूल न होते हुए भी अधर्म फैलानेवाली न हों। अतः उभयतोपाश की असत्यता यह प्रदर्शित करके कि उसका साव्य-वाक्य असत्य है, स्पष्ट हो जाती है।

हम जानते हैं कि मनुष्य उभयतोपाश के दो शृंगों के बीच में फँस जाता है। उभयतोपाश की उपमा किसी क्रुद्ध बैल के दो शृङ्गों से दी जाती है और वह व्यक्ति जिसके समक्ष उभयतोपाश प्रस्तुत किया जाता है, उसके दोनों शृङ्गों के बीच में फँसा हुआ-सा मनुष्य है। इस प्रकार से उभयतोपाश की असत्यता सिद्ध करने की क्रिया 'शृंग-निग्रह-विधि' (taking the dilemma by the horns) कहलाती है। वह मनुष्य उभयतोपाश का मुत्तावला बैल के सींग पकड़कर करता है तथा यह सिद्ध कर देता है कि उसमें वह बल नहीं, जो कि प्रतीत होता है।

(२) पक्ष-
वाक्य असत्य
हो : अर्थात्
दोनों विकल्प
पूर्ण रूप से
विरोधी न
हों।

(२) पक्षवाक्य वास्तव में मिथ्या हो।

उभयतोपाश का पक्षवाक्य वैकल्पिक तर्कवाक्य होता है। दो विकल्प प्रस्तुत किये जाते हैं और यह मान लिया जाता है कि दोनों विकल्पों में विरोध पूर्ण है, और बीच की कोई अन्य संभावना नहीं है। यदि ऐसा पता चले कि अन्य संभावनाएँ भी हो सकती हैं, जिनकी उपेक्षा कर दी गई है, तो पक्षवाक्य वास्तव में मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

§ ३(ख) में वर्णित शुद्ध विधायक उभयतोपाश के उदाहरण में, पक्षवाक्य में दिए हुए विकल्प 'मनुष्य या तो अपनी इच्छानुसार कार्य करता है या दूसरों की इच्छानुसार कार्य करता है'—परस्पर पूर्ण विरोधी नहीं हैं। यह भी तो संभव हो सकता है कि वह कभी

तो अपनी इच्छानुसार कार्य करे और कभी दूसरो की इच्छानुसार। अतः पक्षवाक्य में दोनों विकल्पो में जो पूर्ण विरोध मान लिया गया है, वह वास्तव में है नहीं।

उभयतोपाश की असत्यता उसके पक्षवाक्य के विकल्पो के सम्बन्ध में यह दिखलाकर कि वे परस्पर पूर्ण अथवा व्यावर्तक नहीं हैं, सिद्ध हो जाती है। इस विधि को 'शृंगों के बीच से बच निकलना' (escaping between the horns of a dilemma) कहते हैं।

प्रश्नमाला १२

(१) निम्नलिखित की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए —

(क) हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य (ख) वैकल्पिक न्यायवाक्य।

एक हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य तथा एक वैकल्पिक को निरपेक्ष न्यायवाक्य में परिवर्तित कीजिए।

(२) हेतुफलाश्रित न्यायवाक्य के नियमों का वर्णन कीजिए। इन नियमों का उल्लंघन करने से जो दोष उत्पन्न होते हैं, वे निरपेक्ष न्यायवाक्यों के किन दोषों के तुल्य हैं?

(३) मिश्र-न्यायवाक्य किसे कहते हैं? उसके भिन्न-भिन्न प्रकार कौन-कौन से हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

(४) निम्नलिखित हेतुफलाश्रित न्यायवाक्यों को निरपेक्ष न्यायवाक्यों में रूपान्तरित कीजिए और तब उन निरपेक्ष न्यायवाक्यों की विशुद्धि का परीक्षण कीजिए।

(क) यदि कोई विद्यार्थी अध्ययनशील है, तो वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है।

वह परीक्षा में उत्तीर्ण होता है।

∴ वह अध्ययनशील है।

(ख) यदि कोई व्यक्ति अपराधी है तो उसे दंड मिलेगा। परन्तु वह अपराधी नहीं है।

∴ उसको दण्ड नहीं मिलेगा।

(५) उभयतोपाग किसे कहते हैं ? उदाहरण देकर यह बतलाइए कि उभयतोपाग की सत्यता की जाँच कितने प्रकार से हो सकती है ? (उ० प्र० १९५३) ।

(६) निम्नलिखित युक्ति का परीक्षण कीजिए —

यदि स्त्रियो को मताधिकार दे दिया जाय तो वे घर की उपेक्षा करेगी । यदि उन्हें मताधिकार नहीं दिया जाय, तो वे पुरुषो को शान्ति से नहीं रहने देंगी । अतः प्रत्येक दशा में स्त्रियाँ पदेशानी पैदा करेगी । (उ० प्र० १९५१) ।

(७) यह प्रदर्शित करने के लिए कि “अच्छे शासन के लिए स्वतंत्र प्रेस का होना आवश्यक है” एक उभयतोपाग का निर्माण कीजिए । फिर उसका प्रतिक्रिप कीजिए । यह भी बतलाइए कि अन्य किन विधियों से उसका प्रतिक्रिप हो सकता है ? अपने उत्तर की उदाहरणों से पुष्टि कीजिए । (उ० प्र० १९५०)

त्रयोदश प्रकरण

संक्षिप्त न्यायवाक्य (Enthymeme)

§ १ संक्षिप्त न्यायवाक्य (Enthymeme)

यदि किसी न्यायवाक्य के कुछ अवयव व्यक्त न किये जायें (अर्थात् लुप्त रहें) तो, उसे संक्षिप्त न्यायवाक्य कहते हैं।

संक्षिप्त
न्यायवाक्य

पूर्णरूप से व्यक्त करने पर न्यायवाक्य में तीन तर्कवाक्य होते हैं यथा—साध्यवाक्य, पक्षवाक्य तथा निष्कर्ष। साधारण युक्तियों में न्यायवाक्य का प्रयोग कदाचित् ही उसके तार्किक रूप में किया जाता है। वास्तव में तर्कशास्त्र के ग्रन्थों के बाहर पूर्णरूप से व्यक्त न्यायवाक्य कही नहीं मिलता। मनुष्य की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वह स्पष्ट रूप से केवल उतना ही कहता है, जितना कि स्पष्टता के लिए नितान्त आवश्यक हो। पूर्णरूपेण व्यक्त न्यायवाक्य व्यर्थ का पांडित्य-प्रकाशन प्रतीत होता है। अतः न्यायवाक्य प्रायः जिन साधारण रूपों में पाया जाता है, उनमें संक्षिप्त न्यायवाक्य मुख्य है, इनमें न्यायवाक्य के कुछ स्पष्ट अवयव व्यक्त नहीं किये जाते। अतः संक्षिप्त न्यायवाक्य का अर्थ अपूर्ण न्यायवाक्य होता है।

संक्षिप्त न्यायवाक्य चार श्रेणियों (orders) के होते हैं :

(क) प्रथम श्रेणी का संक्षिप्त न्यायवाक्य (Of the first order) उसे कहते हैं जिसमें पक्षवाक्य तथा निष्कर्ष तो व्यक्त हो, परन्तु साध्यवाक्य लुप्त हो। यथा—“सुकरात मर्त्य है क्योंकि वह मनुष्य ही तो है।”

चार श्रेणीः
प्रथम श्रेणीः
साध्यवाक्य
लुप्त

इसको पूर्ण रूप से न्यायवाक्य में व्यक्त करने पर इस प्रकार कहेंगे --

सब मनुष्य मर्त्य हैं।

सुकरात एक मनुष्य है।

∴ सुकरात मर्त्य है।

उपर्युक्त उदाहरण में, साध्यवाक्य 'सब मनुष्य मर्त्य हैं।' लुप्त है। अतः यह प्रथम श्रेणी का संक्षिप्त न्यायवाक्य हुआ।

द्वितीयश्रेणी:
पक्षवाक्य
लुप्त

(ख) द्वितीय श्रेणी का संक्षिप्त न्यायवाक्य (Of the second order) उसे कहते हैं जिसमें साध्यवाक्य और निष्कर्ष तो व्यक्त हो, परन्तु पक्षवाक्य लुप्त हो। यथा— 'सुकरात मर्त्य है, क्योंकि सब मनुष्य मर्त्य हैं।' इस उदाहरण में पक्षवाक्य 'सुकरात मनुष्य है' लुप्त है।

तृतीयश्रेणी:
निष्कर्ष लुप्त

(ग) तृतीय श्रेणी का संक्षिप्त न्यायवाक्य (Of the third order) उसे कहते हैं जिसमें दोनो आश्रयवाक्य तो व्यक्त हो, परन्तु निष्कर्ष लुप्त हो। यथा— 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' और 'सुकरात भी तो एक मनुष्य है।' स्पष्ट है कि इसमें निष्कर्ष 'सुकरात मर्त्य है' लुप्त हो गया है।

चतुर्थ श्रेणी:
केवल एक
ही तर्कवाक्य
व्यक्त होता
है।

(घ) चतुर्थ श्रेणी का न्यायवाक्य (Of the fourth order) उसे कहते हैं जब कि एक ही तर्कवाक्य में सम्पूर्ण न्यायवाक्य का बल हो। कभी-कभी वातचीत में ऐसा होता है कि केवल एक ही वाक्य (कोई-सा आधार-वाक्य अथवा निष्कर्ष) व्यक्त किया जाता है और अन्य भाग लुप्त कर दिये जाते हैं, क्योंकि वे इतने स्पष्ट होते हैं कि सन्दर्भ से स्वयं ही जान लिये जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब शेक्सपीयर ने कहा, "निर्बलता, तेरा नाम स्त्री है।" (Frailty, thy name is woman !), तो

यह वाक्य ही सम्पूर्ण न्यायवाक्य का बल रखता है। इसका पूर्ण रूप इस प्रकार होगा।

सब स्त्रियाँ निर्बल होती हैं।

जटूँद एक स्त्री है।

∴ जटूँद निर्बल है।

इस वाक्य को स्पष्ट करने पर यह प्रतीत होता है कि शेक्सपीयर हेमलेट की माँ (जटूँद) की ओर इशारा कर रहा था। प्रायः यह देखा जाता है कि जब हम किसी व्यक्ति के निधन पर शोक प्रकट करने के लिए जाते हैं, तो कहते हैं, 'हा कण्ट, मनुष्य मर्त्य ही तो है।' इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि अन्ततः मनुष्य को मरना अवश्य है। इसी प्रकार यदि कोई न्यायाधीश गलती करता है, तो हम कहते हैं 'आखिरकार न्यायाधीश मनुष्य ही तो है।' अथवा गलती करना मनुष्य का स्वभाव है।' इत्यादि। इन सब वाक्यों को पूर्ण न्यायवाक्य के रूप में रखकर इनकी अन्तर्निहित शक्ति को प्रकट किया जा सकता है।

प्रश्नमाला १३

(१) संक्षिप्त न्यायवाक्य में आप क्या समझते हैं ? उसकी विभिन्न श्रेणियों को स्पष्ट कीजिए तथा प्रत्येक का एक उदाहरण दीजिए।

चतुर्दश प्रकरण

संयुक्त न्यायवाक्य अथवा युक्तिमाला

(Compound Syllogisms or Trains of Reasoning)

प्रगामी (Progressive) तथा प्रतीयगामी (Regressive)

१. प्रगामी (Progressive) तथा प्रतीयगामी (Regressive) युक्तिमाला

युक्तिमाला

युक्तिमाला दो या उससे अधिक न्यायवाक्यों की ऐसी शृंखला को कहते हैं, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार का होता है कि अन्त में उनसे एक ही निष्कर्ष प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ,

(१) सब 'ख' 'ग' है।

सब 'क' 'ख' है।

∴ सब 'क' 'ग' है।

(२) सब 'ग' 'घ' है।

सब 'क' 'ग' है।

∴ सब 'क' 'घ' है।

(३) सब 'घ' 'ङ' है।

सब 'क' 'घ' है।

∴ सब 'क' 'ङ' है।

(४) सब 'ङ' 'च' है।

सब 'क' 'ङ' है।

∴ सब 'क' 'च' है।

इस उदाहरण में, चार न्यायवाक्य इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि एक का निष्कर्ष दूसरे का आश्रय-वाक्य बन जाता है और अन्त

मे सब “ ‘क’ ‘च’ है” निष्कर्ष बन जाता है। इसको संयुक्त न्यायवाक्य (Polysyllogism) अथवा युक्तिमाला कहते हैं।

संयुक्त न्यायवाक्य में जिस न्यायवाक्य का निष्कर्ष दूसरे न्यायवाक्य का आश्रयवाक्य बन जाता है, वह दूसरे के सम्बन्ध में पूर्व-न्यायवाक्य (Prosyllogism) कहलाता है, और वह न्यायवाक्य जिसका एक आश्रयवाक्य अन्य अनुमान का निष्कर्ष होता है, दूसरे के सम्बन्ध में उत्तर-न्यायवाक्य (Episyllogism) कहलाता है।

यह बात स्पष्ट है कि ‘पूर्व-न्यायवाक्य’ तथा ‘उत्तर-न्यायवाक्य’ सापेक्ष पद हैं। विभिन्न न्यायवाक्यों के सम्बन्ध में एक ही न्यायवाक्य पूर्व-न्यायवाक्य तथा उत्तर-न्यायवाक्य दोनों हो सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में दूसरा न्यायवाक्य पहले न्यायवाक्य के सम्बन्ध में उत्तर-न्यायवाक्य है, तथा तीसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में पूर्व-न्यायवाक्य है। इसी प्रकार तीसरा न्यायवाक्य दूसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में उत्तर-न्यायवाक्य है तथा चौथे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में पूर्व-न्यायवाक्य है।

उपर्युक्त न्यायवाक्य के उदाहरण में, हम देखते हैं कि पहला न्यायवाक्य दूसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में पूर्व-न्यायवाक्य है, दूसरा न्यायवाक्य तीसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में पूर्व-न्यायवाक्य है, तीसरा न्यायवाक्य चौथे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में पूर्व-न्यायवाक्य है। इस प्रकार युक्तिमाला पूर्व-न्यायवाक्य से उत्तर-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर हो रही है। ऐसी युक्तिमाला को प्रगामी (Progressive) अथवा उत्तरोन्मुखी (Episyllogistic) अथवा संश्लेषणात्मक (Synthetic) कहते हैं। अतः प्रगामी युक्तिमाला दो या अधिक न्यायवाक्यों के संयोग को कहते हैं, जिसमें हम पूर्व-न्यायवाक्य से उत्तर-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर होते हैं।

पूर्व-न्याय-
वाक्य तथा
उत्तर-न्याय-
वाक्य
ये परस्पर
सापेक्ष हैं।

उत्तरोन्मुखी
युक्तिमाला
(पूर्व-न्याय-
वाक्य से
उत्तर-न्याय-
वाक्य की
ओर)

पूर्वोन्मुखी
युक्तिमाला
(उत्तर-
न्यायवाक्य
से पूर्व-
न्यायवाक्य
की ओर)

दूसरी ओर यदि युक्तिमाला उत्तर-न्यायवाक्य^० से प्रारम्भ होती है तथा पूर्व-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर होती है, तो उसे प्रतीयगामी (Regressive), पूर्वोन्मुखी (Prosyllogistic) अथवा विश्लेषणात्मक (Analytic) युक्तिमाला कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण को यदि उल्टी दिशा में देखे तो प्रतीयगामी युक्तिमाला बन जायगी। इस प्रकार,

(१) सब 'क' 'च' है।
∴ सब 'ड' 'च' है, तथा
सब 'क' 'ड' है।

(२) सब 'क' 'ड' है।
∴ सब 'घ' 'ड' है, तथा
सब 'क' 'घ' है।

(३) सब 'क' 'घ' है।
∴ सब 'ग' 'घ' है, तथा
सब 'क' 'ग' है।

(४) सब 'क' 'ग' है।
∴ सब 'ख' 'ग' है, तथा
सब 'क' 'ख' है।

इस उदाहरण में पहला न्यायवाक्य दूसरे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में उत्तर-न्यायवाक्य है क्योंकि पहले का एक आधारवाक्य यथा—“सब 'क' 'ड' है” दूसरे का निष्कर्ष बन जाता है। इसी प्रकार दूसरा और तीसरा न्यायवाक्य क्रमशः तीसरे और चौथे न्यायवाक्य के सम्बन्ध में उत्तर-न्यायवाक्य है। अतः यहाँ तर्कमाला उत्तर-न्यायवाक्य से पूर्व-न्यायवाक्य की दिशा में अग्रसर होती है, अतः प्रतीयगामी पूर्वोन्मुखी अथवा विश्लेषणात्मक कहलाती है।

प्रश्नमाला १४

(१) सरल न्यायवाक्य तथा संयुक्त न्यायवाक्य का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(२) युक्तिमाला से क्या समझते हैं ? एक वास्तविक उदाहरण दीजिए। सूत्रात्मक उदाहरण देकर प्रगामी एवं प्रतीयगामी युक्तिमाला का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(३) पूर्व-न्यायवाक्य तथा उत्तर-न्यायवाक्य से क्या तात्पर्य है ?

पञ्चदश प्रकरण

संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला (Sorites) तथा संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Epicheirema)

- §१ संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला ।
 - §२. संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के प्रकार ।
 - §३ संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के नियम ।
 - §४ संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला ।
- प्रश्नमाला १५

§१. संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला (Sorites)

संक्षिप्त
प्रगामी
युक्तिमाला

संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला न्यायवाक्य का वह रूप है जिसमें पूर्व-न्यायवाक्यों के सब निष्कर्ष (तथा उत्तर-न्यायवाक्यों के संगत आश्रय) लुप्त होते हैं ।

संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला पूर्व-न्यायवाक्य से उत्तर-न्यायवाक्य की ओर अग्रसर होती है । परन्तु पूर्व-न्यायवाक्य तथा उत्तर-न्यायवाक्य पूर्णरूपेण व्यक्त नहीं होते क्योंकि इसमें पूर्व-न्यायवाक्यों के निष्कर्ष एवं उत्तर-न्यायों के संगत आश्रय व्यक्त नहीं किये जाते । अतः संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला संक्षिप्त-न्यायवाक्य-माला होती है । यथा—

सूत्रात्मक
उदाहरण

सब 'क' 'ख' हैं ।
सब 'ख' 'ग' हैं ।
सब 'ग' 'घ' हैं ।
सब 'घ' 'ङ' हैं ।
सब 'ङ' 'च' हैं ।
.. सब 'क' 'च' हैं ।

इसे पूर्ण रूप से व्यक्त करने पर यह युक्तिमाला इस प्रकार होगी—

- (१) सब 'ख' 'ग' है।
 सब 'क' 'ख' है।
 ∴ सब 'क' 'ग' है।
- (२) सब 'ग' 'घ' है।
 सब 'क' 'ग' है।
 ∴ सब 'क' 'घ' है।
- (३) सब 'घ' 'ङ' है।
 सब 'क' 'घ' है।
 ∴ सब 'क' 'ङ' है।
- (४) सब 'ङ' 'च' है।
 सब 'क' 'ङ' है।
 ∴ सब 'क' 'च' है।

स्पष्ट है कि वे तर्कवाक्य (मोटे अक्षरो में लिखे हुए) जो कि पूर्व-न्यायवाक्यों के निष्कर्ष तथा सगत उत्तर-न्यायवाक्यों के आश्रय हैं, लुप्त कर दिए गए हैं।

§२. संक्षिप्त प्रणामी युक्तिमाला के प्रकार

संक्षिप्त प्रणामी युक्तिमाला दो प्रकार की होती है—यथा,

(१) अरस्तू की तथा (२) गोविलनिअस की।

(१) अरस्तू की संक्षिप्त प्रणामी युक्तिमाला (Aristotelian Sorites) उस संक्षिप्त प्रणामी युक्तिमाला को कहते हैं जिसमें पूर्व-न्यायवाक्य के निष्कर्ष, जो कि लुप्त हो, सगत उत्तर-न्यायवाक्य के पक्षवाक्य बनते हैं। यथा,

सूत्रात्मक उदाहरण ।

सब 'क' 'ख' है।
 सब 'ख' 'ग' है।
 सब 'ग' 'घ' है।

वास्तविक उदाहरण ।

चेतक एक घोड़ा है।
 एक घोड़ा एक चतुष्पद है।
 एक चतुष्पद एक जन्तु है।

अरस्तू की
 संक्षिप्त
 प्रणामी
 युक्तिमाला
 में, लुप्त
 निष्कर्ष

अगले न्याय-
 वाक्य के
 पक्षवाक्य
 बनते हैं।

सब 'घ' 'ङ' है।
 सब 'ङ' 'च' है।
 ∴ सब 'क' 'च' है।

एक जन्तु एक पदार्थ है।
 ∴ चेतक एक पदार्थ है।

यदि हम उपर्युक्त सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला को पूर्ण रूप से व्यक्त करे तो पता चलेगा कि पूर्व-न्यायवाक्य के लुप्त निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य के पक्षवाक्य बनते हैं। सूत्रात्मक उदाहरण को पिछले खण्ड में पूर्णरूप से व्यक्त किया जा चुका है। वास्तविक उदाहरण का विस्तारित रूप निम्नलिखित होगा—

(१) सब घोड़े चतुष्पद हैं।
 चेतक एक घोड़ा है।
 ∴ चेतक एक चतुष्पद है।

(२) सब चतुष्पद जन्तु हैं।
 चेतक एक चतुष्पद है।
 ∴ चेतक एक जन्तु है।

(३) सब जन्तु पदार्थ हैं।
 चेतक एक जन्तु है।
 ∴ चेतक एक पदार्थ है।

गोक्लिनिअस
 की संक्षिप्त
 प्रगामी
 युक्तिमाला
 में लुप्त
 निष्कर्ष
 साध्यवाक्य
 बनते हैं।

(२) गोक्लिनिअस की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला (Goclenian Sorites) उस सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला को कहते हैं जिसमें पूर्व-न्यायवाक्य का लुप्त निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य का साध्यवाक्य बनता है। यथा—

सूत्रात्मक उदाहरण
 सब 'ङ' 'च' है।
 सब 'घ' 'ङ' है।
 सब 'ग' 'घ' है।
 सब 'ख' 'क' है।
 ∴ सब 'क' 'च' है।

वास्तविक उदाहरण
 एक जन्तु एक पदार्थ है।
 एक चतुष्पद एक जन्तु है।
 एक घोड़ा एक चतुष्पद है।
 चेतक एक घोड़ा है।
 ∴ चेतक एक पदार्थ है।

यदि हम उपर्युक्त सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला को पूर्ण रूप से व्यक्त करे तो पता चलेगा कि पूर्व-न्यायवाक्य के लुप्त निष्कर्ष

सगत उत्तर-न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य बनते हैं। उपर्युक्त सूत्रात्मक उदाहरण को विस्तारित करके इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है.—

(१) सब 'ड' 'च' हैं।

सब 'घ' 'ड' हैं।

∴ सब 'घ' 'च' हैं।

(२) सब 'घ' 'ब' हैं।

सब 'ग' 'घ' हैं।

∴ सब 'ग' 'ब' हैं।

(३) सब 'ग' 'छ' हैं।

सब 'ल' 'ग' हैं।

∴ सब 'ल' 'छ' हैं।

(४) सब 'ख' 'ज' हैं।

सब 'क' 'ख' हैं।

∴ सब 'क' 'ज' हैं।

इसी प्रकार वास्तविक उदाहरण को इस रीति से पूर्ण रूप से व्यक्त किया जा सकता है—

(१) सब जन्तु पदार्थ हैं।

सब चतुष्पद जन्तु हैं।

∴ सब चतुष्पद पदार्थ हैं।

(२) सब चतुष्पद पदार्थ हैं।

सब घोड़े चतुष्पद हैं।

∴ सब घोड़े पदार्थ हैं।

(३) सब घोड़े पदार्थ हैं।

चेतक एक घोड़ा है।

∴ चेतक एक पदार्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोविलनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में पूर्व-न्यायवाक्य के निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य बनते हैं।

दोनों प्रकारों
की तुलना

यदि हम सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के दोनों प्रकारों की तुलना करे, तो ज्ञात होता है कि दोनों के आश्रयवाक्य तथा निष्कर्ष समान होते हैं। परन्तु उनमें निम्नलिखित भेद होते हैं।

(क) साध्य —अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में अन्तिम आश्रयवाक्य का विधेय साध्य (Major term) होता है, परन्तु गोकिलनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में पहले आश्रयवाक्य का विधेय साध्य होता है।

(ख) पक्ष —अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में प्रथम आश्रयवाक्य का उद्देश्य पक्ष होता है तथा गोकिलनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में अन्तिम आश्रयवाक्य का उद्देश्य पक्ष होता है।

(ग) लुप्त निष्कर्ष —अरस्तू की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में पूर्व-न्यायवाक्यों के लुप्त निष्कर्ष सगत उत्तर-न्यायवाक्यों के पक्षवाक्य बनते हैं, तथा गोकिलनिअस की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में लुप्त निष्कर्ष उत्तर-न्यायवाक्य के साध्य-वाक्य बनते हैं।

(घ) घटक-आश्रयवाक्य —अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में, पहला आश्रयवाक्य पक्षवाक्य होता है तथा अन्य सब आश्रयवाक्य साध्य-वाक्य होते हैं। गोकिलनिअस की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में, पहला आश्रयवाक्य साध्यवाक्य होता है तथा अन्य सब आश्रयवाक्य पक्षवाक्य होते हैं।

टिप्पणी—दोनों प्रकार प्रथम आकार में हैं।

कार्वेथ रीड (Carveth Read) का कहना है कि प्रथम दृष्टि में अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला चतुर्थ आकार के क्रम में अग्रसर होती हुई प्रतीत होती है। पूर्वकथित वास्तविक उदाहरण में 'हेतु' 'घोड़ा' प्रथम आश्रयवाक्य का विधेय है तथा द्वितीय आश्रयवाक्य में उद्देश्य है। परन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं क्योंकि उस दशा में निष्कर्ष एक विशेष

तर्कवाक्य (ब्रामान्तीय) होता और अन्तिम निष्कर्ष यह हो जाता : 'कुछ पदार्थ चेतक है।' परन्तु अन्तिम निष्कर्ष यह है . 'चेतक एक पदार्थ है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अरस्तू की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के आश्रयवाक्य यद्यपि चतुर्थ आकार में अग्रसर होते हुए प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में उन्हें प्रथम आश्रयवाक्य को पक्षवाक्य बनाकर प्रथम आकार के क्रम में रखना पड़ता है। गोक्लिनिअस की संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में आश्रयवाक्य प्रथम आकार के क्रम में ही व्यक्त होते हैं। तार्किक दृष्टिकोण से इन दोनों प्रकारों में कोई भी अन्तर नहीं है। परन्तु गोक्लिनिअस का प्रकार अरस्तू के प्रकार से श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें आश्रयवाक्य प्रथम आकार के क्रम में स्वयं ही दिए हुए हैं। कारवेथ रीड का सुझाव है कि अरस्तू का प्रकार या तो तर्कशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों से निकाल दिया जाना चाहिए, अथवा वह चतुर्थ आकार का समझा जाना चाहिए, ताकि निष्कर्ष 'कुछ पदार्थ चेतक है' निकल सके।

§३. संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के नियम

जब संक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला पूर्णरूपेण प्रथम आकार में ही हो, अर्थात् यदि उसके घटक न्यायवाक्य प्रथम आकार में हो, तो दोनों प्रकारों पर निम्नलिखित नियम चरितार्थ होते हैं :—

(१) केवल एक ही आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है, अर्थात् अरस्तू के प्रकार में अन्तिम तथा गोक्लिनिअस के प्रकार में प्रथम।

केवल एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है।

उपपत्ति : (क) केवल एक ही आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है अर्थात् एक से अधिक आश्रयवाक्य निषेधात्मक नहीं होते।

निषेधात्मक आश्रयवाक्य से निषेधात्मक निष्कर्ष निकलता है। अतः यदि एक से अधिक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो अन्त में एक न्यायवाक्य ऐसा हो जायेगा, जिसके दोनों आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो जायेंगे और उनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा।

(ख) यदि कोई आश्रयवाक्य निषेधात्मक होगा, तो वह अरस्तू के प्रकार का अन्तिम तथा गोविलनिअस के प्रकार का प्रथम होगा।

यदि कोई आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो, तो अन्तिम निष्कर्ष निषेधात्मक होगा। अतः उसका विधेय व्याप्त होगा। अतः वह आश्रयवाक्य, जिसमें अन्तिम निष्कर्ष का विधेय, विधेय होगा, निषेधात्मक रहेगा। अतः वह तर्कवाक्य जिसमें अन्तिम निष्कर्ष का विधेय, विधेय होता है, अरस्तू के प्रकार में अन्तिम तथा गोविलनिअस के प्रकार में प्रथम होता है।

यदि किसी अन्य आश्रयवाक्य को निषेधात्मक माना जाय, तो अवैध-साध्य का दोष हो जायगा।

केवल एक
आश्रयवाक्य
विशेष हो
सकता है।

(२) केवल एक आश्रयवाक्य विशेष हो सकता है, अर्थात्—
अरस्तू के प्रकार में पहला तथा गोविलनिअस के प्रकार में अन्तिम।

उपपत्ति :—(क) केवल एक आश्रयवाक्य विशेष हो सकता है अर्थात् एक से अधिक आश्रयवाक्य विशेष नहीं हो सकते।

यदि एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो निष्कर्ष भी विशेष होगा; अतः यदि एक से अधिक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो एक घटक न्यायवाक्य ऐसा बन जायेगा जिसमें दो विशेष आश्रयवाक्य होंगे और कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा।

(ख) यदि कोई एक आश्रयवाक्य विशेष हो, तो वह अरस्तू के प्रकार में प्रथम तथा गोविलनिअस के प्रकार में अन्तिम होगा।

अरस्तू के प्रकार में, प्रथम को छोड़कर अन्य सब आश्रयवाक्य साध्यवाक्य होते हैं। ये नियम सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में तभी चरितार्थ होते हैं जब कि सब घटक न्यायवाक्य प्रथम आकार में हो। प्रथम आकार के विशेष नियमों के अनुसार, साध्यवाक्य सार्वलौकिक (सामान्य) होना चाहिए। अतः केवल प्रथम आश्रयवाक्य, जो कि पक्षवाक्य होता है, विशेष हो सकता है।

गोविलनिअस के प्रकार में, यदि अन्तिम को छोड़कर अन्य कोई आश्रयवाक्य विशेष होगा तो उस न्यायवाक्य का निष्कर्ष, जिसमें यह विशेष आश्रय होगा, विशेष होगा। गोविलनिअस के

प्रकार में, निष्कर्ष अगले न्यायवाक्य का साध्यवाक्य होता है। परन्तु प्रथम आकार में साध्यवाक्य सार्वलौकिक होता है। अतः गोविलनिअस के प्रकार में, केवल अन्तिम आश्रयवाक्य ही विशेष होता है।

यदि कोई अन्य आश्रय विशेष माना जाय तो अव्याप्त-हेतु का दोष हो जाता है।

§४. संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Epicheirema)

संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला उस प्रतीयगामी युक्तिमाला को कहते हैं जिसमें प्रत्येक पूर्व-न्यायवाक्य का एक आश्रय लुप्त होता है।

संक्षिप्त
प्रतीयगामी
युक्तिमाला

संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला में हम उत्तर-न्यायवाक्य से पूर्व-न्यायवाक्य की दिशा में तर्क करते हैं। इसमें प्रत्येक पूर्व-न्यायवाक्य का एक आश्रय लुप्त होने के कारण इसे संक्षिप्त मानते हैं। परन्तु उत्तर-न्यायवाक्य पूर्णरूपेण व्यक्त रहता है। अतः संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला में, उत्तर-न्यायवाक्य तो पूर्णरूप से व्यक्त रहता है, परन्तु पूर्व-न्यायवाक्य संक्षिप्त न्यायवाक्य के रूप में होते हैं।

संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला या तो शुद्ध अथवा मिश्र होती है। शुद्ध संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Simple Epicheirema) में उत्तर-न्यायवाक्य के आश्रयवाक्य संक्षिप्त-न्यायवाक्य के द्वारा सिद्ध किये जाते हैं। मिश्र-प्रतीयगामी युक्तिमाला (Complex Epicheirema) में इन संक्षिप्त-न्यायवाक्यों को पुनः अन्य संक्षिप्त-न्यायवाक्यों से सिद्ध किया जाता है।

प्रकार :
शुद्ध तथा
मिश्र

संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला पुनः एकनिष्ठ अथवा उभयनिष्ठ हो सकती है। एकनिष्ठ संक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Single Epicheirema) में उत्तर-न्यायवाक्य (Episyllogism) का एक आश्रयवाक्य एक संक्षिप्त-न्यायवाक्य से

एकनिष्ठ
तथा
उभयनिष्ठ

सिद्ध किया जाता है। उभयनिष्ठ सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला (Double Epicheirema) में उत्तर-न्यायवाक्य के दोनों आश्रयवाक्य सक्षिप्त न्यायवाक्य में सिद्ध होते हैं।

चार प्रकार

अतः सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला के चार प्रकार होते हैं -

- (१) शुद्ध एकनिष्ठ (Simple Single)
- (२) शुद्ध उभयनिष्ठ (Simple Double)
- (३) मिश्र एकनिष्ठ (Complex Single)
- तथा (४) मिश्र उभयनिष्ठ (Complex Double)

अब हम एक-एक करके प्रत्येक के उदाहरण देखेंगे।

शुद्ध-एकनिष्ठ

(१) शुद्ध-एकनिष्ठ (Simple Single) :

सब 'क' 'ख' हैं, क्योंकि सब 'क्ष' 'ख' हैं तथा सब 'क' 'क्ष' हैं।

सब 'क्ष' 'ख' हैं, क्योंकि सब 'म' 'ख' हैं।

पूर्ण रूप में व्यक्त करने पर, निम्नलिखित प्रतीयगामी युक्तिमाला प्राप्त होती है

उत्तर-न्यायवाक्य

सब 'क्ष' 'ख' हैं।

सब 'क' 'क्ष' हैं।

∴ सब 'क' 'ख' हैं।

पूर्व-न्यायवाक्य

सब 'म' 'ख' हैं।

सब 'क्ष' 'म' हैं।

∴ सब 'क्ष' 'ख' हैं।

इसमें प्रथम न्यायवाक्य का आश्रयवाक्य "सब 'क्ष' 'ख' हैं" दूसरे न्यायवाक्य का निष्कर्ष बन जाता है। अतः युक्ति उत्तर-न्यायवाक्य से पूर्व-न्यायवाक्य की दिशा में अग्रसर होती है। दूसरे शब्दों में यह प्रतीयगामी युक्तिमाला है। पूर्व-न्यायवाक्य का एक आश्रयवाक्य लुप्त है, अतः यह सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला है।

यह सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला शुद्ध है क्योंकि उत्तर-न्यायवाक्य का आश्रय "सब 'क्ष' 'ख' हैं" एक सक्षिप्त-न्यायवाक्य

के द्वारा सिद्ध हुआ है। यह एकनिष्ठ भी है क्योंकि इस प्रकार एक ही आश्रयवाक्य को सिद्ध किया गया है, दूसरे को नहीं।

(२) शुद्ध उभयनिष्ठ (Simple Double)

शुद्ध उभय-
निष्ठ

सब 'क' 'ख' है क्योंकि, सब 'क्ष' 'ख' है तथा सब 'क' 'क्ष' है।
सब 'क्ष' 'ख' है क्योंकि, सब 'म' 'ख' है। और,
सब 'क' 'क्ष' है क्योंकि, सब 'क' 'य' है।

यह शुद्ध है क्योंकि उत्तर-न्यायवाक्य के, आश्रयवाक्यों को सक्षिप्त-न्यायवाक्यों से सिद्ध किया गया है। यह उभयनिष्ठ भी है क्योंकि दोनों आश्रयवाक्यों को इस प्रकार सिद्ध किया गया है। पहला सक्षिप्त-न्यायवाक्य साध्यवाक्य अर्थात् "सब 'क्ष' 'ख' है" को सिद्ध करता है और दूसरा सक्षिप्त-न्यायवाक्य पक्षवाक्य अर्थात् "सब 'क' 'क्ष' है" को सिद्ध करता है। यह भी निम्न प्रकार से पूर्णरूपेण व्यक्त होता है—

उत्तर-न्यायवाक्य : सब 'क्ष' 'ख' है।
सब 'क' 'क्ष' है।
.. सब 'क' 'ख' है।

पूर्व-न्यायवाक्य : (१) सब 'म' 'ख' है।
सब 'क्ष' 'म' है।
.. सब 'क्ष' 'ख' है।

(२) सब 'य' 'क्ष' है।
सब 'क' 'य' है।
.. सब 'क' 'क्ष' है।

स्पष्ट है कि प्रथम पूर्व-न्यायवाक्य साध्यवाक्य को तथा दूसरा पूर्व-न्यायवाक्य पक्षवाक्य को सिद्ध करता है। मोटे अक्षरों में लिखे आश्रयवाक्य लुप्त थे।

(३) मिश्र एकनिष्ठ (Complex Single) :

मिश्र-
एकनिष्ठ

सब 'क' 'ख' है क्योंकि सब 'क्ष' 'ख' है और सब 'क' 'क्ष' है।
सब 'क्ष' 'ख' है क्योंकि सब 'म' 'ख' है, तथा—
सब 'म' 'ख' है क्योंकि सब 'न' 'ख' है।

यह सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला मिश्र है क्योंकि उत्तर-न्यायवाक्य का एक आश्रय एक सक्षिप्त-न्यायवाक्य से सिद्ध किया गया है। फिर सक्षिप्त न्यायवाक्य का एक आश्रय दूसरे संक्षिप्त न्यायवाक्य से सिद्ध किया गया है। यह एकनिष्ठ है, क्योंकि उत्तर-न्यायवाक्य का केवल एक आश्रय ही सिद्ध किया गया है और दूसरा आश्रय "सब 'क' 'क्ष' है" सिद्ध नहीं किया गया है।

मिश्र-

उभयनिष्ठ

(४) मिश्र उभयनिष्ठ (Complex Double) .

सब 'क' 'ख' है, क्योंकि सब 'क्ष' 'ख' है और सब 'क' 'क्ष' है।

सब 'क्ष' 'ख' है, क्योंकि, सब 'म' 'ख' है। और,

सब 'म' 'ख' है, क्योंकि, सब 'न' 'ख' है।

और पुनः

सब 'क' 'क्ष' है क्योंकि सब 'ग' 'क्ष' है। और,

सब 'ग' 'क्ष' है क्योंकि सब 'घ' 'क्ष' है।

यह मिश्र उभयनिष्ठ सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला का उदाहरण है क्योंकि उत्तर-न्यायवाक्य के दोनो आश्रयवाक्यों को सक्षिप्त-न्यायवाक्यों के द्वारा सिद्ध किया गया है। और फिर इन सक्षिप्त-न्यायवाक्यों के आश्रयवाक्यों को अन्य सक्षिप्त-न्यायवाक्यों से सिद्ध किया गया है।

प्रश्नमाला १५

(१) अस्तु की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला का एक सूत्रात्मक उदाहरण दीजिए। उसको उसके घटक न्यायवाक्यों में विश्लेषित कीजिए। यह प्रदर्शित कीजिए कि इस प्रकार की युक्तिमाला में पहले आश्रयवाक्य के सिवा अन्य सब सार्वलौकिक होते हैं।

(२) सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला किसे कहते हैं ? उसके विभिन्न प्रकारों का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिए।

(३) निम्नलिखित का अन्तर स्पष्ट कीजिए.—

(क) सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला तथा सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमाला।

(ख) गोविलनिअस की तथा अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला ।

(४) सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला के नियमों की व्याख्या कीजिए ।

(५) सिद्ध कीजिए कि सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला में केवल एक आश्रयवाक्य निषेधात्मक हो सकता है—यथा अरस्तू की में अन्तिम तथा गोविलनिअस की में प्रथम ।

(६) निम्नलिखित का परीक्षण कीजिए —

धर्म एक निश्चित विज्ञान नहीं है, एक निश्चित विज्ञान का प्रदर्शन हो सकता है, प्रदर्शित विज्ञान सत्य होता है, जो सत्य होता है, वह लाभकारी होता है; अतएव धर्म लाभकारी नहीं है ।

[सकेत .—यह दोषपूर्ण (fallacious) अरस्तू की सक्षिप्त प्रगामी युक्तिमाला है क्योंकि इसका पहला आश्रयवाक्य निषेधात्मक है ।]

षोडश प्रकरण

मिल की न्यायवाक्य पर आपत्तियाँ

§१. मिल (Mill) की दो आपत्तियाँ

मिल की आपत्तियाँ : मिल महोदय ने न्यायवाक्य को तर्क का रूपविषयक साधन मानने के विरुद्ध निम्नलिखित दो आपत्तियों की हैं :

प्रथम आपत्ति : न्यायवाक्य के अनुसार हम तर्क नहीं करते ।
(१) प्रथम, मिल का कहना है कि न्यायवाक्य की प्रक्रिया ऐसी नहीं है, जिसके अनुसार हम तर्क करते हैं। उसके अनुसार “सब तर्क ‘विशेष’ से ‘विशेष’ का ज्ञान कराते हैं। सामान्य तर्क-वाक्य केवल इसी प्रकार किये हुए तर्कों के समूह होते हैं। हम इस प्रकार के साधारण सूत्र बना लेते हैं, जिनके द्वारा तर्क किया करते हैं। न्यायवाक्य का साध्यवाक्य इसी प्रकार का सूत्र होता है, तथा निष्कर्ष इस सूत्र से निकाला गया तर्क नहीं, वरन् इस सूत्र के अनुसार निकाला हुआ अनुमान है।”

परन्तु मिल न्यायवाक्य को तर्क के लिए सर्वथा व्यर्थ नहीं समझता। उसके अनुसार, “न्यायवाक्य उस आकार का तो नहीं होता, जिसमें हमारे तर्क अनिवार्यतः होने चाहिए, या होते हैं, परन्तु उसका मूल्य एक ऐसी प्रक्रिया को प्रस्तुत करना है जिसके द्वारा उन तर्कों को सदा व्यक्त किया जा सकता है और जिसके द्वारा हम अपने तर्कों की जाँच कर सकते हैं, तथा यदि वे अनिश्चित हुए तो उन्हें प्रकाश में ला सकते हैं।”

अतः मिल के अनुसार न्यायवाक्य हमारे तर्क का सामान्य-आकार तो नहीं है, परन्तु उसकी उपयोगिता तर्क के सदिग्ध

उदाहरणों की विगुहता की जाँच करने में है। हरशेल (Herschel), व्हेवेल (Whewell), बेन (Bain) इत्यादि तर्कशास्त्री उन्हीं दृष्टिकोण से सहमत हैं।

आलोचना — किन्तु कुछ तर्कशास्त्री यथा—मैन्सल (Mansel), डी० मोर्गन (De Morgan), मार्टिनो (Martineau), डाक्टर पी० के० रे (Dr. P. K. Ray), सर डब्ल्यू० हेमिल्टन (Sir W. Hamilton) इत्यादि मिल के उपर्युक्त मत का विरोध करते हैं। इस प्रसंग में निम्नलिखित युक्तिर्या प्रस्तुत की जाती है —

(क) मिल की यह आपत्ति सत्य है कि हम न्यायवाक्य की द्रव्या के अनुसार तर्क नहीं करते। परन्तु यह भी सत्य है कि हमारे तर्क तब तक सत्य नहीं होते, जब तक कि उनमें न्यायवाक्य के आकार (अर्थात् नियमों) पर परिवर्तित हो सकने की क्षमता नहीं हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मिल ने मनोविज्ञान तथा तर्कशास्त्र के कार्यों को परस्पर गड़बड़ा दिया है। तर्कशास्त्र का यह कार्य कदापि नहीं है कि वह उन प्रक्रियाओं का वर्णन करे, जिनके द्वारा लोग शुद्धतापूर्वक या अशुद्धतापूर्वक तर्क करते हैं, उसका उद्देश्य तो उन प्रक्रियाओं का वर्णन करना है, जिनसे लोगों को तर्क करना चाहिए, ताकि उनके विचार शुद्ध हो सकें। मनोविज्ञान तर्क के उस रूप का अध्ययन करता है जैसा कि वह है, परन्तु तर्कशास्त्र उस रूप का अध्ययन करता है, जैसा कि उसको होना चाहिए। मिल ने इन दोनों में भ्रम उत्पन्न कर दिया है और इन दोनों का अध्ययन ही तर्कशास्त्र का क्षेत्र मान लिया है। अतः यह कहने से कि न्यायवाक्य तर्क करने की सामान्य प्रक्रिया नहीं है, उसकी उपयोगिता किसी प्रकार भी कम नहीं होती, जब तक कि न्यायवाक्य को विशुद्ध तर्क के प्रकार की मान्यता रहेगी।

मिल ने
तर्कशास्त्र के
क्षेत्र को
मनोविज्ञान
के क्षेत्र के
साथ गड़बड़ा
दिया है।

हम वास्तव में एक 'विशेष' से दूसरे 'विशेष' की दिशा में तर्क करते हैं क्योंकि उनमें एक सामान्य तत्व होता है।

(ख) मिल की यह आपत्ति कि "सब तर्क विशेष से विशेष का ही ज्ञान कराते हैं—भी तर्क की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती। यह सच है कि प्रायः हम उपमान के द्वारा 'विशेष' से 'विशेष' का ज्ञान करते हैं, किन्तु यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण है कि यही सामान्य ज्ञान कराने का एकमात्र साधन है। उपमानजन्य ज्ञान प्रायः अशुद्ध होता है; किन्तु जब वह सत्य भी होता है, तब वह 'विशेषों' के सामान्य तत्व पर ही तो अवलम्बित रहता है। हमारे लिए 'विशेष' से 'विशेष' का ज्ञान करना तभी ठीक होता है जब हम दोनों में सादृश्य का भाव देखते हैं। यह सादृश्य का भाव उस सामान्य नियम का द्योतक होता है जो कि सब 'विशेषों' को एक साथ संगठित कर देता है। अतः जब कभी भी हम सादृश्य से अनुमान करते हैं, तब हमारा अनुमान, विशेष पदार्थों के सामान्य-तत्व के आधार पर ही चलता है, जो स्वयं विशेष नहीं होता। जैसा कि वेल्टन (Welton) ने कहा है, "उन उदाहरणों में जहाँ अनुमान एक या अधिक विशेषों पर निर्भर रहता सा प्रतीत होता है, वास्तव में उस सामान्य तत्व पर निर्भर रहता है, जो उनके सादृश्य का आधार हो। और इसी को एक सामान्य तर्कवाक्य के रूप में व्यक्त किया जा सकता है, जो कि न्यायवाक्य का साध्यवाक्य होता है।"

दूसरी आपत्ति :
आत्माश्रय का दोष

(२) मिल (Mill) की दूसरी आपत्ति यह है कि प्रत्येक न्यायवाक्य में 'आत्माश्रय का दोष' (petitio principii) होता है।

आत्माश्रय का दोष (Fallacy of petitio principii) तब उत्पन्न होता है, जब हम निष्कर्ष को आश्रयवाक्यों (Premises) में ही निहित मान लेते हैं। इसको प्रश्न-प्रार्थना (Begging the Question) अथवा चक्रक-दोष (Arguing in a circle) भी कहते हैं। उदाहरणार्थ—'मनुष्य मर्त्य है, क्योंकि उसकी मृत्यु होती है।'

अतः यह कहना कि प्रत्येक न्यायवाक्य में आत्माश्रय का दोष होता है, उनकी सत्यता पर ही कुठाराघात करना है। उनका नाश अर्थात् तो यह है कि प्रत्येक न्यायवाक्य का निष्कर्ष एक न एक आश्रयवाक्य में ही सम्मिलित रहता है, परन्तु इसका साधारण अर्थ यह भी लिया जाता है कि आश्रयवाक्य (Premises) पहले ही निर्माण को सत्य मान लेते हैं, अतः उनका उपयोग निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिए नहीं किया जा सकता। निम्नलिखित न्यायवाक्य को देखिए—

सब मनुष्य मर्त्य हैं, 'क' एक मनुष्य है, इसलिए 'क' मर्त्य है।
 उनका निष्कर्ष " 'क' मर्त्य है" आश्रय "सब मनुष्य मर्त्य हैं"
 में पहले से ही समाविष्ट है।

आलोचना :—(क) न्यायवाक्य सम्बन्धी इस तथ्य पर आधारित है कि सामान्य साध्यवाक्य (Universal Major Premise) विशेष उदाहरणों का केवल समूहमात्र होता है। यदि ऐसा होता, तो यह आपत्ति उचित हो सकती थी। परन्तु तब सामान्य तर्कवाक्यों का निर्माण केवल कुछ विशेष उदाहरणों के परीक्षण के पश्चात् प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त (Law of Uniformity of Nature) तथा कारणता के सिद्धान्त (Law of Causation) के आधार पर किया जाता है। यदि समग्र विशेष उदाहरणों की परीक्षा के बाद सामान्य तर्कवाक्य बनाया जाता है तो उसे पूर्ण उद्गमन (Perfect Induction) कहते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक उद्गमन (Scientific Induction) की क्रिया भी है जिसमें सब उदाहरणों की परीक्षा करने पर व्याप्ति नहीं बनाई जाती, किन्तु केवल थोड़े से ही उदाहरणों की परीक्षा के बाद अनुमान किया जाता है। उदाहरणार्थ, 'सब मनुष्य मर्त्य हैं' इस सामान्य तर्कवाक्य को हम सब उदाहरणों की परीक्षा करने के बाद कभी नहीं बना सकते—क्योंकि

आलोचना :
 (क) सामान्य साध्यवाक्य केवल विशेष उदाहरणों का समूह-मात्र नहीं होता।

कम से कम जीवित मनुष्यों को तो छोड़ ही देना पड़ेगा। अतः यदि हम कहे कि 'भारतवर्ष का वर्तमान राष्ट्रपति मर्त्य है', तो इस सामान्य तर्कवाक्य में निष्कर्ष आश्रय पर आधारित नहीं होगा।

(ख) निष्कर्ष दोनों आश्रय-वाक्यों को एक साथ रखने पर प्राप्त होता है।

(ख) न्यायवाक्य में दोनों आश्रयवाक्यों की आवश्यकता होती है—साध्यवाक्य की भी और पक्षवाक्य की भी। परन्तु पूर्वोक्त आपत्ति के अनुसार तो पक्षवाक्य बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध होगा। स्थिति यह है कि निष्कर्ष दोनों आश्रयवाक्यों को एक साथ लेकर ही निकाला जाता है, किसी एक वाक्य से नहीं निकाला जाता। अतः पक्षवाक्य की आवश्यकता ही इस बात को सिद्ध करती है कि न्यायवाक्य में आत्माश्रय का दोष नहीं है।

(ग) न्याय-वाक्य में जो कुछ अन्त-निहित होता है, वह व्यक्त कर दिया जाता है। अतः उससे ज्ञान का विकास होता है।

(ग) यदि वास्तव में न्यायवाक्य में आत्माश्रय का दोष होता तो उसके द्वारा हमारे ज्ञान में कोई वृद्धि न होती। न्यायवाक्य के वारे में हम कह सकते हैं कि निष्कर्ष का सत्य आश्रयवाक्यों के सत्य में निहित रहता है; परन्तु हमें निष्कर्ष का ज्ञान आश्रयवाक्यों के ज्ञान के पश्चात् ही प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, निष्कर्ष आश्रयवाक्य में अन्तर्भूत हो सकता है, परन्तु इस बात का ज्ञान तो हमें तभी हो पाता है जब हम आश्रय-वाक्यों से स्पष्टतया निष्कर्ष निकाल लेते हैं। अतः अन्तर्निहित या अव्यक्त से व्यक्त ज्ञान की ओर अग्रसर होना वास्तव में ज्ञान में वृद्धि है। अतः निष्कर्ष पर पहुँचने पर ज्ञान में विकास अवश्य होता है।

(घ) मिल की आपत्ति तार्किक आपत्ति नहीं है।

(घ) अन्त में, यदि यह आपत्ति ठीक भी होती तो वह तार्किक न होकर मनोवैज्ञानिक आपत्ति होती। किसी तर्क को इसलिए असत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि 'इसको सब जानते हैं।' रेखागणित के सिद्धान्त इसलिए निरर्थक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि कोई व्यक्ति उन्हें अच्छी तरह जानता है और उसे वे सब सिद्धान्त याद हैं।

इस प्रकार, आत्माश्रय की आपत्ति निराधार सिद्ध हो

जाती है तथा न्यायवाक्य की तर्क-पद्धति की विशुद्धता स्थापित हो जानी है।

यह बात ज्ञातव्य है कि न्यायवाक्य की विशुद्धता स्थापित करते समय कुछ न्यायशास्त्री यहाँ तक कह डालते हैं कि 'न्यायवाक्य विशुद्ध तर्क का एकमात्र स्वरूप है।' यह दृष्टिकोण व्हेटली (Whately) का है। यह कथन स्पष्टतया अतिशयोक्तिपूर्ण है, क्योंकि न्यायवाक्य (Syllogism) में केवल उन्हीं तर्कवाक्यों का उपयोग होता है जो कि उद्देश्य एवं गुणों का सम्बन्ध व्यक्त करते हैं और उद्देश्य और विधेय के अन्य सम्बन्धों से प्राप्त अनुमान न्यायवाक्य के रूप में भली भाँति व्यक्त नहीं किये जा सकते।

दूसरा
सीमान्त
दृष्टिकोण
भी सत्य
नहीं है।

प्रश्नमाला १६

(१) आत्माश्रय के दोष से क्या तात्पर्य है? एक उदाहरण देकर समझाइए।

(२) मिल की यह आपत्ति कि प्रत्येक न्यायवाक्य में आत्माश्रय का दोष होता है, कहां तक सच है?

(३) क्या प्रत्येक अनुमान विशेष से विशेष तक ही होता है?

(४) यह कहा जाता है कि न्यायवाक्य का निष्कर्ष साध्य-वाक्य से नहीं, बरन उसके अनुसार प्राप्त किया जाता है। इस कथन की विवेचना कीजिए।

सप्तदश प्रकरण

निगमन-मूलक तर्क के दोष या आभास

(Fallacies in Deductive Reasoning)

- §१. 'आभास' या दोष की परिभाषा । उसका वर्गीकरण ।
§२. निगमनमूलक आभास ।
§३. अर्द्ध-तार्किक आभास ।
 (क) वाक्य छल ।
 (ख) भ्रामकोच्चारण दोष ।
 (ग) अनेकार्थक दोष ।
 (घ) अनुप्रास दोष ।
 (ङ) उपाधि-भेद दोष ।
 (अ) अनुलोम उपाधि-भेद दोष ।
 (आ) प्रतिलोम उपाधि-भेद दोष ।
 (च) तथा (छ) विभाग का दोष तथा रचना का दोष ।
§४. भारतीय न्याय में दोष ।
 (क) हेत्वाभास की परिभाषा तथा प्रकार ।
 (ख) सव्यभिचार हेत्वाभास ।
 (ग) विरुद्ध हेत्वाभास ।
 (घ) सत्प्रतिपक्ष ।
 (ङ) असिद्ध हेतु ।
 (च) बाधित हेत्वाभास ।
 (छ) अन्य तर्क-दोष ।
§५. अभ्यास हल करने के लिए सकेत ।
 कुछ हल किये हुए अभ्यास ।
 प्रश्नमाला १७ ।

§१. आभास या दोष (Fallacy) की परिभाषा . उसका वर्गीकरण

‘दोष’ या ‘आभास’ का साधारण अर्थ किसी प्रकार का भ्रम अथवा त्रुटि होता है और कुछ तर्कशास्त्री इस शब्द का उपयोग इसी व्यापक अर्थ में करते हैं और सब प्रकार के भ्रम या त्रुटि को ‘दोष’ के अन्तर्गत मानते हैं। तथापि यहाँ दोष से हम यही अर्थ ग्रहण करते हैं कि दोष वह है जो तार्किक नियमों के उल्लंघन करने से पैदा होता है। तर्कशास्त्र उन नियमों का स्पष्ट वर्णन करता है जो विचारों को नियमित तथा सुसम्बद्ध बनाते हैं। अतः जहाँ नियम हैं, वहाँ उनका उल्लंघन भी संभव है। अतः दोष हो जाते हैं। अतः दोष या आभासों की सख्या नियमों की सख्या के समान ही असंख्य है।

आभास का
अर्थ तार्किक
नियमों का
उल्लंघन
है।

दोषों का वर्गीकरण : विभिन्न तर्कशास्त्रियों ने दोषों का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। अब हम संक्षेप में अरस्तू (Aristotle), व्हेटली (Whately) तथा मिल (Mill) के दोषों के वर्गीकरण पर विचार करेंगे।

दोषों का
वर्गीकरण

अरस्तू ने केवल उन दोषों का वर्णन किया है, जिन्हें वह ‘सोफिज्म’ (Sophisms) कहता है। ‘सोफिज्म’ उस चातुर्यपूर्ण उक्ति को कहते हैं जिसका उद्देश्य विपक्षी को धोका देना है। ‘सोफिज्म’ दो प्रकार के होते हैं—(१) वे जो कि भाषा के सदिग्ध प्रयोग के कारण उत्पन्न होते हैं और (२) वे जिनका दोष युक्ति के वस्तुविषय के परीक्षण के बाद ही ज्ञात हो पाता है। पहिले प्रकार के ‘सोफिज्म’ के पाँच उपविभाग हैं, यथा—(१) अनेकार्थक दोष (Equivocation), (२) वाक्य-छल (Amphiboly), (३) रचना-छल (Composition), (४) विभाग का दोष (Division), (५) भ्रामकोच्चारण दोष (Accent) तथा (६) अनुप्रास-दोष (Figure of speech)। दूसरे प्रकार के सोफिज्म के सात उपविभाग हैं, यथा—(१) उपाधि-भेद दोष (Accident),

अरस्तू

(२) अनुलोम-उपाधि-भेद दोष (Fallacia a dicto secundum quid ad dictum simpliciter) तथा उसका प्रतिलोम । (३) प्रतिवाद के अज्ञान का दोष (Ignoratio Elenchi), (४) सम्बन्धित दोष (Consequens), (५) आत्माश्रय दोष (Petitio principii), (६) अ-कारण का दोष (Non causa pro causa), (७) बहुप्रश्नात्मक दोष (Fallacy of many questions) ।

व्हेटली

व्हेटली (Whately) ने आभास के दो विभाग माने हैं, यथा—(क) तार्किक आभास तथा (ख) अ-तार्किक (अथवा वस्तुविषयक (Non-logical or Material) आभास । तार्किक आभास के पुन दो भाग हैं—(१) शुद्ध तार्किक (Purely logical fallacies), जिसमें दोष केवल अभिव्यक्ति के आकार में है, और उसमें पदों के अर्थ पर ध्यान नहीं दिया जाता, (२) अर्द्ध तार्किक दोष (Semi-logical fallacies), व्हेटली उन्हें मानता है जो कि शब्दों की सन्दिग्धता से उत्पन्न होते हैं । (ख) अतार्किक दोष उसे कहते हैं, जिसमें निष्कर्ष अनिवार्यतः आश्रयवाक्यों से फलित नहीं होता, यथा—आत्माश्रय का दोष (petitio principii), प्रतिवाद के अज्ञान का दोष (Ignoratio Elenchi) ।

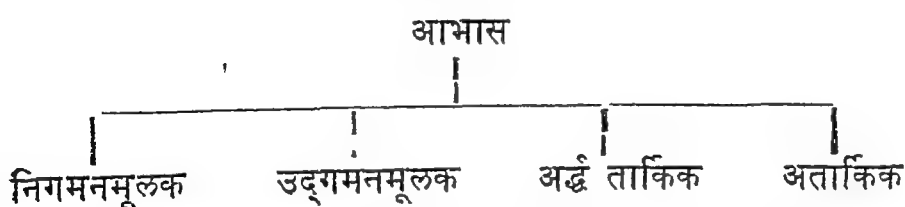
मिल

मिल (Mill) ने 'आभास' के पाँच उपविभाग माने हैं । यथा—(१) शुद्ध निरीक्षण के दोष (Fallacies of Simple Inspection) जो कि तर्कवाक्यों को स्वयंसिद्धि की अनिर्यामित मान्यता देने से उत्पन्न होते हैं । (२) निरीक्षण के दोष (Fallacies of Observation), (३) सामान्यीकरण के दोष (Fallacies of Generalisation), (४) चिन्तन के दोष (Fallacies of Ratiocination), अर्थात् वे दोष जो अनुमान के आकारगत नियमों के उल्लंघन से उत्पन्न होते हैं तथा (५) भ्रम के दोष (Fallacies of Confusion) ।

सुयोग्य न्यायशास्त्रियों ने इन सभी वर्गीकरणों की बड़ी कटु-आलोचना की है । वेल्टन (Welton) का कथन है कि 'आभासों का पूर्णरूपेण वैज्ञानिक वर्गीकरण' संभव नहीं है ।

डी मॉर्गन (De Morgan) का कहना है कि “मनुष्य जिन विधियों से त्रुटियाँ करता है, उसका वर्गीकरण हो ही नहीं सकता।” चाहे आभासों का विधिवत् वर्गीकरण हो सके या नहीं, हम यहाँ पर उन आभासों का वर्णन करेंगे जो कि विभिन्न वर्गीकरणों में एकत्रित किये गए हैं, अर्थात्, वे आभास (१) जो, निगमनमूलक तर्क तथा तत्सम्बन्धी सहायक प्रक्रियाओं में होते हैं (संक्षेप में हम उन्हें ‘निगमनमूलक आभास’ कहेंगे), (२) जो उद्गमनमूलक तर्क तथा तत्सम्बन्धी सहायक-प्रक्रियाओं में होते हैं (संक्षेप में हम उन्हें उद्गमनमूलक आभास कहेंगे), (३) जो भाषा की सन्दिग्धता से उत्पन्न होते हैं, जिन्हें व्हेटली ने ‘अर्द्ध तार्किक आभास’ कहा है तथा (४) जो आश्रयवाक्यों को अनियमित मान्यता देने से उत्पन्न होते हैं, जिन्हें अतार्किक आभास (Extra-logical Fallacies) कहते हैं। अध्ययन में सुविधा के निमित्त हम आभासों को चार वर्गों में बाँट सकते हैं, जैसा कि निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित है

तालिका



इस पुस्तक में हम केवल निगमनमूलक आभास तथा अर्द्ध-तार्किक आभास पर ही विचार करेंगे। उद्गमनमूलक आभास एवं अतार्किक आभासों का वर्णन पुस्तक के द्वितीय भाग में किया जायगा।

§२. निगमनमूलक आभास (Deductive Fallacies)

निगमनमूलक आभास के दो उपविभाग हैं (१) अनानुमानिक (Non-inferential) तथा आनुमानिक (Inferen-

निगमन-
मूलक
आभास

तालिका

trial) । इनका प्रदर्शन निम्नलिखित तालिका में कर दिया गया है ।

निगमनमूलक आभास

अनानुमानिक

आनुमानिक

(१) दोषपूर्ण परिभाषा ।

(१) अनन्तरानुमान-संबन्धी

(२) दोषपूर्ण विभाग ।

(२) सान्तरानुमान-संबन्धी

(क) अनानुमानिक निगमनमूलक आभास

(Non-inferential Deductive fallacies)

अनानुमानिक
निगमन-
मूलक
आभास

अनानुमानिक निगमनमूलक आभास उन्हें कहते हैं जो तार्किक परिभाषा तथा तार्किक विभाग के नियमों के उल्लंघन करने में उत्पन्न होते हैं। ये क्रियाएँ स्वयं 'तर्क' के अन्तर्गत नहीं आती; अतः इन दोषों को 'अनानुमानिक' कहते हैं।

दोषपूर्ण
परिभाषा

तार्किक परिभाषा के दोष निम्नलिखित हैं :

- (क) अतिरिक्त-परिभाषा ।
- (ख) आकस्मिक परिभाषा ।
- (ग) अतिव्याप्त तथा अव्याप्त परिभाषा ।
- (घ) दुर्बोध तथा आलंकारिक परिभाषा ।
- (ङ) पर्यायोक्ति परिभाषा ।
- (च) निष्ठेधात्मक परिभाषा ।

दोषपूर्ण
विभाग

तार्किक विभाग के दोष निम्नलिखित हैं :

- (क) अतिभौतिक विभाग तथा भौतिक विभाग ।
- (ख) सकर-विभाग ।
- (ग) अपूर्ण या अतिसकीर्ण विभाग ।
- (घ) अतिविस्तीर्ण विभाग ।
- (ङ) परस्पर-व्याप्त विभाग ।

इन सभी दोषों का सविस्तार विवेचन तत्सम्बन्धी प्रकरणों में कर दिया गया है। अतः फिर उनका वर्णन करना व्यर्थ ही होगा।

(ख) आनुमानिक निगमनमूलक आभास
(Inferential Deductive fallacies)

आनुमानिक
निगमन-
मूलक दोष

आनुमानिक निगमनमूलक आभासों में अनन्तरानुमान तथा सान्तरानुमान के दोष सम्मिलित हैं। ये दोष अनुमान-सम्बन्धी नियमों के उल्लंघन से उत्पन्न होते हैं, अतः 'आनुमानिक' कहलाते हैं। इन दोषों को 'आकारगत' भी कहते हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध तर्क के आकार से है, उसकी विषयवस्तु से नहीं, अर्थात् उनका सम्बन्ध उन तर्कवाक्यों के अर्थ से नहीं होता, जिनसे युक्ति बनी होती है। अब हम आनुमानिक निगमनमूलक आभास के दोनों विभागों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

(१) अनन्तरानुमान के दोष।

हमने नौ प्रकार के अनन्तरानुमानों का वर्णन किया है। यथा— परिवर्तन, प्रतिवर्तन, परिवर्तित-प्रतिवर्तन, विपर्यय, विरोध, सम्बन्ध-विलोमात्मक अनुमान, विध्याश्रित अनुमान, विशेषण-संयोगानुमान तथा मिश्र-धारणानुमान। इनमें से प्रत्येक के अपने निश्चित नियम हैं, जिनके उल्लंघन करने से दोष उत्पन्न हो सकते हैं। इन दोषों का वर्णन यथास्थान कर दिया गया है।

अनन्तरानु-
मान के दोष

(२) सान्तरानुमान के दोष।

सान्तरानुमान में शुद्ध तथा मिश्र न्यायवाक्य तथा युक्तिमालाएँ सम्मिलित हैं। इन सबके अपने-अपने विशेष नियम हैं, यथा— न्यायवाक्य के सामान्य नियम, हेतुफलाश्रित निरपेक्ष न्यायवाक्य के नियम, उभयतोपाश के नियम, प्रगामी तथा प्रतीयगामी युक्ति-मालाओं के नियम, सक्षिप्त प्रगामी तथा सक्षिप्त प्रतीयगामी युक्तिमालाओं के नियम। इन नियमों के उल्लंघन से दोष उत्पन्न होते हैं।

सान्तरानु-
मान के दोष

इन सब आभासों का वर्णन यथास्थान कर दिया गया है, अतः उनका पुनः वर्णन करना निरर्थक ही होगा।

§३. अर्द्धतार्किक दोष (Semi-Logical Fallacies)

अर्द्धतार्किक
दोष

अर्द्धतार्किक दोष उन आभासों को कहते हैं जिनमें त्रुटि

सात प्रकार

केवल युक्ति के आकार के परीक्षण से ही ज्ञात नहीं होती । वे भाषा की संदिग्धता से उत्पन्न होते हैं । अब हम सात प्रकार के आभासों का वर्णन करेंगे । यथा—(१) वाक्य-छल, (२) भ्रामकोच्चारण-छल, (३) अनेकार्थक दोष, (४) अनुप्रास-दोष, (५) उपाधि-भेद दोष, (६-७) विभाग-दोष और रचना-दोष ।

वाक्य-छल

(क) वाक्य-छल (Amphibology या Amphiboly):

वाक्य-छल (Fallacy of Amphibology) उस आभास को कहते हैं जिसमें संदिग्धता वाक्य की बनावट के कारण होती है । यह वास्तव में वाक्य की भ्रामक रचना का दोष है । संदिग्धता वाक्य के पदों में नहीं अपितु उसकी बनावट में होती है । वाक्य-छल तब होता है जब एक वाक्य का अर्थ दो रचनाओं में लिया जा सके । और यह कहना असंभव होता है कि उस वाक्य को किस अर्थ में लिया जाय ।

उदाहरण

उदाहरण : (क) भागो मत जाने दो ।

इस वाक्य के दो अर्थ निकल सकते हैं, यथा (१) भागो, मत जाने दो । तथा (२) भागो मत, जाने दो ।

(ख) महेश इलाहाबाद को और फिर बनारस को मोटर कार से जायेगा ।

(ग) दो और तीन का दूना बतलाइये ।

(घ) दाँत बिना तकलीफ के निकाले जाते हैं ।

इस वाक्य के तीन अर्थ हो सकते हैं—(१) दाँत निकालते समय तकलीफ नहीं होती । (२) दाँत निकाल दिए जाते हैं, परन्तु तकलीफ नहीं निकाली जाती और (३) ऐसे दाँत निकाले जाते हैं जिनमें तकलीफ नहीं होती ।

यह बात स्मरणीय है कि वाक्य-छल आनुमानिक आभास नहीं है ।

भ्रामको-
च्चारण दोष

(ख) भ्रामकोच्चारण दोष (Fallacy of Accent):

यह दोष तब उत्पन्न होता है जब हम किसी गलत शब्द पर जोर देकर उसका उच्चारण करते हैं । यथा—‘तुम अपने पड़ोसी के विरुद्ध गवाही नहीं दे सकते ।’

इसमें 'पड़ौसी' और 'विरुद्ध' दोनों पदों पर जोर देने से इस पद के भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते हैं—

'पड़ौसी' पर जोर देने से इसका अर्थ होगा कि पड़ौसी के विरुद्ध तो नहीं, परन्तु अन्य के विरुद्ध गवाही दे सकते हो। 'विरुद्ध' पर जोर देने से यह अर्थ होगा कि उसके विरुद्ध नहीं, परन्तु पक्ष में गवाही दे सकते हो। इस प्रकार भिन्न-भिन्न शब्दों पर जोर देने से यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

एक अन्य उदाहरण देखिए। "मैं तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा।"

इस वाक्य के विभिन्न पदों पर जोर देने से निम्नलिखित अर्थ निकल सकते हैं :

(१) मैं तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा। अर्थात् दूसरे व्यक्ति चाहे अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक तुम्हारे भाई को दे दे, मगर 'मैं' न दूंगा।

(२) मैं तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा। अर्थात् अन्य व्यवित्तों के भाइयों को मैं चाहे अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक दे दूँ, मगर तुम्हारे भाई को न दूंगा।

(३) मैं तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा। अर्थात् मैं तुम्हारे अन्य सम्बन्धियों को चाहे अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक दे दूँ किन्तु तुम्हारे भाई को न दूंगा।

(४) मैं तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा। अर्थात् तुम्हारे भाई के लिए चाहे मैं किसी अन्य व्यवित्त की तर्कशास्त्र की पुस्तक मँगवा दूँ किन्तु अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा।

(५) मैं तुम्हारे भाई को अपनी तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा। अर्थात् तुम्हारे भाई को चाहे मैं अपनी अन्य विषय की पुस्तक दे दूँ किन्तु तर्कशास्त्र की पुस्तक न दूंगा।

अनेकार्थक
दोष

(ग) अनेकार्थकदोष (Fallacy of Equivocation) .

जब एक से अधिक अर्थवाले शब्द का उपयोग किसी तर्क में किया जाय तो अनेकार्थक दोष हो जाता है। जब कि ऐसे शब्द का उपयोग न्यायवाक्य में किया जाता है तो अनेकार्थक साध्य, अनेकार्थक पक्ष तथा अनेकार्थक हेतु का दोष हो जाता है। यह दोष चतुष्पदी आभास के समान है।

अनुप्रास-
दोष

(घ) अनुप्रास-दोष (Fallacy of Figure of Speech
या Fallacy of Paronymous Terms)

अनुप्रास-दोष उसे कहते हैं, जो शब्दों के समान रूप होने से उत्पन्न होता है। कभी-कभी एक ही धातु में बने हुए शब्द, समान रूप होते हुए या संज्ञा विरोध आदि से भेद रखते हुए प्रयोग कर दिए जाते हैं, तो इस प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाता है। अतः यह दोष तब उत्पन्न होता है जब भिन्नार्थक शब्दों को एकार्थ्य में ही ग्रहण कर लेते हैं। जैसे—

उदाहरण

दर्शकों में वच्चों की सी उत्सुकता होती है।

कणाद दर्शनकर्त्ता थे।

∴ उनमें वच्चों की सी उत्सुकता रही होगी।

यहाँ 'दर्शक' और 'दर्शनकर्त्ता' एक ही धातु से निकले हुए होने से एक ही अर्थ में ले लिए गए हैं।

अन्य उदाहरण देखिए :—

(१) अभिमानी मनुष्य को कोई भी प्रेम नहीं करता, महाराणा प्रताप बड़े स्वाभिमानी थे, अतः उन्हें कोई भी प्रेम नहीं करता था।

(२) तराई के राजा के पास बड़े जंगल हैं। अतः वह बड़ा जंगली है।

(३) चित्रकार वह व्यक्ति है, जो चित्र बनाये, और कुम्भकार वह जो कुम्भ या घड़े बनाये। इसी प्रकार पत्रकार वह है, जो पत्र या कागज बनाये।

(ड) उपाधि-भेद दोष (Fallacy of Accident) .

उपाधि-भेद
दोष

उपाधि-भेद दोष के दो रूप हो सकते हैं। यथा—(१) अनु-
लोम उपाधि-भेद दोष तथा (२) प्रतिलोम उपाधि-भेद दोष।
उपाधि-भेद दोष तब होते हैं, जब हम किसी वस्तु के आकस्मिक
गुणों या सम्बन्धों में सत्य बात को उस वस्तु के विषय में सत्य
मान लेते हैं।

दो प्रकार

(१) अनुलोम-उपाधि-भेद दोष (Direct Fallacy of
Accident) तब होता है जब हम इस प्रकार तर्क करने
लगें कि जो बात सामान्यतया सत्य होती है, वह कुछ विशेष या
आकस्मिक परिस्थितियों में भी सत्य होगी। प्राचीन तर्कशास्त्रियों
ने इसको 'Fallacia a dicto simpliciter ad dictum
secundum quid' का नाम दिया था।

अनुलोम-
उपाधि-भेद
दोष

उदाहरण—

(१) मनुष्य विचारशील जीव है।

उदाहरण

क्रोधित अवस्था में मनुष्य विचारशीलता से काम
करता है।

इस युक्ति में अनुलोम उपाधि-भेद दोष है क्योंकि निष्कर्ष में
'मनुष्य' के साथ 'क्रोधित अवस्था' में होने का आकस्मिक गुण जोड़
दिया गया है, जब कि आश्रय में उस पद के साथ कोई आकस्मिक
गुण नहीं जुड़ा है।

(२) व्यायाम करना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद
है। अतः ज्वरग्रस्त मनुष्य को व्यायाम अवश्य करना चाहिए।

(३) पानी एक द्रव पदार्थ है।

वर्फ पानी है।

∴ वर्फ एक द्रव पदार्थ है।

(४) कोई भी मनुष्य दुःख सहन नहीं करना चाहता।
अतः तुम्हारा भाई अपना फोडा नहीं चिरवायेगा।

(५) तुम्हें जीवधारी कहना सच है।

तुम्हें गधा कहना तुम्हें जीवधारी कहना है।

∴ तुम्हें गधा कहना सच है।

- (६) जो दूसरे मनुष्य कर चुके हैं, उसे कोई भी मनुष्य कर सकता है।
- (७) जो दूसरो की हत्या करता है वह फाँसी की सजा पाता है।
सैनिक अपने दुश्मन की हत्या करता है।
सैनिक को फाँसी की सजा मिलनी चाहिए।

प्रतिलोभ
उपाधि-भेद
दोष

(२) प्रतिलोभ उपाधि-भेद दोष (The Converse Fallacy of Accident) तब उत्पन्न होता है जब हम किसी आकस्मिक परिस्थितियों के सत्य के आश्रय पर यह तर्क करने लगें कि वह बात सामान्यतया सच होती है। प्राचीन तर्कशास्त्रियों ने इस दोष को 'Fallacia a dicto secundum quid ad dictum simpliciter' का नाम दिया था।

उदाहरण

उदाहरण—

- (१) यदि मदिरा का बहुत अधिक सेवन किया जाय, तो वह विष होती है।
∴ मदिरा एक विष है।
- (२) कभी-कभी रोगी व्यक्ति से छिपाने के लिए अथवा दुश्मन को धोखा देने के लिए सत्य बात नहीं कहते।
∴ दूसरे को धोखा देना ठीक है।
- (३) भिखारियों को भीख देने से भिखारीपन में वृद्धि होती है, अतः वह बुरा है।
∴ जिन लोगों को आवश्यकता हो उन्हें सहायता कभी नहीं देनी चाहिए।
- (४) गाई चलती गाडी पर चढ़ता है। अतः सब यात्रियों के लिए चलती गाडी में चढ़ना ठीक है।
- (५) बहुत से वेईमान मनुष्य भले प्रकार फल फूल रहे हैं। अतः वेईमानी करना बुरा नहीं।
- (६) गराव पीना बुरा नहीं कहा जा सकता क्योंकि सर्दी लग जाने पर डॉक्टर ने मेरे भाई को गराव पीना बतलाया था।

इसी से मिलता-जुलता एक अन्य दोष भी है जिसे प्राचीन तर्कशास्त्रियों ने 'Fallacia a dicto secundum quid ad dictum secundum alterum quid' का नाम दिया था। यह दोष तब होता है जब हम एक उपाधिवाले वर्णनसे किसी अन्य उपाधिवाले वर्णन की दिशा में तर्क करने लगे। यथा--

दूसरे के शरीर में (वैमनस्य से) घाव करना बुराई है। डॉक्टर चीरफाड़ करते समय दूसरे के शरीर में (अच्छा करने के इरादे से) घाव करता है। अतएव डॉक्टर बुराई करता है।

अन्त में, यह बात द्रष्टव्य है कि 'अर्द्ध-तार्किक-आभास' जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, भाषा की सदिग्धता से उत्पन्न होते हैं। जितने प्रकार से भाषा में सन्दिग्धता हो सकती है उतने ही प्रकार के आभास माने गये हैं। ऐसा भी संभव हो सकता है कि एक दिए हुए उदाहरण में भाषा की सदिग्धता इस प्रकार की हो कि उसमें एक से अधिक आभास उत्पन्न हो जायें। ऐसी दशा में उन सभी आभासों का वर्णन करना पड़ जाता है।

(च) तथा (छ) विभाग का दोष (Fallacy of Division) तथा रचना का दोष (Fallacy of Composition)।

जो बात किसी समुदाय के विषय में सामूहिक रूप से सत्य हो, उसे उस समुदाय के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या पदार्थों के विषय में अलग-अलग सत्य मान लेने में विभाग का दोष हो जाता है। इसकी उल्टी क्रिया को रचना का दोष कहते हैं। यह दोष तब उत्पन्न होता है जब अ-समूहवाचक पदों का समूहवाचक पदों के रूप में प्रयोग कर दिया जाय।

विभाग
तथा रचना
के दोष

विभाग के दोष के उदाहरण।

(१) कालिदास की सब रचनाएँ एकदिन में नहीं पढ़ी जा सकती।

उदाहरण

‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ कालिदास की एक रचना है।
 ∴ ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ एक दिन में नहीं पढ़ी जा सकती।

(२) इस देश के व्यक्ति अकालपीडित हैं।
 तुम इस देश के एक व्यक्ति हो।
 ∴ तुम अकालपीडित हो।

(३) भारतीय एक सुसंस्कृत जाति है।
 ‘क’ भारतीय है।
 ∴ ‘क’ एक सुसंस्कृत व्यक्ति है।

(४) इस नगरके निवासी पुरुष, स्त्री तथा बालक हैं।
 मैं टाउनहॉल में जिनसे मिला, वे इस नगर के निवासी थे।
 ∴ मैं टाउनहॉल में जिनसे मिला वे पुरुष, स्त्री तथा बालक थे।

(५) मैं पुस्तक तथा कॉपी नहीं खरीद सकता।
 ∴ मैं पुस्तक या कॉपी नहीं खरीद सकता।

(६) तेरह एक सख्या है।
 छ और सात तेरह होते हैं।
 ∴ छ और सात एक सख्या है।

(७) इस बाग की छाया बड़ी घनी है।
 ∴ इस बाग का यह बबूल का वृक्ष भी घनी छाया-वाला है।

(८) पानी से प्यास बुझती है और पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन नामक गैसों के मिलने से बनता है।
 अतः हाइड्रोजन और ऑक्सीजन प्यास बुझानेवाले पदार्थ हैं।

रचना के दोष के उदाहरण :

(१) प्रत्येक व्यक्ति अपना सुख चाहता है।

∴ सब व्यक्ति सबका सुख चाहते हैं।

(२) पाँच और आठ विषम और सम संख्याएँ हैं।

तेरह पाँच और आठ होता है।

∴ तेरह विषम और सम संख्या है।

- (३) इन बीस व्यक्तियों में से प्रत्येक एक सेर अन्न का भोजन करता है, अतः ये बीसो मनुष्य एक सेर अन्न खाते हैं।
- (४) दर्जी — इस कपड़े में आपका कोट बन सकता है। यदि कमीज की इच्छा हो तो कमीज बना दूंगा और यदि आप चाहे तो पतलून बनवा ले।
ग्राहक — अच्छा, एक कोट, एक कमीज और एक पतलून बना देना।

§४. भारतीय न्याय में दोष

(क) हेत्वाभास की परिभाषा तथा प्रकार।

‘हेत्वाभास’ के दो अर्थ हो सकते हैं। इसका एक अर्थ यह हो सकता है कि जो हेतु की तरह दिखलाई दे पर वास्तव में हेतु न हो। अर्थात् भ्रम-पूर्ण हेतु दोषरहित हेतु की तरह जान पड़े। हेत्वाभास का यह अर्थ भी हो सकता है कि यह उस भ्रम या दोष को कहते हैं, जो किसी हेतु में रहता है, और उसे भ्रमपूर्ण या दोषयुक्त बना देता है। हम यहाँ ‘हेत्वाभास’ का उपयोग इसी दूसरे अर्थ में ही करेंगे। अतः दोषपूर्ण हेतु को हेत्वाभास कहते हैं।

नैयायिकों के अनुसार हेत्वाभास पाँच होते हैं, यथा—
(१) सव्यभिचार, (२) विरुद्ध, (३) सत्प्रतिषेध, (४) असिद्धि और (५) बाधित। ये हेतु पाँच मुख्य दोष बतलाते हैं जो क्रमशः व्यभिचार, विरोध, प्रतिषेध, असिद्धि तथा बाधा हैं। अब हम इन पाँचों हेत्वाभासों का पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे।

(ख) सव्यभिचार हेत्वाभास।

निर्दोष अनुमिति तभी हो सकती है जब लिङ्ग अथवा हेतु साध्य के साथ अनिवार्यतः सम्बद्ध हो। उन दोनों में नियत-साहचर्य आवश्यक है। नियम से भ्रष्ट होने को व्यभिचार कहते हैं। यदि हेतु इस प्रकार का हो कि वह उपर्युक्त नियम से भ्रष्ट हो गया हो अर्थात् उसका साध्य के साथ नियत-साहचर्य न हो, तो ऐसे हेतु को सव्यभिचार हेतु कहते हैं। ऐसा हेतु कभी तो

भारतीय
न्याय में दोष
परिभाषा

पाँच प्रकार
के हेत्वाभास

सव्यभिचार

साध्य के साथ उपस्थित रहता है और कभी साध्य की अनुपस्थिति में भी उपस्थित रहता है। इस प्रकार के हेतु में साध्य को भी स्थापित किया जा सकता है तथा उसके विरोध को भी। ऐसा हेतु साध्य के साथ सदा उपस्थित नहीं रहता। निम्नलिखित उदाहरण देखिए —

“ध्वनि नित्य है क्योंकि उसका स्पर्श नहीं किया जा सकता।” इस उदाहरण में व्याप्ति विपक्ष की वस्तुओं के लिए तो सच है क्योंकि मेज, पुस्तक, मकान इत्यादि, जिनका स्पर्श किया जा सकता है, वे सब अनित्य हैं। सपक्ष के कुछ उदाहरणों के लिए भी यह व्याप्ति सच है क्योंकि आत्मा का स्पर्श नहीं किया जा सकता और वह नित्य है। परन्तु निम्नलिखित सपक्ष उदाहरण में व्याप्ति सत्य नहीं है। ज्ञान का स्पर्श नहीं किया जा सकता और वह अनित्य है। अतः ‘अस्पर्शता’ केवल ‘नित्यता’ में ही व्याप्त नहीं है, वरन् ‘अनित्यता’ में भी व्याप्त है।

इस दोष को ‘अनैकान्तिक आभास’ भी कहते हैं।

सव्यभिचार हेतु तीन प्रकार का हो सकता है। यथा (१) साधारण, (२) असाधारण तथा (३) अनुपसंहारी।

साधारण
सव्यभिचार

(१) साधारण सव्यभिचार हेतु—उसे कहते हैं जो सपक्ष तथा विपक्ष दोनों प्रकार के उदाहरणों में पाया जाय अर्थात् जो साध्य की उपस्थिति तथा उसकी अनुपस्थिति दोनों के साथ हो। यथा—“पर्वत पर अग्नि है क्योंकि वह ज्ञान का विषय है।” “ज्ञान का विषय होना” अग्नि के साथ पाया जाता है। जैसे रसोई घर, रेल का इंजन इत्यादि ज्ञान के विषय हैं और इनमें अग्नि भी उपस्थित है। अतः हेतु सपक्ष उदाहरणों में पाया जाता है। परन्तु ज्ञान का विषय वे वस्तुएँ भी तो हो सकती हैं, जहाँ अग्नि नहीं है, जैसे—नदी, पुस्तक इत्यादि। अतः हेतु विपक्ष

उदाहरणों में भी उपस्थित है। इसलिए इस हेतु में साधारण व्यभिचार का दोष है।

(२) असाधारण सव्यभिचार हेतु—उसे कहते हैं जो न तो सपक्ष और न विपक्ष उदाहरणों में पाया जाये। असाधारण हेतु पक्ष का निजी विशेष गुण होने के कारण वह पक्ष के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यथा—“शब्द नित्य है क्योंकि उसमें शब्दत्व है।” शब्दत्व तो केवल शब्द का निजी विशेष गुण है। वह शब्द के अनिरिक्त किसी भी नित्य अथवा अनित्य वस्तु में नहीं होता। अतः इस प्रकार के हेतु में असाधारण व्यभिचार का दोष है।

असाधारण
सव्यभिचार

(३) अनुपसंहारी सव्यभिचार हेतु—उसे कहते हैं, जिसके पक्ष में एक जाति की समस्त वस्तुएँ निहित हो जाने के कारण, वह किसी अन्य सपक्ष या विपक्ष उदाहरण में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। यथा—“सब वस्तुओं का अन्त होता है, क्योंकि उनका प्रारम्भ भी हुआ था।” इसमें पक्ष ‘सब वस्तुएँ’ है। कोई भी अन्य वस्तु ऐसी नहीं हो सकती, जो ‘सब वस्तुओं’ के बाहर हो। अतः उसके हेतु में अनुपसंहारी व्यभिचार का दोष है।

अनुपसंहारी
सव्यभिचार

(ग) विरुद्ध हेतुआभास।

विरुद्ध हेतुआभास वहाँ होता है, जहाँ हेतु से जो बात सिद्ध करनी हो, उससे उल्टी बात सिद्ध हो। यह वह दोषपूर्ण हेतु है जो कि प्रयोग किया जाता है साध्य को सिद्ध करने के लिए, पर सिद्ध कर बैठता है साध्य के अभाव को। यथा—‘शब्द नित्य है, बना हुआ होने के कारण।’ ‘बना हुआ होना’ हेतु तो अनित्य पदार्थों में पाया जाता है, न कि नित्य पदार्थों में। अतः इसके आधार पर शब्द को नित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। इससे तो यह सिद्ध होता है कि शब्द अनित्य है। अतः उल्टी बात सिद्ध होती है। विरुद्ध हेतु सपक्ष दृष्टान्तों में, जहाँ उसे होना

विरुद्ध हेतु

चाहिए, नहीं रहता, बल्कि विपक्ष दृष्टान्तों में रहता है, जहाँ उसे नहीं रहना चाहिए।

विरुद्ध तथा
साधारण
सव्यभिचार
में भेद

विरुद्ध हेतु और साधारण सव्यभिचार हेतु में यह भेद है कि विरुद्ध हेतु कभी भी सपक्ष दृष्टान्तों में नहीं रहता, पर साधारण सव्यभिचार हेतु सपक्ष दृष्टान्तों में रहता है।

विरुद्ध तथा
असाधारण
सव्यभिचार
में भेद

विरुद्ध हेतु और असाधारण सव्यभिचार हेतु में यह अन्तर है कि वह विपक्ष दृष्टान्तों में मिलता है पर असाधारण हेतु विपक्ष दृष्टान्तों में कभी नहीं मिलता।

विरुद्ध तथा
सव्यभिचार
में भेद

विरुद्ध हेतु और सव्यभिचार हेतु में यह भेद है कि सव्यभिचार में व्याप्ति केवल अपूर्ण या दोषपूर्ण होती है, पर विरुद्ध में व्याप्ति सर्वथा विरोधपूर्ण होती है।

(घ) सत्प्रतिपक्ष हेतु।

सत्प्रतिपक्ष
हेतु

यदि किसी साध्य को सिद्ध करने के लिये हम कोई हेतु उपस्थित करें, और उसी के साथ हमारे सामने कोई दूसरा हेतु हो जो ठीक उसी साध्य के अभाव को सिद्ध करता हो, तो पहला हेतु सत्प्रतिपक्ष कहलाएगा। निम्नलिखित दो युक्तियाँ देखिए —

‘शब्द नित्य है क्योंकि वह सुना जा सकता है।’

‘शब्द अनित्य है क्योंकि वह कार्य है जैसे घड़ा।’

पहले उदाहरण का हेतु ‘शब्द’ की ‘नित्यता’ को स्थापित करता है, दूसरे उदाहरण का हेतु ‘शब्द’ की अनित्यता को स्थापित करता है। दोनों युक्तियों के निष्कर्ष परस्पर विरोधी हैं। पहला हेतु दूसरे के मुकाबले में अधिक सबल नहीं है, अतः उसे सत्प्रतिपक्ष कहेंगे। इस सम्बन्ध में यह बात ज्ञातव्य है कि इसमें एक निष्कर्ष दूसरे का प्रतिकार होता है। यदि प्रतिपक्ष अधिक बलवान हो जाय, तो पहला हेतु सत्प्रतिपक्ष न कहला कर ‘बाधित’ कहलाएगा।

सत्प्रतिपक्ष
तथा बाधित

सत्प्रतिपक्ष
तथा विरुद्ध

सत्प्रतिपक्ष तथा विरुद्ध हेतुभास में यह अन्तर है कि विरुद्ध में वही एक हेतु साध्य को नहीं, वरन् उसके अभाव को

सिद्ध करता है; परन्तु सत्प्रतिपक्ष में दूसरा हेतु साध्य के अभाव को सिद्ध करता है।

में भेद

(ड) असिद्ध हेतु ।

साध्य की सिद्धि हेतु से होती है। जहाँ हेतु ही सिद्धि की अपेक्षा रखता हो, वहाँ साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती। ऐसे हेतु को, जो स्वयं सिद्धि की अपेक्षा रखता हो असिद्ध हेतु कहते हैं तथा उससे उत्पन्न दोष को असिद्धि कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है, यथा—(१) आश्रयासिद्ध, (२) स्वरूपासिद्ध तथा (३) व्याप्यत्वासिद्ध। ये क्रमशः पक्षता, पक्षवर्मता (हेतुता) तथा व्याप्ति के दोष हैं।

असिद्ध हेतु

तीन प्रकार का असिद्धः

(१) आश्रयासिद्ध : आश्रयासिद्ध हेतु उस दोषपूर्ण हेतु को कहते हैं जो कि साध्य को ऐसे आश्रय या पक्ष में सिद्ध करना चाहता हो जो कि स्वयं ही असत् या काल्पनिक हो। जिस हेतु का आश्रय या पक्ष ही असिद्ध है, वह आश्रयासिद्ध कहलाता है। हेतु के लिए यह आवश्यक है कि वे हेतु में विद्यमान रहे। परन्तु कोई हेतु ऐसे पक्ष में कैसे विद्यमान रह सकता है, जो स्वयं ही असत् या काल्पनिक हो। यथा—

आश्रयासिद्ध

“आकाश का कमल सुगन्धवाला होता है, कमल होने के कारण, तालाब के कमल की भाँति।” यहाँ ‘आकाश का कमल’ पक्ष है। यह पक्ष स्वयं असम्भव है। अतः हेतु ‘कमल होने के कारण’ आश्रयासिद्ध हेतु है। एक अन्य उदाहरण देखिए। “प्रेत साँस लेता है क्योंकि उसमें प्राण होता है, और जिस किसी में भी प्राण होता है, वह साँस लेता है, जैसे मनुष्य।” यहाँ पर ‘प्रेत’ पक्ष है। परन्तु ‘प्रेत’ है या नहीं, यह बड़ी सदिग्ध बात है। अतः यहाँ पर आश्रय या पक्ष असिद्ध है। अतः उसके साँस लेने का जो हेतु दिया है, वह आश्रयासिद्ध हेतु है।

स्वरूपासिद्ध

(२) स्वरूपासिद्ध :—स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास वहाँ होता है जहाँ हेतु का स्वरूप ऐसा हो कि वह पक्ष में किसी भी प्रकार रह ही नहीं सकता; जैसे—तालाब में आग है, क्योंकि उगमं धुँआ है और जहाँ-जहाँ धुँआ है, वहाँ-वहाँ आग होती है, जैसे ग्नीष्मिन् में। इस उदाहरण में स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास है क्योंकि यह स्पष्ट है कि धुँए का स्वरूप ऐसा है कि वह तालाब में रह नहीं सकता।

आश्रयासिद्ध
तथा स्वरूपा-
सिद्ध में भेद

आश्रयासिद्ध और स्वरूपासिद्ध में यह भेद है कि आश्रयासिद्ध में तो पक्ष ही असत् या काल्पनिक होता है, पर स्वरूपासिद्ध में पक्ष तो सत् है, वर्तमान है, पर हेतु का स्वरूप ही ऐसा है कि वह उस पक्ष में रह नहीं सकता। इसमें हेतु और पक्ष की असंगतता होती है। इसमें हेतु भी सत् होता है और पक्ष भी सत् होता है, परन्तु इस प्रकार का हेतु होता है कि वह पक्ष में नहीं रह सकता। दोनों में संगति नहीं होती।

व्याप्यत्वा-
सिद्ध

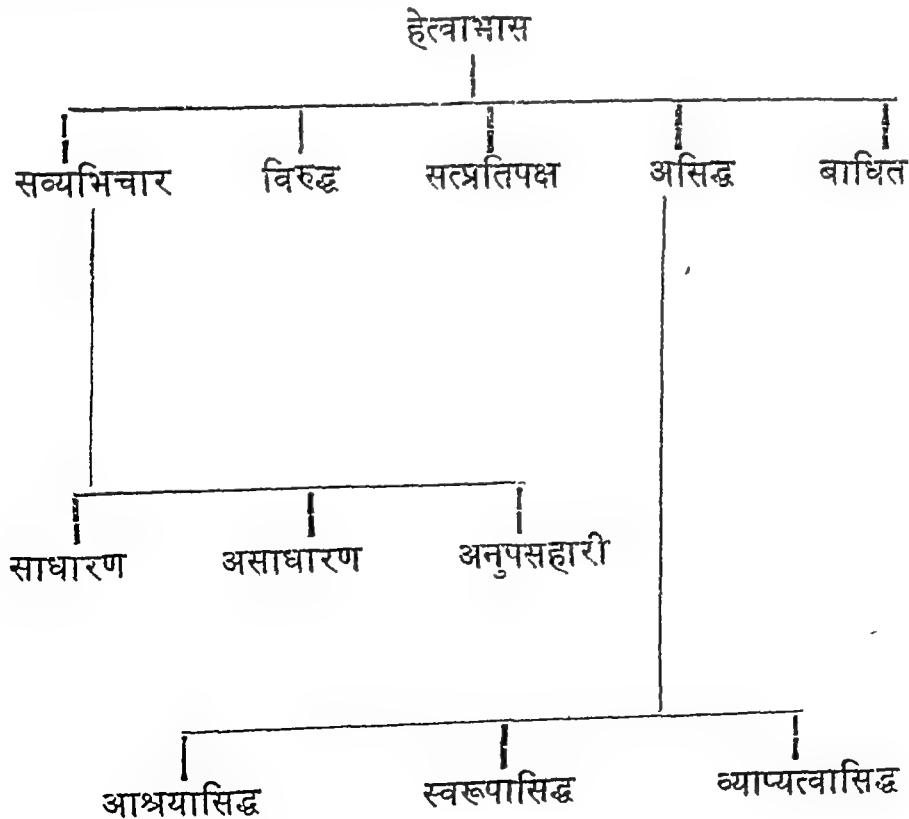
(३) व्याप्यत्वासिद्ध :—यदि हेतु सोपाधिक हो और निरूपाधिक समझ लिया जाय तो उसे व्याप्यत्वासिद्ध हेतु कहते हैं। इसमें पक्ष सत् होता है, हेतु भी पक्ष में रहता है, पर व्याप्यत्व असिद्ध होता है। इसमें हेतु किसी विशेष स्थिति या उपाधि के होते हुए ठीक होता है, पर उस उपाधि के न होने पर भी सत्य मान लिया जाता है। यथा—‘पर्वत ध्रुम्नवान् है क्योंकि वहाँ अग्नि है। जहाँ-जहाँ अग्नि होती है, वहाँ-वहाँ धुँआ होता है।’ इस उदाहरण में व्याप्ति अशुद्ध है। जहाँ-जहाँ आग होती है, वहाँ-वहाँ सदैव धुँआ नहीं होता। आग में भले प्रकार तपाये हुए एक लोहे के गोले को लीजिए। उसमें आग है, पर धुँआ नहीं है। अतएव यह व्याप्ति कि ‘जहाँ-जहाँ आग होती है, वहाँ-वहाँ धुँआ होता है’ केवल एक विशेष ‘उपाधि’ के रहते हुए ठीक होती है और वह उपाधि है ‘गोली लकड़ी का सयोग’ अतः इसमें व्याप्यत्वासिद्ध का दोष है।

(च) बाधित हेत्वाभास ।

जब हम प्रत्यक्ष या किसी प्रबल प्रमाण से जान लेते हैं कि जिस साधन को हेतु सिद्ध करना चाहता है, वह पक्ष में है ही नहीं, तो, वह हेतु बाधित कहलाता है, जैसे 'आग ठढी है, द्रव्य होने के कारण।' हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं कि आग में ठढेपन का अभाव है, वह गरम है, अतएव इस उदाहरण में आग के ठढेपन के लिए जो हेतु दिया गया है, वह बाधित है।

बाधित और सत्प्रतिपक्ष हेतु में यह अन्तर है कि बाधित में साध्य दूसरे प्रबलतर प्रमाण से असिद्ध हो जाता है, पर सत्प्रतिपक्ष में किसी ऐसे प्रबलतर प्रमाण से साध्य का बाध नहीं होता। सत्प्रतिपक्ष में दोनों युक्तियाँ समान बलवाली होती हैं।

सारांश.—इन सभी हेत्वाभासों का प्रदर्शन निम्नांकित तालिका से हो जाता है :—



बाधित

बाधित और
सत्प्रतिपक्ष
में अन्तर

तालिका

(६) अन्य तर्कदोष ।

जाति,
निग्रहस्थान
तथा छल

पाँच हेत्वाभासों के अतिरिक्त भारतीय विचारकों ने कुछ अन्य तर्कदोषों का भी वर्णन किया है। पक्षाभास, प्रतिज्ञाभास तथा दृष्टान्ताभास क्रमशः पक्ष, प्रतिज्ञा एवं दृष्टान्त में दोष उपस्थित होने के कारण होते हैं। वाद-विवाद में अनेकों युक्तियाँ दोषपूर्ण एवं असंगत होती हैं। उन्हें 'जाति' तथा 'निग्रहस्थान' का नाम दिया जाता है। जो दोष शब्द एवं वाक्यों की रचना के कारण उत्पन्न होते हैं, उन्हें 'छल' कहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के आभास हैं।

परन्तु अधिकांश ग्रन्थों में प्रायः हेत्वाभासों का ही वर्णन मिलता है, तथा अन्य आभासों को छोड़ दिया जाता है। अधिकांश विचारकों का मत ऐसा रहा है कि प्रत्येक आभास को सरल करके किसी न किसी हेत्वाभास के अन्तर्गत लाया जा सकता है।

५ आभास-सम्बन्धी अभ्यास हल करने के लिए सकेत

युक्तियों के दोषों की पकड़ करने के लिए जब उनका परीक्षण किया जाता है, तो प्रारंभ में इस कार्य में विद्यार्थियों को बड़ी कठिनाई होती है। अतः इस स्थान पर इस सम्बन्ध में कुछ सकेत दे देना उपयोगी होगा।

प्रारंभ में जो कठिनाई होती है, उसका विशेष कारण यह है, कि तर्कशास्त्र के ग्रन्थों के बाहर कोई भी युक्ति पूर्ण तार्किक आकार में नहीं प्राप्त होती। अतः युक्तियों का परीक्षण करने से पूर्व पहला काम यह होता है कि उनमें यथोचित परिवर्तन करके उन्हें शुद्ध-तार्किक आकार में रखा जाय। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसके अर्थ में कोई अन्तर न आने पावे। यहाँ पर हम केवल न्यायवाक्य (Syllogism) के दोषों पर ही विचार करेंगे।

न्यायवाक्य को तार्किक आकार में बदलते समय निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है —

(१) सर्वप्रथम न्यायवाक्य का निष्कर्ष खोजा जाता है।

न्यायवाक्य में निष्कर्ष तीसरा तर्कवाक्य होता है, परन्तु दी हुई युक्ति में वह अपने निश्चित स्थान में नहीं भी हो सकता है। निष्कर्ष 'अत', 'इसलिए', 'अतएव' इत्यादि शब्दों से प्रारम्भ होता है, और आश्रयवाक्य (Premise) का प्रारम्भ 'क्योंकि' इत्यादि शब्दों से होता है। निष्कर्ष का पता चल जाने पर उसे शुद्ध तार्किक आकार में रखते हैं, तथा सयोजक को रेखांकित कर देते हैं ताकि उद्देश्य और विधेय का ठीक-ठीक स्थान हो सके।

(२) इसके बाद साध्यवाक्य तथा पक्षवाक्य का पता लगाते हैं।

जब निष्कर्ष तार्किक आकार में होता है, तो उसका विधेय साध्य होता है, अतः वह तर्कवाक्य जिसमें निष्कर्ष का विधेय होता है, साध्यवाक्य है। निष्कर्ष का उद्देश्य पक्ष होता है। अतः निष्कर्ष के उद्देश्य को रखने वाला तर्कवाक्य पक्षवाक्य होता है। साध्यवाक्य तथा पक्षवाक्य दोनों को तार्किक आकार में बदलते हैं।

(३) अन्त में, तर्कवाक्य को नियमित क्रम में रखते हैं।

प्रायः न्यायवाक्य सक्षिप्त-न्यायवाक्य के रूप में होता है, जिसके कुछ भाग लुप्त होते हैं। अतः उन लुप्त भागों को अपनी ओर से फिट कर लेते हैं।

इस प्रकार न्यायवाक्य को तार्किक आकार में बदल लेने पर हम इस बात की जांच करते हैं कि न्यायवाक्य-सम्बन्धी नियमों का पालन किया गया है, अथवा नहीं। यह भी देखते हैं कि पदों के अर्थ में सन्दिग्धता तो नहीं है। जहां तक न्यायवाक्य सम्बन्धी नियमों की बात है, उनमें पदों की व्याप्ति सम्बन्धी नियम अधिक आवश्यक हैं [न्यायवाक्य के सामान्य नियम (३) तथा (४)।] अर्द्धतार्किक-आभासों के सम्बन्ध में न्यायवाक्य का प्रथम सामान्य नियम (जिसके अनुसार न्यायवाक्य में तीन और केवल तीन पद होने चाहिए) बड़ा आवश्यक है।

यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि किसी दी हुई युक्ति में आभास का होना अनिवार्य नहीं है। वह युक्ति शुद्ध भी हो सकती है।

अब हम कुछ युक्तियों को हल करेंगे। विद्यार्थी को स्मरण रखना चाहिए कि आभास का केवल नाम लिख देना ही पर्याप्त

नहीं है। उसके साथ में यह बतलाना भी आवश्यक है कि उस युक्ति में वह आभास क्यों है? आभास होने का कारण स्पष्ट तथा व्यक्त होना चाहिए।

कुछ हल किये हुए अभ्यास

(१) हरि परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है, क्योंकि वह बुद्धिमान लड़का है और केवल बुद्धिमान लड़के ही परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं।

उत्तर—इसमें 'हरि परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है,' यह निष्कर्ष है। इसे तार्किक आकार में व्यक्त करने पर इस प्रकार कहेंगे—हरि एक लड़का है, जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है। यह 'आ'-तर्कवाक्य है क्योंकि यह स्वीकारात्मक है और इसका उद्देश्य निश्चित पद है, जो कि अपने पूर्ण निर्देश में प्रयुक्त हुआ है।

अब यह स्पष्ट है कि निष्कर्ष का उद्देश्य अर्थात् 'हरि' पक्ष है, अतः वह आश्रयवाक्य जिसमें यह पक्ष होगा, पक्षवाक्य बनेगा। अतः "वह (अर्थात् हरि) बुद्धिमान लड़का है" पक्षवाक्य होगा। दूसरा तर्कवाक्य जिसमें निष्कर्ष का विधेय (अर्थात् 'जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है') पद आता है, वह साध्यवाक्य होगा। अतः "केवल बुद्धिमान लड़के ही परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकते हैं" यह साध्यवाक्य हुआ। परन्तु यह तर्कवाक्य शुद्ध तार्किक आकार में नहीं है। इसका तार्किक-रूप यह होगा—"सब लड़के जो परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं, बुद्धिमान हैं।" यह 'आ'-तर्कवाक्य है।

अतः दी हुई युक्ति को तार्किक आकार में इस प्रकार लिखेंगे
सब लड़के जो परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं, बुद्धिमान लड़के हैं।
हरि बुद्धिमान लड़का है।

∴ हरि एक लड़का है, जो परीक्षा में उत्तीर्ण होता है।

इसमें हम देखते हैं कि हेतु 'बुद्धिमान लड़का' (जो दोनों आश्रय वाक्यों में विद्यमान है) एक बार भी आश्रयवाक्यों में व्याप्त नहीं है। न्यायवाक्य के नियमों के अनुसार हेतु कम से कम एक बार न्यायवाक्य में व्याप्त होना चाहिए। यहाँ इस नियम का उल्लंघन हुआ है, अतः इस युक्ति में अव्याप्त-हेतु का आभास है।

(२) यह पदार्थ स्वर्ण नहीं हो सकता क्योंकि यह बहुमूल्य नहीं है ।

यह एक सक्षिप्त न्यायवाक्य है, क्योंकि इसमें तीन के स्थान पर केवल दो तर्कवाक्य हैं । इसका निष्कर्ष 'यह पदार्थ स्वर्ण नहीं हो सकता', तार्किक आकार में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है 'यह पदार्थ वह नहीं है जो स्वर्ण हो सकता हो ।' यह 'ए' तर्कवाक्य है क्योंकि इसमें निषेध का चिह्न है तथा इसका उद्देश्य निश्चित विशिष्ट पद है ।

दिया हुआ आश्रय 'यह बहुमूल्य नहीं है' पक्षवाक्य है, क्योंकि निष्कर्ष का उद्देश्य 'पदार्थ' इसमें 'यह' सर्वनाम के रूप में प्रयुक्त हुआ है । तार्किक आकार में इसका स्वरूप निम्नलिखित होगा—

'यह पदार्थ स्वर्ण नहीं है ।' यह 'ए' तर्कवाक्य है । अब हम साध्यवाक्य निश्चित करना है । इस युक्ति का साध्य 'स्वर्ण' है, क्योंकि वह निष्कर्ष का विधेय है । हेतु 'बहुमूल्य' है क्योंकि वह पक्षवाक्य में विद्यमान है, परन्तु 'पक्ष' नहीं है । अतः हम साध्यवाक्य इस प्रकार बना सकते हैं 'स्वर्ण बहुमूल्य है ।' इसलिए निम्नलिखित न्यायवाक्य बनता है .

स्वर्ण बहुमूल्य है ।

यह पदार्थ बहुमूल्य नहीं है ।

यह पदार्थ स्वर्ण नहीं है ।

यह युक्ति शुद्ध है क्योंकि यह 'कामेस्ट्रेस' (Camestres) है, जो कि द्वितीय आकार में सिद्ध संयोग है ।

(३) बिल्ली अवश्य ही दूर होनी चाहिए क्योंकि चूहे खेल रहे हैं और जब बिल्ली दूर होती है, तो चूहे खेलते हैं ।

उत्तर —स्पष्ट है कि "बिल्ली अवश्य ही दूर होनी चाहिए" निष्कर्ष है । 'क्योंकि' से प्रारम्भ होने वाले शेष दोनों तर्कवाक्य आश्रय हैं । जब हम आश्रय का परीक्षण करते हैं तो विदित होता है कि "जब बिल्ली दूर होती है तो चूहे खेलते हैं" एक हेतुफलाश्रित तर्कवाक्य है, जिसमें 'जब' 'यदि' का समानार्थी है । दूसरा तर्कवाक्य निरपेक्ष है । अतः दी हुई युक्ति हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य के रूप में है । यथा—

यदि बिल्ली दूर होती है, तो चूहे खेलते हैं ।

चूहे खेलते हैं ।
 ∴ विल्ली दूर है ।

यह दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें 'उत्तरांग की स्वीकृति' (Affirming the Consequent) का दोष है । पक्षवाक्य साध्यवाक्य के उत्तरांग को स्वीकार करता है, तथा निष्कर्ष साध्यवाक्य के पूर्वांग को स्वीकार कर रहा है । यह नियम-विरुद्ध बात है ।

(४) जनरल सेना पर शासन करता है; उसकी पत्नी जनरल पर शासन करती है । अतएव जनरल की पत्नी सेना पर शासन करती है ।

उत्तर—तार्किक आकार में रखने से यह युक्ति इस प्रकार होगी—

जनरल वह व्यक्ति है, जो सेना पर शासन करता है ।

जनरल की पत्नी वह व्यक्ति है जो जनरल पर शासन करती है ।

∴ जनरल की पत्नी वह व्यक्ति है, जो सेना पर शासन करती है ।

इस युक्ति में चतुष्पदी-दोष (Fallacy of Four Terms) है क्योंकि इस न्यायवाक्य में निम्नलिखित चार पद हैं । यथा—(१) जनरल (२) वह व्यक्ति जो सेना पर शासन करे (३) जनरल की पत्नी तथा (४) वह व्यक्ति जो जनरल पर शासन करे ।

(५) यदि गुण ज्ञान है तो उसकी शिक्षा दी जा सकती है ।
 परन्तु गुण के शिक्षक कहाँ है ?

इस युक्ति को तार्किक आकार में बदल कर इस प्रकार लिखेंगे .—

यदि गुण ज्ञान है, तो उसके शिक्षक होंगे ।

गुण के शिक्षक नहीं हैं ।

∴ गुण ज्ञान नहीं है ।

यह एक हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य है जिसमें उत्तरांग को अस्वीकार करने पर पूर्वांग को अस्वीकार किया गया है । अतः यह युक्ति शुद्ध है ।

(६) वह एक मधुमक्खी है; उसे मत छूओ; वह काट लेगी।

इसका तार्किक आकार निम्नलिखित है :—

यदि तुम मधुमक्खी को छूओगे, तो वह काट लेगी।

तुम मधुमक्खी को छूते हो।

. वह काट लेगी।

यह हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य शुद्ध है क्योंकि इसमें पूर्वांग को स्वीकार कर के उत्तरांग को स्वीकार किया गया है।

(६) चतुर व्यक्तियों को छोड़कर कोई भी भला नहीं और भले व्यक्तियों को छोड़कर कोई भी सुखी नहीं।

तार्किक आकार में व्यक्त करने पर यह न्यायवाक्य इस प्रकार होगा—

सब भले व्यक्ति चतुर व्यक्ति हैं।

सब सुखी व्यक्ति भले व्यक्ति हैं।

. सब सुखी व्यक्ति चतुर व्यक्ति हैं।

यह युक्ति 'बाबारा' (Barbara) प्रथम आकार के सिद्ध संयोग में है, अतः शुद्ध है।

(७) पढ़ेलिखे व्यक्ति कभी-कभी पागल हो जाते हैं; परन्तु क्योंकि वह पढ़ालिखा नहीं है, अतः उसके पागल होने का खतरा नहीं है।

शुद्ध तार्किक आकार में रखने से निम्नलिखित न्यायवाक्य बनेगा—

'ई' कुछ पढ़ेलिखे व्यक्ति पागल हैं।

'ए' वह पढ़ालिखा व्यक्ति नहीं है।

∴ 'ए' वह पागल नहीं है।

इस युक्ति में अवैध-साध्य का दोष है क्योंकि निष्कर्ष का विधेय अर्थात् साध्य व्याप्त है परन्तु वह साध्यवाक्य में व्याप्त नहीं है।

(८) क्या दुखी व्यक्तियों की सहायता करना पुण्य नहीं है? सचमुच है। पुलिस की हिरासत में जो व्यक्ति है, क्या वे दुखी

नहीं हैं ? सचमुच है । तब सचमुच ही मुझे उनको पुलिस की हिरासत से छुड़ाना चाहिए ।

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित है
सब दुखी व्यक्ति वे व्यक्ति हैं, जिनकी सहायता करनी चाहिए ।

पुलिस की हिरासत में ये अपराधी दुखी हैं ।
.. पुलिस की हिरासत में ये अपराधी वे व्यक्ति हैं, जिनकी सहायता करनी चाहिए ।

साध्यवाक्य में 'हेतु' 'दुखी व्यक्ति' सामान्य अर्थ में लिया गया है परन्तु पक्षवाक्य में उसका अर्थ है 'किसी अपराध को करने के कारण दुखी' अतः इस युक्ति में उपाधि-भेद दोष है ।

(९) उसको ज्वर है क्योंकि उसका शरीर गर्म है ।

इस युक्ति को पूर्ण रूप से व्यक्त करने पर निम्नलिखित न्याय-वाक्य बनता है .

यदि ज्वर हो, तो शरीर गर्म हो जाता है ।

शरीर गर्म हो जाता है ।

∴ ज्वर है ।

इसमें उत्तरांग की स्वीकृति का दोष है ।

(१०) यदि वह कहता है कि उसने चोरी नहीं की, तो मैं पूछता हूँ कि उसने अपना सामान छिपाने का प्रयत्न क्यों किया, जैसा कि कोई चोर करने में नहीं चूकता ?

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा :

सब चोर वे व्यक्ति हैं, जो अपना सामान छिपाने का प्रयत्न करते हैं ।

वह एक व्यक्ति है, जो अपना सामान छिपाने का प्रयत्न करता है ।

∴ वह चोर है ।

स्पष्ट है कि इस युक्ति में अव्याप्त-हेतु का दोष है क्योंकि हेतु एक भी आश्रय में व्याप्त नहीं है ।

(११) तुम वह नहीं हो, जो मैं हूँ । मैं एक मनुष्य हूँ ।
अतः तुम मनुष्य नहीं हो ।

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—
तुम वह नहीं हो, जो मैं हूँ।
मैं मनुष्य हूँ।

∴ तुम मनुष्य नहीं हो।

इस युक्ति में उपाधि-भेद दोष है क्योंकि हम ऐसी बात से जो किसी एक विशेष परिस्थिति में सत्य हो, एक ऐसी बात पर तर्क करते हैं, जो किसी अन्य परिस्थिति में सत्य हो।

(१२) 'ती', 'चार और पाँच' है। परन्तु 'चार' और 'पाँच' दो संख्याएँ हैं। अतः 'ती' दो संख्याएँ हैं।

इस युक्ति का तार्किक आकार निम्नलिखित होगा—

'चार' और 'पाँच' दो संख्याएँ हैं।

'ती', 'चार और पाँच' है।

∴ 'ती' दो संख्याएँ हैं।

इस युक्ति में 'चार' और 'पाँच' अलग-अलग दो संख्याएँ हैं परन्तु 'चार और पाँच' सामूहिक रूप में 'ती' होते हैं। अतः यहाँ हम व्यष्ट्यर्थ में समष्ट्यर्थ की ओर तर्क कर रहे हैं। इसलिए रचना का दोष है।

प्रश्नमाला १७

(क) भारतीय न्याय :

(१) हेतु किसे कहते हैं ? हेतु तथा हेत्वाभास में भेद बतलाइए। विभिन्न हेत्वाभासों के नाम लिखिए और प्रत्येक का उदाहरण दीजिए। (उ० प्र० १९४६)

(२) तीनों प्रकार के सव्यभिचार हेतु को समझाइए। पाश्चात्य तर्कशास्त्र में उनके अनुरूप कौन से आभास हैं ? (उ० प्र० १९४८)

(३) हेत्वाभास किसे कहते हैं ? बाधित तथा विरुद्ध हेत्वाभास की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। (उ० प्र० १९४६)

(४) निम्नलिखित हेत्वाभासों में से किन्हीं दो की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए—

(क) सव्यभिचार हेतु । (उ० प्र० १९५०, १९५१)

(ख) असिद्ध हेतु । (उ० प्र० १९५०, १९५१)

(ग) विरुद्ध हेतु । (उ० प्र० १९५०)

(घ) सत्प्रतिपक्ष हेतु । (उ० प्र० १९५०)

(ख) युक्तियों का परीक्षण

निम्नलिखित युक्तियों को न्यायवाक्य के रूप में रखिए तथा उनकी विशुद्धि का परीक्षण कीजिए और यदि उनमें कोई आभास हो, तो उनका उल्लेख कीजिए ।

चतुष्पदी आभास

(Fallacy of Four Terms)

(१) जनरल सेना का शासन करता है; जनरल की पत्नी जनरल का शासन करती है, अतः जनरल की पत्नी सेना का शासन करती है ।

(२) भारतवर्ष में बगाल निहित है, बगाल में बम्बई निहित नहीं है । अतः भारतवर्ष में बम्बई निहित नहीं है ।

(३) थैमिस्टोकलीज का पुत्र अपनी माँ पर शासन करता था, वह अपने पति पर शासन करती थी, वह एथेन्स पर शासन करता था और एथेन्स ग्रीस पर शासन करता था । अतः थैमिस्टोकलीज का पुत्र ग्रीस पर शासन करता था ।

(४) परमात्मा ने मनुष्य का सृजन किया, मनुष्य ने पाप का सृजन किया । अतः परमात्मा ने पाप का सृजन किया ।

(५) प्रत्येक मुर्गी अण्डे से निकलती है, प्रत्येक अण्डा एक मुर्गी से निकलता है । इसलिए प्रत्येक अण्डा एक अण्डे से निकलता है ।

अव्याप्त-हेतु का दोष

(Fallacy of Undistributed Middle)

(६) मैं प्रवेश पा सकूँगा क्योंकि मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ हूँ और केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण व्यक्ति ही प्रवेश पा सकते हैं ।

(७) यह व्यक्ति ईमानदार है, क्योंकि यह अपना कर्त्तव्य पालन करता है और सब ईमानदार व्यक्ति अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं।

(८) यह तुम कैसे कह सकते हो कि वह सावधान परीक्षक नहीं है, जबकि वह प्रश्न-पत्रों को जाँचने में बड़ा कठोर है, जैसे कि सब सावधान परीक्षक होते हैं?

(९) अरस्तु एक महान् नैयायिक था क्योंकि वह एक दार्शनिक था और मत्र महान् नैयायिक दार्शनिक होते हैं।

(१०) भारतीय होने के कारण वह हिन्दू होगा क्योंकि केवल भारतीय ही हिन्दू होते हैं।

(११) महान् व्यक्ति सामान्यतया मनकी होते हैं, तुम मनकी हो, अतः तुम महान् व्यक्ति हो।

(१२) मुकरात चतुर था और केवल चतुर मनुष्य ही सुखी होते हैं। अतः मुकरात सुखी था।

(१३) यदि वह कहता है कि उसने सामान नहीं चुराया तो मैं पूछता हूँ कि उसने सामान छिपाने का प्रयत्न क्यों किया, जैसा करने में कोई चोर नहीं चूकता?

(१४) यदि वह कहता है कि वह झूठा नहीं है, तो मैं पूछता हूँ कि वह झेप क्यों गया, जैसा कि सब झूठे करते हैं?

(१५) केवल गर्म देशों में ही शराब बनती है। स्पेन एक गर्म देश है; अतः स्पेन में शराब बनती है।

अनेकार्थक साध्य का दोष

(Fallacy of Ambiguous Major)

(१६) कन्नौज के रहनेवाले कन्नौजिया हैं।
रामसिंह क्षत्री कन्नौज का रहनेवाला है।

∴ रामसिंह क्षत्री कन्नौजिया है।

[यहाँ साध्यवाक्य में 'कन्नौजिया' का अर्थ कन्नौज में रहने वाले तथा निष्कर्ष में 'कन्नौजिया (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।]

अनेकार्थक पक्ष का दोष

(Fallacy of Ambiguous Minor)

(१७) उत्तम खाद्यपदार्थ स्वास्थ्यवर्धक है। सेधव (=नमक)
उत्तम खाद्यपदार्थ है। अतः सेधव (=घोडा) स्वास्थ्यवर्धक है।

अनेकार्थक हेतु का दोष

(Fallacy of Ambiguous Middle)

(१८) सब आचार्य पंडित होते हैं। यह ब्राह्मण आचार्य है।
अतएव यह ब्राह्मण पंडित है। [इसमें 'आचार्य' का अर्थ साध्य-
वाक्य में तो 'आचार्य-परीक्षा-पास' तथा निष्कर्ष में 'कर्म कराने-
वाला' है।]

अवैध-साध्य का दोष

(Fallacy of Illicit Major)

(१९) सब हिन्दू आर्य हैं, कोई भी पारसी हिन्दू नहीं है।
अतः कोई भी पारसी आर्य नहीं है।

(२०) वह अन्धविश्वासी नहीं है क्योंकि सब अज्ञानी व्यक्ति
अन्धविश्वासी होते हैं और वह अज्ञानी नहीं है।

(२१) चमगीदड़ों के पर नहीं होते क्योंकि वे पक्षी नहीं हैं
और सब पक्षियों के पर होते हैं।

(२२) सब मनुष्य मेहनती नहीं होते। परन्तु मोहन
मेहनती है, अतः वह मनुष्य नहीं हो सकता।

(२३) प्रत्येक सैनिक अपने देश की सेवा करता है।
स्त्रियाँ सैनिक नहीं हैं। अतः स्त्रियाँ अपने देश की सेवा नहीं
करती।

अवैध-पक्ष का दोष

(Fallacy of Illicit Minor)

(२४) सब अपराधियों को दण्ड मिलना चाहिए। कुछ
अग्रेज अपराधी हैं। अतः सब अग्रेजों को दण्ड मिलना चाहिए।

(२५) कुछ जर्मन यहूदी हैं। सब जर्मन चतुर हैं। अतः
सब यहूदी चतुर हैं।

(२६) सब मनुष्य विचारशील हैं; सब विचारशील व्यक्ति प्रगतिशील व्यक्ति हैं। इसलिए सब प्रगतिशील व्यक्ति मनुष्य हैं।

उपाधि-भेद-दोष

(Fallacy of Accident)

(२७) जो कोई भी जान-बूझ कर दूसरे व्यक्ति के शरीर पर छुरा चलाता है उसे कानूनन् दण्ड मिलता है। चीरफाड़ करते समय डाक्टर ऐसा करता है, अतः उसे कानूनन् दण्ड मिलना चाहिए।

(२८) भोजन जीवन के लिए आवश्यक है। चावल भोजन है, अतः चावल जीवन के लिए आवश्यक है।

(२९) जो एक व्यक्ति करता है, वह दूसरा व्यक्ति भी कर सकता है, वगैरह आत्मा गांधी मनुष्य नहीं थे? तो जो कुछ उन्होंने किया, वह मैं क्यों नहीं कर सकता?

(३०) प्रत्येक मनुष्य के अधिकार समान हैं, अतः 'क' को एक हजार वार्षिक पाने का अधिकार होना चाहिए, क्योंकि 'ख' को वह अधिकार प्राप्त है।

(३१) तुम वह नहीं हो, जो मैं हूँ। मैं मनुष्य हूँ। अतः तुम मनुष्य नहीं हो।

विभाग का दोष

(Fallacy of Division)

(३२) कालिदास की सब रचनाएँ एक दिन में नहीं पढ़ी जा सकती। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' कालिदास की रचना है। अतः उसे एक दिन में नहीं पढ़ा जा सकता।

(३३) इस देश के सब व्यक्ति अकालपीडित हैं, तुम इस देश के व्यक्ति हो। अतः तुम अकालपीडित हो।

(३४) तेरह एक संख्या है। छ और सात तेरह हैं। अतः 'छः और सात' एक संख्या है।

(३५) वे सब व्यक्ति इस कार्य के लिए पर्याप्त हैं। तुम उनमें से एक हो। अतः तुम इस कार्य के लिए पर्याप्त हो।

रचना का दोष (Fallacy of Composition)

(३६) काशी का प्रत्येक नागरिक कुछ सात छटाक राशन पाता है। यहाँ के विश्वविद्यालय के सब अध्यापक काशी के नागरिक हैं। अतः यहाँ के सब अध्यापक कुल सात छटाक राशन पाते हैं।

(३७) पाँच और आठ विषम और सम है। तेरह पाँच और आठ है। अतः तेरह विषम और सम है।

(३८) मैं 'क' या 'ख' या 'ग' खरीद सकता हूँ अतएव मैं 'क' और 'ख' और 'ग' खरीद सकता हूँ।

पूर्वाङ्ग की अस्वीकृति का दोष (Fallacy of Denying the Antecedent)

(३९) यदि मनुष्यो की आत्मा स्वतन्त्र है तो वे अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं। परन्तु मनुष्यो की आत्मा स्वतन्त्र नहीं है, अतः वे अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

(४०) यहाँ अग्नि नहीं हो सकती क्योंकि यहाँ धूम्र नहीं है और जहाँ धूम्र होता है वही अग्नि होती है।

उत्तराङ्ग की स्वीकृति का दोष (Fallacy of Affirming the Consequent)

(४१) यदि कोई व्यक्ति अपराधी है तो उसे दण्ड मिलता है, परन्तु उसे दण्ड मिला, अतः वह अपराधी है।

(४२) यदि कोई विद्यार्थी मेहनत करता है तो वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है। वह परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ; अतः उसने मेहनत की।

(४३) बिल्ली दूर होनी चाहिए क्योंकि चूहे खेल रहे हैं और जब बिल्ली दूर होती है, तभी चूहे खेलते हैं।

(४४) यदि तुम मेहनत करते हो, तो तुमको पुरस्कार मिलता है। अतः तुमने मेहनत की होगी क्योंकि तुमको पुरस्कार मिला।

(४५) रात को वर्षा हुई होगी क्योंकि घरती गीली है।

वस्तुगत-अशुद्धि युक्त उभयतोपाश (Materially fallacious Dilemma)

(८६) यदि मनुष्य पवित्र है तो नियम बेकार है, और जब मनुष्य अपवित्र है, तो वे नियमों का उल्लंघन करेंगे ही। अतः नियम बेकार है।

(८७) नैतिक जिज्ञासे व्यर्थ है क्योंकि भले व्यक्तियों को उनकी आवश्यकता नहीं होती और दुरे व्यक्ति उनकी परवाह नहीं करते।

(४८) अपने द्वारे में न तो अच्छी और न बुरी बात कहो। यदि अच्छी बात कहोगे तो मनुष्य निश्चिन्त नहीं करेंगे, यदि बुरी बात कहोगे तो वे उसमें नमक-मिर्च भिलाकर और अधिक बुरी बात का प्रसार करेंगे।

(४९) कविता या तो सत्य होगी अथवा असत्य। यदि वह असत्य है तो वह भ्रामक होती है, यदि वह सत्य होती है तो वह इतिहास का छद्मवेप ही होती है। यही कारण है कि विचारवान व्यक्ति कविता का अध्ययन नहीं करते।

(५०) यदि मेरे भाग्य में मृत्यु है तो कोई चिकित्सक मुझे नहीं बचा सकता, यदि मेरे भाग्य में जीना बड़ा है तो चिकित्सक अनावश्यक है। फिर चिकित्सक को बुलाने का व्यय क्यों किया जाय ?

संक्षिप्त न्यायवाक्य

(Enthymeme)

(५१) अफ्रीका में उत्पन्न होने के कारण वह स्वभावतः काला है।

(५२) ये सब व्यक्ति भले नागरिक हैं क्योंकि केवल भले नागरिक ही नियमों का पालन करते हैं।

(५३) नारी ! तेरा नाम दुर्बलता है।

हेतुफलाश्रित-निरपेक्ष न्यायवाक्य

(Hypothetical-Categorical Syllogism)

(५४) यदि कोई व्यक्ति वृत्त को चौकोर बना सके तो वह बहुत बड़ा गणितज्ञ होगा । परन्तु ऐसा कोई नहीं कर सकता ।

(५५) यदि ओस न गिरे तो मौसम बुरा होता है । परन्तु ओस गिरी है अतः मौसम अच्छा होगा ।

वैकल्पिक-निरपेक्ष न्यायवाक्य

(Disjunctive-Categorical Syllogism)

(५६) उसने एम० ए० की परीक्षा में पाली का पर्चा नहीं दिया क्योंकि परीक्षार्थी या तो संस्कृत का पर्चा दे सकते थे, या पाली का ओर उसने संस्कृत का पर्चा दिया ।

परिशिष्ट

U. P. Board : Intermediate Examination
1954.

Deductive Logic.

टिप्पणी —केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर लिखिए ।

इनमें प्रश्न ८ और ९ अनिवार्य हैं ।

(१) विज्ञान (Science) किसे कहते हैं ? विज्ञान और कला (Art) में क्या अन्तर है ? तर्कशास्त्र कला है, अथवा विज्ञान, इस विषय पर अपना मत प्रकट कीजिए ।

(२) पद (term) और शब्द (word) में क्या अन्तर है ? पदों का वर्गीकरण कीजिए और प्रत्येक वर्ग की उदाहरणपूर्वक व्याख्या कीजिए ।

(३) तार्किक विभाग (Division) किसे कहते हैं ? उदाहरण देकर तार्किक विभाग और अन्य प्रकार के विभागों में भेद बतलाइए ।

(४) परिमाण (Quantity) और गुण (Quality) की दृष्टि से वाक्यों (Propositions) के भेद करके उनके उदाहरण देकर समझाइए ।

(५) निम्नलिखित वाक्यों को तार्किक वाक्यों में परिवर्तित कीजिए और उनके गुण (Quality) तथा परिमाण (Quantity) भी लिखिए—

- (१) सभी चोर बदमाश नहीं होते ।
- (२) केवल स्नातक ही वोट देने के अधिकारी हैं ।
- (३) थोड़े ही मनुष्य ख्याति प्राप्त कर सकते हैं ।
- (४) प्रत्येक चोर डाकू नहीं होता ।
- (५) प्रायः सभी लड़के कक्षा में उपस्थित थे ।

(६) निम्नलिखित वाक्यों में विन्द-भाव (Contraposition), व्यत्यय (Inversion) और परिवर्तन (Conversion) द्वारा अनुमान निकालिए —

- (१) कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है।
- (२) कुछ ही मनुष्य उपस्थित न थे।

(७) सिद्ध कीजिए कि "Syllogism (पाञ्चात्य अनुमान) की प्रथम आकृति (First Figure) में मध्य वाक्य अवश्य सामान्य होना चाहिए। द्वितीय आकृति में दोनों वाक्यों में से एक वाक्य निषेधात्मक होना चाहिए।"

(८) भारतीय तर्कशास्त्र के अनुसार अनुमान का क्या स्वरूप है, उसे लिखिए और उनकी तुलना पाञ्चात्य अनुमान (Syllogism) से कीजिए।

अथवा

हेत्वाभास किसे कहते हैं? मुख्य हेत्वाभासों के नाम उदाहरण सहित लिखिए।

(९) निम्नलिखित तर्कों में से किन्हीं चार की परीक्षा कीजिए और उनके दोषों को प्रकट कीजिए —

- (क) सुरेश सज्जन है क्योंकि वह धर्मात्मा है, और धर्मात्मा ही सज्जन होते हैं।
- (ख) पैसेजर गाड़ियों के सिवाय इस स्टेगन पर कोई गाड़ी नहीं ठहरती। यह जो गाड़ी गई है, पैसेजर नहीं हो सकती क्योंकि वह इस स्टेगन पर नहीं ठहरी।
- (ग) मेरे हाथ मेज को छूता है और मेज पृथ्वी को छूती है। अतएव मेरा हाथ पृथ्वी को छूता है।
- (घ) वह अवश्य ही हिन्दू है क्योंकि वह भारतीय है। केवल भारतीय ही हिन्दू होते हैं।
- (ङ) चम्पा फूल है, फूल वनस्पति (Vegetable) है, वनस्पति प्राणी है। अतएव चम्पा प्राणी है।
- (च) भारतीय शांतिप्रिय राष्ट्र है, श्री जयकर भारतीय है, इसलिए वह शांतिप्रिय है।

१९५५

इण्टरमीडिएट परीक्षा

तर्कशास्त्र

प्रथम प्रश्नपत्र

(नैगमनिक तर्कशास्त्र)

समय—३ घंटे]

[पूर्णांक ५०

सूचना—केवल पाँच प्रश्नों का उत्तर दीजिये । प्रश्न संख्या ७ तथा ९ अनिवार्य हैं ।

१ विचार के नियमों को लिखिये तथा समझाइये ।

२. पदों के निर्देश (denotation) तथा गुण (Connotation) से आप क्या समझते हैं ? यह कथन कहाँ तक सत्य है कि पद के निर्देश तथा गुण का प्रतिलोम अनुपात में परिवर्तन होता है ?

३ वाच्य-धर्म (Predicables) क्या हैं ? उपयुक्त उदाहरण देकर उन वाच्य-धर्मों को समझाइए जिनके बारे में आपने पढ़ा है ।

४ उदाहरण देकर निम्नलिखित विषयों के तात्पर्य को पूर्णतः स्पष्ट समझाइए :—

(अ) विभाजक धर्म (Fundamental divisions)

(ब) अत्य-जाति (Infima Species)

(स) विभाग-सकरता (Cross division)

५ वाक्य के किसी पद की व्याप्ति का क्या अभिप्राय है ? वाक्य (Propositions) के चारों विभाग में से प्रत्येक में कौन-से पद व्याप्त हैं और क्यों ?

६ तर्कशास्त्र में प्रतिमुखता (Opposition) से आप क्या समझते हैं ? यदि यह वाक्य सत्य हो कि “कुछ मनुष्य मच्चे नहीं हैं”, तो सभी तर्कशास्त्रीय

प्रतिमुखताएँ (logical opposites) बतलाइए और उनके लक्षण (Characteristics) दीजिये।

७. हेत्वाभास क्या है ? उदाहरण-महित हेत्वाभास के मुख्य भेद बतलाइये।

८. न्यायवाक्य (Syllogism) के आकार (Figure) और सयोग (Mood) का क्या अर्थ है ? सिद्ध कीजिये कि सिद्ध-न्याय-वाक्य (Valid Syllogism) के प्रथम आकार में (अ) पक्ष-वाक्य (Minor Premise) अवश्य भाग्यत्सक (affirmative) होना चाहिए तथा (ब) साध्य-वाक्य (Major Premise) अवश्य सामान्य (Universal) होना चाहिए।

९ निम्नलिखित अनुमानों में से किन्हीं चार की परीक्षा कीजिये और यदि कोई दोष हो तो उन्हे बतलाइये —

- (क) दूध सफेद है, सफेद एक रंग है, अतः दूध रंग है।
- (ख) गधे के चार पैर होते हैं, इस मेज के चार पैर हैं, अतः यह मेज गधा है।
- (ग) सभी मनुष्य मर्त्य हैं, सभी कुत्ते मर्त्य हैं, अतः कुछ कुत्ते मनुष्य हैं।
- (घ) उसको निस्सदेह रुपये की आवश्यकता है; क्योंकि यदि वह अमीर है, उसको रुपयों की आवश्यकता नहीं है, परन्तु वह अमीर नहीं है।

(ङ) यह कार्य अनैतिक है क्योंकि यह मुट्ठ नैतिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

(च) उत्तर प्रदेश विहार के बगल में है, विहार बंगाल के बगल में है, अतः उत्तर प्रदेश बंगाल के बगल में है।

(छ) चार तथा पाँच विषय तथा सम हैं, परन्तु चार और पाँच नौ होते हैं, अतः नौ विषय तथा सम है।

(ज) मुझे किसी डाक्टर की सलाह नहीं लेनी चाहिए क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे सभी मित्रों ने जिनकी गत वर्ष मृत्यु हुई थी डाक्टरों की सलाह ली थी।

OPINIONS.

Professor B. N. ROY'S LOGIC.

ENGLISH, BENGALI AND HINDI EDITIONS.

Dr. SARVAPALLI RADHAKRISHNAN

"I have no doubt that these books are suitably admirable for the needs of the Intermediate students in our Indian Universities".

ENGLISH EDITION

DEDUCTIVE		INDUCTIVE.	
1st Edition	1930	1st Edition	
2nd Edition	1932	2nd Edition	
3rd Edition	1933	3rd Edition	
4th Edition	1935	4th Edition	
5th Edition	1937	5th Edition	
6th Edition	1938	6th Edition	
7th Edition	1940	7th Edition	
8th Edition	1942	8th Edition	
9th Edition	1944	9th Edition	
10th Edition	1944	10th Edition	
11th Edition	1945	11th Edition	
12th Edition	1947	12th Edition	
13th Edition	1948	13th Edition	
14th Edition	1949	14th Edition	
15th Edition	1950	15th Edition	
16th Edition	1951	16th Edition	
17th Edition	1953		
18th Edition	1954		

**Professor Humayun Kabir, M.A. B.A (OXON),
Calcutta University:**

"I have read some portions of your books. Need I say that a work by so experienced and well-known a teacher as you is sure to be of great use to students."

CONSTITUENT COLLEGES

(In alphabetical order)

**Professor Bejoy Gopal Sarkar, M.A., Asutosh
College:**

"I have gone through your excellent works on Logic and am glad to tell you that they are *pre-eminently suitable for students* taking up Logic as one of their subjects for their Intermediate Examination in Arts. The principles of the science have been dealt with in a comprehensive and methodical manner, and explained in clear and lucid style; what is better still is that elaborate hints have been given so that students may not find any difficulty in working out practical examples. I have recommended the books to my students and have found that they use them with considerable profit to themselves."

**Professor Katyayanidas Bhattacharya, M.A., Asu-
tosh College:**

"I have carefully gone through the book and have found it to be just what the students need most at present. Professor Roy's English Logic is very popular to I.A. students, and I am sure Professor Roy's Bengali Logic will be in no way less popular."

**Professor Mohitosh Ray Choudhuri, M.A., Banga-
basi College:**

"The books have been always recommended by me."

**Professor N. N. Sen Gupta, M.A., Bangabasi
College:**

"I thank you very much for sending me a copy of your Inductive Logic. I can well recommend it to students as I did your book on Deductive Logic as a useful handbook for beginners."

**Professor Sasanka Sekhar Banerjee, M.A., Bankura
College:**

"The book really deserves strong recommendation to the new students of Logic and I am sure it will supplant the other books in course of two or three years."

Principal (Mrs.) Tatini Das, M A , Bethune College:

"A *concise but clear statement* of the problems of Logic is a special feature of the two volumes Professor Roy has a peculiar knack for anticipating the difficulties of novices and meeting them in a way which proves him to be a born teacher of Logic."

Professor Narendra Nath Hazra, M A , Burdwan Raj College, Burdwan:

"I am trying my best to push your book through "

Professor Promod Ranjan Bhar, M A , Dupleix College, Chandernagore:

"Your treatises on Logic mark a definite deviation from the common practice Clearly do they show that the writer has just grasped the subject as a whole and then held the pen I am quite sure that your valuable volumes will lead the students to the very heart of the subject although they will not feel the least strain on their part"

Principal Rani Ghosh, M A , Gokhale Memorial Girls' College, Calcutta:

"The TEXTBOOKS OF DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC by Prof Roy are written in lucid style, and can be recommended for the Intermediate Arts students"

Professor Ranada Ranjan Chakravarti, M A , Vice-Principal, Howrah Narasinha Dutta College:

"I have already decided to adopt your books as text-books in my classes They are concise but not sketchy, and are admirably written in a style that is simple and easy-going I hope your 'TEXTBOOKS' have already made much headway in the field and I am eagerly looking forward to the day when the pen will take their rightful places in the shelf of every student of Logic"

Principal Dr. Nalini Kanta Brahma, M A., P R S, Ph D, Principal, Hugli Moshin College, formerly, Senior Professor of Philosophy, Presidency College, Calcutta, and Krishnagar College, Lecturer, Calcutta University:

"I have read the major portion of your books The arrangement of the topics is systematic, and the discussions are clear and concise. I think your books will very well suit the capacities of the average student You seem to be aware of the difficulties of the students, and I have not the least doubt that your books will be of great help to them"

Professor Haridas Chowdhury, M A , D.LITT.,
Islamia College Calcutta, formerly, Eden Intermediate
College for Girls, Dacca, and City College:

(1) "I have recommended to my students Professor Roy's books *as among the best works on Logic for Intermediate students available* in the market. The most remarkable feature of his works is, in my opinion, is that he has kept in his mind the needs and difficulties of the students for whom they are meant. In handling the controversial issues, in explaining the fallacies, and other complicated points with a rich profusion of suitable illustrations, and in answering all model University Questions, the author has displayed admirable tact and wisdom. I am perfectly sure that Professor Roy's works will serve their purpose exactly well."

(2) "I have been recommending to my students Professor Roy's TEXT-BOOKS ON LOGIC from the very beginning of my association with the City College. I have no doubt that Professor Roy's books are *as invaluable for ambitious students as they are indispensable for average candidates*. The author has always kept in mind the difficulties and requirements of those for whom he has written, and his treatment is throughout marked with perfect lucidity and system."

(3) "I have recommended Prof. Roy's books with emphasis to my students of Eden College."

Professor Tarak Bramha Chakravarti, M A , K. C.
College, Hetampur:

"I have gone through your TEXT-BOOK OF LOGIC with delight. *The books are decidedly advances* in the field to enable the students to get the subject more easily prepared. The fundamentals of the subject-matter have been rendered *easy, being amply exemplified*. The most useful and interesting feature of the books is the large number of arguments selected from University Papers and worked out with a view to helping the students to detect their errors."

Professor J. K. Sarkar, M A , Krishna Chandra
College, Hetampur:

"We advised our students to follow your books as they are *really good books on Logic.*"

Professor Nirode Behary Bhattacharya, M A , K. C.
College, Hetampur:

"I am glad to find the TEXT-BOOKS suitable for our I.A. students. I shall try to persuade my students to have these books, especially for their copious illustrations."

Professor Jatil Coomar Mookerjee, M A , Krishna-gar:

"I already recommended the books to my students I read your books while I was a student, and I have been using them since the time when I began by career as a teacher of Logic."

Professor Bidhu Bhusan Sen Gupta, M A , Krishna-gar College:

"The simple and lucid way in which the subject is introduced and the systematic procedure followed in presenting different topics, *not only solve the initial difficulties in the way of the beginners but render the whole field very easy of grasp* The various homely examples introduced in explaining things and the numerous solutions of questions and exercises inserted, add largely to the practical value of the treatise and render it more suitable than the ordinary Text-books

Professor Syama Prasad Banerjee, M A , B L , Maharaja Manindra College, Calcutta:

"The books were very useful to me when I was a student, and in course of my teaching the subject, I have judged it indispensable to the students. The language is simple, the exposition clear and the method brilliant. I have always recommended the books to my students who have secured very high marks by reading only those books"

Professor Aswini Kumar Dutt, M.A , Midnapur College:

"I generally recommend these books to my students and I have also done the same this year"

Professor Biraja Bandhaba Chatterjee, M A , Midnapore College, Midnapore:

"Professor Roy's TEXT-BOOKS ON LOGIC are excellent beginners and the undersigned uses them as Text-books in the class room. Hints for working out exercises given at the end of each chapter and the marginal notes will prove very helpful to students preparing for the Intermediate Examination in Arts and the author style."

Professor R. C. Sen, M A , P. K. College, Contai:

"I have found your TEXT-BOOKS *very useful* and recommended them to my students"

Professor Aswini Kumar Nandi, M A , Prafulla Chandra College, Bagerhat:

"Both the volumes have been written in a clear, concise and

sensible manner and the different topics has been well-arranged. You are an experienced and capable teacher and are thus familiar with the difficulties of young students. Your endeavour to adapt your books to their requirements has, therefore, been creditably successful. I have not the least doubt that your books will be of great use to the Intermediate students of our Universities. I have recommended them to my students here and I have been told by them that they have really benefited by the publication of your books."

Rai Khagendra Nath Mitra Bahadur, M.A.,
formerly, Head-Examiner and Paper Setter in Logic,
Calcutta University; Professor of Philosophy, Presi-
dency College, Calcutta; etc.:

"I have much pleasure to note that Professor Bholanath Roy's **DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC** has earned within a short time the recognition which it so well deserves. He has been teaching the subject to thousands of students in a big Calcutta College and it can be expected from a man of his ripe scholarship and wide experience that his work will meet the requirements of the students who intend to master the subject thoroughly within the period of two years. Mr Roy has written with the object of making Logic interesting and intelligible to those for whom it is intended—and if popularity is any proof of the success of a book the result must be surely gratifying to the author."

Dr. Mahendra Nath Sarkar, M A , Ph D , formerly
of Presidency and Sanskrit College, Lecturer, Calcutta-
University:

"I have gone through Mr Roy's Logic, and am glad to be able to say that the book has been *written in an easy and graceful style*. The subject has been explained in detail with close accuracy and the fine insight. The Chapters on Causation, Experimental Methods and Hypothesis in Induction, and Syllogism in Deduction, are really stimulating. I am sure the book will be of real help to the students preparing for the Intermediate Examination."

Dr. Saroj Kumar Das, M A , Ph D , Senior Professor
of Philosophy, Presidency College, Stephanos, Nir-
malendu Lecturer, Paper-setter and Examiner, Calcutta
and other Universities:

"It is a positive pleasure to testify to the excellence of the two volumes of Logic published by Professor Bholanath Roy, M.A. Having gone through these two volumes carefully I am in a position to say that Prof Roy has in him the rare gift of sweet-reasonableness which entitles one to be a teacher of young minds. What

particularly appeals to me is the *judicious sense of proportion and balance* which the author brings to the execution of his task"

Professor Amiya Kumar Mazumdar, M A., Presidency College:

"It will please you to learn that I used these books when I was a student of the Intermediate Classes and I can tell you that I derived immense help from them Ever since I took teaching as a profession, I have been recommending Professor Roy's books to students, both mediocre and advanced I have no hesitation in saying that there are very few scholars so well-equipped for the task of writing a text-book on Logic as Professor Roy Professor Roy has the rare gift of presenting the abstract and difficult problems of Logic in a concise and lucid manner He is fully alive to the difficulties of the beginners and has arranged the topics so neatly that one can master the subject easily with the help of these volumes and without the guidance of a teacher I am really delighted to go through them once again"

Swami Tejasananda, Principal, The Ramkrishna Mission Vidyamandira, Belur Math:

"I need hardly add that your book contains a very lucid presentation of the subject and meets in a beautiful way all the requirements of the Intermediate students of Logic I have been prescribing your book as a text-book in this college since 1941 and this year also it has been prescribed as a text-book for the I A. Students of this College. Your book which shows your masterly grasp of this difficult subject, has become very popular with the students and Professors of the Vidyamandira"

The Rev. Joseph Farassius, S C, Salesian College, Sonada:

"I have read them with interest I am sure the students will profit very much Their conciseness together with clarity of exposition will certainly be appreciated by both students and Professors who will have their work simplified Accept my best congratulations. I shall introduce the above text-books of Logic in our college."

Professor Nirmalendu Roy, M A, Satkhira College:

"I shall try my best to introduce your book to my students so that they may be benefited much by instructions from your book."

Professor Satyapriya Biswas, M A, Scottish Church College:

"I find that these TEXT-BOOKS are of a high standard of merit The chapters are well arranged, very clearly and completely dealt

with They are concise as well I am sure, these two volumes will prove a popular text-book The exercises with a sufficient hint to work them out will increase their value for students"

The Rev. John Heron, M A , B.D , S.T.M , formerly of Scottish Church College:

"It is my opinion that Professor B N Roy's TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC is well suited to meet the needs of the majority of I A students in Calcutta *Its conciseness and clarity of arrangement* make it easy for any conscientious student to master the elements of the subject without having to depend on much help from other sources As for Professor Roy's TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC I find it useful for purposes of reference because of the ease with which what it has to say about any particular topic can be discovered"

Professor Subodh Kumar De, M.A., Scottish Church College:

"I have carefully gone through the two volumes of TEXT-BOOK OF LOGIC (DEDUCTIVE AND INDUCTIVE) by Professor Bhola Nath Roy. The books are written in a lucid style. The arrangement of topics is quite systematic The exposition of principles is illustrated by well chosen examples I have not doubt that the books will prove to be very useful to the Intermediate students of our University."

Professor Purna Chandra Sen, M A , formerly of Scottish Church College, Calcutta:

"As a successful and experienced teacher of the subject you have thorough insight into the capacities, requirements and difficulties of those for whom the above two volumes are meant, and this is quite evident everywhere in them The arrangement of subjects is quite logical The rules and principles of Deduction and Induction have been lucidly explained in clear and simple language, and illustrated by appropriate examples taken both from science and ordinary affairs of life To help the student a large number of problems have been worked out, while quite a good number of exercises given here and there will enable him to test his ability to apply practically the principles of Logic "The marginal notes will be very useful for a rapid revision of the subject at the time of examination In short, *the author has simplified and popularised the rather intricate subject of Logic* The book is eminently suited to the requirements of the I A students in Logic to whom it is strongly recommended"

Mr. Manindra Nath Banerjee, M.A , B.L , Bar-at-Law, formerly of Scottish Church College:

"I have gone through Professor Roy's TEXT-BOOK OF LOGIC

carefully and have adopted them as text-books for students in my college. I have not the least hesitation in saying that *considered as text-books they are absolutely unrivalled*. You have very properly emphasised the practical aspect of the science, which presents considerable difficulties to the beginner. It is no wonder that your works have achieved immense popularity with teachers and students alike within the comparatively short time of their publication."

Professor Sudhir Kumar Roy, M A , Serampore College:

"I shall recommend the book to my pupils as, I think, the book will prove useful to them for their examination."

Professor Giridhan Chatterjee, M A , South Calcutta Girls' College:

"I have carefully gone through the pages of the books and I am much impressed with the treatment of abstruse principles of Logic by the author in such a way as to make it so easy for the students. Copious illustrations and questions at the end of each chapter, with solutions where necessary, much enhance the value of the book. I have recommended the books to my students."

The Rev. Fr. H. Bampton, S J Professor, St. Joseph's College, Darjeeling, formerly, Professor, St. Xavier's College, Calcutta:

"I think my opinion of the books can be sufficiently gauged from the fact that I have adopted it as the Text-book for St. Joseph's College. The book is excellent."

Professor N. C. Mitra, M A , St. Xavier's College, Calcutta:

"I have found them very useful to the students, so I at once took steps to introduce the same, as Text-books in our College, replacing the old ones. The language, in Mr. Bhola Nath Roy's texts, is quite definite and clear and the abstract and philosophical parts are so lucidly explained in simple English, that the students find them very easy and convenient for study. I hope other sister Colleges will very soon introduce them and they will find them very useful to their students."

Principal Rabindra Narayan Ghosh, M A , Surendranath College:

"I have with great pleasure gone through Professor Bhola Nath Roy's TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE and TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC. I have no doubt that they will prove very useful to the students for whom they are intended. The language of the book is simple

and attractive. The exposition is lucid throughout, and this is a point of great importance in a book dealing with an abstract subject. At the same time *the treatment is fresh and stimulating*, and in parts is marked by a distinct originality of presentation. I hope the author will soon utilise his remarkable talents in advanced original work in his subject, for which he appears to be so eminently fit."

Dr. Sushil Chandra Mitra, M A, D LITT (Paris), formerly of Surendranath College, Presidency College:

"I have read your recent publication on Logic—with considerable pleasure and have not the slightest hesitation in saying that *they are by far the best of their kind judged from all points of view*. The comprehensive treatment of the different topics, the lucid language in which the thoughts have been expressed and the emphasis you have laid on the practical aspect of the science leave nothing to be desired. *The books have proved to be not a text-book but the text-book of Logic for Intermediate students in our Indian Universities*"

Professor Rabindra Nath Chakravarti, M A., formerly of Burdwan Raj College, Sometime Principal Ramdia College; now Professor, Surendranath College:

"These are the books which I can safely recommend to my students"

Professor Bejoy Kumar Ray, M A., Surendranath College, Calcutta; formerly, Professor, B. B. College, Muzaffarpur, D. J. College, Monghyr, A. M. College, Mymensingh, etc.:

"Students and teachers alike will welcome the publication of the 'TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and 'TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC' by Professor Bhola Nath Roy. They are written on substantially new lines and present many new, interesting and instructive features and I have no doubt that *they are pre-eminently suitable as text-books* for the use of Intermediate students. The reception which has been accorded to them within the comparatively short time of their publication has been fully deserved and I hope the time is not distant when *they will be universally used by the students of the subject*"

Professor Paresnath Bhattacharya, M A, Victoria Institution and Women's College, Calcutta:

"I have always recommended the books to my students in the Victoria Institution and Women's College"

Principal J. R. Banerjee, M.A., B.L., formerly

Principal, Vidyasagar College, Calcutta; Lecturer, Calcutta University, Paper-setter and Examiner, Calcutta University:

"TEXTBOOK OF DEDUCTIVE LOGIC and TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC by Bholanath Roy, Professor, Ripon College, Calcutta, are useful publications *The different topics that Intermediate Logic students have to study have been treated in these works thoroughly, yet concisely* There are certain features of them that make them specially adapted to the requirements of students of Intermediate Logic"

Principal K. C. Gupta, M A , formerly of Vidyasagar College, Calcutta:

"I was much favourably impressed by your clear and concise treatment *I really admire your sense of proportion which is, I am sorry to say, conspicuous by its absence from some books available in the market* I am sure your Text-book will be most useful to our I A candidates I sincerely wish your book a wide circulation which it highly deserves"

Professor Atul Chandra Das Gupta, M A , Vidyasagar College, Calcutta:

"I have gone through portions of your book and I have been quite favourably impressed with many features of your book. You seem to have *stated the problems with great lucidity and thoroughness* Your quotations also seem to be very appropriate. The book shall be welcomed by teacher and student alike"

Professor Sukumar Mukherjee, M A , Vidyasagar College, Calcutta:

"I have gone through your books with considerable interest and have found them to be publications of intrinsic merit Clear, concise and at once rich with illustrations, exercises and apt quotations, these volumes have well nigh attracted the attention of students and teachers alike I can confidently say that they will prove very useful to students of Intermediate Logic for whose requirements they are admirably suited"

Professor Benoy Gopal Ray, M A , Vishva-Bharati:

"B N Roy's DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC are amply suited for the requirements of Intermediate students of Indian Universities The essentials of Logic have been presented in a clear and concise manner. In the book examples are copious and the fallacies have been exhaustively dealt within"

DACCA UNIVERSITY.

Professor Haridas Bhattacharya, M A., B L., P.R.S.,
Head of the Department of Philosophy, Dacca University;
Paper-setter and Examiner, Dacca, Calcutta and
other Universities; formerly, Lecturer, Calcutta Uni-
versity and Professor, Scottish Church College, Calcutta:

"I have read your book with interest and with sufficient care to be able to tell you that I found it *very clearly and fairly illustrated*. You have succeeded in producing a book that ought to have a good sale, for the method of arranging things is a new feature which ought to be attractive. It does not fall short of the required standard in any way and *the examples and exercises ought to be greatly appreciated by the teachers and the students*"

Principal K. B. Chakravarti, M A., Ananda Mohan College, Mymensingh:

"I have a very high opinion of your book and believe that you have served a very useful purpose in bringing it out. I would specially admire the *very lucid presentation and excellent arrangement of topics and the happy discrimination with which the essentials have been emphasised and worked out from the side issues*. The book will be of real use to those for whom it is intended"

Professor Benoy Charan Ray, M A., A. M. College, Mymensingh:

"I am in a position to say that *compared with the other recommended books it means a distinct improvement* for the requirements of Indian students"

Professor S. C. Chakravarty, M.A., Ananda Mohan College, Mymensingh:

"Very many thanks for your kindness in sending me two volumes of Professor B N Roy's *Logic*, which I find to be an excellent introduction to the subject, lucid, well-arranged, illustrated and well-suited for the capacities of the examinees"

Professor Shyama Kumar Chatterjee, M.A., Sir Ashutosh College, Chittagong:

"I dare say that the treatment as given here has been *exhaustive and masterly*. I have the warmest admiration for the synthetic genius of the author as displayed in and through the second volume. The language used here is very simple and lucid. And these two efficient volumes will, I think, figure as the most dependable *text-books on the subject for all time to come*"

Professor Naresh Chakraborty, M.A., Sir Ashutosh College, Chittagong:

"The book has come to occupy a unique place in its own field and for a major section of students—it is no exaggeration to say, the book is indispensable"

Professor Gopal Chandra Bhattacharya, M A , formerly, Bijomohan College, Barisal:

"Professor B N Roy's 'TEXT-BOOK OF LOGIC' is a *publication of first-rate importance* to our Intermediate students in Logic. It has made the task of the teacher of the subject so light and easy that when a student has read it there hardly remains anything for the teacher to explain. The publication has removed a long-felt want for a text-book which is accurate in every detail and exhaustive in its scope, and yet written in such brilliant and lucid style that it would make the study of the subject delightful, pleasant and a highly paying proposition for the purpose of passing any examination in Logic"

Professor Jajneswar Acharjya, M A , B. M. College, Barisal:

"I am glad to inform you that these two books have already been recommended"

Professor Gour Gobinda Gupta, M A , Carmichael College, Rangpur:

"I was highly pleased when I carefully went through your books looking for things which as a teacher of long standing I have always thought badly needed students but rarely found in other TEXT-BOOKS OF LOGIC. I must say that *I am in love with your books*. I shall recommend your books strongly to my students"

Professor Satyendra K. Kar, M A , Chaumohani College:

"I have prescribed them as text-books in my college."

Professor S. A. Bhuiya, M A , Comilla Victoria College:

"The commendable appreciation of the value of the 'TEXT-BOOKS OF LOGIC, both Deductive and Inductive, by Professor B N Roy,' by the Intermediate students, is due to the fact that, being an experienced teacher of Logic and Philosophy, the author has taken every care to present lucidly and clearly the essentials of the subject in a manner at once concise and yet analytical with a wealth of illustrations and examples picked out from facts of every day experiences, rendering them very interesting and easy of under-

standing by the beginners of the subject I have been accordingly following the books in course of my class lectures and recommending the same to my students as well”

Professor Nikhil Chandra Sen, M A., Chittagong College, formerly, Dacca Intermediate College, Dacca:

“I have carefully read both the volumes and am sure that *they surpass all other books that are generally used by our students, in clear exposition of the subject-matter and lucidity of style* They will remove the want that I strongly felt and for which I had to refer to books of Welton and others occasionally. I am sure that a thorough study of these books will give the students a clear conception of the fundamental principles of Logic”

Professor Dwijapada Banerjee, M A., Daulatpur Hindu Academy:

“Professor B N Roy’s volumes on Deduction and Induction are excellent specimens of the success an erudite scholar and an able teacher of the writer’s type is expected to achieve My students have been following his **INDUCTIVE LOGIC** for some years past. I very much appreciated the *fine arrangements of the topics, the easy and expressive style and the masterly way of handling some of the hard problems*”

Professor Narendranath Das Gupta, M A., Daulatpur Hindu Academy:

“I had an occasion to go through certain portions of your book and I found them to be highly satisfactory I am thinking of introducing your book to my students, and of adopting it as a text-book in our class *Yours seems to be decidedly the best book in the market Your Inductive Logic seems to be really superior to all the other books recommended by the University.* We have long been in need of such a text-book”

Professor Bilas Chandra Mukherjee, M A (ENG.) M A (PHIL), Daulatpur Hindu Academy:

“Both the books have been adopted as a text-book in this college for last several years ‘Roy’s **TEXT-BOOKS ON LOGIC**’ have been a decided improvement upon all other books of the same kind prevailing in the market and they are specially suited to the requirements of the students”

Professor Pasupatinath Mallik, M A., formerly, Daulatpur Hindu Academy, now of Vidyasagar College, Calcutta:

“I have perused Professor B N. Roy’s **TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC** and **TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC**, and have derived the

utmost satisfaction possible The books have been written in accordance with the syllabus of various Indian Universities The author is a renowned Professor, and these books could be written only by a man of his calibre He has incorporated in them all that is useful and studiously avoided useless materials The language, again, is simple and the exposition as lucid as possible The usefulness of these books has been enhanced all the more by the addition of Exercises at the end of each Chapter Students of all description will profit by studying them"

Professor Amar Nath Mukherjee, M A, Edward College, Pabna:

"Your book deserves the highest recommendation The answers to typical questions form an attractive feature of your treatise and the mode of presentation of the different subjects appears to me to be *thoroughly systematical*"

Professor Jatindra Chandra Bhattacharya, M A, Kamrunnessa Intermediate College, Dacca:

"As regards the merits of these two books, I think I have nothing to add to what has already been said by so many eminent scholars These two books have certainly rounded the sharp edge of the subject and Logic, it seems, is no longer a scare-crow to the Intermediate students"

Professor Hem Chandra Das, M.A, B L, Rajendra College, Faridpur:

"The latest editions, enriched by new additions, modifications, apt illustrations and numerous exercises will serve fully the interests of I A Logic Students The exposition is very clear, and simple The author spared no pains in making the abstract subject very interesting The students of Logic are advised to read and follow these books"

Professor Kazemuddin Ahmed, M A, Rajshahi College; formerly, Lecturer, Dacca University:

"Amidst the plethora of publications on the subject which are multiplying every year, it is a relief and a pleasure to turn to Professor Bholanath Roy's works—the 'TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and the 'TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC' They are *admirably designed and admirably executed in every detail and are decidedly superior to other books of their kind* The wealth of illustrations which exemplify the various logical principles constitutes one of their most attractive features I offer my hearty congratulations to the author upon his success in writing books which are so eminently suitable to the students for whom they are intended"

Professor Umes Chandra Bhattacharya, M A., formerly, Professor, Presidency College, Calcutta; Rajshahi College; Lecturer, Post-Graduate Department, Calcutta University; Lecturer, Dacca University:

"I have read the book with pleasure. You have given all the essentials of the subject within a small compass. It is not only quite good as an introductory study but contains more than enough, I hope, for our Intermediate students."

Professor Basanta Kumar Ghosh, M A, Rajshahi College:

"Both the books have been introduced into my classes."

Professor Paresh Chandra Ganguly, M A, Victoria College, Comilla:

"Really your book is very suitable for I A students. I shall recommend your book to my class."

Professor Bibhuranjan Guha, M A, Victoria College, Comilla:

"I have carefully examined Professor Roy's TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC. The book is carefully written with an eye to the difficulties of the students. The language is simple and the author has succeeded in focussing the attention of the young learners to the most important problems. The worked-out exercises at the end of each chapter are of great help to the students. Well-chosen questions from each chapter with occasional hints for answering them constitute also a useful feature of the book. The book ought to have a great sale."

Principal Gokul Chandra Banerjee, M.A, Victoria College, Narail:

"I found your Logic very suitable and so I adopted it as a text-book here. Your elucidations of the various topics are concise and yet very clear. Your language is so easy that even the ordinary student of an average merit will find but little difficulty in grasping the subject. The exercises and the solutions of so many problems are also very helpful. I hope the book will have a very wide circulation."

GAUHATI UNIVERSITY.

Professor Binodebihari Majumdar, M A., Brindaban College, Habiganj:

"I have great pleasure to say that the books are eminently

suted to the requirements of students preparing for the I A Examination of the Calcutta University. The special features that commend the books for the every student are their *clear and lucid style*, concrete examples to explain the different topics and numerous worked-out exercises. I have gladly recommended the books to my students."

Professor S. C. Dutt, M A , Cotton College, Gauhati:

"I am delighted to see the new editions of those highly popular volumes. They are indeed *very helpful* to our students for passing the examination. Kindly convey my congratulations to the author, Professor Roy."

Professor J. K. Bhattacharya, M A , Gurucharan College, Silchar:

"I find the works quite *serviceable* to students. I have recommended them to my students."

Professor D. C. Bhuyan, M A , B L , J. B. College, Jorhat:

"The two volumes of Prof B N Roy's Logic are eminently suited to the needs of the Intermediate students. It need not be emphasised that his simple, clear and lucid presentation of the subject-matter is responsible for the unique popularity his books enjoy amongst the students. I could unhesitatingly recommend them to my students and found them highly useful."

Principal Usha Bhattacharya, M A , Lady Keane Girls College, Shillong:

"Really your book is very well-written and it is of great benefit for the students. Last year one of my students could get a distinction in Logic with the help of your book alone. Not only does it help the students but it helps the Professors also in explaining the logical principles clearly to the students."

Professor P. C. Sanyal, M A , M. C. College, Sylhet:

"I am very glad to tell you that Mr Roy's book has been recommended to the First Year students of this college. I am actually following the book in my class lectures. Please inform Mr Roy that I find his *arrangement very good* and my students appreciate his exposition, specially his examples."

Professor Surendralal Kundu, M A , Murarichand College, Sylhet:

"Both the volumes have appeared to me as good, eminently suited to the needs of Intermediate students. What appealed to

me most in your books are the *nice arrangement of topics and the worked-out Exercises*"

Professor Sudhir Kumar Nandi, M A , M. C. College, Barapeta, Assam:

"I have gone through the books and found them very helpful for the students"

Professor Bijoy Lal Majumdar, Govt. Women's College, Sylhet:

"Really his volumes are indispensable for students of Logic reading in the Intermediate classes His books are dear to us and will always remain so with the students I have already recommended his Text-books and am following them in my class lectures"

PATNA UNIVERSITY.

Professor A. L. Bahal, M A , Head of the Department of Philosophy and Psychology, Ramdayal Singh College, Muzaffarpur:

"I have gone through the books and found them very useful. The style and the mode of treatment of the details show a thorough mastery of the subject The elaborate examples and questions at the end of each chapter are particularly useful for the student in understanding the basic principles of Logic"

Professor N. K. Bose, M A , B. N. College, Bankipore:

"All the Professors of our College have spoken very approvingly of your books They will recommend your books to the students of our college"

Professor S. N. Roy, M A , Behar National College:

"I have been able to go through your book and found it useful I have recommended it to my students I like to say that the topics have been well arranged and the exposition of the fundamental principles is clear and accurate."

Professor Priya Govind Dutt, M A , Diamond Jubilee College, Monghyr:

"I have already recommended your books to my students I will use your books both in the general and the tutorial classes to show the great usefulness of your book"

Professor Yaqub Masih, M A , Rajendra College, Chapra:

"They are excellent as text-books and my students are finding the subject *much easier to follow* It would be hard to write a better book for the students preparing for the Intermediate University Examination "

Professor K. V. Krishna Rao, M A , Rajendra College, Patna:

"They are indeed very useful to the students I have recommended them to my boys "

Professor Kshitish Chandra Chakravarti, M A , B L , Bharata-Visharada, Darshan-Ratna, Vendanta-Shiromani, Tri-Chandra College, Nepal:

"The Author and the Publisher have to be greatly congratulated on their success in bringing out such excellent volumes, which supersede popular Indian works on the subject hitherto in use

The present two texts are characterised by a thorough and clear grasp of the entire subject-matter and an accurate, simple and happy presentation, the style used being no insignificant factor contributing to the *grand performance* The fallacies and the several canons of Inductive Reasoning, to cite only typical instances from a really abstruse branch of knowledge, have been very well treated The author shows manifest signs of possessing undoubted talents for original work which he should soon utilise in further and more advanced treatises on Philosophy "

Professor Anandi Hazari, M A , T. N. J. College, Bhagalpur:

"I have gone through the two volumes of Logic by Prof B N Roy They are extremely useful for students of Intermediate Classes The language is simple and the treatment of facts is direct and clear "

Professor Gaya Prasad Singh, M A . Ganesh Dutt College, Begusarai:

"The books are very popular here among my students"

BANARAS HINDU UNIVERSITY.

Dr. S. K. Maitra, M A , Ph D , formerly, Head of the Department of Philosophy, Banaras Hindu University:

"Your book is *very useful* to the class of students for which it is intended "

Dr. B. L. Atreya, M A , D LITT., Head of the Dept. of Philosophy, Hindu University, Banaras:

"I got it prescribed for the Intermediate Examination of our University simply because I consider it to be the *best manual on Logic for the beginner* I would have congratulated you, but I did not know your address Please accept my hearty congratulations now, although it is quite late"

Professor M. S. Rawani, M A , Crosthwaite Girls' College, Banaras:

"I have been using them ever since I received them They have fully discussed the subject-matter prescribed for the Intermediate course and I am sure *they will be of great help to the students and teachers concerned Language is delightfully simple and easy to follow*"

Professor T. R. V. Murti, M A , Banaras Hindu University:

"May I say at once that Prof Roy's two volumes have by now made for themselves a very enviable position as standard text-books on Logic That as many as ten editions of them have been called for in the course of fifteen years is a sure sign of their immense popularity And with each edition, the author has bettered the book and made it more helpful to the students"

Professor Tara Prasad Singh, M A , B L , U. P. College, Banaras:

"You should be glad to hear that your books are the ones I recommend for my boys Most of them have got them"

Professor P. Nagaraja Rao, M A , Banaras Hindu University, Banaras:

"Professor Bhola Nath Roy's books on DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC are very useful to the student The exposition is exhaustive and complete. The treatment of the subject is masterly and particularly helpful to the students for their examinations It suits admirably as a text-book for the Intermediate Classes for our Universities The present edition is well got up and contains many examples worked out"

Professor N. C. Sanyal, M A , L T , Queen's Intermediate College, Banaras:

"To my mind Prof Bhola Nath Roy appears to be a consummate artist. He knows what to tell and how to tell His

'TEXTBOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and 'TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC' are admirably suited for Intermediate students

U. P. INTERMEDIATE BOARD.

Professor S. M. H. Naqui, M A , Government Intermediate College, Allahabad:

"I have already recommended your books to my students, as I find them quite useful to the beginners. The language is *simple and easily intelligible*. Another good feature of the books is that there are very many useful exercises appended to each chapter. This enhances the value of the books considerably."

Professor Dharendra Lal Pal, M A , R. E. Institute, Dayalbagh, Agra:

"Yours is just the book for those who want to avoid, on the one hand, books crammed with all sorts of details and, on the other hand, books which do not pretend to give more than bare outlines. You have steered clear of both the extremes and this is saying a good deal about a text-book. Another good feature of the book is the stress you have laid on the practical side of the science."

Professor Jadu Nath Sinha, M A , P R S , Ph D Meerut College, Meerut; Lecturer, Agra University; sometime, Professor, Ripon College Calcutta, Rajshahi College, Jagannath College, Dacca, etc., says:

(1) "Your books are written in a simple and clear style and they will prove *immensely useful* to students of Logic."

(2) "I have carefully read through Professor Bhola Nath Roy's 'TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC' and 'TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC' and used them as text-books for Intermediate classes. The language is simple, clear and lucid. The author has always kept in view the difficulties experienced by young students in grasping the intricate problems of Logic. The treatment of every topic is exhaustive and critical and yet not cumbrous. The author has solved numerous University Questions and given exercises at the end of every chapter. I strongly recommend these books to the students of the Intermediate classes specially of the United Provinces."

Professor W. C. Banerjee, M A , S. M. College, Chandausi:

"I have gone through both the volumes carefully and am glad to tell you that I have found them eminently suited for class use and as such I have prescribed them as the TEXT-BOOKS for my Intermediate Logic students."

Professor M. P. Vaish, M.A., S. M. College, Chandausi:

"I have found the said book quite suited to the need of Logic students and I have been recommending the same to my students for the last six years. The two text-books are not only simple, and lucid but also illustrative and the worked-out exercises are the special features and are of great utility."

Professor S. B. Roy, M A , D. A. V. College, Dehra Dun;

"Prof B N. Roy is an experienced teacher, as a master of the subject, he knows well the special needs and difficulties of young students. The different topics have been methodically arranged and the fundamental rules and principles of Logic have been thoroughly expounded in a very lucid style and illustrated with well-selected examples from standard works. He has been consistent, clear, and concise all through. An avoidance of all subtle, abstruse and abstract analysis, of controversial, which repels young students, is a special feature of his works. Profuse exercises and University questions with practical hints for solution at the end of each chapter will go a long way in giving a systematic drill to the intelligent learner enabling him to grasp thoroughly the essential principles of the subject. The volumes cover the entire syllabus in Logic for the Intermediate Examination of all our Indian Universities. The works will, I hope, prove an excellent compendium, useful to students and teachers alike. I have been recommending Prof Roy's volumes to my classes for many years."

Professor Kh. Athar Hussain, M A., Government Intermediate College, Lucknow:

"I came across the work last year and having found it suitable and useful for Intermediate students recommended it to my class. I congratulate you on the very decent get-up of the two volumes and the author has succeeded well in making it very lucid and comprehensive."

Professor P. K. Banerji, M A , Govt. Jubilee Intermediate College, Lucknow;

"I find the books very useful for my students who have been using them for the past several years with great profit to themselves."

Professor C. L. Malaviya, M A , Kanyakubj College, Lucknow:

"The books are no doubt good and useful, specially for the

Intermediate students I have recommended them to my students I am sure the books would become popular and replace "

Professor Ram Pratap Singh, M A , B L , Maharaja's College, Jaipur:

(1) "It was very recently (talks of 1936) that I learnt of your Logic at Benares University The Professor taking the Intermediate classes talked very highly of your books I have a mind to introduce your DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC from July next"

(2) "They are admirably suited for the Intermediate students"

Professor C. P. Brahmo, M A , Indore Christian College:

"These publications have been so useful that I always recommend them to my students, and I hope to do the same in future"

Professor Dinesh Chandra, M A , LL B , Jasawant College, Jodhpur:

"I have great pleasure in testifying that the TEXT-BOOKS OF INDUCTIVE and DEDUCTIVE LOGIC by Bhola Nath Roy have met admirably the needs of the students preparing for the Intermediate examination For clarity of thought and lucidity and cogency of expression untrammelled by any elaborate discussion of certain topics (which is bound to confound the tyro) the books are second to none Mr Bhola Nath Roy has recognised that thought is made clear only through its practical application and consequently the books are marked for a wealth of well-chosen and apt examples which makes a special appeal to the student community I have not the least doubt that the books have captured the field and will long retain it I recommended them strongly to all prospective students and Professors"

Professor Rajendra Nath Roy, M A , formerly, Professor, Jasawant College, Jodhpur:

"Your book is a *decided improvement* on many in the market"

Rev. W. S. Taylor, M A , B D , Ph D , Principal, Indore Christian College, Indore:

"I have looked through the two books on Logic by Prof. B. N. Roy and consider them to be good I have used Roy's books in teaching Logic and have found them very helpful"

Professor R. R. Agarwala, M A , Dungar College, Bikaner:

"These are very useful books to Indian students of Intermediate

classes written as they are in a simple and lucid style I shall be happy to introduce them in my Logic classes. The addition of a large number of solved exercises at the end of each chapter is a welcome novelty."

Professor A. B. Sindhi, M A , LL B , Dungar College, Bikaner:

"I have gone through Prof Roy's DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC. I find it very useful to the Intermediate students. The exercises at the end of each chapter are very ably selected."

Professor Mohan Lal Verma, M A , LL B , Herbert College, Kotah:

"These books by Prof B N Roy appear to be the result of long long experience of the learned writer in teaching the subject to college students, and it is hoped will prove very useful to my students of Logic."

Professor Balkrishna Haskar, M A , Victoria College, Gwalior:

"It is needless to add that I have been recommending these books to my pupils even since I received the first editions of these books as presentation copies several years ago."

Professor S. N. Mehrotra, M A , Govt. Intermediate College, Jhansi:

"I must assure you that I shall recommend these books to my students. I must admit that they are the outstanding books for Intermediate students."

Professor Mohammed Ahsan, M A , Shia Intermediate College, Lucknow:

"I acknowledge with thanks receipt of your new edition of Prof Roy's invaluable books on Logic. I have always been considering Prof Roy's books to be the best in the market on the subject, being specially suitable for the requirements, curricular as well as psychological, of Indian students. I have been using the books in preparing my lectures and have been recommending them to my pupils every one of whom possesses a copy of each of the two books. The present edition is a great improvement on the one I possessed, and, I think, special care has been given to changes in the University Prospectuses with regard to the Logical Syllabus."

DELHI.

Professor Dr. Indra Sen, M A , LL B , Ph D , Hindu College, Delhi, sometimes Lecturer, Koingsberg University, Germany:

"I can say that they are *admirable books* The marginal notes and the bold-type writings clearly and conspicuously mark out the fundamental ideas That is particularly important for the average student who often loses himself in the wood of too many ideas and words The small type writings provide useful advanced teachings to the brilliant student Form the point of view of the teacher also, I find these small-type writings very useful"

Principal Basanti Das Gupta, M A , Indraprastha Girls' Intermediate College, Delhi:

"I like both the volumes immensely They will prove *highly useful* to Intermediate students I have recommended the books to the students in this college"

Professor M. P. Rudra, M A , Ramjas Intermediate College, Delhi:

"I find the books easy to understand Professor Roy has lucidly explained in these books the rules and principles of DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC and has amply illustrated them by well chosen examples The Exercises given at the ends of Chapters are very helpful in giving a good training to the students for answering questions in the University Examinations"

Professor W. Adiseshiah, M A , St. Stephen's College, Delhi:

"From what students tell me, Prof Roy's book is a popular guide to students, doing Logic for the Intermediate Examination and I dare say it will continue to be so" I was greatly impressed by the wealth of detail and the simplicity of treatment which mark the volumes, and I have no doubt that students will find in it an easy and helpful treatment of the subject, adequate to meet their difficulties"

Professor Prem Chand, M A , Hindu College, Delhi:

"As books on Logic, they are as good as many other books on Logic, available in the market But they have a distinguishing feature Their practical bias is very pleasing and should be very helpful to the students Their language is clear, precise and simple"

EAST & WEST PUNJAB and JAMMU & KASHMIR UNIVERSITIES.

**Professor M. D. Kapila, M A, A. S. College,
Ludhiana:**

"We have been using your TEXT-BOOKS OF DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC in our classes for the last five years. The treatment of the subject is so lucid and clear that the students do not find any difficulty in mastering Logic. You deserve congratulations from both the teachers and the taught for bringing out the books."

**Professor B. C. Harrington, M A formerly, of
Forman Christian College, Lahore:**

"The books are *admirably designed and very superior to other books which I have seen*. I trust these books will come into general use in this University."

**Professor R. Siraj-ud-din, Forman Christian College,
Lahore:**

"I am recommending your DEDUCTIVE LOGIC to my Intermediate students this year."

**Professor Jagdish Singh, M A, Forman Christian
College, Lahore:**

"I have used the TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC for my class work and find it extremely useful and well-written."

**Principal M. R. Qureishi, M A, B T, Principal,
Malerkotla College, Malerkotla:**

(1) "*The essentials of the subject are treated in a lucid manner showing insight into the requirements and difficulties of Intermediate students*. I have no doubt that they will prove *immensely useful to them*."

(2) "Your Logic books have been in use in this College for many years past."

**Professor Gobind Pershad, M A, De Montmorency
College, Shahpur:**

"The books are most admirably suited for the needs of Intermediate students who take up Logic as one of their subjects. *They contain a comprehensive account of the subject and hence are very useful*."

Professor Radha Krishna, Gordon College, Rawalpindi:

"Even a hasty look through them shows that they are books of exceptional value I am sure my students will find these books very valuable"

Professor Sunder Das, M A , Gordon College, Rawalpindi:

"I found them extremely useful for the students of Logic, among the elementary books, they are best suited to needs of Indian students"

Professor Pratap Krishna, M.A , D. A. V. College, Hoshiarpur:

"Professor Roy's books are excellent TEXT-BOOKS as comprehensive in scope as they are lucid in expression The author has taken great pains in collecting the opinions of various authorities on controversial points and discussed them with the impartiality of a profound scholar The abstruse parts have been most skilfully handled so as to make them intelligible even to the beginners I think it is an indispensable book for Intermediate students Its lucidity and felicity of expression attract the average student while its wealth of useful data, the numerous worked-out exercises and typical questions set out at the end of each chapter all carefully marshalled is a boon to, not only a good student, but a teacher as well"

Professor Som Prakasha Adya, M A., D. A. V. College, Hoshiarpur:

"The treatment of the subject is excellent, and I am of the opinion that no other Indian author has dealt with the subject so remarkably as Professor Roy has done Professor Roy has really obliged the Indian students by giving them his TEXT-BOOK OF INDUCTIVE LOGIC and TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC Please convey my congratulations to him on his achievement. I wish if he could give us such books on Ethics and Psychology as well"

Professor Abdul Qadir, M A , Government Intermediate College, Rohtak:

"Both of them are excellent compilations and are well-adapted to the requirements of our I.A students The expositions are fairly full and accurate I have introduced Professor Roy's TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE LOGIC in the first year of the I A class"

Professor Mohd. Afzal, M A , Government College, Jhang:

"I can say with confidence that the books are written in as admirably lucid style and are better than any other similar works intended for Intermediate students."

Professor Jagat Singh, M A , B T , Khalsa College, Gujranwala:

"I must congratulate you on producing such *excellent manuals* for the junior students which are certainly the result of a very wide reading and mature judgment. Your books are therefore specially suitable for brilliant students and young teachers."

Professor Faquir Chand Sud, M.A., D. A. V. College, Jullunder City (Punjab):

"Needless to say *I recommend your books every year* to my students, and they usefully go through them."

Professor Gursharan Das, M A , D. A. V. College, Rawalpindi:

"It gives me great satisfaction to note that these books cover the entire course of the Punjab University. Every topic has been dealt with most comprehensively and critically. I always recommend these books for the best students of my class."

Dr. Mohammad Easanullah Khan, M A Ph D , Professor, Islamia College, Peshwar:

"Regarding Prof B N Roy's 'DEDUCTIVE' and 'INDUCTIVE LOGIC' I must state that I have taught those TEXT-BOOKS to the Intermediate students for more than 5 years and have found them very useful and enlightening on the subject. I have therefore no hesitation in recommending them to any teacher of Logic."

Professor M. A. Ghani, M A Emerson College, Multan:

"I looked through the contents of the books and find the treatment of the subject quite exhaustive. The author seems to have taken considerable pains over the work. The two volumes are much superior to their rival books. They are especially helpful to those students who wish to secure good position in the Intermediate examinations. They cover the syllabus of the Punjab University and much more."

Professor S. K. Toskhani, M A , Sri Pratap College, Srinagar:

"Professor Roy seems to have an insight into the capacities and needs of Indian students which is very rare I do not know of any other book on Logic which is more suited to the peculiar needs of the young Indian students of Logic.

I have already introduced the book in my college in preference to the numerous other similar books sold in India "

Professor Des Raj Wadhawan, M A , Ramsuk Das College, Ferozepur City:

"I have been teaching these books for the last four years, and from my personal experience I can safely assert that I found them the most useful books for the students Mr Roy's books seem to be a wonderful improvement over the existing books"

Professor S. C. Mitra, M A , Government College, Lyallpur:

"I have carefully studied both the volumes and I have great pleasure in saying that the treatment of the subject is excellent and is marked by the originality of its presentation These two volumes are very suitable as text-books for the use of Intermediate students I have advised my students to use them as text-books "

ANDHRA UNIVERSITY.

Professor N. Swaminatha Aiyar, M A , (Hon.), Hindu College, Masulipatam:

"The two volumes are admirably suited to the requirements of the Intermediate standard of the Andhra University They can with profit be used as text-books I am including the volumes in the list for the Library this year "

The Principal, Venkatagiri Rajah's College, Nellore:

"I received specimen copies of your TEXT-BOOK OF DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC and I have gone through them I find the treatment is both clear and concise to the beginner It is bound to be very valuable. The large number of illustrations given (with some of them already worked out) is an additional happy feature of the book I have recommended the books to my students and they tell me the books are unlike other big TEXT-BOOKS on the subjects, readable and even enjoyable "

**Professor A. R. Ponnuswami, M A , Chief Lecturer,
P. R. College, Cccanada:**

"I have perused the copies of Professor Bhola Nath Roy's TEXTBOOK OF DEDUCTIVE LOGIC and TEXTBOOK OF INDUCTIVE LOGIC I have found the books *extremely useful for students* preparing for the Intermediate examination The large number of simple illustrations that Professor Roy has used has made the subject clear I have been recommending the books to my students as very helpful handbooks and I am sure they are much appreciated by students "

MYSORE UNIVERSITY.

**Professor P. Swamidas, M A , Maharaja's College
(Arts), Mysore:**

"I congratulate you and Dr Roy on the great work you have published, the fact that it has passed through so many editions since its first publication is a clear proof of its popularity and usefulness in Indian Universities "

**Professor Y. J. Padmarajah, M A , Maharaja's
College, Mysore:**

"They are compact and exceedingly well-written The illustrative material is ample, impressive and lucid Besides being highly useful for our Intermediate students, they are an example in the art of clear exposition of a speculative subject "

**Professor S. Thirumalai, M A , Intermediate College,
Bangalore:**

"I have gone through the books carefully I am glad to say that they amply meet the needs of the syllabus of our Universities The style is simple, examples are familiar, and the subject-matter is exhaustively treated The most notable features of the books are the nice arrangement of the topics and the exercises at the end of each chapter fully worked out They have already been recommended to my students I have no doubt that your books are admirably suited to the needs of the Intermediate students in our Indian Universities "

**Professor N. A. Nikam, M A , (CANTAB), Maha-
rani's College for Women, Bangalore:**

"I have known these books They are clear and authoritative and useful both to the teacher as well as the students of Logic."

MADRAS & TRAVANCORE UNIVERSITIES.

The Rev. Fr. Varin, S.J., Professor, Loyola College, Madras:

"I have as usual recommended the book to my students"

The Rev. Fr. J. Arul, S J , Professor, St. Joseph's College, Trichinopoly:

(1) "My Roy's book does deserve the name '*The*' TEXT-BOOK or LOGIC. It is *completest text-book* that satisfies the syllabus of our universities fully. The treatment of the subject is quite thorough, orderly and clear. The exercises worked out are a boon to the students. The set up of the book is excellent, two handy volumes neatly printed on very good paper. The variety of types used renders the study of the book easy and pleasant"

(2) "I was so far using the sixth edition of DEDUCTIVE LOGIC and the fifth edition of INDUCTIVE LOGIC. The new books are more copious in Exercises since the first volume is enriched by 26 arguments and 45 questions newly added and the second volumes possesses some 20 arguments more as models to be examined. The two books are richer, hence more useful to the students"

Professor Rev. Fr. V. Allard, S J , St. Joseph's College, Trichinopoly:

"As soon as I got the books, I went rapidly, though critically, through both volumes, and my impression has been *very, very good*. The arrangement of the parts is excellent the matter is complete without superfluous erudition, and the exposition shows a thorough grasp of the subject. As I read on, I often thought that's just my own idea about it, that's just the way I like the subject to be treated, etc. I have lent the books to my colleague, Fr Antonisami. He told me a few days ago that he too finds your books excellent in every way"

Professor A. Arivatham, M A , St. Joseph's College, Trichinopoly:

"These excellent manuals are the favourite books among the nearly 400 students of this college. And they are extremely useful for me to prepare my class lectures"

The Rev. Fr. A. C. Eapen, S J , Professor, St. Berchman's College, Changanacherry:

(1) "The books are quite suitable for Intermediate students. Their chief merit lies in their great clearness which makes it very

easy for students to read and understand them. Another very useful feature is the large number of examples given for the logical principles and especially for the various fallacies. The exercises worked out at the ends of many chapters will be very useful for students while the questions given at the end of every chapter will enable them to practise answering for themselves”

(2) “These text-books are very useful for Intermediate Logic students. They cover the whole portion prescribed for the students, and they are written in very clear and simple language. Plenty of examples are given for the various logical principles and the fallacies. Numerous exercises are given at the end of each chapter, and miscellaneous questions with answers are given at the end of each volume.”

Principal (Sister) M. Annunciata, A.C., St. Agne's College, Travancore:

“The Professor of Logic in our college is quite pleased with them. She finds them highly satisfactory as text-books for the use of students preparing for Intermediate examination, as they are both clear and concise”

Professor T. Jacob Poonen, M A., C. M. S. College, Travancore:

“I presume *they will be of great use* to Intermediate students”

Professor C. I. Mathunni, M A., C. M. S. College, Kottayam, Travancore:

“I am sure Prof Roy's TEXT-BOOK ON LOGIC will be very useful to the students of the Intermediate Classes”

Professor Rev. D. J. Albuquerque, S.J., St. Aloysius' College, Mangalore:

“Professor Bholanath Roy's books reached me about a fortnight ago. *My acquaintance with them has been more than a happy one*. It will please you to learn that when I incidentally asked my good friend, Rev Father Turmes, S.J., St. Xavier's College, Calcutta, what he thought of the books, he straightaway sent me a copy—that means he recommends them. I have placed these books in the Library. I shall not fail to recommend them to students”

The Professor of Logic, St. Agnes' College, Mangalore:

“I have always found them useful and helpful and the latest edition has still more improvements. I have been recommending

them to my students, to every set of them whom I have taught these past fifteen years, and I shall continue doing so"

Mother Sophie, Professor, Holy Cross College, Trichinopoly.

"Many thanks for the Logic specimen copies you sent me. I will bring them to the notice of our students"

Professor R. Subbiah, M.A, Holy Cross College, Trichinopoly.

"It is not too much to say that the excellent TEXT-BOOKS OF DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC of the eminent Prof Roy are best fitted to be prescribed in every college as the text-book of Logic."

Professor George Thomas, M A., Malabar Christian College, Calicut:

"I have already recommended Professor Bholanath Roy's books to my students"

Professor G. Herbert Samuel, B.A., (HONS), Malabar Christian College, Calicut:

"The books are well written to suit the requirements of the students They are of great help both for the teacher and the taught"

Professor K. Jacob, Union Christian College, Alwaye, Madras:

"With regard to your book I must say it is valuable."

Professor E. M. David, M A, Findlay College, Mannargudi:

"These two treatises deal with the subject-matter exhaustively and with *copious illustrations* They are well-written and can be understood even by an average student. I am sure these text-books *will prove immensely useful* to the beginners in Logic."

Professor K. R. Applachari, M.A, Government College, Coimbatore:

"Your text-books on DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC are exhaustive and will be *found very useful* by students appearing for the Intermediate examination of our Universities"

**Sri N. Srinivasachariar, M A, L.T., Professor,
Government College, Coimbatore:**

"Prof B N Roy's books are very popular with students of these parts. The simplicity of style and the profuseness of examples are in no small measure responsible for their popularity. Both as a teacher and examiner, I am glad that Mr. Roy has not descended to the 'Notes' level. He has by his scholarly treatment justified the title of 'TEXT-BOOK'."

**Professor T. V. Subbayya, M A, Hindu College,
Tinnevely:**

"I glanced the pages here and there and I hope *both the volumes may be of immense help to students appearing for Intermediate Examination in any University.*"

**Professor D. G. Paul, M A, American College,
Madura:**

"I think these books are admirably suited to the Intermediate course, and though named text-books, they give rather a little more, than less, than what is required of the Intermediate students. In addition *the subject is presented in an interesting and lucid manner.*"

**The Rev. Fr. P. Parambil, Professor, St. Thomas
College, Trichur:**

"On a careful perusal I find that the books on both DEDUCTIVE and INDUCTIVE LOGIC are admirably suited for the Intermediate standard. The very thoughtful arrangement of matter, and the clear and precise presentation of the subject with apt illustrations have rendered the work attractive and enhanced its usefulness. I have with great pleasure recommended the book to my students."

**Sister Teresita, M.A, Professor, St. Teresa's College,
Erankulam:**

"I find the books really helpful to Intermediate students. Prof Roy has presented the essentials of the subject in a manner at once clear and precise. A very welcome feature of the book is the wealth of illustrations and their value is further enhanced by the insertion in appropriate places of University questions and model exercises. I find them highly satisfactory as text-books and will recommend them to my students."

**Professor S. Santhanam, M A, Government College,
Kumbakonam:**

"Even while I was a student, I followed Roy's brilliant book and I may confidently say that no other text-book is so clear in its

exposition of logical principles and in no other book are so many logical exercises worked out"

Professor Abraham Joseph, M A , Government College, Kumbakonam:

"The simplicity of the language, coupled with the many lucid illustrations, makes the volumes digestible as well as relishing"

Professor N. Krishnaswami Ayyar, M A , LT., Government College, Mangalore:

"I find Professor Roy's books very useful and suitable as a text-book for the Intermediate students. The style is simple, the treatment of topics clear and adequate and the subject ably and comprehensively dealt with. The students who make use of them are sure to get a good grasp of the subject and find themselves well-equipped for the examination"

Rev. J. Alapatt, S J , Professor, St. Xavier's College, Palamcottah:

"You will be glad to know that I have always strongly recommended them to my students. The matter is very systematically treated in a clear and simple style, and hence the students find no difficulty in grasping the subject"

Profesor G. Vaidyanatham, M A , H. H. The Maharajah's College, Pudukkottai:

"Prof Roy's TEXT-BOOKS ON LOGIC are easily 'A Class' text-books on the subject. The simple style and clear presentation has its appeal on the average students, the wealth of detail and reference has its attraction for the ambitious student; the large number of questions and worked-out exercises catches the attention of the examination-minded student, while the typographical execution—topical and paragraph headings in the margins, bold type key-sentences, phrases, etc. has its text-book charm on all alike. It is no exaggeration to say that 'to know the books is to like them'. Many of the students, to whom the books were lent from the college library, got their own books"

Professor P. V. Sitaraman, M A , Madura College, Madura:

"I am sure you will be immensely pleased to hear from me that most of the students of our College are using your Text-books. Your books give the students of Logic the subject-matter in a clear and concise manner and as such they find them more helpful than

many other available books Further your books have made the teacher's work very easy'

Professor R. Mahadevan, M A , Malabar Christian College, Calicut:

"Your Text-books on Logic are admirably suited for the needs of the Intermediate students Their superiority to other books of their kind, lies in the fact, that they are equally helpful to the students who will not only pass their examination, but understand what Logic is"

Professor C. Ramachandraiah, M.A., Voorhees College, Vellore:

"The uniqueness of the works lies in their connected and comprehensive matter and logical and lucid method Prof. Roy has very well succeeded in teaching the world the great lesson that there is Logic in life and life in Logic"

Sri C. B. Thandanamurthi, M A , Professor, Ceded Districts College, Anantapur:

"The value and usefulness of the books need no other recommendation and I find many of my students of junior intermediate class possessing copies of the new print of these books, I wish every success to many more prints of the same books"

Professor A. Lakshmana Rao, M A , Maharaja's College, Vizianagram:

"I have gone through both the volumes The treatment is clear, simple and exhaustive and the exercises that are worked out at the end of each chapter will be of immense help to the examination-going student"

Professor M. K. Venkatarama Iyer, M A , National College, Trichinopoly:

"I happened to see the books some years ago when a student of the Delhi University was staying here temporarily Even then I was well impressed by the book The recent edition meets all the requirements of students preparing for Logic in the Intermediate Examination The practical problems given at the end are highly useful In many places the discussions are in the right philosophical strain and furnish glimpses into Epistemology and theory of knowledge The books serve to awaken interest in the study of higher Logic and Metaphysics"

Professor S. Rajagopalam, M A , L.T., The Theosophical College, Madanapalle:

"It may probably surprise you to know that the book is being

used as a text-book by the Logic students of our College. The book is a clear and comprehensive presentation of facts and abundantly general reader. I must say that a happy feature of the books is the wealth of examples and carefully worked-out exercises."

BOMBAY, POONA & SIND UNIVERSITIES.

Professor P. B. Sathaye, M A , Willingdon College, Bombay:

(1) "With reference to your publication of Professor Roy's books on Logic, I have to say that I have found them sufficiently clear and useful and that I have been already using them even before you wrote to me about them. I have also spoken to my students about the books."

(2) "I sent my opinion about both these books last year and since my experience has confirmed what I wrote to you. Both these books are very useful to Logic students to whom I have strongly recommended them. Professor Roy has a method of his own in the treatment of Logic questions and is *neither too sketchy nor unnecessarily voluminous* in his exposition. I am sure his books will be much appreciated by the student world."

Professor G. C. Das, M.A , B T., S. T. T. College, Budaun:

"I have gone through both the books 'Roy's DEDUCTIVE AND INDUCTIVE LOGIC, and can safely say that the books eminently suited to the needs of Intermediate students. The notable features of the book are clear and precise exposition and methodical nature of presentation of the subject-matter. From the examination point of view, the copious examples and marginal notes will prove greatly helpful to students. I am positively recommending these books for use in this institution from the next session."

Professor U. D. Bhatt, M A , Dharmendrasingh College, Rajkot:

"I have gone through the book on Logic by Professor Roy, and it is not too much to say that I feel quite at home with the subject. the treatment is so simple, yet so scholarly."

Professor K. V. Gajendragadkar, M A., S. H. P. Thackersey College, Nasik:

"I find your book *very useful* to students, it fully covers the portion prescribed for the Intermediate students in Arts and all the problems have been discussed in such lucid and simple language that *even the dullest student is bound to be pleased with the book*. You have taken the trouble to choose very happy examples that grip the mind and illustrate the theory completely. The marginal

is bound to be useful as it summarises briefly all the important points of the subject."

Professor S. V. Pandit, M A , Ismail College, Bombay:

"I have gone through the book, and in my opinion the book meets the needs of our University students. I have recommended the book to my students"

Professor V. H. Date, M A , Lingraj College, Belgaum, Bombay:

"I am persuaded to say that the books ought to be of great help to my students"

Professor D. D. Vadekar, M A , Fergusson College, Poona:

"I have looked into both the books on Intermediate Logic by B N Roy and I can say from experience that the books are a great help to the Intermediate students. For clarity and preciseness of exposition and for the methodical character of presentation, the books have a speciality worth mentioning. Examples and marginal notes, a special aid to memory, mean so much to the pupil's reading for examination"

Professor V. V. Akolkar, M A , Karnatak College, Dharwar, Bombay:

"I have always entertained a good opinion of Professor B N Roy's TEXT-BOOKS OF LOGIC. As compared to other books of the kind available in the market at present, Professor Roy's books are superior in this that the arrangement of topics is more systematic and there is development of ideas in the true sense of the term. The language is simple and the illustrations chosen are within the reach of students. I must say that the books are *highly satisfactory* and the students of our University have reason to thank Professor B N Roy for that"

Professor P. M. Ashar, M A , S L D , Arts College, Ahmedabad:

"Professor Roy has succeeded in rendering the abstract subject of Logic easy of assimilation by the beginner. The ample use made of the illustrations and of exercises stimulate the student to devote mental energies to the subject. I have recommended with great pleasure the same to my students"

Professor A. K. Jiandani, M A , D. J. Sind College, Karachi City:

"From what I have already seen of the books I can testify to

their usefulness as text-books for beginners, and I have been already recommending the books to my Intermediate students."

Profssor S. Jalota, M A , D. A. V. College, Sholapur, Bombay.

"I find the latest editions are keeping up the reputation of the earlier ones and are become progressively more useful to the students. The price is encouragingly low, and under the present war conditions it is also a recommendation in itself. I have advised my students to look up the same, and do its exercises for a thorough mastery of the subject."

Professor Angelo Moses, M.A., F.R.A.C., B.P. B.P.E., Chellasing and Sitaldas College, Shikarpur (Sind):

"I have no hesitation in assuring students of Logic, Professors and other interested in the subject that Prof Bholanath Roy's Text-books on Logic are undoubtedly the best on the subject, now available in the market."

Prof Roy - experienced teacher and erudite scholar that he is - thoroughly understands the mind of the average Indian student, and his books are written in such a simple, precise and lucid manner that any boy of average intelligence can without much difficulty, after a careful perusal of the books, grasp the essentials of Logic.

I find the books invaluable to me in my lectures. I have recommended Prof Roy's books to all my students.

I also recommend them to all Professors of Logic, as I am fully convinced that with the help of these books, lectures on such a dry and difficult subject as Logic admittedly is, may be made more interesting and palatable to students."

Professor Dr. P. Valavaikar, Ph D , LL B , B E S , Gujarat College, Ahmedabad:

"From what I have seen of Prof Roy's 'Text-books' I am able to say that they will admirably serve the purpose for which they are written, provided the student makes an intelligent use of them. The arrangement of the various topics, executed with the assistance of suitable typography, is quite systematic and methodical. Indeed, I should think that this arrangement is a specially noteworthy feature of the books in which, perhaps, they exceed any other texts."

Both the books are written in a simple and clear language, and the copious examples are typical and ought to help the student to grasp the principles thoroughly. The author has expounded the subject matter with a proper appreciation of the capacities and the difficulties of those for whom the books are meant."

**Professor S. G. Hulyalkar, M.A, (LONDON), Sir
Parasurambhan College, Poona:**

"I have gone through both the books on Logic by Prof Roy, and I can say from my experience that they are admirable Text-books. There are many excellent books on Logic but few treat the subject in a simple and attractive manner. Prof. Roy evidently possesses the special gift of simplicity and attractive style. The interesting illustration from everyday life make the subject delightful and quite at home to the students. The marginal notes are a sure aid to revision and the exercises worked out are a good practical guidance. Thus in my opinion the books will be of immense help to the Intermediate students preparing for the University Examination. It is needless to say that I have recommended them to my students."

**Professor U. Shankar, M.A, D. A. V. College,
Sholapur:**

"I can say that the books meet the needs of Intermediate students adequately."

**Professor S. V. Dandekar, Ramnarain Ruia College,
Matunga, Bombay:**

"Thank you for your copies of Roy's Logic. I always recommend these books to my students. I have found them as the most excellent among the Indian publications for Intermediate Arts students."

**Professor H. L. Butani, D. G. National College,
Hyderabad-Sind:**

"I have been recommending Mr B. N. Roy's Text-books of Logic to my students for the last seven years. The students of this place take his books as naturally as the ducks take to water. The books satisfy all their queries and requirements."

NAGPUR UNIVERSITY.

**Professor Dr. C. D. Deshmukh, M.A, Morris
College, Nagpur:**

(1) "They are *extremely helpful* for the Intermediate students and I was glad to recommend them to my students for the purposes of examination. The subject has been made easy by plenty of examples."

(2) "I have great pleasure in recommending these books on Logic to Intermediate Students, since the subject is made easy, through the copious examples, contained in them."

**Professor P. S. Ramnathan, M A., Morris College,
Nagpur:**

"I find that the books are very popular among students over here"

**Professor B. R. Deshpande, M A., City College,
Nagpur:**

(1) "I have great pleasure in going through your valuable books on Logic. *The treatment of the subject is so clear and simple that the reader should find no difficulty in understanding such a difficult subject.* I offer my hearty congratulations as well as my sincere thanks to you for the service you have done to the student world as well as to those who like me are interested in the subject"

(2) "I was very pleased to go through the latest edition of Roy's Text-book on Logic which you were so kind to send me. I am glad to say the books have been made still more useful to the student community than before especially in helping them to solve practical problems in Logic. I congratulate the author for placing such valuable books in the hands of students"

**Professor S. N. L. Shrivastava, M A., Hitakarini
City College, Jubbulpore:**

"I find these books admirably simple, systematic and exhaustive for the purposes of the Intermediate students of Logic. The most delightful feature of these books is the plethora of suitable illustrations. These books can be of great help to students preparing for the Intermediate Examination in Logic of any University in India"

CEYLON.

**Principal S. Natesan, M A., Parameshwara College,
Jaffna:**

"I have read the books carefully and I find them to be *extremely useful.* I am recommending them to the students of this college"

**Professor D. J. Anthony, O.M.I., St. Joseph's
College, Colombo:**

"I have read them through and I find them very interesting for my students in the London Matriculation and Intermediate classes. From the time I started my lectures on Logic I found the need of a text-book that I could profitably place in the hands of my students. Some of the books I found were inadequate for the purpose, others were too deep and profuse. Thus I was obliged to prepare my own notes and dictate them to the class. I am glad to say your books suit my purpose very well. The style is simple and interesting, the examples are familiar, the subject-matter is exhaustive as far as the London Matriculation and Intermediate examinations are concerned. I wish your books a wide circulation"

Professor Charles, O.M.I., St. Patrick's College, Jaffna (Ceylon):

(1) "I have read through these books and I find them *quite suitable for the London Matriculation and Intermediate students*. I am therefore strongly recommending them to my pupils"

(2) "My candid opinion is that these books are *very well adapted* to our students who are preparing for the London University examinations. There are many excellent books on Logic, but few treat subject in a simple and attractive form and hence they are not suitable for our boys. Professor Roy possesses a special gift of exceptional utility. It is the gift of popularizing without cheapening. Admirable is the way he deals with the subject-matter"

Professor C. Subramaniam, M A, Hindu College, Jaffna:

"I have recommended these books as suitable for examination,"

Mr. D. P. Devendra, B A (LOND.) - Nalanda Vidyalaya, Colombo (Ceylon):

"I find the books quite adapted for our purpose. Some of my students are already using these books"

Professor S. P. Shivapatham, "Kallady," Point Pedro, Ceylon:

"I have been very much impressed with the care you have taken to enlighten students of Logic. I am recommending these books for my students who are preparing for the London Matriculation and London Intermediate in Arts Examinations"

OPINIONS ON BENGALI EDITION.

Professor R. R. Chakravarti, M A Vice-Principal, N. S. D. College, Howrah:

"I have read with interest Prof B N Roy's two volumes of TARKAVIDYA PRABESHIKA—the Bengali editions of his famous text-books of Deductive and Inductive Logic. It is pleasing to find that the books retain the clarity of expression and simplicity of style that has made his original works so very popular and attractive. The retention of English terminology in the Bengali editions and the adoption of the spoken language are welcome features in this transitional stage of educational development in the province. An abrupt break with the past would lead to harmful consequences involving chaos and confusion in the field of education. The author's brilliant Introductory Note, should dispel all doubts as to the

efficacy of his method of treatment of the subject. I am sure these books on Logic in Bengali will prove highly useful to Intermediate students and the Professors also to some extent."

Professor Sasanka S. Banerji, Bankura:

"I have gone through both the parts of "Tarka-vidya Prabeshika" and am very glad to find them as useful as his English books of Logic to both the teachers and students alike. I am sure these Bengali volumes will be equally popular with them as his English books."

Professor Debi Prasad Sen, Cooch Behar:

"Professor Roy's works on Logic have all along enjoyed the best reputation in the country for their simplicity of treatment and lucidity of expression. It gives me great pleasure to note that the author has been able to maintain this standard in the Bengali version of his works as well. I have no doubt the book will enjoy wide popularity whether Logic is read and taught in Bengali."

Professor R. C. Sen, Contai:

"There is no doubt about the usefulness of the works. The mix-up of Bengali and English is unavoidable in this transitional period."

Professor R. N. Chakravarti, Surendranath College:

"I have carefully gone through the Bengali version of Prof B N Roy's Logic (both Deductive and Inductive). These are just the books our students of Logic were eagerly waiting for. I am sure these books will gain the same popularity as his English Logic."

Professor Katyayanidas Bhattacharya, Krishnagar College:

"I have been impressed with the simplicity of style and accuracy of presentation. I am strongly of opinion that Professor Roy's Bengali Logic will be no less popular with the I A students as his English one. I have recommended the book to my students of the Krishnagar College as I did to my students in the Ashutosh College."

Professor Ramesh Ch. Munshi, M A , F. C. College, Diamond Harbad:

"Both of your TEXT-BOOKS on LOGIC (Deductive and Inductive in Bengali) have already been recommended by me to my students."

অধ্যাপক শ্রীমহীতোষ রায় চৌধুরী, বঙ্গবাসী কলেজ :

."অধ্যাপক শ্রীভোলানাথ বায়েব লজিকের বাংলা সংস্করণ দুইখানি

পুস্তক বিশেষ যত্নেব সহিত পড়িলাম। গ্রন্থকাবেব ইংবাজী লজিকের আশি দীর্ঘকাল ধবিয়া উচ্ছৃঙ্খিত প্রশংসা কবিয়া আসিতেছি। বাংলা সংস্করণ ইংবাজীব মতই অতি সুন্দর হইয়াছে। ঠিক আমি যে ভাবে ছাত্রদেব গত ৩২ বৎসর ধবিয়া পড়াইয়া আসিয়াছি—অধ্যাপক রায় তেমনিভাবে পুস্তক দুইখানি লিখিয়াছেন দেখিয়া আমার অত্যন্ত আনন্দ হইয়াছে। ইংবাজী Terminology-ব কষ্টকল্পিত বাংলা পরিভাষা সর্বক্ষেত্রে তৈয়াবী কবিত্তে যান নাই, পাণ্ডিত্য প্রকাশেব চেষ্টা কবিয়া কোমলমতি অপবিণতবুদ্ধি প্রথম বার্ষিক ছাত্রগণকে হতবুদ্ধি কবিয়া দেন নাই, সহজ, সবল ভাষায় দুকহ বিবরণলিখ ব্যাখ্যা কবিয়াছেন—ইহাই তাঁহাব সর্বপ্রধান কৃতিত্ব। আমার দৃঢ় বিশ্বাস, দুইখানি পুস্তকই ছাত্রমহলে বিশেষভাবে আদৃত হইবে।”

অধ্যাপক শ্রীবিষ্ণুনাথ গোপাল রায়, বিশ্বভারতী কলেজ :

“অধ্যাপক শ্রীভোলানাথ রায় প্রণীত “তর্কবিজ্ঞা প্রবেশিকা” পড়িয়া সন্তুষ্ট হইয়াছি। পরিভাষা সম্পর্কে গ্রন্থকাবেব সঙ্গে আমার যত্নেব মিল আছে। যতদিন পর্যন্ত সমস্ত ভাবতবর্ষে একটি সর্বজনগ্রাহ্য পরিভাষাব সৃষ্টি না হইবে ততদিন ইংবাজী শব্দ ব্যবহার কবিয়া মাতৃভাষাব মাধ্যমে আমাদের শিক্ষা দিতে হইবে। ইহাং সংস্কৃত শব্দেব আমদানি কবিলে অনেক ক্ষেত্রে গোলযোগের সৃষ্টি হইতে পারে। গ্রন্থকাব প্রাক্কল ভাষায় বিষয়বস্তু বুঝাইয়াছেন এবং আমি মনে করি আমাদের ছাত্রছাত্রীরা এই বই পড়িয়া খুব উপকৃত হইবেন।”

“প্রথম ভাগ পড়িয়া মন্তব্য আগেই পাঠাইয়াছিলাম। বইখানি ছাত্রদেব পক্ষে খুব উপযোগী হইয়াছে। বিষয়বস্তু সবলভাবে বোঝাবা চেষ্টা কবিয়াছেন গ্রন্থকাব। তাঁব চেষ্টা সফল হয়েছে। পাবিভাষিক শব্দ নির্বাচনও সুন্দর হয়েছে।”

অধ্যাপক শ্রীনরেন্দ্রনাথ হাজারা, রাজ কলেজ, বর্ধমান :

(১) “পুস্তকে চলতি ভাষাব ব্যবহার সম্বন্ধে অধ্যাপক বায়েব সহিত আমি একমত। তর্কবিজ্ঞাব দুকহ বিষয় সমূহ ছেলেদের বোধগম্য

করিতে হলে চলতি ভাবাই বিশেষ উপযোগী। দ্বিতীয়তঃ ইংবাজী পরিভাষা ব্যবহার সম্বন্ধেও আমি তাহাব সহিত একমত। যখন এখনও সর্বসম্মত কোন পরিভাষা স্থির হয় নাই তখন আপাততঃ কিছুদিন পর্য্যন্ত ইংবাজী পরিভাষা ব্যবহারই সংদত। পুস্তকটি পাঠ কবিয়া আমি বিশেষ আনন্দলাভ কবলাম। সহজভাষায় পুস্তকের বিষয়বস্তু ছেনেদেব নিকট বুঝাইবার চেষ্টা হইয়াছে। ইহা খুব সময়োপযোগী হইয়াছে এবং আশা করি পুস্তকটি ছেনেদেব নিকট বিশেষ সমাদৃত হইবে। আমি পুস্তকের সাফল্য কামনা করি।”

(২) “অধ্যাপক রায়েব তর্কবিজ্ঞা প্রবেশিকা ১ম খণ্ড সম্বন্ধে আমার মতানত পূর্বেই আপনাদিগেব নিকট পাঠাইয়াছি। আশা কবি পাইয়াছেন। তর্কবিজ্ঞা প্রবেশিকা ২য় খণ্ড পুস্তকখানিও পড়িয়া বিশেষ প্রীত ও আনন্দিত হইলাম। ইহা প্রথম খণ্ডেরই ন্যায় প্রাজ্ঞল ও সবল ভাষায় লিখিত। ছাত্রদেব নিকট ইহা বিশেষ সমাদৃত হহবে বলিয়াই আমি আশা কবি। ইহাব বিশেষত্ব এই যে ইহাতে বাহুল্য বর্জিত হইয়াছে অথচ আবশ্যকীয় সব কিছু দেওয়া হইয়াছে। একপ পুস্তকেব বহুত প্রচলন বাঞ্ছনীয়। আমি আশাব ছাত্রদেব পাঠেব জ্ঞাত পুস্তকখানি বিশেষভাবে অন্তমোদন কবিয়াছি। আমি ইহাব সাফল্য কামনা করি।”

অধ্যাপক শ্রীতারানাঙ্কর ভট্টাচার্য্য, ছগলী :

“অধ্যাপক বায় মহাশয়ের “তর্কবিজ্ঞা প্রবেশিকা” পাঠ কবিয়াছি। যাহাবা বাংলায় লজিক পবীক্ষা দিতে চায় তাহাবা এই বই দ্বাবা বিশেষ উপকৃত হইবে।”

অধ্যাপক শ্রীইন্দ্রকুমার রায়, আগরতলা :

“আপনি দুকহ পাবিভাষিক শব্দজাল বিস্তার না কবিয়া ছাত্রদেব উপকাব কবিয়াছেন। ভবিষ্যতে অমিশ্র বাংলায় তর্কবিজ্ঞান লিখিত হইলেও অগ্রগামী হিসাবে আপনি ভবিষ্যৎ গ্রন্থকাবদেব ধন্যবাদার্থ হইয়াছেন। লজিকেব মত কঠিন বিষয়কে অনভ্যস্ত ভাষায় এমন সহজ-ভাবে প্রকাশ কবিয়া আপনি প্রথমবারেই সফলতা লাভ কবিয়াছেন।”

অধ্যাপক শ্রীরামনারায়ণ ভট্টাচার্য্য, মহিষাদল :

“শ্রীযুক্ত বায়মহাশয়ের লিখনী ইংবাজী ও বাংলা দুই ভাষাতেই সমভাবে চলে। ভাষার প্রাঞ্জলতা ও বিষয়ের যথাযথ বহুস্ত বর্ণনা শ্রীযুক্ত বায়মহাশয়ের সর্বপ্রধান লক্ষ্য। শ্রীযুক্ত বায়মহাশয় যেরূপ সরল ও সাধারণের ভাষায় ইংবাজী তর্কবিজ্ঞার বই লিখিয়াছেন তাহাতে ছাত্রবর্গ বিষয়ের নশ্ব উদ্ঘাটন কবিতে পারিবে। পবিভাবা বিষয়ে তাঁহার আগ্রহাতিশয্য না থাকায় সবলমতি প্রথমশিক্ষার্থী সহজেই শাস্ত্রের বহুস্ত বুঝিতে পারিবে।”

অধ্যাপক শ্রীমনীন্দ্র দত্ত, উত্তরপাড়া :

“বইখানি পড়ে খুব খুসি হয়েছি। দুকহ তর্কশাস্ত্রের একপ সবল, সাবলীল ও সহজবোধ্য পবিবেশন একান্তভাবেই প্রশংসার্হ। ইয়োবোপীয় লজিকের মূল টেকনিক্যাল শব্দগুলি বজায় বেখে বাঙলা ভাষার মাধ্যমে বচিত এই বইখানি পাঠ্যবস্তুর সহজবোধ্যতা, ভাষার সাবলীলতা ও পবীক্ষাদান কার্যের সৌকার্য্য বিচারে আমাদের দেশের তরুণ পবীক্ষার্থীদের পক্ষে খুবই উপযোগী হয়েছে। বইখানির বহুল প্রচার কাবও প্রশংসাপত্রের অপেক্ষা কবে না।”

শ্রীপরেশনাথ ভট্টাচার্য্য, সেন্ট্রাল ক্যানকাটা কলেজ :

“আপনাদের প্রেরিত অধ্যাপক বাঘের “তর্কবিজ্ঞা প্রবেশিকা” পাঠ কবিয়া আনন্দিত হইলাম। দেখিলাম অধ্যাপক বায় তাঁহার ইংবাজী পুস্তক দুইখানির সহজ সাবলীলতা এবং সরস প্রাঞ্জলতা পূরা-পূবিভাবে অক্ষুন্ন রাখিয়াছেন। জটিল বিষয়বস্তুরে সবল কবিতে তিনি সিদ্ধহস্ত। তদুপবি তর্কবিজ্ঞার পারিভাষিক কণ্টক উদ্ধার কবিতে পারিয়া তিনি ধত্তবাদভাজন হইয়াছেন। তাঁহার “তর্কবিজ্ঞা প্রবেশিকা” বহুল ব্যবহার বাসনা কবি।”

